महाभारत सूक्ति-सुधा

सुभाष विद्यालंकार

महाभारत सूक्ति सुधा में 250 से अधिक विषयों से सम्बद्ध सुभाषित महाभारत के एक लाख श्लोकों में से संगृहीत किये गये हैं। महाभारत को रत्नों की खान कहा जाता है। उन्हीं रत्नों में से चुने हुए रत्नरूपी सुभाषित इस ग्रन्थ में एकत्र कर प्रस्तुत किया गया है।

23cm, XXXL+782, दो भाग, 2008 1500 (सेट)

147089

तकालय
विश्वविद्यालय, हरिद्वार
...... आगत नं० 147089
द्यालंकार
सूक्ति-सुधा

	दिनांक	सदस्य संख्या

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या 82.4 सुभा-मे   आगत संख्या 147089

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा ।

147089

महाभारत सूक्तिसुधा

प्रथम भाग

संकलन-सम्पादन
सुभाष विद्यालंकार

पुस्तकालय
147089
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

PRATIBHA
प्रतिभा प्रकाशन
दिल्ली : :

147089

प्रथम संस्करण 2009

ISBN : 978-81-7702-193-1(सेट)
978-81-7702-193-X (प्रथम भाग)

© लेखक

मूल्य : 1500.00

R
४२.५
शुक्ला-भ

प्रकाशक :
डॉ० राधेश्याम शुक्ल
एम.ए., एम. फ़िल्., पी-एच.डी.
प्रतिभा प्रकाशन
(प्राच्यविद्या-प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता)
7259/20, अजेन्द्र मार्केट, प्रेमनगर
शक्तिनगर, दिल्ली-110007
दूरभाष : (O) 47084852 (R) 23848485, 09350884277
e-mail : info@pratibhabooks.com
Web : www.pratibhabooks.com

टाईप सेटिंग : एस० के० ग्राफिक्स
दिल्ली-84

मुद्रक : रुचिका ऑफसेट, दिल्ली

Mahābhārata Sūktisudhā

Volume - I

Compiled & Edited by

Subhash Vidyalankar

PRATIBHA PRAKASHAN
DELHI

First Edition : 2009

© Author

ISBN : 978-81-7702-193-1 (Set)
978-81-7702-194-x (Vol. I)

Rs. : 1500.00 (Set)

Published by :
Dr. Radhey Shyam Shukla
M.A., Ph.D.
PRATIBHA PRAKASHAN
(Oriental Publishers & Booksellers)
7259/20. Ajendra Market, Premnagar,
Shakti Nagar, Delhi-110007
Ph. : (O) 47084852 (R) 23848485
09350884227
e-mail : info@pratibhabooks.com
Web : www.pratibhabooks.com

Laser Type Setting :
S.K. Graphics, Delhi

Printed at : **Ruchika Printers,** Delhi

समर्पण

श्रद्धेय गुरुवर

वेद भाष्यकार

आचार्य रामनाथ वेदालङ्कार, विद्यामार्तण्ड

को

सादर साभिवादन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।

नारायण स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण, उनके सखा नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, उनकी लीला प्रकट करने वाली भगवती सरस्वती और उनकी लीलाओं का संकलन करने वाले महर्षि वेदव्यास को नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ आरम्भ करना चाहिये।

भूमिका

मैंने 'महाभारत सूक्ति सुधा' प्रस्तुत करने का विचार कुछ वर्ष पहिले किया था। स्वान्तः सुखाय महाभारत का अनुशीलन करते समय मुझे ऐसे अनेक स्थल हृदयग्राही लगे जिनका सार-संक्षेप करना उपयोगी प्रतीत हुआ। इसी विचार के परिणामस्वरूप 'महाभारत नवनीत' ग्रन्थ पिछले वर्ष प्रकाशित हो सका। विद्वानों ने 'महाभारत नवनीत' का आदर किया यह जानकर मुझे सन्तोष है। आज कृष्ण जन्माष्टमी के पावन पर्व के शुभ अवसर पर 'महाभारत सूक्ति सुधा' पूरी हो सकी।

महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास

महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास भारतीय ज्ञान गंगा के भगीरथ हैं। जिस प्रकार किसी अत्यन्त प्राचीन युग में राजा भगीरथ ने अपने उग्र तप से गंगावतरण के द्वारा इस देवनिर्मित देश को पवित्र किया था, उसी प्रकार पुराणमुनि व्यास ने भारतीय लोक साहित्य के आदि युग में हिमालय के बदरिकाश्रम में अखण्ड समाधि लगाकर अध्यात्म, धर्मनीति और पुराण की त्रिपथणा गंगा का पहिले अपनी आत्मा में साक्षात्कार किया और फिर साहित्यिक साधना द्वारा देश के आर्य वाङ्मय को पवित्र किया। ज्ञानरूपी हिमवान के उच्च शिखरों पर बहने वाले दिव्य जलों को वेगवती प्रेरणा दी। पूर्वजों के ज्ञान और चरित्रों से गुम्फित सरस्वती उनके द्वारा लोक के कण्ठ में आ विराजी।

जिस प्रकार भारत की प्राकृतिक सम्पदा का अपरिमित विस्तार है उसी प्रकार कालक्रम से महर्षि वेदव्यास की साहित्यिक सृष्टि भी लोक के देशव्यापी जीवन में अनन्त बनकर समा गई है। एक प्रकार से सारे राष्ट्र का जीवन ही आज व्यासरूपी महान वटवृक्ष की छाया में आश्रय पा गया है। व्यास, भारतवर्षीय ज्ञान के सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि बन गये हैं। जैसे भगवान समुद्र और महान मेरु पर्वत दोनों ही रत्नों की खान हैं उसी प्रकार 'भारत' भी रत्नों से परिपूर्ण है-

यथा समुद्रो भगवान्यथा मेरुर्महागिरिः।
उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते।।

(स्वर्गारोहणपर्व 5/65 आदि पर्व 62/48) गीता प्रेस, गोरखपुर, संस्करण।

महर्षि व्यास का जीवन चरित– विक्रमादित्य से तीस शताब्दी पूर्व से लेकर पन्द्रह शताब्दी पूर्व तक के किसी युग में व्यास का उदय हुआ था। पुराणों के अनुसार ब्रह्मा से लेकर कृष्ण द्वैपायन तक अठारह व्यासों की परम्परा मिलती है। ये मुख्यतः पुराणों के प्रवचनकर्ता रहे होंगे। "जय" नामक उत्तम इतिहास के रचने वाले अमितोजा महामुनि व्यास, जिनका नाम अठारह व्यासों के अन्त में आता है अवश्य ही हमारे चिरपरिचित वे पुराण मुनि हैं जो कुरु पाण्डव युग में इस पृथिवी पर बदरिकाश्रम और हस्तिनापुर के बीच आते जाते थे। हिमालय के सुरम्य शिखर पर जहाँ नर–नारायण नाम के दो पर्वत हैं वहाँ भागीरथी के समीप विशाला बदरी नामक स्थान पर व्यास ने अपना आश्रम बनाया था। बदरीनारायण के इस प्रदेश के दर्शन के लिये आज भी लाखों तीर्थ यात्री जाते हैं। विशाला बदरी के पास ही आकश गंगा है जो व्यास के घूमने का स्थान था। व्यास आश्रम के कण कण में दिव्य तप की भावना ओतप्रोत थी। वहाँ व्यास ने चार शिष्यों को वैदिक संहिताओं का अध्ययन कराया। पैल ने ऋग्वेद, वैशम्पायन ने यजुर्वेद, जैमिनि ने सामवेद और सुमन्तु ने अथर्ववेद की संहिताओं का पारायण किया। कहते हैं कि स्वयं व्यास ने अत्यन्त परिश्रम करके सारे वैदिक मन्त्रों का वर्गीकरण करके चार संहिताओं में विभाग किया। इस साहित्यिक साधना के कारण उनका नाम वेदव्यास प्रसिद्ध हुआ–

यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः।
लोके व्यासत्वमापेदे काष्र्ण्यात् कृष्णत्वमेव च।।

आदि पर्व 104/15।।

भगवान् द्वैपायन मुनि ने अपनी तपस्या के बल से चारों वेदों का अलग–अलग विस्तार करके लोक में 'व्यास' पद प्राप्त किया। शरीर का रंग काला होने के कारण उन्हें कृष्ण भी कहा जाता है।

इसी आश्रम में व्यास जी ने तीन वर्षों में कुरु–पाण्डव युद्ध के बारे में महाभारत नाम के काव्यमय इतिहास को रचा–

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम्।।

आदिपर्व 62/52।।

प्रतिदिन प्रातःकाल उठने वाले कृष्ण द्वैपायन मुनि ने इस महाभारत की तीन वर्षों में रचना की।

महाभारत पाँचवां वेद कहलाता है। व्यास ने इसे अपने पाँचवें शिष्य रोमहर्षण को पढ़ाया था। महाभारत को 'कार्ष्ण वेद' भी कहा जाता है। व्यास का जन्म का नाम कृष्ण था। महाभारत के युग में दो कृष्ण प्रसिद्ध हुए, एक वासुदेव कृष्ण और दूसरे द्वैपायन कृष्ण। यमुना नदी के द्वीप में जन्म होने के कारण ये द्वैपायन कहलाये। चेदि देश के राजा वसु उपरिचर के वीर्य से सत्यवती का जन्म हुआ। यमुना के किनारे रहने वाले दाशराज ने उसका पालन किया। सत्यवती यमुना में नाव चलाती हुई अपने प्रारम्भिक यौवन में योगी पराशर मुनि के संयोग से व्यास की माता बनी। आगे चलकर सत्यवती का विवाह राजा शन्तनु से हुआ। व्यास की माता सत्यवती, गंगापुत्र भीष्म की सौतेली माँ थी। इसलिये व्यास और भीष्म पितामह भाई थे। सत्यवती के पुत्र विचित्र वीर्य की युद्ध में मृत्यु हो गई थी। उनकी कोई सन्तान नहीं थी। ऐसी स्थिति में कुरुकुल के नष्ट होने की विपत्ति आ गई। तब अपनी माता सत्यवती का कहना मानकर व्यास ने विचित्रवीर्य की पत्नियों अम्बिका और अम्बालिका तथा दासी से तीन पुत्र उत्पन्न किये धृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर। इसीलिये हस्तिनापुर की राजनीतिक घटनाओं से व्यास जी का घनिष्ठ सम्बन्ध जीवन भर बना रहा। पाण्डु की मृत्यु के बाद जब पाण्डव हस्तिनापुर आये और पाण्डु का दाह संस्कार हुआ उस समय व्यास वहाँ उपस्थित थे। तब उन्होंने माता सत्यवती को सलाह दी कि अब तुम हस्तिनापुर छोड़कर वन में जाकर योगाभ्यास करो। कौरव पाण्डवों की अस्त्र परीक्षा के समय भी व्यास हस्तिनापुर में थे। वनवास के समय उन्होंने पाण्डवों से एकचक्रा नगरी में भेंट कर के उन्हें द्रौपदी के स्वयम्वर में जाने की सलाह दी। विवाह के बाद जब पाण्डवों को राज मिला तब राजसूय यज्ञ करने की सलाह भी व्यास जी ने दी थी। इस यज्ञ में आपसी डाह के ऐसे बानक बने जिनसे युद्ध अवश्यम्भावी दीखने लगा। तब व्यास जी युधिष्ठिर को क्षत्रियों के भावी विनाश की सूचना देकर कैलास पर्वत की यात्रा पर चले गये-

स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कैलासं पर्वतं प्रति।
अप्रमत्तः स्थितो दान्तः पृथिवीं परिपालय।।

सभापर्व 46/17

युधिष्ठिर! तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं कैलास पर्वत जाऊँगा। तुम सावधान और जितेन्द्रिय रहकर पृथिवी का पालन करो।

इसके बाद पाण्डव जुए में फिर हार गये और उन्हें फिर वनवास हो गया। यह समाचार पाकर व्यास जी ने धृतराष्ट्र को समझाया कि वे पाण्डवों के साथ न्याय करें।

व्यास जी द्वैतवन जाकर पाण्डवों से मिले। वहाँ उन्होंने युधिष्ठिर को 'प्रतिस्मृति' नामक सिद्ध विद्या दी और उन्हें दूसरी जगह जाकर रहने की सलाह दी। पाण्डव द्वैतवन छोड़कर सरस्वती के किनारे काम्यक वन में रहने लगे। वनवास के 12 वर्ष और अज्ञातवास के एक वर्ष अर्थात् तेरह वर्ष बाद जब युधिष्ठिर ने अपना राज्य वापस माँगा तब व्यास जी ने धृतराष्ट्र को समझाया। परन्तु काल के सामने बूढ़े और अन्धे राजा धृतराष्ट्र और वेदव्यास का कोई भी उपाय सफल नहीं हुआ। व्यास जी अपने ज्ञान चक्षु से काल की महिमा जानते थे। काल की सत्ता में विश्वास उनके दर्शन का अभिन्न अंग था जिसे उन्होंने महाभारत में कई जगह व्यक्त किया है-

कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनञ्जय।।

मौसल० 8/33

काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया।
स एव बलवान्भूत्वा पुनर्भवति दुर्बलः।।

मौसल० 8/34

धनञ्जय! काल ही सबकी जड़ है। संसार की उत्पत्ति का बीज भी काल ही है। काल ही अचानक सबका विनाश कर डालता है। वही मनुष्य कभी शक्तिशाली बनकर फिर कमजोर हो जाता है।

युद्ध के अन्त में व्यास जी ने शोक में डूबे धृतराष्ट्र को और युधिष्ठिर को समझाकर धैर्य बंधाया। युधिष्ठिर को राज्य करने के लिये तैयार करके पाण्डवों को नीति, धर्म, और अध्यात्म की शिक्षा के लिये शरशैय्या पर पड़े भीष्म के पास भेजा और युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की प्रेरणा दी। युद्ध के सोलह वर्ष बाद वे धृतराष्ट्र से फिर मिले और तपस्या करने की सलाह देकर अपने आश्रम चले गये। ज़ब सरस्वती नदी के किनारे पर बसे आभीर गणों ने (हरियाणा के डाकुओं ने) वृष्णि वंश की स्त्रियों को अर्जुन के देखते-देखते लूट लिया तब शोक और अपमान से आहत अर्जुन अन्तिम बार व्यास से मिलने गये। व्यास ने उन्हें काल चक्र के उत्त्थान और पतन का उपदेश दिया। घटनाओं के बवण्डर में भी क्षोभरहित स्थिति के प्रतीक वेदव्यास हैं।

व्यास को वेदान्त सूत्रों का रचयिता भी माना जाता है। वेदान्तसूत्रों का नाम भिक्षु सूत्र भी है। पाणिनि की अष्टाध्यायी से मालूम होता है कि भिक्षु सूत्र के रचयिता पाराशर्य थे। पराशर के पुत्र होने के कारण व्यास का नाम पाराशर्य भी था। बदरी आश्रम में रहने के कारण उनका नाम बादरायण मुनि भी था। इसी कारण वेदान्त सूत्रों

को बादरायण सूत्र भी कहते हैं। पाणिनि के शास्त्र में जो ऐतिहासिक सामग्री मिलती है उसे देखते हुए यह विश्वास करने का ठोस आधार है कि वेदान्त सूत्रों की रचना वेदव्यास ने ही की थी। उपनिषदों के अध्यात्म ज्ञान का सार वेदान्त सूत्र हैं। वेदव्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को मोक्षशास्त्र का अध्ययन कराया था। सम्भवतः इसी कारण उन्होंने बादरायण सूत्रों की रचना की हो।

परन्तु जो ग्रन्थ व्यास जी की कीर्ति का शुभ्रस्तम्भ है वह महाभारत है। महाभारत में व्यास ने अपनी अमित बुद्धि से अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र को भारतीय कथा के साथ सुन्दर ढंग से सजाकर आर्यों के विस्तृत ज्ञान और लौकिक जीवन का रूप सदा के लिये प्रस्तुत कर दिया है।

अर्थशास्त्रमिदं पुण्यं धर्मशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना।।

आदि पर्व 62/23

महाभारत, प्राचीन भारतवर्ष का विश्व कोष है। संसार के साहित्य में महाभारत अतुलनीय ग्रन्थ है। इसमें प्राचीन नीति और धर्म के अक्षय भण्डार के साथ ही साथ भारतीय गाथा साहित्य की भी अनन्त सामग्री है।

महाभारत को 'शतसाहस्री संहिता' कहा गया है। हरिवंश पुराण को मिलाकर महाभारत के 18 पर्वों में एक लाख श्लोक होने का अनुमान किया जाता है। गीताप्रेस, गोरखपुर के संस्करण के अनुसार सम्पूर्ण महाभारत की श्लोक संख्या (अनुष्टुप् छन्द के अनुसार) एक लाख दो सौ सत्रह है। इसमें उत्तर भारतीय पाठ, दाक्षिणात्य पाठ और उवाच सम्मिलित हैं। परन्तु यह निश्चय है कि वेदव्यास के समय में इस ग्रन्थ का यह बृहद् रूप नहीं था। पाणिनि की अष्टाध्यायी के सूत्र **"महान् व्रीह्यपराह्ण सृष्टीश्वास जाबाल भार भारत हैलिहिलरौरव प्रवृद्धेषु।।"** 6/2/38; में भारत नाम आया है। इससे पहिले आश्वलायन गृह्यसूत्र में भारत और महाभारत दोनों का एक ही वाक्य में अलग-अलग उल्लेख है। कुरुपाण्डवों का वीरगाथा ग्रन्थ वास्तव में भारत ही था, जिसमें चौबीस हजार श्लोक थे। इसी कारण इसका नाम 'चतुर्विंशति साहस्री भारत संहिता' प्रसिद्ध था। इसका अन्तःसाक्ष्य स्वयं महाभारत में है-

चतुर्विंशति साहस्त्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।।

आदि पर्व 1/102

व्यास का मूल 'भारत' उपाख्यानों के बिना था। परन्तु बाद में सैंकड़ों उपाख्यान

इसमें मिला दिये गये। व्यास ने तीन वर्ष तक परिश्रम करके चौबीस हजार श्लोकों में भरतवंश के इतिहास और युद्ध का मूल काव्य रचा। उसको रोमहर्षण सूत ने पढ़ा। फिर व्यास के शिष्य वैशम्पायन ने जनमेजय के यज्ञ में उसका पारायण किया। इस समय तक ग्रन्थ का रूप शुद्ध बना रहा। महाभारत का अगला संस्करण भार्गववंशी कुलपति शौनक के बारह वर्षों के यज्ञ में देखने में आता है। इस समय 'भारत' का उपबृंहण महाभारत के रूप में हो चुका था। "चतुर्विंशति साहस्त्री संहिता" बढ़कर "शतसाहस्त्री संहिता" बन गई थी। उसमें ययाति और परशुराम जैसे बड़े बड़े उपाख्यान मिला लिये गये थे। बहुत सी कथाएँ भी महाभारत में मिला ली गईं थीं। ये लोक कथाएँ बौद्ध जातकों में भी मिलती हैं। इसके अतिरिक्त शिव, विष्णु, सूर्य, देवी और गणपति की बढ़ती हुई भक्ति के आवेश में विभिन्न मतावलम्बियों ने महाभारत में अपने देवी-देवताओं के उपाख्यान मिला दिये। किन्तु इन सबसे बढ़कर अध्यात्म, धर्म और नीति के अनेक सम्वाद समय-समय पर महाभारत में मिलते गये। इन मिश्रणों के कारण मूल ग्रन्थ का कायापटल हो गया। डॉ० सुकथनकर के अनुसार भृगुवंशी ब्राह्मणों के द्वारा किये गये सम्पादन के परिणामस्वरूप कई शताब्दियों में 'भारत' को महाभारत का स्वरूप प्राप्त हुआ होगा।

हमारे राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिये महाभारत का विशेष महत्त्व यह है कि वह प्राचीन भूगोल, समाजशास्त्र, शासन सम्बन्धी संस्था, नीति और धर्म के आदर्शों की खान है। महर्षि वेदव्यास जिस भारत राष्ट्र की उपासना करते थे भविष्य में हिन्दू उस राष्ट्र का स्वप्न देखेंगे। व्यास का निम्नलिखित राष्ट्रगीत हमारे इतिहास का सनातन मंगलाचरण होगा-

अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम्।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च।।

भीष्म पर्व 9/5

पृथोस्तु राजन् वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च।।

भीष्म० 9/6

तथैव मुचकुन्दस्य शिवेरौशीनरस्य च।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा।।

भीष्म० 9/7

कुशिकस्य च दुर्धर्षं गाधेश्चैव महात्मनः।
सोमकस्य च दुर्धर्षं दिलीपस्य तथैव च।।

भीष्म० 9/8

अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम्।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम्।।

भीष्म० 9/9

आओ, हे भारत! अब मैं तुम्हें भारत देश का कीर्त्तिगान सुनाता हूँ। यह भारत जो इन्द्रदेव को प्रिय है। जो वैवस्वत मनु, आदिराज पृथु, वैन्य और महात्मा इक्ष्वाकु को प्यारा था। जो भारत; ययाति, अम्बरीष, नहुष, मुचकुन्द और औशीनर शिवि को प्रिय था। ऋषभ, ऐल और नृग राजा जिस भारत से स्नेह करते थे। जो भारत, कुशिक, गाधि, सोमक, दिलीप और अनेक वीर्यवान क्षत्रिय सम्राटों को प्यारा था। हे नरेन्द्र! उस दिव्य देश की कथा मैं तुम्हें सुनाऊँगा।

व्यास ने राष्ट्रीय राजनीति का जो आदर्श रखा है वह मनु और वाल्मीकि से मिलता है। वाल्मीकि के 'अराजक जनपद' से मिलता जुलता व्यास का गीत 'यदि राजा न पालयेत्' (शान्ति पर्व) है।

व्यास के अनुसार बिना राजा का राष्ट्र मरा हुआ है-

मृतं राष्ट्रमराजकम् वन पर्व 313/84।

व्यास ने राजा और क्षत्रिय की परिभाषा दी है। जो लोकरंजन करता है वही राजा है।

आदावेव कुरुश्रेष्ठ राज्ञा रञ्जनकाम्यया।
देवतानां द्विजानां च वर्तितव्यं यथाविधिः।। शान्ति पर्व 56/12
लोकरञ्जनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः।। शान्ति० 56/1

जो क्षत (मारकाट) से बचाता है वही क्षत्रिय है-

क्षताद् यो वै त्रायतीति स तस्मात् क्षत्रियः स्मृतः।। शान्ति० 29/138

इन्हीं आदर्शों को भारत के स्वर्ण युग में महाकवि कालिदास ने दुहराया था-

क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।।

रघुवंश 2/53

तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृति रञ्जनात्।। रघुवंश 4/12

अर्थात् राजा रघु प्रजा रंजन के कारण सच्चे अर्थों में राजा कहलाये।

भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा था- राजा, काल को बनाता है या काल राजा को बनाता है, इसमें तुम कभी संशय मत करना। राजा ही काल को बनाता है-

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।
इति ते संशयो मा भूत् राजा कालस्य कारणम्।

शान्ति० 68/79

जब राजा भलिभांति दण्डनीति का पालन करता है तब सतयुग आ जाता है। राजा का शरीर प्रजाएँ हैं। अपने आपको बचाने के लिये भी राजा को प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। संक्षेप में वेदव्यास के अनुसार लोक का सारा जीवन राजधर्म पर आश्रित है। राजधर्म बिगड़ गया तो वेद, धर्म, वर्ण, आश्रम, त्याग, तप, विद्या सब कुछ नष्ट हुआ समझना चाहिये।

दण्डनीत्यां यदा राजा सम्यक् कार्त्स्न्येन वर्तते।
तदा कृतयुगं नाम कालसृष्टं प्रवर्तते।।

शान्ति० 69/80

मज्जेत् त्रयीदण्डनीतौ हतायां सर्वेधर्माः प्रक्षयेयु र्विवृद्धाः।
सर्वे धर्माश्चाश्रमाणी हताः स्युः क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे।।

शान्ति० 63/28

व्यास और धर्म : व्यास ने धर्म का जो स्वरूप प्रतिपादित किया है वह उनका सबसे महान ऋषित्व या दर्शन है। वे धर्म को स्वर्ग प्राप्त कराने वाले थोथे कर्मकाण्डों का जंजाल नहीं मानते। उन्होंने धर्म के नये स्वरूप और परिभाषा की अनुभूति की-

नमो धर्माय महते धर्मो धारयति प्रजाः उद्योग० 136/9

अर्थात् व्यक्ति को, जीवन को, समाज को, राष्ट्र को, संस्थाओं को और लोक-परलोक सभी को धारण करने वाले जो शाश्वत नियम हैं, वे धर्म हैं।

धारणाद्धर्मं इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इत्युदाहृतः।। कर्ण० 69/5

धर्म ही प्रजा का धारण (पालन पोषण, रक्षा आदि) करता है। धारण करने के कारण ही उसे धर्म कहा गया है। जिस काम से धारण अर्थात् रक्षा या प्राणियों की भलाई होती है, वही काम धर्म युक्त होता है।

धर्म स्वर्ग से भी महान है। लोकस्थिति का सनातन बीज धर्म ही है। इस दृष्टि से धर्म; गंगा के ओजस्वी प्रवाह की तरह जीवन के सुविस्तृत क्षेत्र को सिंचित और पवित्र करने वाला अमृत बन जाता है। राजाओं की हार-जीत आने-जाने वाली चीजें हैं। जीवन में सुख और दुख भी सदा एक से नहीं रहते। परन्तु सम्पत्ति और विपत्ति

में भी जो वस्तु एक सी बनी रहती है, वह धर्म है। व्यास ने महाभारत संहिता लिखने के बाद अन्त में अपने दृष्टिकोण और उद्देश्य का सार चार श्लोकों में दिया है जिसे 'भारतसावित्री' कहा गया है। उसका अन्तिम श्लोक इस प्रकार है-

न जातु कामान्न भयान्नलोभाद् धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुख दुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।।

स्वर्ग० 5/63; उद्योग० 40/12-13

अर्थात् काम से, भय से, लोभ से, और यहाँ तक कि अपने प्राणों के लिये भी धर्म को नहीं छोड़ना चाहिये। क्योंकि धर्म नित्य है, सुख-दुःख आते जाते रहते हैं। इसी प्रकार जीव भी नित्य है, जन्म और मृत्यु अनित्य हैं।

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।। स्वर्ग० 5/62

मैं भुजा उठाकर कह रहा हूँ, पर कोई मेरी बात नहीं सुनता। धर्म से ही धन मिलता है और कामनाएँ पूर्ण होती हैं। फिर भी तुम उस धर्म का पालन क्यों नहीं करते? ये 'भारतसावित्री' में व्यास के मर्मान्तक वचन हैं।

व्यास की दृष्टि में लोकसंग्रह और लोकधर्म बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। आजगर मुनि को **'लोकधर्म विधानवित्'** (शान्ति० 179/9) अर्थात् लोकधर्म के सिद्धान्त और संगठन का जानकार कहा गया है। जो व्यक्ति लोक पक्ष का प्रबल समर्थक हो उसे गृहस्थ धर्म का प्रशंसक होना ही चाहिये। व्यास के अनुसार धर्म के द्वारा निभाया हुआ गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों में तेजस्वी मार्ग है। वह पवित्र धर्म है और इसकी उपासना करनी चाहिये -

सर्वधर्मपदेऽप्याहुर्गार्हस्थ्यं दीप्तनिर्णयम्।
पावनं पुरुषव्याघ्र यं धर्मं पर्युपास्महे।। शान्ति० 66/35

व्यास और अध्यात्म : लोक, गृहस्थ धर्म और मनुष्य के लिये जिस महात्मा के मन में श्रद्धा है उसका अध्यात्म शास्त्र भी तदनुकूल हो, मानव को साथ लेकर चलता है। मनुष्य पाँच ज्ञानेन्द्रियों वाला प्राणी है। इन्द्रियां ही मनुष्य को देव या असुर बना देती हैं। व्यास के अध्यात्म शास्त्र का सार इन्द्रियनिग्रह है-

आत्मनस्तु क्रियोपायो नान्यत्रेन्द्रिय निग्रहात्। उद्योग० 69/17

अर्थात् इन्द्रियों को वश में करने के सिवाय आत्मा की उन्नति का कोई और उपाय नहीं है। विषयों की ओर जाती हुई इन्द्रियों को वश में रखने से अध्यात्म-अग्नि प्रकाशित हो उठती है। जिस प्रकार ईंधन जलने से अग्नि चमक उठती है उसी प्रकार

इन्द्रिय निरोध से महानात्मा प्रकाशित होता है। डसने के स्वभाव से सर्प जाने जाते हैं, दम्भभाव से असुर, दानभाव से देव और दम भाव से महर्षि पहिचाने जाते हैं। वेदज्ञान का रहस्य, सत्यभाषण में है। सत्य का रहस्य इन्द्रियदमन में है और दम का फल मोक्ष है-

वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्योपनिषद्दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्षः एतत्सर्वानुशासनम्।। शान्ति० 299/13

आत्मनिरोध के द्वारा जो व्यक्ति जीवन में विषयों से भरे हुए जंगल में अपना मार्ग स्वयं निश्चित करता है वह अपना ज्ञान औरों पर नहीं बघारता अपितु अपने आचरण से औरों को मार्ग दिखाता है। व्यास ने यह बात इस प्रकार कही है-

उपदेशेन वर्तामि नानुशास्मीह कंचन।। शान्ति० 178/6

मैं अपनी करनी से सिखाता हूँ, कथनी से नहीं।

वेदव्यास ऋजुभाव के मानने वाले हैं। ऋजुभाव की उपासना ब्रह्मपद की प्राप्ति है। कुटिलता मृत्यु का पद है। ज्ञान का इतना ही सार है और सब बकवास है-

सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।
एतावान् ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति।। आश्व० 11/4

काल धर्म

वेदव्यास के अध्यात्मिक दर्शन में कालधर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव-पाण्डवों का सर्वनाश देखा। कृष्ण, विदुर और व्यास भी इस विनाश को नहीं रोक सके। यह कालचक्र की ही महिमा है। कर्म के साथ मिलकर काल ही संसार में उलट फेर करता है। काल के सामने सब अनित्य ठहरता है। कभी एक की बारी आती है कभी दूसरे की। महाभारत का स्त्रीपर्व पढ़कर इसके सिवाय और क्या कहा जा सकता है-

न च दैवकृतो मार्गः शक्यो भूतेन केनचित्।
घटतापि चिरं कालं नियन्तुमिति मे मतिः।।

कोई प्राणी कितनी भी कोशिश करे, वह देव के रास्ते को नहीं रोक सकता। यह देव या महाकाल का नित्य विधान है। इसी का दूसरा नाम सनातन ब्रह्म है। यह सच है कि मनुष्य विधाता के निश्चित विधान को बदल नहीं सकता पर इतना अवश्य कर सकता है कि उस सर्वोपरि शक्ति के रहस्यों का साक्षात् कर जीवन में ऋजु भाव या सरलता अपना ले। वह इन्द्रियों के निरोध और आत्मचिन्तन से आत्म ज्योति को इसी शरीर में प्राप्त कर ले। यह शरीर मूंज-घास है। आत्मा उसके भीतर की सींक

है। जैसे मूंज से सींक (इषीका) निकाली जाती है वैसे ही योगी शरीर में आत्मा का साक्षात् दर्शन करते हैं-

इषीकां च यथा मुञ्जात् कश्चिन्निष्कृष्य दर्शयेत्।
योगी निष्कृष्य चात्मानं तथा पश्यति देहतः।। आश्व० 18/22
मुञ्जं शरीरमित्याहुरिषीकामात्मनि श्रिताम्।
एतन्निदर्शनं प्रोक्तं योगविद्भिरनुत्तमम्।। आश्व० 18/23

व्यास की दृष्टि में मनुष्य

भारत के सांस्कृतिक दृष्टिकोण में इहलोक और मनुष्य जीवन का वैसा ही महत्त्व है जैसा परलोक और देवों का। इस सम्बन्ध में व्यास ने भारतीय विचारधारा का सार इन शब्दों में व्यक्त किया है-

मनुष्यलोके यच्छ्रेयः परं मन्ये युधिष्ठिर।। वन० 183/87

युधिष्ठिर! इस मनुष्यलोक में या मनुष्य के जीवन में जो कल्याणकारी है उसे ही श्रेष्ठ समझता हूँ।

इससे भी बढ़कर व्यास का वह वचन है जिसमें उन्होंने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ कहा है-

नाहं शप्तः प्रतिशपामि कंचिद् दमं द्वारं ह्यमृतस्येह वेद्मि।
गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि, न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।।
शान्ति० 299/20

कोई मुझे बुरा-भला कहे, मैं उसके जवाब में भला बुरा नहीं कहता। अपने आप को प्रत्येक परिस्थिति में वश में रखना यही जीवन का अमृत द्वार है। मैं तुमसे यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण बात कहता हूँ कि मनुष्य से बढ़कर और कुछ श्रेष्ठ नहीं है।

संसार में जितने प्रयत्न, योजनाएँ और आकांक्षाएं हैं उन सब का केन्द्र-बिन्दु मनुष्य ही है। तभी सब कुछ सत्य और सार्थक है जब वह मनुष्य के लिये हितकारी है। मनुष्य जीवन में ज्ञान और कर्म दोनों का समन्वय है।

महाभारत

भारतीय और विदेशी विद्वानों ने महाभारत पर व्याख्या और इसके काल के बारे में बहुत कुछ लिखा है। किन्तु जैसे इस संसार का रहस्य मनुष्य की समझ में पूरी तरह नहीं आ सका है वैसी ही बात महाभारत के विषय में भी है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनेक सरोवर महाभारत के समुद्र में भरे हुए हैं। धर्म, दर्शन, अध्यात्म

और मानव जीवन के बारे में लगभग पाँच सौ ईस्वी पूर्व से लेकर पाँचवी ईस्वी तक भारत में जो नये विचार उत्पन्न हुए उनका प्रभाव महाभारत पर पड़ा है। इसलिये यह ग्रन्थ जटिल और गूढ़ बन गया और इसके लिये कहा जाने लगा कि "जो यहाँ है वही अन्यत्र है।"

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्। आदि 62/53

शान्तिपर्व के राजधर्म, आपद्धर्म और मोक्षधर्म पर्व ये तीनों ही प्रकरण अत्यन्त जटिल हैं। भारत के प्राचीन राजनीति शास्त्र के अनेक ग्रन्थों का सार राजधर्म पर्व में भर दिया गया है। मोक्षधर्म पर्व के अनेक अंश दुर्बोध हैं। कठिनाई शब्दों के अर्थों की नहीं है अपितु उस शास्त्रीय संगति की है जिसमें वे शब्द और वाक्यार्थ चरितार्थ हो सकते हैं। लेखक ने यह बात क्यों कही और किसी पूर्व युग के इतिहास में इसकी संगति क्या थी? यह प्रश्न बना ही रहता है।

महाभारत के उद्योग पर्व, भीष्म पर्व, द्रोण पर्व और कर्ण पर्व में ऐसे अनेक प्रकरण हैं जिनका सांस्कृतिक दृष्टि से और धार्मिक इतिहास की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। वे स्थल निम्नलिखित हैं-

1. प्रजागर पर्व या विदुर नीति (उद्योग पर्व 33 से 40 अध्याय)
2. सनतसुजातीय पर्व (उद्योग पर्व 41 से 46 अध्याय)
3. भुवनकोष पर्व या भूमि पर्व (भीष्म पर्व 4 से 12 अध्याय)
4. श्रीमद् भगवद् गीता पर्व (भीष्म पर्व 25 से 42 अध्याय)
5. अश्व वर्णन (द्रोण पर्व 23वां अध्याय)
6. युधिष्ठिर की दिनचर्या या आह्निक कर्म (द्रोण पर्व 82वां अध्याय)
7. व्यास का शतरुद्रीय स्तोत्र (द्रोण पर्व 202वां अध्याय)
8. कर्ण और शल्य की तू-तू मैं-मैं या मद्रक कुत्सन (कर्ण पर्व 40 से 45 अध्याय)।

विदुर नीति या प्रज्ञा दर्शन : उद्योग पर्व का प्रजागर पर्व या विदुर नीति बहुत ही विलक्षण है। यह प्राचीन भारतीय प्रज्ञा दर्शन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस प्रकार की सामग्री संस्कृत साहित्य, पाली, अर्ध मागधी आदि में कहीं नहीं है।

प्राचीन भारत के दार्शनिक मतों का जब व्यवस्थित संग्रह हुआ तब वे दर्शन बने। पाणिनि ने इन मतों को 'मति' कहा है और बौद्धों ने दिट्ठि (दृष्टि)। पाणिनि ने इन मतों का तीन भागों में वर्गीकरण किया है-

1. आस्तिक जो वैदिक परम्परा के अनुयायी थे।
2. नास्तिक जो वैदिक परम्परा से बाहर प्राय: भौतिक जगत के तत्त्वों की व्याख्या करते थे।
3. दैष्टिक या भाग्यवादी जो नियतिवादी कहे जाते थे।

विदुर नीति में नियतिवाद का भी उल्लेख है। धृतराष्ट्र और ययाति नियतिवाद को मानते थे। विदुर और कृष्ण 'प्रज्ञा दर्शन' के अनुयायी थे। गीता में कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ या स्थिर बुद्धियोग का विस्तृत वर्णन किया है। इन तीन प्रकार के दार्शनिक मतों का शान्ति पर्व में विस्तार से वर्णन मिलता है। कालान्तर में प्रज्ञा दर्शन का जो विकास हुआ वह संस्कृत के नीति साहित्य में मिलता है। मनुष्य के जीवन में प्रतिदिन के काम काज में समझदारी का दृष्टिकोण ही प्रज्ञा दर्शन का सार है। संसार के सभी दर्शनों के मूल में प्रज्ञा या बुद्धि की प्रतिष्ठा है। गाँव-गाँव में, घर-घर में और जन-जन में व्याप्त व्यवहारों को छानकर और उनमें बुद्धि का पुट देकर जो रसायन तैयार हुआ वही प्रज्ञा दर्शन है। अत: विदुर नीति की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। यह हमें ऐसे लोक में ले चलता है जहाँ मनुष्य की महिमा किसी कल्पित देवता के रूप में नहीं अपितु मनुष्य के रूप में ही दिखाई पड़ती है। ऋग्वेद के ऋषियों वसिष्ठ और दीर्घतमा से लेकर वाल्मीकि, व्यास, कृष्ण, जनक, विदुर, याज्ञवल्क्य, महावीर, चाणक्य, अशोक, कालिदास, शंकराचार्य आदि अनेक विचारक हमें मनुष्य रूप में ही मान्य हैं। उनमें मानव-प्रज्ञा का जो उत्कर्ष दिखाई देता है, वह मनुष्य के मस्तिष्क के उस रूप को प्रकट करता है जिसका मस्तक आकाश को छूता हो, किन्तु जिसके पांव भूमि पर टिके हों।

अध्यात्म दर्शन : उद्योग पर्व का दूसरा प्रकरण सनत्सुजात ऋषि का उपदेश है। यह अध्यात्म दर्शन का अंग है। इसका प्रभाव गीता में भी पाया जाता है। इस दर्शन का सार है-मन और इन्द्रियों को वश में रखकर ब्रह्मप्राप्ति।

संसार के व्यवहारों से बचते हुए वैराग्य की ओर इसका झुकाव था। उपनिषदों के आचार्य सनत कुमार इस दर्शन के शायद उपदेष्टा थे। उन्हें ही यहाँ सनत्सुजात कहा गया है। इसका मुख्य लक्ष्य अप्रमाद के द्वारा अमृतत्त्व की प्राप्ति था। शुद्ध ब्रह्मचर्य की साधना से मन, बुद्धि और आत्मा की जो शक्ति प्राप्त की जा सकती है वही इनका साधना मार्ग था। बुद्ध और महावीर ने भी अप्रमाद का यह सिद्धान्त अपनाया है।

इस प्रकरण की दो बातें ध्यान देने योग्य हैं- एक अक्षर ब्रह्म का सिद्धान्त जो ऋग्वेद से चला आ रहा था और बाद में जिसका बहुत विकास हुआ। दूसरा अमृतत्त्व

का सिद्धान्त, जो ऋग्वेद के अमृत-मृत्युवाद का ही अंग था। इस प्राचीन दर्शन का उल्लेख ऋग्वेद के "नासदीय सूक्त" में हुआ है। समस्त सृष्टि और ब्रह्म की व्याख्या मृत और अमृत इन दो शब्दों में ढाल दी गई है। इस दर्शन में सत्य का विशेष सिद्धान्त था। सत्य का तात्पर्य पोथी-पत्रों से बाहर जीवन में साक्षात् तत्त्व का दर्शन है। क्यों कि जीवन का निर्माण सत्य से हुआ है। सत्य की प्राप्ति कोरे कहने से नहीं होती वह तो दम्भ के त्याग और अप्रमाद को जीवन में आग्रहपूर्वक उतारने से सम्भव होती है।

सनत्सुजात प्रकरण का महत्त्व भारत के अध्यात्म साहित्य में इसी बात से सूचित होता है कि इस प्रकरण पर भगवद् गीता की तरह ही शंकराचार्य ने भाष्य लिखा है। महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ ने भी इसी प्रकरण पर स्वतन्त्र ग्रन्थ की तरह बहुत विस्तृत टीका लिखी है। निस्सन्देह सनत्सुजातीय प्रकरण के 192 श्लोक महाभारतकार ने अत्युच्च अध्यात्म भूमिका में पहुँच कर लिखे होंगे।

भुवनकोष पर्व : जब कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों पक्षों की सेनाएँ आ डटीं, तब लेखक ने 'भुवनकोष' का महत्त्वपूर्ण प्रकरण भी जोड़ दिया है। इस बारे में तीन बातें द्रष्टव्य हैं- पहली यह कि पृथिवी के प्राचीन भूगोल की दो कल्पनाएं थीं। पहली कमल की चार पंखुड़ियों की तरह चार दिशाओं में चार महाद्वीपों की, जिसका नाम चतुर्द्वीपी भूगोल था। बाद में सात द्वीपों की कल्पना की गई। इसका नाम सप्तद्वीपी भूगोल था। भुवनकोष प्रकरण की दूसरी विशेषता इन सात द्वीपों के नदी-पर्वतों का वर्णन है। अब इन सबकी पहचान नहीं की जा सकती फिर भी ऐसा लगता है कि इन नामों का आधार तथ्यपरक था। इनमें से शाक द्वीप के कुछ नाम पहचान में आ जाते हैं अतः यह मानना चाहिये कि अन्य नाम भी किसी समय सुपरिचित रहे होंगे।

भौगोलिक वर्णन की तीसरी विशेषता भारत के नदी, पर्वतों और जनपदों का वर्णन है। इसका आधार पुराणों का भुवनकोष वर्णन ही है।

श्रीमद्भगवद्गीता : इस खण्ड का चौथा महत्त्वपूर्ण प्रकरण भीष्म पर्व के अन्तर्गत गीता के 18 अध्याय हैं। गीता जगत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस पर भाष्य, टीका और अनुवादों का कोई अन्त नहीं है।

अश्व वर्णन : द्रोण पर्व के 23 वें अध्याय में घोड़ों के रंगों और नस्लों का जैसा विस्तृत विवरण है वैसा प्राचीन साहित्य में अवन्तिसुन्दरी के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलता।

युधिष्ठिर की दिनचर्या : द्रोण पर्व के अध्याय 82 में युधिष्ठिर आह्निक या युधिष्ठिर की दिनचर्या सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत रोचक है।

शतरुद्रीय स्तोत्र : द्रोणपर्व का शतरुद्रिय स्तोत्र भगवान शिव के नामों का अमृत जल है। इसके 199 श्लोकों में पहले यजुर्वेद के शतरुद्रीय की शैली पर नमस्कारात्मक श्लोक हैं। फिर शंकर के दिव्य कर्मों के वर्णनात्मक श्लोक हैं। पुनः उनके भावों के सूचक श्लोक हैं और अन्त में शिव के भिन्न-भिन्न नामों की निरुक्तियों के श्लोक हैं।

इसमें मूल कल्पना यही थी कि ईश्वर तत्त्व एक होते हुए भी गुण, कर्म, नाम और रूपों की दृष्टि से अनेक हैं और मानव ज्ञान की परिधि में ऐसा कुछ भी नहीं है जो ईश्वर की विभूति, ऐश्वर्य या योग से बाहर हो। द्रोण पर्व का शिव स्तोत्र शैली और भावों की दृष्टि से अत्यन्त तेजस्वी है। तत्त्व की दृष्टि से अग्नि, रुद्र और प्राण एक दूसरे के पर्याय हैं, जैसा कहा है-

प्राणे निविष्टो वै रुद्रस्तस्मात्प्राणमयः स्वयम्।
प्राणाय चैव रुद्राय जुहोत्यमृतमुत्तमम्।।

लिंग पुराण 1/88/66

जैसे अग्नि के घोर और अघोर दो शरीर हैं, जैसे प्राण के शान्त और कुपित दो रूप हैं, वैसे ही शंकर के रुद्र और शिव ये दो रूप हैं। सृष्टि में प्रजापति का स्थिर किया हुआ जो सेतु है उसका उल्लंघन करने से शान्त शिव घोर बन जाते हैं। स्तोत्रों के रचयिता दोनों रूपों में उनकी आराधना करते हैं। द्वन्द्वात्मक सृष्टि के तनाव में पड़ा हुआ प्राणी यदि भगवान के रुद्र रूप को नहीं पहिचानता तो वह उनके शिव स्वरूप का समाराधन भी सकुशल नहीं कर सकता। अशिव या अमंगल के निवारण से ही मंगलात्मा शिव का आगमन होता है।

शल्य और कर्ण की तू-तू मैं-मैं : कर्ण पर्व में शल्य और कर्ण की तू-तू मैं-मैं बहुत प्रसिद्ध है। इस वर्णन के पीछे मद्र देश या पंजाब के राजा शल्य की छीछालेदर नहीं है किन्तु इस वर्णन के बहाने यूनानी लोगों की धज उतारी गई है। यूनानियों ने मद्र देश या उत्तर पंजाब की राजधानी शाकल (सियालकोट) में एक सौ वर्षों तक राज्य किया था। इन्हें मद्रक यवन कहा जाता था। बाह्लीक या बैक्ट्रिया में राज्य करने वाले पूर्व कालीन यूनानी, बाह्लीक यवन और मद्रदेश या पंजाब में राज्य करने वाले उत्तर कालीन यूनानी; मद्रक-यवन कहलाते थे।

जब सिकन्दर ने 325 ईस्वी पूर्व में भारत पर आक्रमण किया तो उसके अन्यायी यवनों (यूनानियों) का कुछ प्रदेशों पर अधिकार हो गया। पहिले यह अधिकार बाह्लीक या बल्ख प्रदेश पर था और वहाँ के यवन शासक बाह्लीक यवन कहलाते थे। मौर्य सम्राटों के युग में तो वे निस्तेज होकर सिकुड़े हुए पड़े थे किन्तु मौर्य

साम्राज्य के बिखरने पर जब 184 ई० पू० में पुष्य मित्र शुंग सत्तारूढ़ हुआ उस समय यवनों ने गान्धार और पंजाब की ओर अपने पैर फैलाने शुरू किये। उनमें से दिमित्र और मेनेन्द्र नाम के राजाओं ने पंजाब के उत्तरी प्रदेश (मद्र) पर अधिकार कर लिया। मद्रराज शल्य भी वहीं के थे। इसलिये उनके बहाने मद्रक-यवनों के आचार-विचार के प्रति भारतीयों की जो प्रतिक्रिया थी वह सब शल्य के सिर मढ़ कर कही गई है।

मद्रक-यवनों का आचार-विचार और रहन-सहन भारतीयों से भिन्न था। गोमांस खाना, अत्यधिक शराब पीना, स्त्रियों के साथ नग्न-नृत्य, आर्य नियमों के सदृश शौच-सदाचार का अभाव ये ऐसी बातें थीं जिनके विरुद्ध भारतीयों में अत्यधिक रोष उत्पन्न हुआ। वह उबाल, 'शल्य-कुत्सन' नाम से इस प्रकरण में बचा रह गया है। यूनानियों का ऐसा कटखना वर्णन और किसी देश के साहित्य में नहीं मिलता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस प्रकरण की रचना पुष्यमित्र शुंग (लगभग 185 ईस्वी पूर्व, 156 ईस्वी पूर्व) के काल में हुई। पुष्यमित्र और उनके उत्तराधिकारी ब्राह्मण शुंग वंश के थे। इस प्रकरण में बार-बार कहा गया है कि मद्र देश में घूमकर आने वाले किसी ब्राह्मण ने यह सूचना दी। इस प्रकार का प्रचार उस युग की आवश्यकता थी। इस वर्णन के दस पैबन्द हैं जिन्हें एक साथ सीं दिया गया है। पर वे थेकलियाँ आज भी स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। इन वर्णनों का मुख्य उद्देश्य मद्र देश की जनता के मन को यूनानियों के विरुद्ध फेरना था। इसलिये इस प्रकार के लोक गीत जान बूझ कर जनता में प्रचारित किये गये। अनुमान होता हैं कि लोग जब महाभारत की कथा सुनते थे तो उसी के साथ मद्रक यवनों का यह प्रसंग भी सुनाया जाता था। इसका गहरा प्रभाव जनता के मन पर पड़ता था। इस कारण सारे मध्य देश में (बिहार, उत्तर प्रदेश, तथा हिन्दी भाषी प्रदेश) यवनों से बदला लेने का बवण्डर उठ खड़ा हुआ और इसके प्रकोप में मद्रक तिनके की तरह उड़ गये। पतञ्जलि ने महाभाष्य में एक उदाहरण दिया है- 'दुर्यवनम्' इसका अर्थ है यवनों का घोर विनाश।

यह उदाहरण यवनों पर आई हुई इसी प्रकार की विपत्ति का सूचक है। पुष्यमित्र और उसके सुयोग्य पौत्र वसु मित्र के नेतृत्व में मध्य देश से उठा रेला मद्रक यवनों को बहा ले गया।

नारायणीय पर्व : शान्ति पर्व के अन्तर्गत 'नारायणीय पर्व' का भारतीय वाङ्मय में अद्वितीय स्थान है। इसकी विलक्षणता यह है कि इसमें भारत के नारायणीय धर्म और सासानी ईरान के पहलवी धर्म, इन दोनों का समन्वय किया गया

है। यह प्रकरण किसी ऐसे प्रज्ञावान व्यक्ति ने ईसा की प्रथम तीन शतियों में संगृहीत किया जब ईरानी धर्म के देवता और उसके सिद्धान्त घर-घर में व्याप्त हो गये थे।

प्राच्य शास्त्रविद् डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार मध्यदेश, बदरीनाथ और श्वेतद्वीप ये नारायणीय धर्म के तीन केन्द्र थे। नारद, मध्यदेश से बदरीनाथ गये। वहाँ उन्होंने तपस्या करते हुए नर-नारायण से एकान्तिक धर्म के बारे में पूछा जो नारायणीय धर्म की एक शाखा थी। एकान्तिन; नर-नारायण ऋषि के अनुयायी थे और नर का अन्तर्भाव नारायण में मानते थे। यही उनकी एकान्तिन संज्ञा का कारण था। नर-नारायण ने नारद को श्वेत द्वीप जाने की सलाह दी। नारद जी बदरीनाथ के पास गन्धमादन पर्वत पर गये। वहाँ पहुँच कर नारद ने जिन लोगों से भेंट की उनका वर्णन ईरानी धर्म के दस्तूर लोगों से मिलता है। यह वर्णन किसी भी प्रकार भारतीय नहीं है। उन्हें 'पुरुषा:श्वेता: (शान्ति 336/52)' या गोरे रंग का कहा गया है। इसे ही अन्यत्र 'चन्द्रवर्चस: मानवा' या चन्द्रमा के रंग के गोरे मनुष्य कहा गया है। **श्वेतांश्चन्द्रप्रतीकाशान्सर्वलक्षणलक्षितान्**।। (शान्ति 336/35) कहा गया है। वे अत्यन्त श्वेत वस्त्र पहिनते थे और ऐसा कोई अन्न नहीं खाते थे जिसमें हिंसा हो।

श्वेत द्वीप के ये निवासी एकान्त भाव के जानने वाले थे-'**एकान्तभावोपगता:**' (शान्ति 336/28) (**एकान्तिनस्ते पुरुषा श्वेत द्वीप निवासिन:**।। शान्ति 336/30)।

यहाँ एकान्त धर्म का तात्पर्य अहुरमज्द के धर्म से था। जिसके लिये भारतीय शब्द ब्रह्म या देव हरिमेधस था।

वे चन्द्रवर्चस पुरुष पूर्व और उत्तर की ओर मुँह करके हाथ जोड़े हुए मानस जप करते थे-

नित्याञ्जलिकृतान्ब्रह्म जपतः प्रागुदङ्मुखान्।
मानसो नाम स जपो जप्यते तैर्महात्मभिः।।

शान्ति० 336/36

उनके नेत्रों की पलकें स्थिर थीं '**निष्पन्द हीना:**' जैसा कि दस्तूर सूर्य की ओर दृष्टि के समय आज भी करते हैं। उन दस्तूर पुरोहितों के वंशज आज भी बम्बई के समुद्र तट पर मानस जप करते देखे जा सकते हैं।

वे अनशन अर्थात् निराहार व्रत के अनुयायी थे। यह भी कहा गया है कि इस प्रकार के श्वेत पुरुष फेनपाचार्य थे। श्वेत द्वीप के निवासी इन पुरुषों को मोक्ष मिलता है।

वे उत्तम सुगन्धियों के शौकीन थे '**सुगन्धिनः।**' इन सुगन्धियों को वे वस्त्रों और शरीर में लगाते थे।

वे आँखें बन्द किये रहते थे और सब पापों से निवृत्त माने जाते थे। उनके श्वेत वस्त्र और श्वेत वर्ण मानसिक पवित्रता के सूचक थे। उन्हें '**अनिन्द्रिय**' कहा गया है। इसका मुख्य लक्ष्य उनके ब्रह्मचर्य व्रत पर था। वे विवाह नहीं करते थे।

अनिन्द्रिया निराहाराः अनिष्पन्दा सुगन्धिनः।। शान्ति० 336/29

पाप रहित होने के लिये जिस सात्वत ('**सात्वतं विधिमास्थाय**' शान्ति० 335/991।) विधि का उल्लेख है वह मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध बनने का उपाय था जो पूरी तरह ईरानी धर्म से मिलता है–

1. वाक् – सूक्त = हूख्त
2. मनः शुद्धि – सुमत = हुमत
3. कर्मशुद्धि = हुवश्त (र्त)

इन तीन विशेषताओं को इस प्रकार स्पष्ट कहा गया है।

नानृता वाक्समभवन्मनो दुष्टं न चाभवत्।
न च कायेन कृतवान् स पापं परमण्वपि।।

शान्ति० 335/26-27

अर्थात् वाणी में असत्य का अंश नहीं था। मन में कोई दुष्ट भाव नहीं था और वे शरीर से परमाणु बराबर भी पाप नहीं करते थे।

सप्त चित्रशिखण्डी मुनि

वैदिक धर्म की मान्यता के अनुसार सृष्टि के लिये एक अङ्गिरा ऋषि, सात अङ्गिरा बन गये। ईरानी धर्म की मान्यता है कि एक अहुरमज्द ने सात अमेषस्पन्द या अमृत आत्माओं को उत्पन्न किया। इन्हें संस्कृत में **सप्त चित्रशिखण्डिनः** (शान्ति 335/27) कहा गया है। यह शब्द महाभारत के अतिरिक्त विष्णु धर्मोत्तर पुराण में भी प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत शब्द 'चित्र' ईरानी के 'चिथ्र' का रूप है। इसका अर्थ पुत्र है। अमेष् का अर्थ है अमृत और स्पेन्द का श्वेत अर्थात् अमृत का श्वेत देवता। सृष्टि की प्रक्रिया को चलाने वाले ये आधारभूत सात मुनि थे। इसलिये उन्हें संस्कृत में शिखण्डिनः कहा गया है। मोक्षधर्म पर्व में इन सातों के नाम अलग-अलग नहीं दिये गये हैं किन्तु ईरानी मान्यता के अनुसार वे निम्नलिखित हैं:-

अहुरमज्द या देव हरिमेधस् उनके बनाने वाले हैं, किन्तु अहुरमज्द का नाम फिर से सातों में पहिले लिया जाता है।

1. अहुरमज्द– इन सातों की सूचि में अउहर मज्द को पहिला स्थान दिया गया है जैसे वैदिक मत में अङ्गिरा को सात ऋषियों में मुख्य माना गया है–

विरूपास इदृषयस्त इद् गम्भीर वेपसः।
ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे।। ऋग्० 10/62/5

2. वोहूमन् (वसुमनस्)
3. अर्द बहिश्त (ऋतवसिष्ठ) सृष्टि रचना में ये सबसे प्रभावशाली हैं।
4. शतवेरो (क्षत्रवीर)
5. स्पेन्दर मद् (श्वेतामृत)
6. होर्वदद् (स्वर तात्)
7. अमेरोदद् (अमृतात्)

इनमें स्पेन्दर मद् स्त्री है और शेष सब पुरुष हैं। शक्ति और प्रभाव से वे सभी अहुरमज्द के समान हैं। फिर भी सृष्टि का मूल कारण अहुरमज्द ही है और उसका प्रभाव अचिन्त्य है। भारतीय लेखकों ने ब्रह्मा के सात अङ्गिरस ऋषियों को सप्त चित्रशिखण्डियों के समकक्ष रखा है। जिनके नाम हैं– मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ।

इन सातों ने एक मति होकर शास्त्र बनाया–

तैरेकमतिर्भूत्वा यत्प्रोक्तं शास्त्रमुत्तमम्।। शान्ति० 335/28

भारत में यह शास्त्र महाभारत था। सासानी धर्म में यही स्थान 'दीनकर्त' का था। महाभारत में कहा गया है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति से सम्बद्ध जितने धर्म हैं उन सबका स्रोत महाभारत था–

तत्र धर्मार्थकामा हि मोक्षः पश्चाच्च कीर्तितः।। शान्ति० 335/33

दीनकर्त और महाभारत दोनों का ही विषय संसार का समस्त व्यवहार था। अमेषस्पन्दों ने लोकों के मन का चिन्तन करके दीनकर्त शास्त्र बनाया। सासानी मान्यता के अनुसार अदृश्य अहुरमज्द देव ने पहले अमेषस्पन्द के रूप में शरीर धारण कर अमेषस्पन्दों के साथ दीनकर्त की रचना में सहयोग दिया। दीनकर्त सासानी युग की रचना है। यह युग गुप्तकाल का समसामयिक था। गुप्तयुग में ही महाभारत के बहुत बड़े भाग की रचना हुई। महाभारत में त्रिदेवों के साथ एक ब्रह्म का सिद्धान्त

प्रतिपादित है। दीनकर्त में भी अवेस्ता का देवगाथा शास्त्र अनेक प्रकार से बढ़ाया गया है। सब से ऊपर अहुरमज्द की महिमा है। उसमें अध्यात्म का स्वर सर्वोपरि है।

दीनकर्त में सर्व देवाधिदेव के रूप में अहुरमज्द का वर्णन किया गया है। दीनकर्त में प्राचीन अवेस्ता साहित्य का पहलवी अनुवाद तो है ही उसमें सासानी ईरान की सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और व्यवहारिक संस्थाओं का भी विस्तृत वर्णन है। दोनों ही शास्त्रों में नारायण, देव, हरि और प्रभु को पर्याय माना गया है।

जैसे महाभारत में वेदों को प्रमाण माना गया है वैसे ही दीनकर्त में पूर्व अवेस्ता वाङ्मय को प्रमाण माना गया है। इन दोनों शास्त्रों में उशना और बृहस्पति के राजशास्त्रों का प्रमाण है। बृहस्पति, देवों के और उशना, असुरों के गुरु थे। देव हरिमेधम् का उल्लेख बार-बार आया है। यह अहुरमज्द का संस्कृत रूप था। सासानी भाषा में उसे हर्मुज कहा जाता था। इसी का संस्कृत में हरि हुआ है। उल्लेखनीय है कि नारायण के अर्थ में हरि शब्द का प्रयोग गुप्त युग से पहिले के किसी ग्रन्थ में नहीं पाया जाता। वहाँ हरि शब्द तो है किन्तु इन्द्र या घोड़े के अर्थ में आया है विष्णु के अर्थ में नहीं। जो एक दो स्थल विष्णु वाची हैं वे सन्दिग्ध हैं। महाभाष्य या वैदिक साहित्य में भी विष्णु के लिये हरि शब्द नहीं आता।

सासानी युग में ईश्वर के लिये अहुरमज्द नाम सर्वोपरि था। असु का ईरानी रूप अहु था। असुसम्पन्न या अहुसम्पन्न देव को अहुर कहा गया जो वैदिक असुर के समान था। अहुरमज्द में मज्द शब्द का संस्कृत पर्याय 'मेधम्' माना गया है किन्तु वैदिक युग में असुर महत् शब्द मिलता है। महत् ही मज्द का मूल रहा होगा। सासानी युग में अहुरमज्द, अहुरमज, हुर्मुज ये कई रूप प्रचलित हो गये थे।

महाभारत 'शतसाहस्त्री संहिता' है। समस्त भारतीय राष्ट्र का धर्म, दर्शन, कला और संस्कृति महाभारत में प्रतिबिम्बित है। प्राचीन उक्ति के अनुसार महर्षि वेदव्यास ने यह विलक्षण ज्ञानमय प्रदीप प्रज्ज्वलित किया है। महाभारत सचमुच विलक्षण रत्नों की खान है। इस पर प्राचीन युग के देव बोध, अर्जुन मिश्र, सर्वज्ञ नारायण और नीलकण्ठ आदि की टीकाएँ उपलब्ध हैं। किन्तु आज का पाठक इन टीकाओं की परिधि से ऊपर उठकर महाभारत को स्वयं अपने समीक्षात्मक नेत्रों से देखना चाहता है। यही महाभारत के संवर्धनशील स्वरूप की विशेषता है। महाभारत सूक्तिसुधा में संग्रहीत श्लोक गीता प्रेस, गोरखपुर से सम्वत् 2053 (सन् 1996) में प्रकाशित महाभारत के नवें संस्करण से लिये गये हैं।

संस्कृत साहित्य के मनीषी विद्वान डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार "महाभारत" ज्ञान का वह अमृत कलश है, जो व्यास के मन रूपी गरुड़ द्वारा मानव

कल्याण के लिये पृथिवी पर लाया गया है। ऋग्वेद के शब्दों में **"आ पूर्णो अस्य कलशः स्वाहा।"** (मण्डल 3/32/15)। यह अमृत कलश, मंगल घट या पूर्ण कुम्भ जीवन के सत्य रूपी अमृत से ओत प्रोत है। उसके परिमित शब्दों में अमित अर्थ भरा है। बार-बार प्रयत्न करने पर भी यह सम्भव नहीं हो पाता कि उसकी पूरी अर्थगति मन में आ सके।"

कृष्ण जन्माष्टमी **सुभाष विद्यालंकार**

विक्रमी सम्वत् 2065

[illegible]

विषयानुक्रम

भूमिका *i*

प्रथम भाग

1. शिव 1
2. भीष्म स्तवराज 5
3. सूर्य 14
4. युधिष्ठिर इन्द्र सम्वाद 16
5. द्रौपदी की वेदना 29
6. अग्नि 32
7. अज्ञान 36
8. अतिथि 39
9. अधर्म 41
10. अधार्मिक पुरुष 42
11. अध्यात्म वन 43
12. अन्न 44
13. अनित्य 51
14. अपना भला 53
15. अपमान 57
16. अभय 59
17. अराजकता 59
18. अर्जुन 62
19. अर्थ 67
20. अल्पाहार 69

21. अवतार	71
22. अवसर	71
23. अविश्वास	72
24. असत्य	73
25. असन्तोष	75
26 अहंकार	75
27. अहिंसा	77
28. आकाश	82
29. आत्मप्रशंसा	83
30. आत्महत्या	85
31. आत्मा	85
32. आदर्शराज्य	92
33. आयु	94
34. आर्यावर्त	95
35. आलसी	97
36. आशा	98
37. आशीर्वाद	100
38. आहार	102
39. इच्छा	107
40. इन्द्रिय संयम	109
41. ईर्ष्या	118
42. ईश्वर	119
43. ऋण	123
44. उन्नति	124
45. उपकार का बदला	124
46. एकता	125

47. कड़वा बोल 126
48. कर्ण 128
49. कपटी पुरुष 130
50. कर्म 131
51. कर्मफल 134
52. कल्याण के उपाय 144
53. काम 151
54. कायर 157
55. कुलीन पुरुष 158
56. काल 159
57. कृतघ्न 164
58. कृष्ण 166
59. क्रोध 170
60. क्षमा 175
61. क्षत्रिय 179
62. गान्धारी 184
63. ग्रह नक्षत्र 185
64. गुण 185
65. गुप्त मन्त्रणा 189
66. गुरु पुजा 190
67. गृहस्थ आश्रम 196
68. गौ 203
69. चंचलता 207
70. चरित्र 207
71. चार ऋण 211
72. जन्म 211

73. जय	213
74. जल	213
75. ज्ञान	214
76. जीवन	221
77. जुआ	222
78. तपोवन	224
79. तपस्या	225
80. तीर्थयात्रा	234
81. तीर्थ	237
82. तेजस्वी पुरुष	238
83. तृष्णा	240
84. त्यागी	245
85. त्रिगुण	247
86. दम	254
87. दण्ड	258
88. दान	263
89. दुःख	268
90. दुर्योधन	274
91. देवता	279
92. द्वेष	280
93. द्रौपदी	280
94. धन	282
95. धर्म	290
96. धृतराष्ट्र	309
97. ध्यान	313
98. धैर्य	318
99. नपुंसक	320

100. नर–नारायण 320
101. नारद 321
102. नास्तिक 323
103. निन्दा 324
104. निर्धन 325
105. निर्बल 326
106. निवासयोग्य देश 327
107. नीच पुरुष 329
108. नीति 335
109. नींद 337
110. न्यायाधीश 338
111. पति 339
112. पतिव्रता स्त्री 341
113. पत्नी 345
114. पण्डित 350
115. पञ्च महाभूत 352
116. पश्चात्ताप 355
117. पापकर्म 356
118. पाण्डव और उनकी पत्नियां 361
119. पाण्डव 363
120. पिता 364

द्वितीय भाग

121. पुण्य 367
122. पुत्र 368
123. पुत्री 373
124. पुरुषार्थ 373

125. पुरोहित 375
126. प्रकृति 376
127. प्रकृति और पुरुष 376
128. प्राण और योग 379
129. प्राणी 383
130. ब्रह्मघाती 383
131. ब्रह्मचर्य आश्रम 384
132. ब्रह्मज्ञानी 388
133. ब्रह्मविद्या 394
134. ब्राह्मण 409
135. बुढ़ापा 420
136. बुद्धि 423
137. बुद्धिमान पुरुष 427
138. भक्त 431
139. भय 433
140. भाई 434
141. भाग्य 436
142. भिक्षा 440
143. भीम 441
144. भूख 443
145. भूमि 443
146. भोग 445
147. मन 446
148. मनस्वी पुरुष 448
149. मन्त्री 450
150. मल 452

151. महत् तत्त्व 453
152. माता 455
153. मानसिक दु:ख 458
154. मित्रता 460
155. मीठी वाणी 466
156. मुक्त पुरुष 467
157. मूर्ख 475
158. मृत्यु 477
159. मोक्ष 485
160. मौन 495
161. यज्ञ 495
162. यश 501
163. युग 502
164. युद्ध 505
165. युधिष्ठिर 509
166. योग 514
167. राजधर्म 524
168. राजनीति 532
169. राजा 543
170. रामराज्य 559
171. रोग 560
172. लक्ष्मी 561
173. लोभ 563
174. वर्णसंकर 567
175. व्रत 569
176. वृक्ष 570

177. वृद्ध	572
178. व्यक्त-अव्यक्त	573
179. वानप्रस्थ आश्रम	573
180. वायु	575
181. विदुर	577
182. विद्या	578
183. विधवा	581
184. विपरीत बुद्धि	581
185. विभूति	582
186. वियोग	583
187. विवाह	584
188. विवेक	587
189. विषय भोग	589
190. विश्वास	592
191. वीरता	594
192. वेद	597
193. वेदाङ्ग	599
194. वैर	600
195. वैराग्य	603
196. वैभव	609
197. वैश्य	610
198. शक्ति	611
199. शम	612
200. शरणागत	613
201. शरीर	614
202. शत्रु	616

203. शिष्टाचार	618
204. शिष्य	620
205. शूद्र	621
206. शोक	623
207. शौच	627
208. श्रद्धा	628
209. श्रेय	629
210. श्रेष्ठ पुरुष	631
211. श्रेष्ठ वस्तुएं	635
212. श्रेष्ठ स्त्री	638
213. संसार	639
214. सज्जन	641
215. सत्य	647
216. सन्तोष	654
217. संगति	657
218. सन्मार्ग	659
219. सम्बन्धी	666
220. सम्मान	667
221. सहनशीलता	668
222. सांख्य और योग दर्शन	668
223. साम	679
224. स्त्री	680
225. स्त्री स्वभाव	682
226. संन्यास आश्रम	687
227. सुख	691
228. सृष्टि उत्पत्ति	694

229. सेना 698
230. सेवक 699
231. स्वप्न 700
232. स्वभाव 701
233. स्वर्ग 702
234. स्वार्थ 706
235. हाथ 707
236. हिंसा 708
237. हितकारी बात 710
238. प्रकीर्ण 718
श्लोकानुक्रमणिका 735

शिव

लोकादिं विश्वकर्माणमजमीशानमव्ययम्।
मनसः परमं योनिं खं वायुं ज्योतिषां निधिम्।। द्रोण 80/44।।

शिव; जगत् के आदिकारण, संसार को बनाने वाले, अजन्मा, ईश्वर, अविनाशी, मन की उत्पत्ति के प्रधान कारण, आकाश और वायुस्वरूप तथा तेजों के पुंज हैं।

स्त्रष्टारं वारिधाराणां भुवश्च प्रकृतिं पराम्।
देवदानवयक्षाणां मानवानां च साधनम्।। द्रोण 80/45।।

शिव; जल की सृष्टि करने वाले, पृथ्वी के परम कारण, देवताओं, दानवों, यक्षों और मनुष्यों के भी परम कारण हैं।

योगानां च परं धाम दृष्टं ब्रह्मविदां निधिम्।
चराचरस्य स्त्रष्टारं प्रतिहर्तारमेव च।। द्रोण 80/46।।

शिव; सभी योगों के परम आश्रय स्थल, ब्रह्मवेत्ताओं की प्रत्यक्ष निधि तथा चर और अचर प्राणियों के उत्पादक और संहारक भी हैं।

यं प्रपद्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मपदैषिणः।
तमजं कारणमात्मानं जग्मतुः शरणं भवम्।। द्रोण 80/48।।

सूक्ष्म अध्यात्म पद प्राप्त करने की इच्छा करने वाले विद्वान् जिन की शरण में जाते हैं उन अजन्मा और अपने ही कारण शिवजी की शरण में श्रीकृष्ण और अर्जुन गये।

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने।। द्रोण 80/55।।

सबको उत्पन्न करने वाले, संहार करने वाले, भंयकर रौद्ररूप वाले, वर देने वाले, जीवों का पालन करने वाले, सदा उग्ररूप में विराजमान और जटजूट धारी शिव को नमस्कार है।

आत्मनोऽर्धं तु तस्याग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते।
ब्रह्मचर्यं चरत्येका शिवा चास्य तनुस्तथा।। अनु० 161/5।।
यास्य घोरतमा मूर्तिर्जगत् संहरते तथा।
ईश्वरत्वान्महत्त्वाच्च महेश्वर इति स्मृतः।। अनु० 161/6।।

महादेव का आधा शरीर अग्नि वाला है और आधा शरीर सोम (चन्द्रमा) का है। उनकी सोमरूप शिवमूर्ति ब्रह्मचर्य का पालन करती है। शिव के भयानक रूप वाले शरीर का आधा भाग संसार का नाश करता है। शिव महिमाशाली और ऐश्वर्ययुक्त होने के कारण महेश्वर कहलाते हैं।

यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत् प्रतापवान्।
मांसशोणितमज्जादो यत् ततो रुद्र उच्यते।। अनु 161/7।।

शिव सभी को भस्म कर देते हैं। वे अत्यन्त तीक्ष्ण, उग्र और प्रतापशील हैं। वे प्रलय की अग्नि बनकर मांस, रक्त और मज्जा को भी अपना ग्रास बना लेते हैं इसलिये शिव 'रुद्र' कहलाते हैं।

यच्च विश्वं महत् पाति महादेवस्ततः स्मृतः।। अनु० 161/8।।

क्योंकि वे महान् विश्व की रक्षा करते हैं इसलिये महादेव कहे जाते हैं।

धूम्ररूपं च यत्तस्य धूर्जटीत्यत उच्यते।
समेधयति यन्नित्यं सर्वान् वै सर्वकर्मभिः।। अनु० 161/9।।
मनुष्याञ्शिवमन्विच्छंस्तस्मादेष शिवः स्मृतः।

उनकी जटाओं का रंग धुएं जैसा है इसलिये उन्हें 'धूर्जटि' कहते हैं। वे अपने सभी प्रकार के कर्मों से सबकी उन्नति करते हैं और सभी मनुष्यों का कल्याण चाहते हैं इसलिये इन्हें शिव कहते हैं।

दहत्यूर्ध्वं स्थितो यच्च प्राणान् नृणां स्थिरश्च यत्।
स्थिरलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात् स्थाणुरिति स्मृतः।। अनु ० 161/10।।

ये शरीर के ऊपरी भाग में रहकर मनुष्यों आदि के प्राण नष्ट करते हैं और स्थिर रहते हैं। जिनका शरीर सदा स्थिर रहता है अतः वे स्थाणु कहलाते हैं।

यदस्य बहुधा रूपं भूतं भव्यं भवत्तथा।। अनु०161/11।।
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः।
विश्वे देवाश्च यत्तस्मिन् विश्वरूपस्ततः स्मृतः।। अनु० 161/12।।

भूत, भविष्य और वर्तमान काल में स्थावर और जंगम अर्थात् चलने फिरने वाले प्राणियों के रूप में उनके अनेक रूप प्रकट होते हैं इसलिये शिव 'बहुरूप' कहे जाते हैं। शिव में सभी देवता निवास करते हैं अतः उन्हें 'विश्व रूप' कहा जाता है।

सहस्त्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा।
चक्षुषः प्रभवेत् तेजो नास्त्यन्तोऽथास्य चक्षुषाम्।। अनु 161/13।।

शिव की आंखों से तेज प्रकट होता है और उनकी आंखों का कोई अन्त नहीं है इसलिये वे 'सहस्राक्ष', 'अयुताक्ष' और, सर्वतोऽक्षिमय, हैं।

सर्वथा यत् पशून् पाति तैश्च यद् रमते सह।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात् पशुपतिः स्मृतः।। अनु 161/14।।

जो सभी पशुओं का पालन करते हैं, उनके साथ सुख से रहते हैं और उनके स्वामी हैं अतः शिव पशुपति कहलाते हैं।

ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरः पुनरुच्यते।। अनु 161/28।।
महेश्वरश्च लोकानां महतामीश्वरश्च सः।

शिव सभी कामनाओं के अधीश्वर हैं इसलिये वे 'ईश्वर' कहलाते हैं। वे महान् लोकों के ईश्वर भी हैं और बड़े शक्तिशाली देवों, असुरों आदि के भी ईश्वर हैं इसलिये उनका नाम 'महेश्वर' भी है।

बहुभिर्विविधै रूपैर्विश्वं व्याप्तमिदं जगत्।
तस्य देवस्य यद् वक्त्रं समुद्रे वडवामुखम्।। अनु 161/29।।

शिव अनेक रूपों से इस सारे संसार में व्याप्त हैं। उनका मुख ही समुद्र की अग्नि 'वडवानल' है।

सम्मान्यं निश्चलं नित्यमकारणमलेपनम्।
अध्यात्मवेदमासाद्य प्रयामि शरणं मुहुः।। आश्व 8 दा० पा० 32-33।।

जो सम्मान के योग्य, निश्चल, नित्य, कारण रहित, निर्लेप अर्थात् किसी भी दोष से रहित और अध्यात्म विद्या के जानकार हैं, ऐसे शिव को पाकर मैं उनकी शरण में जाता हूँ।

यस्य नित्यं विदुः स्थानं मोक्षमध्यात्मचिन्तकाः।
योगिनस्तत्त्वमार्गस्थाः कैवल्यं पदमक्षरम्।।
यं विदुः सङ्गनिर्मुक्ताः सामान्यं समदर्शिनः।
तं प्रपद्ये जगद्योनिं निर्गुणात्मकम्।। आश्व 8 दा० पा०32-33।।

अध्यात्म का चिन्तन करने वाले ज्ञानी पुरुष जिन शिव को नित्य मोक्ष पद में प्रतिष्ठित मानते हैं। तत्त्व मार्ग पर चलने वाले योगी जन जिन्हें कभी नष्ट न होने वाला कैवल्य (मोक्ष) धाम मानते हैं। आसक्ति रहित समदर्शी महात्मा जिन्हें सब स्थानों पर सामान्य रूप से विराजमान मानते हैं उन निर्गुण और संसार के आदि कारण शिव की शरण में मैं जाता हूँ।

असृजद् यस्तु भूरादीन् सप्तलोकान् सनातनात्।
स्थितः सत्योपरि स्थाणुं तं प्रपद्ये सनातनम्।। आश्व 8 दा० पा०32-33।।

जिन्होंने भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य ये सात सनातन लोक बनाये हैं और जो सत्य से ऊपर विराजमान हैं, उन स्थाणुरूप सनातन शिव की शरण में मैं जाता हूँ।

भीष्म स्तवराज

शान्ति पर्व के 'भीष्म स्तवराज' में स्तोत्र को वाग्यज्ञ कहा गया है। द्रव्य यज्ञ में बहुत खर्च होता है किन्तु स्तोत्र रूपी वाग्यज्ञ द्वारा इष्ट देव का आराधन सुलभ है। देवतत्त्व का सान्निध्य प्राप्त करने के दो ही उपाय हैं। एक मानसिक ध्यान द्वारा, दूसरा वाणी की शक्ति के द्वारा। मन, प्राण, वाक् (वाणी) इन तीनों से चैतन्य युक्त हमारा शरीर बना है। इसमें प्राण, मध्यस्थ है। जब वह अपनी शक्ति मन को देता है तो मन से देव तत्व का ध्यान किया जाता है। परन्तु जब प्राण की शक्ति वाक् या पंचभूतों से बने शरीर को मिलती है तब उससे वाणी द्वारा देवता का यजन या वाग्यज्ञ किया जाता है। उसे ही स्तोत्र कहते हैं। 'वाग्यज्ञ' करना सभी के लिये सरल है। स्तोत्र याद करके घर या मन्दिर के देवता के सामने पढ़ा या बोला जाता है और इस तरह वाणी का यज्ञ किया जाता है।

'भीष्म स्तवराज' स्तोत्र के पहिले बारह श्लोकों में भगवान के नामों का वर्णन है जैसे शुचि, शुचिपद, हंस, परमेष्ठी, आत्मा, प्रजापति, भूतेश, विश्वकर्मा, सहस्रशीर्षा, सहस्रपाद्, सहस्रचक्षु, नारायण, सत्यकर्म, सात्वपति आदि। इसके बाद के 32 श्लोक 'नमः स्तोत्र' हैं। प्रत्येक श्लोक के अन्तिम चरण में भगवान के एक एक रूप का वर्णन चतुर्थी विभक्ति के साथ जुड़े नमः शब्द से है। जैसे सूर्यात्मने नमः, सोमात्मने नमः, वेदात्मने नमः, ज्ञानात्मने नमः, हंसात्मने नमः इत्यादि।

भीष्म स्तवराज का पाठ; मन और प्राणों को शक्ति देने वाला है। विश्व की रचना में भगवान की जो शक्तियां हैं, उनके स्वरूपों का इसमें ध्यान करके उन्हें प्रणाम अर्पित किया गया है। यह भीष्म जी का अन्त समय का भगवतस्मरण है।

यह स्तोत्र संस्कृत साहित्य में बेजोड़ है। यह गुप्त युग के किसी महान् कवि की असाधारण रचना है। भीष्म की योग-निष्ठा और आध्यात्मिक भक्ति का इसमें प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

हिरण्यवर्णं यं गर्भमदितेर्दैत्यनाशनम्।
एकं द्वादशधा जज्ञे तस्मै सूर्यात्मने नमः।। शान्ति 47/39।।

देवमाता अदिति ने जिस हिरण्य रूप (सुवर्णरूप) गर्भ को बारह रूपों में ढाला और जो दैत्यों का नाश करने वाला है उस **सूर्यात्मा** को प्रणाम है।

शुक्ले देवान् पितॄन् कृष्णे तर्पयत्यमृतेन यः।
यश्च राजा द्विजातीनां तस्मै सोमात्मने नमः।। शान्ति 47/40।।

जो अपनी अमृतपूर्ण किरणों से शुक्ल पक्ष में देवों को और कृष्णपक्ष में पितरों को तृप्त करता है। जो ब्राह्मणों का राजा है, उस **सोमात्मा** को नमस्कार है।

महतस्तमसः पारे पुरुषं ह्यतितेजसम्।
यं ज्ञात्वा मृत्युमत्येति तस्मै ज्ञेयात्मने नमः।। शान्ति 47/41।।

जो अज्ञानरूपी महान अन्धकार से परे है और ज्ञान के प्रकाश से अत्यन्त प्रकाशशील तेजस्वी पुरुष (आत्मा) है। जिन्हें जान लेने पर मनुष्य सदा के लिये मृत्यु से छूट जाता है उन ज्ञेयरूप (जानने योग्य) परमेश्वर को अर्थात् **ज्ञेयात्मा** को प्रणाम है।

यं बृहन्तं बृहत्युक्थे यमग्नौ यं महाध्वरे।
यं विप्रसंघा गायन्ति तस्मै वेदात्मने नमः।। शान्ति 47/42।।

उक्थ्य नाम के बड़े यज्ञ में जिन बृहन्त भगवान की प्रशंसा की जाती है। बड़े यज्ञों में अग्न्याधान के समय (यज्ञकुण्ड में अग्नि रखते समय) जिनका पूजन किया जाता है उन **वेदात्मा** (वेदस्वरूप) भगवान को प्रणाम है।

ऋग्यजुः सामधामानं दशार्धहविरात्मकम्।
यं सप्ततन्तुं तन्वन्ति तस्मै यज्ञात्मने नमः।। शान्ति 47/43।।

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद जिनके आश्रय हैं। पांच आहुतियां या पांच तरह का हविष्य जिनका स्वरूप है। गायत्री आदि सात छन्द जिनका सात तन्तुओं द्वारा विस्तार करते हैं उन यज्ञरूप (**यज्ञात्मा**) भगवान को नमस्कार है।

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै होमात्मने नमः।। शान्ति 47/44।।

आश्रावय (चार अक्षर), अस्तु श्रौषट् (चार अक्षर), यज (दो अक्षर) ये यजामहे (पांच अक्षर) वषट् (दो अक्षर) इन सत्रह अक्षरों वाले मन्त्रों से जिन्हें हविष्य (आहुति) दिया जाता है उन **होमात्मा** परमेश्वर को नमस्कार है।

यः सुपर्णो यजुर्नाम च्छन्दोगात्रस्त्रिवृच्छिराः।
रथन्तरं बृहत् साम तस्मै स्तोत्रात्मने नमः।। शान्ति 47/45।।

वेदरूपी जिस पुरुष का नाम यजुर्वेद है। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती आदि छन्द जिन के शरीर के अंग हैं। त्रिवृत् यज्ञ जिनकी सान्त्वनापूर्ण वाणी है उन **स्तोत्रात्मा** सुपर्ण भगवान् को प्रणाम है।

यः सहस्त्रसमे सत्रे जज्ञे विश्वसृजामृषिः।
हिरण्यपक्षः शकुनिस्तस्मै हंसात्मने नमः।। शान्ति 47/46।।

जो विश्वसृज (प्रजापति) देवों के सहस्र सवन रूप दीर्घ सत्र (यज्ञ) में सोने के पक्षी के रूप में उत्पन्न हुए थे उन **हंसात्मा** भगवान को नमस्कार है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण और ताण्ड्य महाब्राह्मण के अन्त में विराट सृष्टि यज्ञ का वर्णन है जिसे विश्वसृज यज्ञ भी कहा है। यह यज्ञ, सहस्र संवत्सर अर्थात् अनन्त अपरिमित काल तक होता रहता है।

पादाङ्गं संधिपर्वाणं स्वरव्यञ्जनभूषणम्।
यमाहुरक्षरं दिव्यं तस्मै वागात्मने नमः।। शान्ति 47/47।।

पदों के समूह जिनके अंग हैं। सन्धियां जिनके शरीर के पर्व (जोड़) हैं। स्वर और व्यञ्जन जिनके आभूषण (रूप या लक्षण) हैं। दिव्य, नित्य, अक्षर जिनके नाम हैं उन वाणी स्वरूप (**वागात्मा**) परमेश्वर को नमस्कार है।

यस्तनोति सतां सेतुमृतेनामृतयोनिना।
धर्मार्थव्यवहाराङ्गैस्तस्मै सत्यात्मने नमः।। शान्ति 47/50।।

अमृत से उत्पन्न ऋत तत्व द्वारा जो सत् वस्तुओं के सेतु को बनाते हैं। धर्म और अर्थ से जिनका व्यवहार रूपी शरीर बनता है उन **सत्यात्मा** (सत्यस्वरूप) भगवान को प्रणाम है।

यं पृथग्धर्मचरणाः पृथग्धर्मफलैषिणः।
पृथग्धर्मैः समर्चन्ति तस्मै धर्मात्मने नमः।। शान्ति 47/51।।

अलग-अलग धर्मों पर चलने वाले, अलग-अलग धर्म फल की इच्छा करने वाले, अलग-अलग धर्मों से लोग जिन की पूजा करते हैं उन **धर्मात्मा** भगवान् को नमस्कार है।

यं च व्यक्तस्थमव्यक्तं विचिन्वन्ति महर्षयः।
क्षेत्रे क्षेत्रज्ञमासीनं तस्मै क्षेत्रात्मने नमः।। शान्ति 47/53।।

महर्षि लोग जिस अव्यक्त (अदृष्ट) ब्रह्म को व्यक्त (दीखने वाले) शरीर में

बैठा हुआ ढूंढते हैं। जो सब क्षेत्रों (शरीरों-प्राणियों) में बैठा हुआ क्षेत्रज्ञ (प्राणियों को जानने वाला) है उन **क्षेत्रात्मा** भगवान को नमस्कार है।

यं त्रिधाऽऽत्मानमात्मस्थं वृतं षोडशभिर्गुणैः।
प्राहुः सप्तदशं सांख्यास्तस्मै सांख्यात्मने नमः।। शान्ति 47/54।।

जो सत्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों के कारण तीन तरह के दिखाई देते हैं। इन तीन गुणों के कार्य बने सोलह विकारों से घिरे होने पर भी जो अपने स्वरूप में विराजमान हैं। सांख्य मत के अनुयायी जिन्हें सत्रहवां तत्व (पुरुष) मानते हैं उन **सांख्यात्मक** (सांख्यरूप) भगवान को नमस्कार है।

यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्त्वस्थाः संयतेन्द्रियाः।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः।। शान्ति 47/55।।

योगी अपनी नींद, श्वास और इन्द्रियों को वश में करके शुद्ध सत्त्व गुण की अवस्था में पहुंच कर अपने मन की समाधि शक्ति से जिन का ज्योतिरूप में र्दशन करते हैं उन **योगात्मा** (योगस्वरूप) भगवान को नमस्कार है।

अपुण्यपुण्योपरमे यं पुनर्भवनिर्भयाः।
शान्ताः सन्यासिनो यान्ति तस्मै मोक्षात्मने नमः।। शान्ति 47/56।।

पाप और पुण्य का नाश हो जाने पर इन दोनों से ऊपर उठकर और पुनर्जन्म के भय से छूटे हुए निर्भय शान्तचित्त सन्यासी जिन्हें प्राप्त करते हैं उन **मोक्षात्मा** (मोक्षरूप) भगवान को प्रणाम है।

योऽसौ युगसहस्रान्ते प्रदीप्तार्चिर्विभावसुः।
सम्भक्षयति भूतानि तस्मै घोरात्मने नमः।। शान्ति 47/57।।

सृष्टि के एक हजार युग बीतने पर जो प्रचण्ड ज्वालावाली प्रलय की अग्नि का रूप धर कर सम्पूर्ण प्राणियों का नाश कर देते हैं उन **घोरात्मा** (भंयकर रूप) भगवान को प्रणाम है।

सम्भक्ष्य सर्वभूतानि कृत्वा चैकार्णवं जगत्।
बालः स्वपिति यश्चैकस्तस्मै मायात्मने नमः।। शान्ति 47/58।।

जो सम्पूर्ण प्राणियों को अपने पेट में समाकर इस संसार को जल में डुबा देते हैं और इस प्रकार बने हुए एक महासागर में बालक के रूप में अकेले अक्षयवट पर सोते हैं उन **मायात्मा** प्रभु को प्रणाम है।

तद् यस्य नाभ्यां सम्भूतं यस्मिन् विश्वं प्रतिष्ठितम्।
पुष्करे पुष्कराक्षस्य तस्मै पद्मात्मने नमः।। शान्ति 47/59।।

यह कमल रूपी ब्रह्माण्ड जिस कमलनयन भगवान की नाभि से प्रकट हुआ है और यह संसार जिन पर टिका हुआ है उन **पद्मात्मा** (कमल रूप) भगवान को नमस्कार है।

सहस्त्रशिरसे चैव पुरुषायामितात्मने।
चतुः समुद्रपर्याय योगनिद्रात्मने नमः।। शान्ति 47/60।।

जिनके हज़ारों मस्तक हैं, जिनका स्वरूप किसी सीमा में नहीं बांधा जा सकता और जो चारों समुद्रों को प्रलय काल में एक महासागर बनाकर योगनिद्रा में सोते हैं उन **योगनिद्रात्मक** भगवान को नमस्कार है।

यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः।। शान्ति 47/61।।

मेघ जिनके केश हैं। जिनके सभी अंग के जोड़ों की नाड़ियां नदियां हैं। चार समुद्र जिनकी कोख (पेट) हैं जन जलरूप भगवान (**तोयात्मा**) को नमस्कार है।

यस्मात् सर्वाः प्रसूयन्ते सर्गप्रलयविक्रियाः।
यस्मिंश्चैव प्रलीयन्ते तस्मै हेत्वात्मने नमः।। शान्ति 47/62।।

जो यह सारी सृष्टि रचते हैं तथा इसका संहार करते हैं। प्रलय काल में जिनमें सारे प्राणी समा जाते हैं। संसार के कारण (**हेत्वात्मा**) और प्रलय रूप भगवान को नमस्कार है।

यो निषण्णो भवेद् रात्रौ दिवा भवति विष्ठितः।
इष्टानिष्टस्य च द्रष्टा तस्मै द्रष्टात्मने नमः।। शान्ति 47/63।।

जो रात में भी जागते हैं और दिन में साक्षी रूप में स्थित रहते हैं। जो भला-बुरा सब कुछ देखते रहते हैं उन **द्रष्टात्मा** (द्रष्यरूपी) प्रभु को प्रणाम है।

अकुण्ठं सर्वकार्येषु धर्मकार्यार्थमुद्यतम्।
वैकुण्ठस्य च तद् रूपं तस्मै कार्यात्मने नमः।। शान्ति 47/64।।

जो सभी काम बिना किसी रोक टोक के कर सकते हैं। जो धर्म का काम करने के लिये सदा तैयार रहते हैं। जो वैकुण्ठ धाम के रूप हैं उन **कार्यरूप** भगवान को नमस्कार है।

विभज्य पञ्चधाऽऽत्मानं वायुर्भूत्वा शरीरगः।
यश्चेष्टयति भूतानि तस्मै वाय्वात्मने नमः।। शान्ति 47/66।।

जो अपने को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन ' ांच प्राण वायुओं में विभक्त करके शरीर में रहते हैं और सभी प्राणियों को चलाते फिराते हैं उन **वायुरूप** परमात्मा को नमस्कार है।

युगेष्वावर्तते योगैर्मासर्त्वयनहायनैः।
सर्गप्रलययोः कर्ता तस्मै कालात्मने नमः।। शान्ति 47/67।।

जो मास, ऋतु, दक्षिणायन और उत्तरायण (अयन) और वर्षों के रूप में अपने अंशों से युग युग में घूम रहे हैं। जो सृष्टि और प्रलय करने वाले हैं उन **कालरूप** भगवान को नमस्कार है।

ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमूरूदरं विशः।
पादौ यस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः।। शान्ति 47/68।।

ब्राह्मण जिनके मुख हैं, क्षत्रिय भुजाएं हैं, वैश्य उदर हैं और शूद्र जिन के चरणों के आश्रित हैं उन **चतुर्वणरूप** भगवान को नमस्कार है।

यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः।
सूर्यश्चक्षुर्दिशः श्रोत्रे तस्मै लोकात्मने नमः।। शान्ति 47/69।।

अग्नि जिनका मुख है, द्युलोक जिनका मस्तक है, आकाश जिनकी नाभि है, पृथ्वी जिनके पैर हैं, सूर्य जिनका नेत्र हैं और दिशाएं जिनके कान हैं ऐसे **लोकात्मा** भगवान को नमस्कार है।

परः कालात् परो यज्ञात् परात् परतरश्च यः।
अनादिरादिर्विश्वस्य तस्मै विश्वात्मने नमः।। शान्ति 47/70।।

जो काल से परे हैं, जो यज्ञ से परे हैं और जो दूर से भी अत्यन्त दूर हैं। जो सम्पूर्ण विश्व के प्रारम्भ (आदि) करने वाले हैं किन्तु जिनका प्रारम्भ करने वाला कोई नहीं है अर्थात् स्वयं अनादि हैं उन **विश्वात्मा** परमात्मा को नमस्कार है।

विषये वर्तमानानां यं ते वैशेषिकैर्गुणैः।
प्राहुर्विषयगोप्तारं तस्मै गोप्त्रात्मने नमः।। शान्ति 47/71।।

विशेष या पञ्चतन्मात्राओं के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध वैशेषिक दर्शन में बताये हुए इन पांच गुणों से आकृष्ट होकर जो लोग विषय भोगों में रम रहे हैं उनसे इन लोगों की रक्षा करने वाले **गोप्त्रात्मा** (रक्षारूप) भगवान को नमस्कार है।

अन्नपानेन्धनमयो रसप्राण विवर्धनः।
यो धारयति भूतानि तस्मै प्राणात्मने नमः।। शान्ति 47/72।।

अन्न और पान (पानी) जिसका ईंधन है और जो अन्न-पान के द्वारा प्राणियों के शरीरों में रसों और प्राणों को बढ़ाता है तथा सारे प्राणियों को धारण (पोषण) करता है उस **प्राणरूप** भगवान को नमस्कार है।

प्राणानां धारणार्थाय योऽन्नं भुङ्क्ते चतुर्विधम्।
अन्तर्भूतः पचत्यग्निस्तस्मै पाकात्मने नमः।। शान्ति 47/73।।

प्राणों की रक्षा के लिये जो चबाने, चूसने, चाटने और पीने वाले चार तरह के अन्न खाते हैं और स्वयं ही जठराग्नि के रूप में इन अन्नों को पचाते हैं ऐसे **पाकरूप** परमेश्वर को नमस्कार है।

यो मोहयति भूतानि स्नेहपाशानुबन्धनैः।
सर्गस्य रक्षाणार्थाय तस्मै मोहात्मने नमः।। शान्ति 47/77।।

जो इस सृष्टि की रक्षा के लिये प्राणियों को राग और स्नेह के बन्धन रूपी मोह में डाले रखते हैं उन **मोहस्वरूप** भगवान को नमस्कार है।

आत्मज्ञानमिदं ज्ञानं ज्ञात्वा पञ्चस्ववस्थितम्।
यं ज्ञानेनाभिगच्छन्ति तस्मै ज्ञानात्मने नमः।। शान्ति 47/78।।

ज्ञानी लोग अपने भीतर ही पांच विषयों, पांच ज्ञानेन्द्रियों और अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय शरीर के इन पांच कोशों में स्थित आत्मा का ज्ञान होने पर विशुद्ध बोध के द्वारा जिन्हें प्राप्त करते हैं उन **ज्ञानस्वरूप** परमात्मा को नमस्कार है।

अप्रमेयशरीराय सर्वतोबुद्धिचक्षुषे।
अनन्तपरिमेयाय तस्मै दिव्यात्मने नमः।। शान्ति 47/79।।

जिनका शरीर अपरिमेय अर्थात् सीमा रहित है, जिनकी बुद्धि सब ओर व्याप्त अर्थात् अनन्त हैं, जिनके भीतर अनन्त लोक और विषय आदि समाये हुए हैं उन **दिव्यरूप** भगवान को नमस्कार है।

सर्वभूतात्मभूताय भूतादिनिधनाय च।
अक्रोधद्रोहमोहाय तस्मै शान्तात्मने नमः।। शान्ति 47/83।।

जो सभी प्राणियों की आत्मा हैं और उनके जन्म-मृत्यु का कारण हैं। जो क्रोध, द्रोह और मोह से मुक्त हैं। उन **शान्तस्वरूप** भगवान को नमस्कार है।

यस्मिन् सर्वे यतः सर्वे यः सर्वे सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वात्मने नमः।। शान्ति 47/84।।

जिनमें सब हैं, जिनमें सब उत्पन्न होते हैं, जो स्वयं सृष्टि में व्यक्त और अव्यक्त सभी कुछ हैं, जिनमें सभी प्राणियों और पदार्थों का स्वरूप बनता है और जो सब जगह सदा व्यापक हैं उन सर्वात्मा भगवान् को नमस्कार है।

न हि पश्यामि ते भावं दिव्यं हि त्रिषु वर्त्मसु।
त्वां तु पश्यामि तत्वेन यत् ते रूपं सनातनम्।। शान्ति 47/88।।

मैं तीनों लोकों में आपके दिव्य कर्म का रहस्य नहीं जान पाता। तत्व दृष्टि से आपका जो सनातन रूप है उसी की ओर मेरी दृष्टि रहती है।

दिवं ते शिरसा व्याप्तं पद्भ्यां देवी वसुन्धरा।
विक्रमेण त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः।। शान्ति 47/88।।

आपके मस्तक से द्युलोक, पैरों से पृथ्वी देवी और आपके तीन पगों से तीनों लोक व्याप्त हैं। आप सनातन पुरुष हैं।

दिशो भुजा रविश्चक्षुर्वीर्ये शुक्रः प्रतिष्ठितः।
सप्त मार्गा निरुद्धास्ते वायोरमित तेजसः।। शान्ति 47/90।।

दिशाएं आपकी भुजाएं, सूर्य आपके नेत्र और प्रजापति शुक्राचार्य आपके वीर्य हैं। अमित तेजस्वी आपने वायु के सात मार्गों को नियन्त्रित कर रखा है।

प्राणकान्तार पाथेयं संसारोच्छेद भेषजम्।
दुःखशोक परित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम्।। शान्ति 47/96।।

'हरि' ये दो अक्षर दुर्गमपथ में प्राणों के पाथेय हैं। हरि नाम संसार से छुटकारा दिलाने की ओषध है और हरि स्मरण से दुःख-शोक से उद्धार होता है।

यथा विष्णुमयं सत्यं यथा विष्णुमयं जगत्।
यथा विष्णुमयं सर्वं पाप्मा मे नश्यतां तथा।। शान्ति 47/97।।

जैसे सत्य विष्णुमय हैं। जैसे सारा संसार विष्णुमय है। जैसे सभी कुछ विष्णु से व्याप्त है उसी प्रकार विष्णु के प्रभाव से मेरे सब पाप नष्ट हो जायें।

त्वां प्रपन्नाय भक्ताय गतिमिष्टां जिगीषवे।
यच्छ्रेयः पुण्डरीकाक्ष तद् ध्यायस्व च सुरोत्तम।। शान्ति 47/8।।

देवताओं में श्रेष्ठ कमलनयन भगवान श्रीकृष्ण! मैं आपका शरणागत भक्त हूँ। मैं अभीष्ट गति पाना चाहता हूँ। जिससे मेरा कल्याण हो वह आप ही सोचिये।

इति विद्यातपोयोनिरयोनिर्विष्णुरीडितः।
वाग्यज्ञेनार्चितो देवः प्रीयतां मे जनार्दनः।। शान्ति 47/99।।

जो विद्या और तप के जन्मस्थान हैं, जिनका कोई जन्मदाता नहीं है उन भगवान विष्णु का मैंने वाणी रूप यज्ञ से पूजन किया है। भगवान जनार्दन मुझ पर प्रसन्न हों।

नारायणः परं ब्रह्म नारायण परं तपः।
नारायणः परो देवः सर्वं नारायण सदा।। 47/100।।

नारायण ही पर ब्रह्म हैं। नारायण ही परम तप हैं, नारायण ही सबसे बड़े देवता हैं और भगवान नारायण ही सब कुछ हैं।

सूर्य

त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम्।
त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम्।। वन 3/36।।

हे सूर्य! आप सम्पूर्ण संसार के नेत्र हैं। आप सभी प्राणियों के आत्मा हैं। आप ही सब जीवों को उत्पन्न करते हैं। आप ही धर्मानुष्ठान करने वाले पुरुषों के सदाचार हैं।

त्वया संधार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते।
त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याजं पाल्यते त्वया।। वन 3/38।।

आप ही सारे संसार को धारण करते हैं। आप ही से यह संसार प्रकाशित हो रहा है। आप ही इसे पवित्र करते हैं। आप निःस्वार्थ भाव से जगत् का पालन करते हैं।

सन्ति चान्यानि सत्त्वानि वीर्यवन्ति महान्ति च।
न तु तेषां तथा दीप्तिः प्रभावो वा यथा तव।। वन 3/46।।

इस जगत में और भी अनेक शक्तिशाली और महान् प्राणी हैं किन्तु उनकी दीप्ति और प्रभाव आप के समान नहीं हैं।

त्वमादायांशुभिस्तेजो निदाघे सर्वदेहिनाम्।
सर्वौषधिरसानां च पुनर्वर्षासु मुञ्चति।। वन 3/49।।

ग्रीष्मऋतु में आप अपनी किरणों से सभी देह धारियों का तेज और सभी औषधियों का रस खींचकर वर्षाऋतु में उसे फिर बरसा देते हैं।

न तथा सुखयत्यग्निर्न प्रावारा न कम्बलाः।
शीतवातार्दितं लोकं यथा तव मरीचयः।। वन 3/51।।

शीतऋतु की वायु से पीड़ित मनुष्यों को अग्नि, वस्त्र और कम्बल उतना सुख नहीं देते जितना सुख आपकी किरणें देती हैं।

तव यद्युदयो न स्यादन्धं जगदिदं भवेत्।
न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्तेरन् मनीषिणः।। वन 3/53।।

यदि आप उदय न हों तो यह संसार अन्धकार में डूब जायेगा। ऐसे में मनीषी पुरुष धर्म, अर्थ और काम से सम्बद्ध कार्य नहीं कर पायेंगे।

यदहर्ब्रह्मणः प्रोक्तं सहस्त्रयुगसम्मितम्।
तस्य त्वमादिरन्तश्च कालज्ञैः परिकीर्तितः।। वन 3/55।।

ब्रह्मा जी का एक हजार युगों का जो दिन है उसके आदि और अन्त आप ही हैं। यह बात काल की जानकारी रखने वाले बताते हैं।

संहार काले सम्प्राप्ते तव क्रोधविनिसृतः।
संवर्तकाग्निस्त्रैलोक्यं भस्मीकृत्यावतिष्ठते।। वन 3/57।।

प्रलय काल में आपके क्रोध से उत्पन्न संवर्तक अग्नि तीनों लोकों को भस्म कर देती है।

आदत्ते रश्मिभिः सूर्यो दिवि तिष्ठंस्ततस्ततः।
रसं हृतं वै वर्षासु प्रवर्षति दिवाकरः।। अनु 95/21।।

आकाश में रहकर सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का रस खींचते हैं और उस रस को वर्षा ऋतु में पृथ्वी पर बरसा देते हैं।

ततोऽन्नं जायते विप्र मनुष्याणां सुखावहम्।
अन्नं प्राणा इति यथा वेदेषु परिपठ्यते।। अनु 95/22।।

विप्रश्रेष्ठ! इस वर्षा से अन्न पैदा होता है। अन्न से मनुष्य सुखी होते हैं। वेदों में भी कहा है कि अन्न ही प्राण है।

युधिष्ठिर-इन्द्र सम्वाद

वैशम्यायन– **ततः सन्नादयञ्शक्रो दिवं भूमिं च सर्वशः।**
रथेनोपययौ पार्थमारोहेत्यब्रवीच्च तम्।।

महाप्रस्थान 3/1।।

आकाश और पृथ्वी को चारों ओर से गुंजाते हुए रथ में बैठे इन्द्र ने युधिष्ठिर के पास आकर कहा कि तुम रथ पर बैठो।

स्वभ्रातॄन् पतितान् दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
अब्रवीच्छोकसंतप्तः सहस्राक्षमिदं वचः।। महाप्रस्थान 3/2।।

अपने भाइयों को पृथ्वी पर गिरा देखकर दुख से व्याकुल धर्मराज युधिष्ठिर इन्द्र से बोले।

भ्रातरः पतिता मेऽत्र गच्छेयुस्ते मया सह।
न विना भ्रातृभिः स्वर्गमिच्छे गन्तुं सुरेश्वर।। महाप्रस्थान 3/3।।

देवराज इन्द्र! मेरे भाई रास्ते में गिर पड़े हैं। आप ऐसा प्रबन्ध कीजिये कि मेरे भाई भी मेरे साथ स्वर्ग में जायें। अपने भाइयों के बिना मैं स्वर्ग नहीं जाना चाहता।

इन्द्र – **भ्रातॄन् द्रक्ष्यसि स्वर्गे त्वमग्रस्त्रिदिवं गतान्।**
कृष्णाया सहितान् सर्वान् मा शुचो भरतर्षभ।। महाप्रस्थान 3/5।।

भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे सभी भाई तुमसे पहिले ही स्वर्ग में पहुंच गये हैं। वहां पर तुम उन्हें द्रौपदी सहित देखोगे अतः शोक मत करो।

निक्षिप्य मानुषं देहं गतास्ते भरतर्षभ।
अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गे गन्ता न संशयः।। महाप्रस्थान 3/6।।

भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे भाई मनुष्य का शरीर छोड़ कर स्वर्ग में पहुंच गये हैं। किन्तु तुम अपने इसी शरीर के साथ स्वर्ग में प्रवेश करोगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

युधिष्ठिर– **अयं श्वा भूतभव्येश भक्तो मां नित्यमेवह।**
स गच्छेत मया सार्धमानृशंस्या हि मे मतिः।। महाप्रस्थान 3/7।।

भूत और भविष्य के स्वामी इन्द्र! यह कुत्ता मेरा सदा भक्त रहा है। यह सदा मेरे साथ रहा है इसलिये यह भी मेरे ही साथ स्वर्ग जाये आप ऐसी आज्ञा दीजिये क्योंकि मेरी बुद्धि निष्ठुर नहीं है।

इन्द्र – अमर्त्यत्वं मत्समत्वं च राजन् श्रियं कृत्स्नां महतीं चैव सिद्धिम्।
संप्राप्तोऽद्य स्वर्गसुखानि च त्वं त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति।।

महाप्रस्थान 3/8।।

राजन्! तुम्हें अमरता, मेरी बराबरी, सम्पूर्ण लक्ष्मी और बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई है। आज तुम्हें स्वर्ग के सुख भी मिल गये हैं इसलिये इस कुत्ते को छोड़कर मेरे साथ स्वर्ग चलो। इसमें कोई निष्ठुरता नहीं है।

युधिष्ठिर – अनार्यमार्येण सहस्रनेत्र शक्यं कर्तुं दुष्करमेतदार्य।
मा मे श्रिया संगमनं तयास्तु यस्याः कृते भक्तजनं त्यजेयम्।।

महाप्रस्थान 3/9।।

हजार आंखों वाले इन्द्र! कोई भला (आर्य) व्यक्ति गलत (अनार्य) काम नहीं कर सकता। मुझे ऐसी लक्ष्मी नहीं चाहिये जिसे पाने के लिये मुझे अपने भक्त का त्याग करना पड़े।

इन्द्र– स्वर्गे लोके श्ववतां नास्ति धिष्ण्यमिष्टापूर्तं क्रोधवशा हरन्ति।
ततो विचार्य क्रियतां धर्मराज त्यज श्वानं नात्र नृशंसमस्ति।।

महाप्रस्थान 3/10।।

धर्मराज युधिष्ठिर! कुत्ता पालने वालों के लिये स्वर्ग में स्थान नहीं है। ऐसे लोग यज्ञ करके और कुआं आदि बनवाकर पुण्य के काम करते हैं। उनका पुण्य क्रोधवश नाम के राक्षस हर लेते हैं। इसलिये तुम सोच विचारकर काम करो। इस कुत्ते को यहीं छोड़ दो। ऐसा करने में कोई निर्दयता नहीं है।

युधिष्ठिर– भक्तत्यागं प्राहुरत्यन्तपापं तुल्यं लोके ब्रह्मवध्याकृतेन।
तस्मान्नाहं जातु कथंचनाद्यत्यक्ष्याम्येनं स्वसुखार्थी महेन्द्र।।

महाप्रस्थान 3/11।।

महेन्द्र! भक्त का त्याग करने से जो पाप होता है वह कभी समाप्त नहीं होता। संसार में भक्त का त्याग; ब्रह्म हत्या के समान माना गया है इसलिये मैं अपने सुख के लिये आज किसी भी तरह इस कुत्ते का त्याग नहीं करूंगा।

भीतं भक्तं नान्यदस्तीति चार्तं प्राप्तं क्षीणं रक्षणे प्राणलिप्सुम्।
प्राणत्यागादप्यहं नैव मोक्तुं यतेयं वै नित्यमेतद् व्रतं मे।।

महाप्रस्थान 3/12।।

जो भक्त भयभीत हो, मेरा कोई सहारा नहीं है ऐसा कहकर शरण में आये हुए और अपनी रक्षा न कर सकने वाले कमजोर तथा अपने प्राण बचाना चाहने वाले पुरुष को मैं अपने प्राण जाने पर भी नहीं छोड़ सकता। यह मेरा व्रत सदा रहा है।

इन्द्र– त्यक्त्वा भ्रातॄन् दयितां चापिकृष्णां प्राप्तो लोकः कर्मणा स्वेन वीर।
श्वानं चैनं न त्यजसे कथं नु त्यागं कृत्स्नं चास्थितो मुह्यसेऽद्य।।

महाप्रस्थान 3/14।।

वीर! तुमने अपने भाइयों और पत्नी द्रौपदी का परित्याग करके अपने पुण्य कर्मों से स्वर्गलोक प्राप्त किया है। फिर तुम इस कुत्ते को भी क्यों नहीं छोड़ देते? तुम सब कुछ त्याग करके भी इस कुत्ते के मोह में आज कैसे पड़ गये?

युधिष्ठिर– न विद्यते संधिरथापि विग्रहो मृतैमर्त्यैरिति लोकेषु निष्ठा।
न ते मया जीवयितुं हि शक्यास्ततस्त्यागस्तेषु कृतो न जीवताम्।।

महाप्रस्थान 3/15।।

संसार का यह अटल नियम है कि मरे हुए मनुष्यों के साथ न किसी का मेल होता है और न ही लड़ाई। अपने भाइयों और द्रौपदी को जीवित करना मेरे वश में नहीं है अतः मरने पर मैंने उन्हें छोड़ा है जीवित रहते हुए उन्हें मैंने नहीं छोड़ा।

भीतिप्रदानं शरणागतस्य स्त्रिया वधो ब्राह्मणस्वापहारः।
मित्रद्रोहस्तानि चत्वारि शक्र भक्तत्यागश्चैव समो मतो मे।।

महाप्रस्थान 3/16।।

इन्द्र! शरण में आये हुए को डराना, स्त्री की हत्या करना, ब्राह्मण के धन को छीन लेना और मित्र के साथ विश्वासघात करना ये चार पाप कर्म एक ओर तथा भक्त का त्याग दूसरी ओर हो तो मेरी समझ के अनुसार भक्तत्याग, इन चारों पापों के समान है।

वैशम्पायन– तद् धर्मराजस्य वचो निशम्य धर्मस्वरूपी भगवानुवाच।
युधिष्ठिरं प्रीतियुक्तो नरेन्द्रं श्लक्ष्णैर्वाक्यैः संस्तवसम्प्रयुक्तैः।।

महाप्रस्थान 3/17।।

धर्मराज युधिष्ठिर की यह बात सुनकर कुत्ते का रूप रखकर आये धर्मस्वरूपी भगवान बड़े प्रसन्न हुए और राजा युधिष्ठिर की प्रंशसा करते हुए मधुर वाणी में उनसे कहने लगे।

धर्मराज– अभिजातोऽसि राजेन्द्र पितृर्वृत्तेन मेधया।
अनुक्रोशेन चानेन सर्वभूतेषु भारत।।

महाप्रस्थान 3/18।।

भरतश्रेष्ठ राजेन्द्र! तुम अपने सदाचार, बुद्धि तथा सभी प्राणियों के प्रति दया करने के कारण सुयोग्य पिता के उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हो।

पुरा द्वैतवने चासि मया पुत्र परीक्षितः।
पानीयार्थे पराक्रान्ता यत्र ते भ्रातरो हताः।। महाप्रस्थान 3/19।।

पुत्र! पहिले भी द्वैतवन में मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी। वहां जब तुम्हारे भाई पानी लाने गये थे तब वे मारे गये थे।

भीमार्जुनौ परित्यज्य यत्र त्वं भ्रातरावुभौ।
मात्रोः साम्यमभीप्सन् वै नकुलं जीवमिच्छसि।। महाप्रस्थान 3/20।।

उस समय तुमने कुन्ती और माद्री दोनों माताओं को समान मानकर अपने सगे भाई भीम और अर्जुन को छोड़कर केवल नकुल को जीवित कराना चाहा था।

अयं श्वा भक्त इत्येवं त्यक्तो देवरथस्त्वया।
तस्मात् स्वर्गे न ते तुल्यः कश्चिदस्ति नराधिपः।। महाप्रस्थान 3/21।।

आज भी तुमने यह कुत्ता मेरा भक्त है यह सोचकर देवराज इन्द्र का रथ भी छोड़ दिया। इसलिये स्वर्ग में तुम्हारे जैसा कोई राजा नहीं है।

अतस्त्वयाक्षया लोकाः स्वशरीरेण भारत।
प्राप्तोऽसि भरतश्रेष्ठ दिव्यां गतिमनुत्तमाम्।। महाप्रस्थान 3/22।।

भरतश्रेष्ठ भरत! यही कारण है कि तुम्हें अपने इसी शरीर से अक्षय लोकों की प्राप्ति हुई है। तुम परम उत्तम दिव्य गति को पा गये हो।

वैशम्यायन– ततो देवनिकायस्थो नारदः सर्वलोकवित्।
उवाचोच्चैस्तदा वाक्यं बृहद्वादी बृहत्तपः।।

महाप्रस्थान 3/26।।

तब सब लोकों का हाल जानने वाले, बोलने में कुशल और महान् तपस्वी नारद जी ने देवमण्डल में बैठकर ऊंचे स्वर में कहा।

लोकानावृत्य यशसा तेजसा वृत्तसम्पदा।
स्वशरीरेण सम्प्राप्तं नान्यं शुश्रुम पाण्डवात्।। महाप्रस्थान 3/28।।

युधिष्ठिर! तुमने अपने यश, पराक्रम और सदाचार की सम्पत्ति से सभी लोकों में प्रसिद्धि प्राप्त करके अपने भौतिक शरीर से स्वर्गलोक में प्रवेश किया है। तुम्हारे सिवाय ऐसा सौभाग्य किसी और मनुष्य को अबतक प्राप्त नहीं हुआ है।

नारदस्य वचः श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत्।
देवानामन्त्र्य धर्मात्मा स्वपक्षांश्चैव पार्थिवान्।। महाप्रस्थान 3/30।।

नारद की बात सुनकर युधिष्ठिर ने देवताओं और अपने पक्ष के राजाओं की अनुमति लेकर कहा।

शुभं वा यदि वा पापं भ्रातृणां स्थानमद्य मे।
तदेव प्राप्तुमिच्छामि लोकानन्यान्न कामये।। महाप्रस्थानम 3/31।।

आज मेरे भाइयों को अच्छा या बुरा जो भी स्थान मिला है उसी स्थान को मैं भी पाना चाहता हूँ। मैं किसी और लोक में नहीं जाना चाहता।

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा देवराजः पुरंदरः।
आनृशंस्य समायुक्तं प्रत्युवाच युधिष्ठिरम्।। महाप्रस्थान 3/32।।

राजा युधिष्ठिर की यह बात सुनकर देवराज इन्द्र ने सहानुभूति और दया के साथ युधिष्ठिर से कहा।

स्थानेऽस्मिन् वस राजेन्द्र कर्मभिर्निर्जितै शुभैः।
किं त्वं मानुष्यकं स्नेहमद्यापि परिकर्षसि।। महाप्रस्थान 3/33।।

महाराज! अपने शुभ कर्मों से प्राप्त इस स्वर्ग लोक में आप रहिये। मनुष्य लोक के स्नेह सम्बन्धों को अब भी क्यों याद कर रहे हो?

सिद्धिं प्राप्तोऽसि परमां यथा नान्यः पुमान् क्वचित्।
नैव ते भ्रातरः स्थानं सम्प्राप्ताः कुरुनन्दन।। महाप्रस्थान 3/34।।

कुरुनन्दन! तुम्हें यह उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है। ऐसी सफलता किसी और मनुष्य को कभी नहीं मिली है। तुम्हारे भाई यह स्थान नहीं पा सके हैं।

युधिष्ठिर– तैर्विना नोत्सहे वस्तुमिह दैत्यनिबर्हण।
गन्तुमिच्छामि तत्राहं यत्र मे भ्रातरो गताः।।

महाप्रस्थान 3/37।।

यत्र सा बृहती श्यामा बुद्धिसत्त्वगुणान्विता।
द्रौपदी योषितां श्रेष्ठा यत्र चैव गता मम।। महाप्रस्थान 3/38।।

देत्य संहारक इन्द्र! अपने भाइयों के बिना मैं यहां नहीं रहना चाहता। मेरे भाई जहां गये हैं वहीं पर मैं भी जाना चाहता हूँ। ऊंचे कद वाली, सांवली, बुद्धिमती और सात्विक गुण सम्पन्ना तथा युवतियों में श्रेष्ठ मेरी द्रौपदी जहां गई है वहीं मैं भी जाना चाहता हूँ।

वैशम्पायन– स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः।
दुर्योधनं श्रिया जुष्टं ददर्शासीनमासने।। स्वर्ग 1/4।।

धर्मराज युधिष्ठिर ने स्वर्ग में पहुंच कर देखा कि दुर्योधन स्वर्ग की शोभा से सम्पन्न होकर सिंहासन पर बैठा हुआ है।

ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा दुर्योधनममर्षितः।
सहसा संनिवृत्तोऽभूच्छ्रियं दृष्ट्वा सुयोधने।। स्वर्ग 1/6।।

स्वर्ग में दुर्योधन की शोभा और सम्मान को देखकर युधिष्ठिर क्रोध और ईर्ष्या से भर कर लौट पड़े।

ब्रुवन्नुच्चैर्वचस्तान् वै नाहं दुर्योधनेन वै।
सहितः कामये लोकाँल्लुब्धेनादीर्घदर्शिना।। स्वर्ग 1/7।।

पुस्तकालय 147089 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

युधिष्ठिर चिल्लाकर बोले देवताओ! मैं लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधन के साथ इन पुण्यलोकों में नहीं रहना चाहता।

नैवमित्यब्रवीत् तं तु नारदः प्रहसन्निव।
स्वर्गे निवासे राजेन्द्र विरुद्धं चापि नश्यति।। स्वर्ग 1/11।।

यह सुनकर नारद जी हंसते हुए युधिष्ठिर से बोले 'ऐसी बातें मत कहो। स्वर्ग में रहने पर पुराना वैर भी शान्त हो जाता है।'

वीर लोकगतिः प्राप्ता युद्धे हुत्वाऽऽत्मनस्तनुम्।
यूयं सर्वे सुरसमा येन युद्धे समासिताः।। स्वर्ग 1/14।।

स एष क्षत्रधर्मेण स्थानमेतदवाप्तवान्।
भये महति योऽभीतो बभूव पृथिवीपतिः।। स्वर्ग 1/15।।

इस वीर ने युद्ध में अपने शरीर की आहुति देकर वीर गति पाई है। इसने युद्ध में तुम्हारे देवताओं के समान सारे भाइयों का डटकर मुकाबला किया है। राजा

दुर्योधन महान भय के अवसरों पर भी निडर बने रहे। इसने क्षत्रिय धर्म के अनुसार यह स्थान प्राप्त किया है।

युधिष्ठिर– यदि दुर्योधनस्यैते वीरलोकाः सनातनाः।
अधर्मज्ञस्य पापस्य पृथिवीसुहृदां द्रुहः।। स्वर्ग 1/20।।

पापी दुर्योधन धर्म का नाम भी नहीं जानता था। उसने पृथिवी के अपने सभी मित्रों के साथ द्रोह किया। उसे ये सनातन वीरलोक प्राप्त हुए हैं।

ये ते वीरा महात्मानो भ्रातरो मे महाव्रताः।
सत्यप्रतिज्ञा लोकस्य शूरा वै सत्यवादिनः।। स्वर्ग 1/22।।

तेषामिदानीं के लोका द्रष्टुमिच्छामि तानहम्।
कर्णं चैव महात्मानं कौन्तेयं सत्यसंगरम्।। स्वर्ग 1/23।।

मेरे भाई वीर, महात्मा, महान व्रतधारी, सत्यप्रतिज्ञ, शूरवीर और सत्यवादी थे। उन्हें कौन से लोक मिले हैं? मैं उन्हें देखना चाहता हूँ। कुन्ती के सत्यप्रतिज्ञ पुत्र महात्मा कर्ण से भी मैं मिलना चाहता हूँ।

किं मे भ्रातृविहीनस्य स्वर्गेण सुरसत्तमाः।
यत्र ते मम स स्वर्गो नायं स्वर्गो मतो मम।। स्वर्ग 2/12।।

श्रेष्ठ देवताओं! अपने भाइयों से बिछुड़ कर मुझे इस स्वर्ग से क्या काम? जहां मेरे भाई हैं वहीं मेरा भी स्वर्ग है। उनके बिना मुझे यह लोक स्वर्ग नहीं लगता।

वैशम्पायन–इत्युक्त्वा तं ततो देवा देवदूतमुपादिशन्।
युधिष्ठिरस्य सुहृदो दर्शयेति परंतप।। स्वर्ग 2/14।।

शत्रुओं को सन्ताप देने वाले जनमेजय! युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर देवताओं ने देवदूत से कहा कि तुम युधिष्ठिर को इनके मित्रों के पास ले जाओ।

अग्रतो देवदूतश्च ययौ राजा च पृष्ठतः।
पन्थानमशुभं दुर्गं सेवितं पापकर्ममिः।। स्वर्ग 2/16।।

युधिष्ठिर के आगे देवदूत जा रहा था और उसके पीछे याधिष्ठिर। दोनों ऐसे कठिन रास्ते पर जा पहुंचे जो बहुत अशुभ था। पापी मनुष्य यातना भोगने के लिये इस रास्ते पर आते थे।

स तत्कुणपदुर्गन्धमशिवं लोमहर्षणम्।
जगाम राजा धर्मात्मा मध्ये बहु विचिन्तयन्।। स्वर्ग 2/22।।

धर्मात्मा युधिष्ठिर मन ही मन बहुत चिन्तित हो उठे। वे उसी रास्ते पर चल रहे थे जहां मुर्दों के शवों की बदबू थी। यह रास्ता अमंगलकारी और डरावने दृश्यों के कारण रोंगटे खड़े कर देने वाला था।

स तं दुर्गन्धमालक्ष्य देवदूतमुवाच ह।
कियदध्वानमस्माभिर्गन्तव्यमिममीदृशम्।। स्वर्ग 2/26।।

उस दुर्गन्ध से परेशान हुए युधिष्ठिर ने देवदूत से पूछा कि हमें ऐसे रास्ते पर कितनी दूर और जाना है?

स संनिवृत्तो श्रुत्वा धर्मराजस्य भाषितम्।
देवदूतोऽब्रवीच्चैनमेतावद् गमनं तव।। स्वर्ग 2/28।।

धर्मराज की बात सुनकर देवदूत लौटने लगा और बोला आपको यहीं तक आना था।

युधिष्ठिरस्तु निर्विण्णस्तेन गन्धेन मूर्च्छितः।
निवर्तने धृतमनाः पर्यावर्तत भारत।। स्वर्ग 2/30।।

भरतनन्दन! युधिष्ठिर उस रास्ते की बदबू से परेशान हो गये। उन्हें बेहोशी आने लगी इसलिये उन्होंने लौटने का निश्चय कर लिया।

स संनिवृत्तो धर्मात्मा दुःखशोकसमाहतः।
शुश्राव तत्र वदतां दीना वाचः समन्ततः।। स्वर्ग 2/31।।

दुख और शोक से घबराये हुए धर्मराज युधिष्ठिर जब वहां से लौटने लगे तभी उन्हें चारों ओर से पुकारने वाले दीन दुखियों की आवाजें सुनाई पड़ीं।

भो भो धर्मज राजर्षे पुण्याभिजन पाण्डव।
अनुग्रहार्थमस्माकं तिष्ठ तावन्मुहुर्तकम्।। स्वर्ग 2/32।।

हे धर्मराज, राजर्षि, पुण्यकुल में उत्पन्न पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! आप हम लोगों पर कृपा करने के लिये दो घड़ी भर यहीं ठहरिये।

आयाति त्वयि दुर्धर्षे वाति पुण्यः समीरणः।
तव गन्धानुगतस्तात येनास्मान् सुखमागमत्।। स्वर्ग 2/33।।

आप दुर्धर्ष महापुरुष के यहां आते ही पवित्र वायु चलने लगी है। यह हवा आपके शरीर की सुगन्ध लेकर आ रही है और इससे हमें बहुत सुख मिल रहा है।

अबुध्यमानस्ता वाचो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
उवाच के भवन्तो वै किमर्थमिह तिष्ठथ।। स्वर्ग 2/39।।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर उनकी बातें पूरी तरह नहीं समझ सके इसलिये उन्होंने पूछा कि आप कौन हैं और यहां क्या कर रहे हैं?

इत्युक्तास्ते ततः सर्वे समन्तादवभाषिरे।
कर्णोऽहं भीमसेनोऽहमर्जुनोऽहमिति प्रभो।। स्वर्ग 2/40।।

नकुलः सहदेवोऽहं धृष्टद्युम्नोऽहमित्युत।
द्रौपदी द्रौपदेयाश्च इत्येवं ते विचुक्रुशुः।। स्वर्ग 2/41।।

युधिष्ठिर के यह पूछने पर वे सब चारों ओर से बोलने लगे कि मैं कर्ण हूँ। मैं भीमसेन हूँ। मैं अर्जुन हूँ। हम नकुल और सहदेव हैं। मैं धृष्टद्युम्न हूँ। मैं द्रौपदी हूँ। हम द्रौपदी के पुत्र हैं। वे सब चिल्ला चिल्ला कर बोलने लगे।

ता वाचः स तदा श्रुत्वा तद्देशसदृशीर्नृप।
ततो विममृशे राजा किं त्विदं दैवकारितम्।। स्वर्ग 2/42।।

राजन्! उस देश के जैसी इन बातों को सुनकर युधिष्ठिर मन में सोचने लगे कि विधि का यह कैसा विधान है?

किं तु तत् कलुषं कर्म कृतमेभिर्महात्मभिः।
कर्णेन द्रौपदेयैर्वा पाञ्चाल्या वा सुमध्यया।। स्वर्ग 2/43।।

य इसे पापगन्धेऽस्मिन् देशे सन्ति सुदारुणे।
नाहं जानामि सर्वेषां दुष्कृतं पुण्यकर्मणाम्।। स्वर्ग 2/44।।

मेरे इन महात्मा भाइयों ने, कर्ण ने, द्रौपदी के पांचों पुत्रों ने, और सुन्दरी द्रौपदी ने कौन सा ऐसा पाप किया था जिसके कारण इन्हें इस बदबू भरी जगह में डाल दिया गया है। मैं नहीं जानता कि इन पुण्यकर्मा लोगों ने कभी कोई पाप किया है।

किं कृत्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो राजा सुयोधनः।
तया श्रिया युतः पापैः सह सर्वैः पदानुगैः।। स्वर्ग 2/45।।

धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन कौन सा पुण्य का काम करके अपने सारे पापी साथियों के साथ ठाठ से रह रहा है।

महेन्द्र इव लक्ष्मीवानास्ते परमपूजितः।
कस्येदानीं विकारोऽयं ये इमे नरकं गताः।। स्वर्ग 2/46।।

दुर्योधन तो इन्द्र की तरह सम्मानित होकर राजलक्ष्मी से युक्त हो गया है। मेरे सगे सम्बन्धियों को किस कर्म का फल मिला है कि ये सब नरक में पड़े हैं।

क्रोधमाहारयच्चैव तीव्रं धर्मसुतो नृपः।
देवांश्च गर्हयामास धर्मं चैव युधिष्ठिरः।। स्वर्ग 2/50।।

यह सब देखकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर को बहुत क्रोध आ गया और वे धर्म को तथा देवताओं को कोसने लगे।

स तीव्रगन्धसंतप्तो देवदूतमुवाच ह।
गम्यतां तत्र येषां त्वं दूतस्तेषामुपान्तिकम्।। स्वर्ग 2/51।।

न ह्यहं तत्र यास्यामि स्थितोऽस्मीति निवेद्यताम्।
मत्संश्रयादिमे दूताः सुखिनो भ्रातरो हि मे।। स्वर्ग 2/52।।

युधिष्ठिर नरक की बदबू से परेशान होकर देवदूत से बोले कि तुम जिनके दूत हो उनके पास चले जाओ। मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊंगा। अपने देवताओं से कह देना कि मैं यहीं रुक गया हूँ क्योंकि मेरे यहां ठहरने से मेरे इन दुखी भाइयों को सुख मिलता है।

इत्युक्तः स तदा दूतः पाण्डुपुत्रेण धीमता।
जगाम तत्र यत्रास्ते देवराजः शतक्रतुः।। स्वर्ग 2/53।।

तब बुद्धिमान पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर की बात सुनकर देवदूत देवराज इन्द्र के पास चला गया।

स्थिते मुहर्तं पार्थे तु धर्मराजे युधिष्ठिरे।
आजग्मुस्तत्र कौरव्य देवाः शक्रपुरोगमाः।। स्वर्ग 3/1।।

जन्मेजय! कुन्ती कुमार धर्मराज युधिष्ठिर को नरक में रुके हुए कुछ ही समय हुआ था कि इन्द्र सहित देवता वहां आ पहुंचे।

ततः शक्रः सुरपतिः श्रिया परमया युतः।। स्वर्ग 3/8।।

युधिष्ठिरमुवाचेदं सान्त्वपूर्वमिदं वचः।

अत्यधिक शोभासम्पन्न देवराज इन्द्र अब युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुए कहने लगे।

न च मन्युस्त्वया कार्यः शृणु चेदं वचो मम।
अवश्यं नरकस्तात द्रष्टव्यः सर्वराजभिः।। स्वर्ग 3/12।।

प्रिय युधिष्ठिर! तुम्हें क्रोध नहीं करना। तुम मेरी बात सुनो कि सभी राजाओं को निश्चय ही नरक देखना पड़ता है।

शुभानामशुभानां च द्वौ राशी पुरुषर्षभ।
यः पूर्वं सुकृतं भुङ्क्ते पश्चान्निरयमेव सः।। स्वर्ग 3/13।।

पुरुषश्रेष्ठ! मनुष्य के जीवन में अच्छे और बुरे कर्म इकट्ठे होते रहते हैं। जो पहले शुभकर्मों को भोग लेता है उसे बाद में नरक के दुख भोगने पड़ते हैं।

पूर्वं नरकभाग् यस्तु पश्चात् स्वर्गमुपैति सः।
भूयिष्ठं पापकर्मा यः स पूर्वं स्वर्गमश्नुते।। स्वर्ग 3/14।।

जो मनुष्य पहिले नरक का दुख भोग लेता है वह बाद में स्वर्ग जाता है। जिस व्यक्ति ने बहुत पाप किये होते हैं वह पहिले स्वर्ग का सुख भोगता हैं।

यथैव त्वं तथा भीमस्तथा पार्थो यमौ तथा।। स्वर्ग 3/16।।
द्रौपदी च तथा कृष्णा व्याजेन नरकं गताः।

जैसे तुम्हें यहां नरक में लाया गया है उसी तरह तुम्हारे भाइयों और द्रौपदी को किसी बहाने यहां लाया गया था।

आगच्छ नरशार्दूल मुक्तास्ते चैव कल्मषात्।। स्वर्ग 3/17।।
स्वपक्ष्याश्चैव ये तुभ्यं पार्थिवा निहता रणे।
सर्वे स्वर्गमनुप्राप्तास्तान् पश्य भरतर्षभ।। स्वर्ग 3/18।।

पुरुषसिंह! आओ, वे सब अब पाप मुक्त हो गये हैं। भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे पक्ष के जो राजा युद्ध में मारे गये थे वे सभी स्वर्ग में आ पहुंचे हैं। तुम यहां से चलकर उनसे मिलो।

कृच्छ्रं पूर्वं चानुभूय इतःप्रभृति कौरव।
विहरस्व मया सार्धं गतशोको निरामयः।। स्वर्ग 3/22।।

कुरुनन्दन! पहले कष्टों का अनुभव करके अब तुम मेरे साथ रहकर रोग और शोक से छुटकारा पाकर आनन्द करो।

एषा देवनदी पुण्या पार्थ त्रैलोक्यपावनी।
आकाशगङ्गा राजेन्द्र तत्राप्लुत्य गमिष्यसि।। स्वर्ग 3/28।।

पार्थ! यह तीनों लोकों को पवित्र करने वाली पुण्यसलिला देवनदी आकाशगंगा है। राजेन्द्र! इसमें स्नान करके तुम दिव्य लोकों में जा सकोगे।

अत्र स्नातस्य भावास्ते मानुषो विगमिष्यति।
गतशोको निरायासो मुक्तवैरो भविष्यसि।। स्वर्ग 3/29।।

आकाशगंगा में स्नान कर लेने पर तुम्हारा मनुष्य स्वभाव दूर हो जायेगा। तुम शोक, संताप और वैरभाव से छुटकारा पा जाओगे।

एवं ब्रुवति देवेन्द्रे कौरवेन्द्रं युधिष्ठिरम्।
धर्मो विग्रहवान् साक्षादुवाच सुतमात्मनः।। स्वर्ग 3/30।।

जब देवराज इन्द्र यह बात कह रहे थे तभी शरीर धारण करके आये साक्षात् धर्म ने अपने पुत्र कौरवराज युधिष्ठिर से कहा।

एषा तृतीया जिज्ञासा तव राजन् कृता मया।
न शक्यसे चालयितुं स्वभावात् पार्थ हेतुतः।। स्वर्ग 3/32।।

राजन्! मैंने तीसरी बार तुम्हारी यह परीक्षा ली थी। पार्थ! किसी भी उपाय से कोई भी तुम्हारे स्वभाव से तुम्हें विचलित नहीं कर सकता।

न च ते भ्रातरः पार्थ नरकार्हा विशाम्पते।।
मायैषा देवराजेन महेन्द्रेण प्रयोजिता।। स्वर्ग 3/36।।

प्रजानाथ पार्थ! तुम्हारे भाई नरक में रहने योग्य नहीं है। तुमने उन्हें नरक में जो देखा है वह सब देवराज इन्द्र की माया थी।

एवमुक्तः स राजर्षिस्तव पूर्वपितामहः।
जगाम सह धर्मेण सर्वैश्च त्रिदिवालयैः।। स्वर्ग 3/40।।

गङ्गां देवनदीं पुण्यां पावनीमृषिसंस्तुताम्।
अवगाह्य ततो राजा तनुं तत्याज मानुषीम्।। स्वर्ग 3/41।।

जनमेजय! धर्म की यह बात सुनकर तुम्हारे पूर्व पितामह राजर्षि युधिष्ठिर ने धर्म तथा सभी देवताओं के साथ जाकर पुण्य सलिला, परमपावनी देवनदी गंगा में स्नान किया। स्नान करते ही युधिष्ठिर ने अपने मनुष्य शरीर को त्याग दिया।

ततो दिव्यवपुर्भूत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
निर्वैरो गतसंतापो जले तस्मिन् समाप्लुतः।। स्वर्ग 3/42।।

इसके बाद दिव्य देह धारण करके धर्मराज युधिष्ठिर के मन से वैर की भावना दूर हो गयी। वे गंगा में स्नान करके दुख ताप से मुक्त हो गये।

विसर्जयित्वा विप्रांस्तान् राजापि जनमेजयः।
ततस्तक्षशिलायाः स पुनरायाद् गजाह्वयम्।। स्वर्ग 5/34।।

उन ब्राह्मणों को विदा करके राजा जनमेजय भी तक्षशिला से फिर हस्तिनापुर चले आये।

भरतानां महज्जन्म तस्माद् भारतमुच्यते।
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।। स्वर्ग 5/45।।

इस ग्रन्थ में भरतवंशी राजाओं के महान जन्म–कर्म का वर्णन है इसलिये इसे भारत महान और भारी होने के कारण इसे महाभारत भी कहा जाता है।

त्रिभिर्वषैरिदं पूर्णं कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
अखिलं भारतं चेदं चकार भगवान् मुनिः।। स्वर्ग 5/48।।

मुनि भगवन् कृष्णद्वैपायान व्यास ने सारा महाभारत तीन वर्षों में सम्पूर्ण किया।

यथा समुद्रो भगवान् यथा हि हिमवान् गिरिः।
ख्यातावुभौ रत्नानिधी तथा भारतमुच्यते।। स्वर्ग 5/65।।

जैसे समुद्र और हिमालय रत्नों की खान है वैसे ही महाभारत भी रत्नों का भण्डार है।

द्रौपदी की वेदना

सा तेऽहं दुःखमाख्यास्ये प्रणयान्मधुसूदन।
ईशस्त्वं सर्वभूतानां ये दिव्या ये च मानुषाः।। वन 12/60।।

हे मधुसूदन! आपके प्रति प्रीति होने के कारण मैं आप को अपना दुख बताना चाहती हूँ। क्योंकि इस सृष्टि में जितने भी दिव्य प्राणी और मनुष्य हैं उन सभी के ईश्वर आप ही हैं।

कथं नु भार्या पार्थानां तव कृष्ण सखी विभो।
धृष्टद्युम्नस्य भगिनी सभां कृष्येत मादृशी।। वन 12/61।।

भगवन् कृष्ण! आपकी सखी, पाण्डवों की पत्नी और धृष्टद्युम्न की बहिन मुझको क्या राजसभा में केश पकड़कर और घसीट कर लाया जा सकता है?

स्त्रीधर्मिणी वेपमाना शोणितेन समुक्षिता।
एकवस्त्रा विकृष्टास्मि दुःखिता कुरुसंसदि।। वन 12/62।।

मैं रजस्वला थी। मेरी साड़ी पर खून के धब्बे थे। मैं थर-थर कांप रही थी। मैं केवल साड़ी में ही थी। ऐसी दशा में मुझ दुखिया को कौरवों की राजसभा में घसीट कर लाया गया।

राज्ञां मध्ये सभायां तु रजसातिपरिप्लुता।
दृष्ट्वा च मां धार्तराष्ट्रा प्राहसन् पापचेतसः।। वन 12/63।।

रजस्वला होने के कारण मैं रक्त में भीगी हुई थी। इस अवस्था में राजाओं से भरी सभा में मुझे देखकर धृतराष्ट्र के पापी पुत्र खूब हंसे।

दासीभावेन मां भोक्तुमीषुस्ते मधुसूदन।
जीवत्सु पाण्डुपुत्रेषु पञ्चालेषु च वृष्णिसु।। वन 12/64।।

मधूसूदन! पाण्डवों, पाञ्चालों और वृष्णि वंश के वीरों के जीते जी भी धृतराष्ट्र के उन पापी पुत्रों ने मुझे अपनी दासी बना कर मुझे भोगने की इच्छा की।

नन्वहं कृष्ण भीष्मस्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः।
स्नुषा भवामि धर्मेण साहं दासीकृता बलात्।। वन 12/65।।

हे कृष्ण! मैं भीष्म और धृतराष्ट्र इन दोनों ही की धर्मानुसार पुत्रवधू हूँ फिर भी मुझे इनके सामने ही दासी बनाकर जबर्दस्ती लाया गया।

गर्हये पाण्डवांस्त्वेव युधिश्रेष्ठान् महाबलान्।
यत्क्लिश्यमानां प्रेक्षन्ते धर्मपत्नीं यशस्विनीम्।। वन 12/66।।

मैं तो युद्ध करने में चतुर इन बलशाली पाण्डवों की ही निन्दा कर रही हूँ जो अपनी यशस्विनी धर्मपत्नी को शत्रुओं से सताये जाते हुए देखते रहे।

धिग् बलं भीमसेनस्य धिक् पार्थस्यं च गाण्डिवम्।
यौ मां विप्रकृतां क्षुद्रैर्मर्षयेतां जनार्दन।। वन 12/67।।

हे जनार्दन! भीमसेन के बल को धिक्कार है। अर्जुन के गाण्डीव धनुष को भी धिक्कार है कि ये दोनों उन नीचों द्वारा मेरा अपमान होते हुए भी कुछ नहीं बोले।

एतादृशानि दुःखानि सहन्ती दुर्बलीयसाम्।
दीर्घकालं प्रदीप्तास्मि पापानां पापकर्मणाम्।। वन 12/119।।

पाप के कामों में लगे हुए और अत्यन्त कमजोर शत्रुओं के दिये हुए दुखों को मैं सहती चली आ रही हूँ और इन दुखों की आग में जलती जा रही हूँ।

इत्युक्त्वा प्रारुदत् कृष्णा मुखं प्रच्छाद्य पाणिना।
पद्मकोशप्रकाशेन मृदुना मृदुभाषिणी।। वन 12/122।।

यह कहकर मीठा बोलने वाली द्रौपदी कमल की कली जैसे कोमल और सुन्दर अपने हाथ से मुंह ढककर फूट-फूट कर रोने लगी।

चक्षुषी परिमार्जन्ती निःश्वसन्ती पुनःपुनः।
वाष्पपूर्णेन कण्ठेन क्रुद्धा वचनमब्रवीत्।। वन 12/124।।

अपनी आंखों पोंछती हुई, बार-बार सिसकती हुई और क्रोध में भरी द्रौपदी रुंधे हुए कण्ठ से फिर बोली।

कचग्रहमनुप्राप्ता सास्मि कृष्ण वरासती।
पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां प्रेक्षतां मधुसूदन।। वन 12/121।।

हे कृष्ण! हे मधुसूदन!! श्रेष्ठ कुल की मुझ सती-साध्वी पांच पाण्डवों की धर्मपत्नी को मेरे केश पकड़ कर घसीटा गया और पाण्डव देखते रहे।

नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा न च बान्धवाः।
न भ्रातरो न चं पिता नैव त्वं मधुसूदन।। वन 12/125।।

मधुसूदन! मेरे लिये न पति है, न पुत्र हैं, न भाई हैं, न पिता हैं, और न ही आप हैं।

चतुर्भिः कारणैः कृष्ण त्वया रक्ष्यास्मि नित्यशः।

सम्बन्धाद् गौरवात् सख्यात् प्रभुत्वेनैव केशव।। वन 12/127।।

हे कृष्ण! आपको चार कारणों से मेरी रक्षा करनी चाहिये। आप मेरे सम्बन्धी हैं। यज्ञाग्नि से उत्पन्न होने के कारण में गौरवशालिनी हूँ। मैं आपकी सखी भी हूँ और आप मेरी रक्षा करने में समर्थ भी हैं।

अग्नि

त्वमग्ने सर्वलोकानां मुखं त्वमसि हव्यवाट्। आदि 228/23।।

हे अग्नि! आप सभी लोकों के मुख हैं। आप ही सभी देवों को हवि पहुँचाते हैं।

त्वमन्तः सर्वभूतानां गूढश्चरसि पावक।
त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः।। आदि 228/24।।

हे पवित्र करने वाले अग्नि! आप सभी प्राणियों के हृदय में गुप्त रूप से रहते हैं। विद्वान् पुरुष आपको एक (अद्वितीय ब्रह्मरूप) कहते हैं। दिव्य, भौम और जठराग्नि के रूप में आपके तीन रूप भी हैं।

त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञवाहमकल्पयन्।
त्वया विश्वमिदं सृष्टं वदन्ति परमर्षयः।। आदि 228/25।।

आपको पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और यजमान इन आठ मूर्तियों में विभक्त कर ज्ञानी पुरुषों ने आपको यज्ञवाहन बनाया है। इस समस्त संसार की सृष्टि आपने ही की है। यह बात महर्षि कहते हैं।

सर्वमग्ने त्वमेवैकस्त्वयि सर्वमिदं जगत्।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं विभर्षि च।। आदि 231/13।।

हे अग्नि! एकमात्र आप ही सब कुछ हैं। यह सम्पूर्ण संसार आपमें ही प्रतिष्ठित हैं। आप ही समस्त प्राणियों का पालन करते हैं और जगत् को धारण करते हैं।

सृष्ट्वा लोकांस्त्रीनिमान् हव्यवाह काले प्राप्ते पचसि पुनः समिद्धः।
त्वं सर्वस्य भुवनस्य प्रसूतिस्त्वयेवाग्ने भवसि पुनः प्रतिष्ठा।।

आदि 231।। 14।। उद्योग 16/5।।

हवि ले जाने वाले अग्निदेव! आप इन तीनों लोकों को बनाकर प्रलय का समय आने पर इन्हें नष्ट कर देते हैं। आप से ही सारे लोक उत्पन्न होते हैं और आप में ही लय होते हैं।

त्वमन्नं प्राणिभिर्भुक्तमन्तर्भूतो जगत्पते।
नित्यप्रवृद्धः पचसि त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।। आदि 231/15।।

जगत् के स्वामी अग्नि! आप ही प्राणियों के शरीर में प्रदीप्त रहकर खाये हुए अन्न को पचाते हैं। सारा संसार आप में ही प्रतिष्ठित है।

सूर्यो भूत्वा रश्मिभिर्जातवेदो भूमेरम्भो भूमिजातान् रसांश्च।
विश्वानादाय पुनरुत्सृज्य काले दृष्ट्वा वृष्ट्या भावयसीह शुक्र।।
आदि 231/16।।

शुक्लस्वरूप अग्नि! आप ही सूर्य बनकर किरणों से पृथ्वी के जल और भूमि के रस ग्रहण करते हैं। फिर उचित समय आने पर इन रसों और जलों को वर्षा द्वारा बरसा कर प्रणियों का उपकार करते हैं।

अग्निर्हिमस्य भैषज्यम्।। वन 313/68।।

सर्दी की दवा अग्नि है।

पावनात् पावकश्चासि वहनाद्धव्यवाहनः।
वेदास्त्वदर्थं जाता वै जातवेदास्ततो ह्यसि।। सभा 31/42।।

हे अग्नि! आप सबको पवित्र करने के कारण पावक कहलाते हैं। हवनीय पदार्थ (हव्य) को वहन करने के कारण आपका नाम हव्यवाहन है। आपके लिये ही वेद प्रकट (जात) हुए हैं। अतः आप जातवेदा कहे जाते हैं।

अग्निर्ददातु मे तेजो वायुः प्राणं ददातु मे।
पृथिवी बलमाध्याच्छिवं चापो दिशन्तु मे।। सभा 31/45।।

अग्नि मुझे तेज प्रदान करे और वायु प्राण शक्ति दे। पृथिवी मुझे बल दे और जल मुझे कल्याण प्रदान करें।

एवं स्तुतोऽसि भगवन् प्रीतेन शुचिना मया।
तुष्टिं पुष्टिं श्रुतिं चैव प्रीतिं चाग्ने प्रयच्छ मे।। सभा 399/49।।

भगवन्! मैंने पवित्र हृदय से प्रेमपूर्वक आपकी स्तुति की है। आप मुझे सन्तोष, पोषण, श्रवणशक्ति, वेदज्ञान और प्रीति प्रदान कीजिये।

बालोऽप्यग्निर्दहति स्पृश्यमानः।। वन 133/7।।

यदि छोटी-सी चिंगारी भी छू जाये तो वह जला देती है।

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति।। उद्योग 15/34।।

जलों से अग्नि (आग्नेय तत्त्व) का प्रादुर्भाव होता है, ब्राह्मण से क्षत्रिय तथा पत्थर से लोहा उत्पन्न होता है। इनका तेज सर्वत्र रहता है किन्तु अपने कारण में आकर यह तेज शान्त हो जाता है।

त्वमग्ने सर्वदेवानां मुखं त्वमसि हव्यवाट्।
त्वमन्तः सर्वभूतानां गूढश्चरसि साक्षिवत्।। उद्योग 16/1।।

हे अग्नि! तुम देवों के मुख हो। आप ही देवों को हवि पहुँचाते हैं। आप सभी प्राणियों के भीतर गूढ़ रहते हुए साक्षी की तरह विचरते हो।

त्वामाहुरेकं कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः।
त्वया त्यक्तं जगच्चेदं सद्यो नश्येद् हुताशन।। उद्योग 16/2।।

हे हुताशन! विद्वान् क्रान्तदर्शी आपको एक कहते हैं। तुम्हीं सृष्टि के लिये त्रिविध (घषर्ण, मन्थन और तापन) हो जाते हो। जब तुम इस जगत् को छोड़ देते हो तब यह जगत् एकदम नष्ट हो जाता है।

त्वमेवाग्ने हव्यवाहस्त्वमेव परमं हविः।
यजन्ति सत्रैस्त्वामेव यज्ञैश्च परमाध्वरे।। उद्योग 16/4।।

हे अग्नि! तुम्हीं हव्य को ले जाते हो। तुम्हीं उत्कृष्ट हवि हो। सोम यज्ञों में, मंत्रों में और बड़े-बड़े यज्ञों में आप ही की आराधना की जाती है।

त्वामग्ने जलदानाहुर्विद्युतश्च मनीषिणः।
दहन्ति सर्वभूतानि त्वत्तो निष्क्रम्य हेतयः।। उद्योग 16/6।।

हे अग्नि! बादल और बिजली आपके ही रूप हैं। आपसे निकली हुई ज्वालाएँ सभी भूतों को जला डालती हैं।

त्वय्यापो निहिताः सर्वास्त्वयि सर्वमिदं जगत्।
न तेऽस्त्यविदितं किंचित् त्रिषु लोकेषु पावक।। उद्योग 16/7।।

पवित्र करने वाले हे अग्नि! आपमें ही सारे जल निहित हैं। आपमें ही सारा जगत् समाया हुआ है। तीनों लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे आप नहीं जानते।

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु।
न चोपयुङ्क्ते तद् दारु यावन्नोदीप्यते परैः।। उद्योग 37/60।।

संसार में अग्नि बड़ी तेजस्वी वस्तु है। वह लकड़ियों में छिपी रहती है। जब तक दूसरे लोग उसे प्रज्ज्वलित नहीं करते तब तक वह लकड़ी को नहीं जलाती।

नाग्निं मुखेनोपधमेन्न न च पादौ प्रदापयेत्।
नाधः कुर्यात् कदाचित् तु न पृष्ठं परितापयेत्।।

आश्व 92 दा० पा० अ XIII।।

अग्नि में मुख से फूँक नहीं मारनी चाहिये। पैरों को आग से तपाना नहीं चाहिये या पैरों से कुचलना नहीं चाहिये। आग को नीचे की ओर नहीं करना चाहिये तथा पीठ को आग से नहीं तपाना चाहिये।

प्राप्तमूत्रपुरीषस्तु न स्पृशेद् वह्निमात्मवान्।
यावत् तु धारयेत् वेगं तावदप्रयतो भवेत्।।

आश्व 92 दा० पा० अ XIII।।

मल-मूत्र आने पर बुद्धिमान् पुरुष को आग नहीं छूनी चाहिये क्योंकि शरीर में मल-मूत्र का वेग होने पर शरीर अपवित्र रहता है।

ब्रह्मत्वेनासृजं लोकानहमादौ महाद्युते।
सृष्टोऽग्निर्मुखतः पूर्वं लोकानां हितकाम्यया।।

आश्व 92 दा० पा० अ XVI।।

हे महातेजस्वी राजन्! मैंने सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा का स्वरूप धारण करके सभी लोकों की रचना की और प्राणियों की भलाई के लिये अपने मुख से अग्नि प्रकट की।

यस्मादग्रे स भूतानां सर्वेषां निर्मितो मया।
तस्मादग्नीत्यभिहितः पुराणज्ञैर्मनीषिभिः।।

आश्व 92 दा० पा० अ XVI।।

क्योंकि मैंने अग्नि को सभी प्राणियों से पहले उत्पन्न किया है इसलिये पुराणों के पण्डित विद्वान् लोग अग्नि तत्त्व को अग्नि कहते हैं।

गृहाणां हि पतित्वं हि गृहपत्यमिति स्मृतम्।
गृहपत्यं तु यस्यासीत् तत् तस्माद् गार्हपत्यता।।

आश्व 92 दा० पा० अ XVI।।

गृहों का आधिपत्य ही 'गृहपत्य' माना जाता है। यह गृहपत्य जिस अग्नि में प्रतिष्ठित है वह अग्नि 'गार्हपत्य' कहलाती है।

यजमानं तु यस्मात् तु दक्षिणां तु गतिं नयेत्।
दक्षिणाग्निं तमाहुस्ते दक्षिणायतनं द्विजाः।।

आश्व 92 दा० पा० अ XVI।।

जो अग्नि यजमान को दक्षिण मार्ग से स्वर्ग में ले जाता है उस दक्षिण दिशा में रहने वाली अग्नि को ब्राह्मण 'दक्षिणाग्नि' कहते हैं।

आहुतिः सर्वमाख्याति हव्यं वै हवनं स्मृतम्।
सर्वहव्यवहो वह्निर्गतश्चाहवनीयताम्।।

आश्व 92 दा० पा० अ XVI।।

आहुति शब्द सर्व का वाचक है और हव्य को हवन कहते हैं। सब तरह का हव्य स्वीकार करने वाली अग्नि 'आहवनीय' कहलाती है।

ब्रह्मा च गार्हपत्योऽग्निस्तस्मिन्नेव हि सोऽभवत्।
दक्षिणाग्निस्त्वयं रुद्रः क्रोधात्मा चण्ड एव सः।।

आश्व 92 दा० पा० अ XVI।।

गार्हपत्य अग्नि; ब्रह्मा का स्वरूप है क्योंकि वह ब्रह्मा से ही उत्पन्न हुई है। दक्षिणाग्नि; रुद्रस्वरूप है क्योंकि वह क्रोधरूप और प्रचण्ड है।

अहमाहवनीयोऽग्निराहोमाद् यस्य वै मुखे।।

आश्व 92 दा० पा० अ० XVI।।

यज्ञ शुरु होने से लेकर अन्त तक जिसके मुख में आहुति डाली जाती है वह आहवनीय-अग्नि मैं स्वयं हूँ।

अज्ञान

अज्ञानान्निरयं याति तथाज्ञानेन दुर्गतिम्।
अज्ञानात् क्लेशमाप्नोति तथापत्सु निमज्जति।। शान्ति 159/3।।

मनुष्य अज्ञान के कारण नरक में जाता है और अज्ञान से उसकी दुर्गति होती है। अज्ञान के कारण वह कष्ट और आपत्ति में फंसता है।

रागो द्वेषस्तथा मोहो हर्षः शोकोऽभिमानिता।
कामः क्रोधश्च दर्पश्च तन्द्री चालस्यमेव च।। शान्ति 159/6।।
इच्छा द्वेषस्तथा तापः परवृद्ध्युपतापिता।
अज्ञानमेतन्निर्दिष्टं पापानां चैव याः क्रिया:।। शान्ति 159/7।।

राग, द्वेष, मोह, हर्ष, शोक, अभिमान, काम, क्रोध, घमण्ड, निद्रा, आलस्य, इच्छा, वैर, ताप, दूसरों की उन्नति देखकर जलना और पाप के काम करना ये सब अज्ञान ही हैं।

लोभप्रभवमज्ञानं वृद्धं भूयः प्रवर्धते।
स्थाने स्थानं क्षये क्षैण्यमुपैति विविधां गतिम्।। शान्ति 159/10।।

अज्ञान, लोभ से पैदा होता है। लोभ के बढ़ने पर अज्ञान भी बढ़ता है। जब तक लोभ रहता है तब तक अज्ञान भी रहता है।

लोभ के नष्ट होने पर अज्ञान समाप्त हो जाता है। अज्ञान और लोभ के कारण ही जीव अनेक योनियों में जन्म लेता है।

मूलं लोभस्य मोहो वै कालात्मगतिरेव च।
छिन्ने भिन्ने तथा लोभे कारणं काल एव च।। शान्ति 159/11।।

लोभ का मूल कारण मोह है। यह काल स्वरूप मोहयुक्त अज्ञान ही मनुष्य की दुर्दशा का कारण है। काल के कारण ही लोभ नष्ट होता है।

तस्याज्ञानाद्धि लोभो हि लोभादज्ञानमेव च।
सर्वदोषास्तथा लोभात् तस्माल्लोभं विवर्जयेत्।। शान्ति 159/12।।

मूर्ख मनुष्य को अज्ञान से लोभ होता है और लोभ से अज्ञान होता है। लोभ के कारण ही सारी बुराइयाँ पैदा होती हैं। इसलिए लोभ को त्याग देना चाहिये।

एकःशत्रुर्न द्वितीयोऽस्ति शत्रुरज्ञानतुल्यः पुरुषस्य राजन्।
येनावृतः कुरुते सम्प्रयुक्तो घोराणि कर्माणि सुदारुणानि।।

शा० 297/28।।

राजन्! मनुष्य का एक ही शत्रु है उसके जैसा कोई और शत्रु नहीं है। वह शत्रु अज्ञान है जिसकी प्रेरणा और प्रभाव से मनुष्य अत्यन्त घोर और क्रूर कर्म करता है।

अहिते हितसंज्ञस्त्वमध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः।
अनर्थे चार्थसंज्ञस्त्वं किमर्थं नावबुद्धयसे।। शान्ति 329/27।।

जो बात हितकारी नहीं है उसे तुम हितकारी समझ रहे हो। जो वस्तुएँ नष्ट हो जाने वाली हैं उन्हें नित्य मान रहे हो। जिन कामों से अनर्थ होता है उन्हें तुम अच्छा मान बैठे हो। यह बात तुम्हारी समझ में क्यों नहीं आती।

संवेष्ट्यमानं बहुभिर्मोहात् तन्तुभिरात्मजैः।
कोषकार इवात्मानं वेष्टयन् नावबुध्यसे।। शान्ति 329/28।।

जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही शरीर से उत्पन्न तागों से अपने को लपेट लेता है वैसे ही तुम भी मोह में पड़कर अपने से ही उत्पन्न बन्धनों से अपने को बांधते जा रहे हो। तुम यह बात क्यों नहीं समझ रहे हो?

अलं परिग्रहेणेह दोषवान् हि परिग्रहः।
कृमिर्हि कोषकारस्तु बध्यते स परिग्रहात्।। शान्ति 329/29।।

इस संसार में तरह-तरह की वस्तुएँ जमा नहीं करो क्योंकि संग्रह करना बुरा है। रेशम का कीड़ा अपने शरीर से रेशम का तागा उत्पन्न करके उसी तागे के बन्धन में पड़ जाता है।

पुत्रदार कुटुम्बेषु सक्ताः सीदन्ति जन्तवः।
सरः पङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव।। शान्ति 329/30।।

पुत्र, स्त्री और परिवार में फंसे रहने वाले मनुष्य उसी प्रकार दु:ख भोगते हैं जैसे जंगल के बूढ़े हाथी तालाब की कीचड़ में फंसकर दुखी होते हैं।

कुटुम्बं पुत्रदारांश्च शरीरं संचयाश्च ये।
पारक्यमध्रुवं सर्वं किं स्वं सुकृत दुष्कृतम्।। शान्ति 329/32।।

तुम्हारा शरीर, परिवार, पुत्र, स्त्री, और वंस्तुओं का संग्रह यह सब पराया है और नष्ट हो जाने वाला है। तुम्हारा अपना तो केवल तुम्हारे अच्छे और बुरे कर्म ही हैं।

यदा सर्वं परित्यज्य गन्तव्यमवशेन ते।
अनर्थे किं प्रसक्तस्त्वं स्वमर्थं नानुतिष्ठसि।। शान्ति 329/33।।

जब सब कुछ छोड़ कर तुम्हें विवश होकर इस संसार से चले ही जाना है तब इस अनर्थ भरे संसार में क्यों फंस रहे हो और अपनी भलाई का प्रयत्न क्यों नहीं करते?

अविश्रान्तमनालम्बापाथेमदैशिकम्।
तमः कान्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यसि।। शान्ति 329/34।।

जहाँ ठहरने का कोई स्थान नहीं, कोई सहारा देने वाला नहीं, राह खर्च तथा अपने देश का कोई साथी नहीं जो राह बता सके। ऐसे अन्धेरे से भरे कठिन रास्ते पर तुम अकेले कैसे चल सकोगे?

अतिथि

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति।। शान्ति 191/12।।

जिस गृहस्थी के घर से अतिथि भिक्षा आदि न पाने के कारण निराश होकर लौटता है। वह उस गृहस्थ को शाप देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

स्वदेशे परदेशे वा अतिथिं नोपवासयेत्।
काम्यकर्मफलं लब्ध्वा गुरूणामुपपादयेत्।। शान्ति 193/15।।

मनुष्य अपने देश में हो या विदेश में उसे घर आये अतिथि को भूखा नहीं रहने देना चाहिये। सकाम कर्मों से मिले हुए फल को अपने गुरुजनों को अर्पित कर देना चाहिये।

गृहस्थानां च सुश्रोणि नातिथेर्विद्यते परम्।। अनुशासन 2/44।।

सुन्दरी! गृहस्थियों के लिये अतिथि सेवा से बढ़कर और कोई कर्तव्य नहीं है।

चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद् वाचं दद्याच्च सूनृताम्।
अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पञ्चदक्षिणः।। अनुशासन 7/6।।

यदि कोई अतिथि घर पर आये तो उसे प्रसन्न दृष्टि से देखना चाहिये। मन लगाकर उसकी सेवा करनी चाहिये। उससे मीठा बोलना चाहिये। जब तक वह घर में रहे तब तक उसका सत्कार करना चाहिये और जब वह जाने लगे तब उसके साथ कुछ दूर तक जाना चाहिए। गृहस्थ के लिये ये पाँच काम पाँच प्रकार की दक्षिणाओं से युक्त यज्ञ होता है।

यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वनि वर्तते।
श्रान्तायादृष्टपूर्वाय तस्य पुण्यफलं महत्।। अनुशासन 7/7।।

जो गृहस्थ थके मांदे अपरिचित पथिक को प्रसन्नता के साथ अन्न देता है उसे बहुत पुण्य मिलता है।

पाद्यमासनमेवाथ दीपमन्नं प्रतिश्रयम्।
दद्यादतिथिपूजार्थं स यज्ञः पञ्चदक्षिणः।। अनुशासन 7/12।।

जो गृहस्थी किसी अतिथि को पैर धोने के लिए पानी, बैठने के लिये आसन, प्रकाश के लिये दीपक, खाने के लिये अन्न और ठहरने के लिये स्थान देता है वह पाँच दक्षिणाओं वाला यज्ञ करता है।

श्रान्तमध्वनि वर्तन्तं वृद्धमर्हमुपस्थितम्।
अर्चयेद् भूतिमन्विच्छन् गृहस्थो गृहमागतम्।। अनु 63/13।।

अपना कल्याण चाहने वाले गृहस्थ को रास्ते के थके-मांदे और बूढ़े मुसाफिर के घर आने पर उसका सत्कार करना चाहिये।

नावमन्येदभिगतं न प्रणुद्यात् कदाचन।
अपि श्वपाके शुनि वा न दानं विप्रणश्यति।। अनुशासन 63/93।।

अपने घर आये किसी भी व्यक्ति का अपमान नहीं करना चाहिये और न ही उसे मारना चाहिये। चाण्डाल और कुत्ते को भी दिया हुआ अन्नदान कभी नष्ट नहीं होता।

अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मदतिथिरुच्यते।। अनु 97/19।।

जो व्यक्ति किसी के घर में सदा नहीं रहता वह अतिथि कहलाता है।

श्रान्तमध्वपरिश्रान्तमतिथिं गृहमागतम्।
अर्चयीत प्रयत्नेन स हि यज्ञो वरप्रदः।। अनु 145 दा० पा०।।

रास्ता चलने से थका-मांदा अतिथि यदि घर आ जाये तो उसका भली-भाँति आदर सत्कार करना चाहिये। ऐसे अतिथि यज्ञ से मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है।

अभ्यागतो ज्ञातपूर्वो ह्यज्ञातोऽतिथिरुच्यते।
तयोः पूजां द्विजः कुर्यादिति पौराणिकी श्रुतिः।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ० VI।।

पहले से परिचित मनुष्य यदि घर आये तो वह अभ्यागत कहलाता है। अपरिचित व्यक्ति अतिथि होता है। इन दोनों का सम्मान करना चाहिये।

मोघमन्नं सदाश्नाति योऽतिथिं न च पूजयेत्।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ VI।।

जो व्यक्ति अतिथि सत्कार नहीं करता वह व्यर्थ ही भोजन करता है।

अतिथिं नावमन्येत नान्नृता गिरमीरयेत्।
न पृच्छेद् गोत्रचरणं नाधीतं वा कदाचन।। आश्व 92 दा० पा० अ XIII।।

अतिथि का अपमान नहीं करना चाहिये। उससे झूठ नहीं बोलना चाहिये। अतिथि का गोत्र, शाखा, और उसके अध्ययन के बारे में भी नहीं पूछना चाहिये।

यदर्थो हि नरो राजंस्तदर्थोऽस्यातिथिः स्मृतः।। आश्रुमवास 26/37।।

राजन्! मनुष्य जिन वस्तुओं का स्वयं उपयोग करता है उन्हीं पदार्थों से उसे अतिथि का भी सत्कार करना चाहिये।

अधर्म

नाधर्मश्चरितो राजन् सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्त्यमानो हि कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति।। आदि 80/2।।

राजन्! अधर्म के काम का फल जल्दी नहीं मिलता है जैसे गाय की सेवा का फल कुछ देर बाद मिलता है अथवा धरती में बोये हुए बीज का फल कुछ दिन बाद मिलता है। उसी प्रकार अधर्माचरण करने वाले की जड़ धीरे-धीरे कट जाती है।

पुत्रेषु वा नप्तृषु वा न चेदात्मनि पश्यति।
फलत्येव ध्रुवं पापं गुरुभुक्तमिवोदरे।। आदि 80/3।।

यदि अधर्म या पाप की कमाई का बुरा फल अपने ऊपर दिखाई नहीं देता तो पाप की कमाई खाने वाले पुत्रों अथवा नाती-पोतों पर इसका असर जरूर पड़ता है जैसे गरिष्ठ भोजन का असर खाने के एकदम बाद नहीं पता चलता किन्तु कुछ देर बाद पेट में अवश्य गड़बड़ी होती है। ऐसे ही पाप का फल भी निश्चय ही मिलता है।

स्वल्पमेव यथा दत्तं दानं बहुगुणं भवेत्।
अधर्म एवं विप्रर्षे बहुदुःखफलप्रदः।। आदि 107/12।।

हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! जैसे थोड़ा सा दान भी कई गुना फल देता है। वैसे ही अधर्म करने और पाप करने का फल बहुत दुखदायी होता है।

नाधर्मेण जितः कश्चिद् व्यथते वै पराजये।। सभा 78/8।।

अधर्म से हारने वाला व्यक्ति अपनी पराजय से दुखी नहीं होता।

नेशे बलस्येति चरेदधर्मम्।। वन 25/12।।

अपने को बलवान (बल का स्वामी) समझकर अधर्माचरण नहीं करना चाहिये।

वर्धत्यधर्मेण नरस्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति।। वन 94/4।।

मनुष्य अधर्म से शुरू में तो उन्नति कर सकता है और मनोनुकूल सुख भी भोग सकता है। वह शत्रुओं को भी जीत सकता है किन्तु अन्त में जड़ सहित नष्ट हो जाता है।

न कृष्ण धर्मश्चरितो भवाय जन्तोरधर्मश्च पराभवाय।। वन 119/5।।

हे कृष्ण! ऐसा लगता है कि आचरण में लाया हुआ धर्म प्राणियों का अभ्युदय नहीं करता और अधर्माचरण से प्राणी पराजित नहीं होते।

आत्मनैव हतः पापो य पापं कर्त्तुमिच्छति।। वन 207/45।।

जो व्यक्ति किसी का बुरा करना चाहता है वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून् हत्वाऽऽततायिनः।। उद्योग 3/20।।

अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम्।। उद्योग 3/21।।

अत्याचारी शत्रुओं को मारने में कोई अधर्म नहीं होता किन्तु शत्रुओं से भीख मांगना अधर्म होता है तथा इससे बदनामी भी होती है।

यश्चाधर्मं चरेल्लोभात् कामक्रोधावनुप्लवन्।
धर्म्यं पन्थानमाक्राम्य सानुबन्धो विनश्यति।। शान्ति 212/7।।

जो व्यक्ति काम-क्रोध के वश में रहकर लोभ के कारण अधर्म पर चलता है और धर्म का रास्ता छोड़ देता है वह सपरिवार नष्ट हो जाता है।

धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः।
संस्था यत्नैरपि कृता कालेन प्रतिभिद्यते।। अनु 162/31।।

जब बलवान और दुराचारी पुरुष धर्म को नष्ट करने लगते हैं तब सामान्य मनुष्यों द्वारा प्रयत्नपूर्वक बनाई गई व्यवस्था भी कुछ समय में नष्ट हो जाती है।

अधर्मो धर्मरूपेण तृणैः कूप इवावृतः।
ततस्तैर्भिद्यते वृत्तं शृणु चैव युधिष्ठिर।। अनु 162/12।।

फिर तो तिनकों से ढके हुए कुएं की तरह अधर्म ही धर्म का चोला पहन कर सामने आता है। दुराचारी मनुष्य शिष्याचार की सीमा तोड़ देते हैं। युधिष्ठिर यह बात ध्यानपूर्वक सुनो।

जिज्ञासा न तु कर्तव्या धर्मस्य परितर्कणात्।। अनु 162/21।।

तर्क का सहारा लेकर धर्म के बारे में जानने की इच्छा नहीं करनी चाहिये।

अधार्मिक पुरुष

पित्रा विवदते पुत्रो यश्च स्याद् गुरुतल्पगः।
अप्रजायन् नरव्याघ्र भवत्यधार्मिको नरः।। शान्ति 34/14।।

पुरुषसिंह! जो पुत्र अपने पिता से झगड़ता है, जो गुरुपत्नी के साथ सोता है और अपनी पत्नी से सन्तान उत्पन्न नहीं करता ये सब लोग धर्म का पालन नहीं करते।

पापेन कर्मणा वित्तं लब्ध्वा पापः प्रहृष्यति।। शान्ति 95/18।।

स वर्धमानः स्तेयेन पापः पापे प्रसज्जति।
न धर्मोऽस्तीति मन्वानः शुचीनवहसन्निव।। शान्ति 95/19।।

अश्रद्दधानश्च भवेद् विनाशमुपगच्छति।
सम्बद्धो वारुणैः पाशैरमर्त्य इव मन्यते।। शान्ति 95/20।।

पापी मनुष्य पाप कर्म से धन पाकर प्रसन्न होने लगता है। पापी व्यक्ति चोरी आदि करके समृद्ध होता जाता है और पाप कर्मों में ही लगा रहता है। वह समझता है कि धर्म है ही नहीं इसलिये वह ईमानदार लोगों की हँसी उड़ाता है। धर्म में उसकी तनिक भी श्रद्धा नहीं रहती। वह अपने को अजर-अमर मानने लगता है किन्तु वरुण के बन्धनों में फंसे ऐसे व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता है।

नरकं प्रतिपद्यन्ते धर्मविद्वेषिणो जनाः। अनु 162/28।।

धर्म से द्रोह करने वाले मनुष्य नरक में जाते हैं।

दुराचाराश्च दुर्धर्षा दुर्मुखाश्चाप्यसाधवः।। अनु 162/34।।

दुष्ट लोग; दुराचारी, उद्दण्ड, और गन्दी बातें बोलने वाले होते हैं।

अध्यात्म-वन

संकल्पदंशमशकं शोकहर्षहिमातपम्।
मोहान्धकारतिमिरं लोभव्याधिसरीसृपम्।। आश्व 27/1।।

विषयैकात्ययाध्वानं कामक्रोध विरोधकम्।
तदतीत्य महादुर्गं प्रविष्टोऽस्मि महद् वनम्।। आश्व 27/2।।

इस संसार में संकल्प विकल्प ही डांस और मच्छर हैं। सुख और दुःख गर्मी-सर्दी है। मोहरूपी अन्धकार फैला हुआ है। लोभ और रोग के रूप में सांप घूम रहे हैं। इस संसार में विषय-भोगों का ही एकमात्र रास्ता है। यहाँ काम और क्रोध के रूप में शत्रु रहते हैं। ऐसे इस दुर्गम संसार पथ को लांघकर मैं ब्रह्म के महान् अध्यात्मवन में आया हूँ।

नैतदस्ति पृथग्भावः किंचिदन्यत् ततः सुखम्।
नैतदस्त्यपृथग्भावः किंचिद् दुःखतरं ततः।। आश्व 27/4।।

इस अध्यात्मवन में न भेद है और न अभेद। यह इस भेद-अभेद से अतीत है। यहाँ न संसार का सुख है और न ही दुःख।

न तत्राविश्य शोचन्ति न प्रहृष्यन्ति च द्विजाः।
न च बिभ्यति केषांचित् तेभ्यो बिभ्यति केचन।। आश्व 27/6

इस वन में आकर ज्ञानी पुरुष को न तो दुःख होता है और न ही सुख। उसे किसी से डर नहीं लगता और उससे भी कोई प्राणी नहीं डरता।

प्रज्ञावृक्षं मोक्षफलं शान्तिच्छायासमन्वितम्।
ज्ञानाश्रयं तृप्तितोयमन्तः क्षेत्रज्ञभास्करम्।। आश्व 27/15।।

इस वन में प्रज्ञारूपी वृक्ष हैं। इन पर मोक्ष के फल लगते हैं। शान्ति प्रदान करने वाली इनकी छाया सब ओर फैली रहती है। इस वन का आश्रय ज्ञान है। यहां आने पर साधक को जो तृप्ति होती है वही यहाँ का जल है। इस वन में परमात्मारूपी सूर्य का प्रकाश छाया रहता है।

यशो वर्चो भगश्चैव विजयः सिद्धतेजसः।
एवमेवानुवर्तन्ते सप्तज्योतींषि भास्करम्।। आश्व 27/19।।

यश, प्रभा, ऐश्वर्य, विजय, सिद्धि, ओज और तेज ये सात ज्योतियाँ परमात्मा-रूपी सूर्य का ही अनुसरण करती हैं।

अन्न

अन्नाद् गृहस्था लोकेऽस्मिन् भिक्षवस्तत एव च।
अन्नात् प्राणः प्रभवति अन्नदः प्राणदो भवेत्।। शान्ति 18/28।।

इस संसार में अन्न से गृहस्थों और भिक्षुकों का निर्वाह होता है। अन्न से ही प्राण शक्ति पैदा होती है। अतः अन्न देने वाला पुरुष प्राणदाता होता है।

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम्।
आयुः सुवर्णकारान्नमवीरायाश्च योषितः।। शान्ति 36/27।।

राजा का अन्न मनुष्य का तेज नष्ट कर देता है और शूद्र का अन्न आचार-विचार को नष्ट कर देता है। सुनार का अन्न तथा पति और पुत्र से रहित स्त्री का अन्न आयु नष्ट कर देता है।

पिष्टस्य चेक्षुशाकानां विकाराः पयसस्तथा।
सक्तूधानाकरम्भाणां नोपभोग्याश्चिरस्थिताः।। शान्ति 36/32।।

आटे, गन्ने के रस, शाक सब्जी, और दूध को बिगाड़ कर या सड़ा कर जो पदार्थ बनाये गये हों और बहुत पहले बनाये गये हों तो ऐसे पदार्थ नहीं खाने चाहिये। सत्तू, भुना हुआ धान और दही मिले सत्तू को बिगाड़ कर बनाये हुए और देर तक रखे पदार्थ भी नहीं खाने चाहिये।

चराणामचरा ह्यन्नमदंष्ट्रा दंष्ट्रिणामपि।
आपः पिपासतामन्नमन्नं शूरस्य कातराः।। शान्ति 88/15।।

चलने वाले प्राणियों के अन्न स्थावर फल-वनस्पति आदि पदार्थ हैं। दाँत वाले जीवों के अन्न बिना दाँत वाले जीव हैं। प्यासों का अन्न पानी है और शूरवीर का अन्न कायर पुरुष है।

प्राणाश्च सर्वभूतानां नित्यमन्ने प्रतिष्ठिताः।। शान्ति 121/39।।

सभी प्राणियों का जीवन सदा अन्न पर निर्भर रहता है।

भोज्यमन्नं वदान्यस्य कदर्यस्य न वार्धुषेः।। शान्ति 264/13।।

उदार पुरुष का ही अन्न खाना चाहिये, कंजूस और सूदखोर का नहीं।

लोकतन्त्रं हि संज्ञाश्च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।। अनुशासन 63/5।।

अन्न से ही संसार यात्रा का निर्वाह होता है। अन्न से ही बुद्धि काम करती है। अन्न ही सब कामों का और प्राणियों का आधार है।

अन्नमूर्जस्करं लोके प्राणाश्चान्ने प्रतिष्ठिताः।
अन्नेन धार्यते सर्वं विश्वं जगदिदं प्रभो।। अनुशासन 63/7।।

प्रभो! संसार में अन्न ही शरीर का बल बढ़ाता है। अन्न के कारण ही प्राणियों के प्राण टिके हुए हैं। इस सारे जगत को अन्न ने ही सम्हाल रखा है।

अन्नाद् गृहस्था लोकेऽस्मिन् भिक्षवस्तापसास्तथा।
अन्नाद् भवन्ति वै प्राणाः प्रत्यक्षं नात्र संशयः।। अनुशासन 63/8।।

इस संसार में गृहस्थ, भिक्षु और तपस्वी अन्न से ही जीते हैं। अन्न से ही प्राणों की रक्षा होती है इसका सभी को प्रत्यक्ष अनुभव है।

यो दद्यादपरिक्लिष्टमध्वनि वर्तते।
आर्तायादृष्टपूर्वाय स महद्धर्ममाप्नुयात्।। अनुशासन 63/14।।

जो मनुष्य कष्ट में पड़े हुए अपरिचित मुसाफिर को प्रसन्न मन से अन्न देता है उसे महान् धर्म का लाभ मिलता है।

प्रत्यक्षं प्रीतिजननं भोक्तुर्दातुर्भवत्युत।
सर्वाण्यन्यानि दानानि परोक्षफलवन्त्युत।। अनुशासन 63/29।।

अन्न का दान ही ऐसा दान है जो देने वाले और पाने वाले दोनों को ही प्रत्यक्ष रूप से प्रसन्न करने वाला है। दूसरे दानों का फल परोक्ष में या बाद में मिलता है।

अन्नं ह्यमृतमित्याह पुराकल्पे प्रजापतिः।
अन्नं भुवं दिवं खं च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।। अनुशासन 63/31।।

पूर्वकाल (कल्प) में प्रजापति ने अन्न को अमृत बतलाया था। भूलोक, स्वर्गलोक और आकाश इन सबका आधार अन्न ही है।

अन्नप्रणाशे भिद्यन्ते शरीरे पञ्चधातवः।
बलं बलवतोऽपीह प्रणशत्यन्नहानितः।। अनुशासन 63/32।।

अन्न न मिलने पर शरीर के पाँचों तत्त्व छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। अन्न न मिलने पर बलवान मनुष्यों की शक्ति नष्ट हो जाती है।

आवाहाश्च विवाहाश्च यज्ञाश्चान्नमृते तथा।
निवर्तन्ते नरश्रेष्ठ ब्रह्म चात्र प्रलीयते।। अनुशासन 63/33।।

निमन्त्रण, विवाह और यज्ञ अन्न के बिना समाप्त हो जाते हैं। अन्न न मिले तो वेदों का ज्ञान भी भूल जाता है।

अन्नं वै प्रथमं द्रव्यमन्नं श्रीश्च परा मता।
अन्नात् प्राणः प्रभवति तेजो वीर्यं बलं तथा।। अनुशासन 66/59।।

अन्न ही सबसे मुख्य वस्तु है। अन्न ही उत्तम लक्ष्मी का रूप है। अन्न से ही प्राण, तेज, बल और वीर्य की पुष्टि होती है।

जातकर्माणि सर्वाणि व्रतोपनयनानि च।
गोदानानि विवाहाश्च तथा यज्ञसमृद्धयः।। अनु 95/23।।
शास्त्राणि दानानि तथा संयोगा वित्तसंचयाः।
अन्नतः सम्प्रवर्तन्ते तथा त्वं वेत्थ भार्गव।। अनु 95/24।।

भृगुपुत्र! आप अच्छी तरह जानते हैं कि जातकर्म संस्कार, व्रत, उपनयन संस्कार, गोदान, विवाह, यज्ञ, शास्त्रसम्मत दान, संयोग और धनसंग्रह आदि सभी काम अन्न से होते हैं।

रमणीयानि यावन्ति· यावदारम्भकाणि च।
सर्वमन्नात् प्रभवति विदितं कीर्तयामि ते।। अनु 95/25।।

जितने सुन्दर पदार्थ हैं और जो भी उत्पन्न करने वाली वस्तुएँ हैं वे सब अन्न से ही उत्पन्न होती है। यह बात मैं आपको बताँ रहा हूँ और इसे आप पहले से ही जानते हैं।

सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम्।। अनु 112/10।।

सभी तरह के दानों में अन्न का दान सबसे अच्छा होता है।

प्राणा ह्यन्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तुश्च जायते।
अन्ने प्रतिष्ठितो लोकस्तस्मादन्नं प्रशस्यते।। अनु 112/11।।

मनुष्यों का प्राण अन्न है। अन्न से ही प्राणी का जन्म होता है। सारा संसार अन्न पर ही टिका हुआ है इसीलिये अन्न को सबसे अच्छा माना जाता है।

दानवद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः।
ते हि प्राणस्य दातारस्तेभ्यो धर्मः सनातनः।। अनु 112/24।।

दानी पुरुषों ने जो मार्ग अपनाया है उसी पर बुद्धिमान मनुष्य चलते हैं। अन्न दान करने वाले पुरुष वास्तव में प्राण दान करते हैं। ऐसे ही लोग सनातन धर्म की वृद्धि करते हैं।

अन्नं हि परमा गतिः।। अनु 112/25।।

अन्न ही सब प्राणियों के जीवन का निश्चित आधार है।

ग्राम्यादारण्यकैः सिद्धं श्रेष्ठमित्यवधारय।। अनु 145 दा० पा अ XI।।

ग्रामीण अन्न की अपेक्षा वन में पैदा हुई वस्तुओं से बनी खाने-पीने की वस्तुएं अधिक अच्छी होती हैं, हमें यह बात भली-भाँति समझ लेनी चाहिये।

अन्नं प्राणो मनुष्याणामन्नदः प्राणदो भवेत्।
तस्मादन्नं विशेषेण दातुमिच्छति मानवः।। अनु 145 दा० पा अ XI।।

अन्न मनुष्यों का प्राण है। जो व्यक्ति अन्न का दान करता है वह प्राणदान करता है इसीलिये मनुष्य अन्न दान विशेषरूप से करना चाहते हैं।

आत्मार्थे पाचयन्नन्नं ममत्वेनोपहन्यते।। आश्व 25/9।।

केवल अपने लिये भोजन बनाने वाला ममत्व के कारण मारा जाता है।

भुञ्जीतान्नमकुत्सयन्।। आश्व 46/3।।

अन्न की निन्दा न करके भोजन करना चाहिये।

अन्नाद् रक्तं च शुक्रं च अन्ने जीवः प्रतिष्ठितः।
इन्द्रियाणि च बुंद्धिश्च पुष्णान्त्यन्नेन नित्यशः।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ VI।।

अन्न से रक्त और वीर्य बनता है। अन्न से ही प्राणी जीवित रहते हैं। अन्न से ही इन्द्रियों और बुद्धि को सदा पोषण मिलता रहता है।

तेजो बलं च रूपं च सत्त्वं वीर्यं धृति र्द्युतिः।
ज्ञानं मेधा तथाऽऽयुश्च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ VI।।

हमारा तेज, बल, रूप, सत्त्व, वीर्य, धैर्य, कान्ति, ज्ञान, बुद्धि और आयु इन सबका आधार अन्न ही है।

सर्वकालं हि सर्वेषां अन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ VI।।

सभी प्राणियों के प्राण अन्न में ही सदा प्रतिष्ठित रहते हैं।

अन्नं प्रजापते रूपमन्नं प्रजननं स्मृतम्।
सर्वभूतमयं चान्नं जीवश्चान्नमयः स्मृतः।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ VI।।

अन्न, प्रजापति का रूप है। अन्न ही उत्पत्ति है। अतः अन्न, सर्वभूतमय अर्थात् सभी प्रणियों का आधार है। सभी प्राणी अन्नमय ही हैं।

अन्नेनाधिष्ठितः प्राण अपानो व्यान एव च।
उदानश्च समानश्च धाग्यन्ति शरीरिणम्।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ VI।।

प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पाँचों प्राण-वायु अन्न के आधार पर ही शरीर में रहकर प्राणियों को जीवित रखते हैं।

शयनोत्थान गमनग्रहणाकर्षणानि च।
सर्वसत्त्वकृतं कर्म चान्नादेव प्रवर्तते।। आश्व 92 दा० पा० अ VI।।

सभी प्राणी सोना, जागना, चलना, ग्रहण करना, खींचना आदि बल लगाकर किये जाने वाले सभी काम अन्न से प्राप्त शक्ति से करते हैं।

अन्नेन सदृशं दानं न भूतं न भविष्यति।। आश्व 92 दा० पा० अ XII।।

अन्न-दान के बराबर न कोई दान हुआ है और न ही कभी होगा।

अन्नमूर्जस्करं लोके ह्यन्नात् प्राणाः प्रतिष्ठिताः।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ XII।।

इस संसार में प्राणियों को अन्न से ही शक्ति मिलती है। अन्न के कारण ही प्राणियों के शरीर में प्राण टिके रहते हैं।

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम्।
आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मविकृन्तिनः।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ० XII।।

राजा का अन्न खाकर मनुष्य का तेजस्वी स्वरूप नष्ट हो जाता है। शूद्र का अन्न ब्राह्मणत्व को नष्ट कर देता है। सुनार का अन्न आयु को नष्ट कर देता है और चमार का अन्न यश को समाप्त कर देता है।

जलदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः।। आश्व 92 दा० पा० अ० XII।।

जल देने वाले को तृप्ति मिलती है। अन्न देने वाले को अक्षय सुख मिलता है।

अन्नेन धार्यते सर्वं जगदेतच्चराचरम्।
अन्नात् प्रभवति प्राणः प्रत्यक्षं नास्ति संशयः।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ XIII।।

चल और अचल यह सारा संसार अन्न के सहारे पर ही टिका हुआ है। अन्न से ही प्राण उत्पन्न होता है। यह बात साफ दिखती है। इसमें सन्देह नहीं है।

दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मनो भूतिमिच्छता।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ XIII।।

अपना कल्याण चाहने वाले को भिखारी को अन्न देना चाहिये।

चण्डालो वा श्वपाको वा काले यः कश्चिदागतः।
अन्नेन पूजनीयः स्यात् परत्र हितमिच्छता।। आश्व 92 दा० पा० अ XIII।।

यदि भोजन के समय कोई चण्डाल या अत्यन्त पतित अथवा जाति बहिष्कृत

व्यक्ति भी घर आ जाये तो उसे भोजन खिलाकर सम्मानित करना चाहिये। ऐसा करने वाले व्यक्ति का परलोक में कल्याण होता है।

पिधाय तु गृहद्वारं भुङ्क्ते योऽन्नं प्रहृष्टवान्।
स्वर्गद्वारपिधानं वै कृतं तेन युधिष्ठिर।। आश्व 92 दा० पा० अ XIII।।

युधिष्ठिर! जो व्यक्ति अपने घर का दरवाजा बन्द करके प्रसन्न होकर भोजन करता है ऐसा व्यक्ति मानो अपने लिये स्वर्ग का द्वार बन्द कर देता है।

अन्नदः प्राणदो लोके प्राणदः सर्वदो भवेत्।
तस्मादन्नं विशेषेण दातव्यं भूतिमिच्छता।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ० XIII।।

संसार में अन्न देने वाला पुरुष प्राणदाता माना जाता है। जो प्राण देता है वह सब कुछ दे देता है इसलिये अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को विशेष रूप से अन्न दान करना चाहिये।

अन्नं ह्यमृतमित्याहुरन्नं प्रजननं स्मृतम्।
अन्नप्रणाशे सीदन्ति शरीरे पञ्चधातवः।। आश्व 92 दा० पा० अ० XIII।।

अन्न को अमृत माना गया है। अन्न ही प्राणियों को जन्म देता है। अन्न न मिलने पर शरीर के मांस, मज्जा, अस्थि, रक्त और शुक्र ये पाँचों धातुएँ नष्ट हो जाते हैं।

बलं बलवतो नश्येदन्नहीनस्य देहिनः।
तस्मादन्नं विशेषेण श्रद्धयाश्रद्धयापि वा।। आश्व 92 दा० पा० अ XIII।।

अन्न न मिलने पर बलशाली पुरुष की शक्ति नष्ट हो जाती है अतः श्रद्धा के साथ या अश्रद्धा से भी अन्नदान विशेषरूप से करना चाहिये।

आदत्ते हि रसं सर्वमादित्यः स्वगभस्तिभिः।
वायुस्तस्मात् समादाय रसं मेघेषु धारयेत्।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ XIII।।

सूर्य अपनी किरणों से पृथ्वी का सारा रस खींच लेते हैं। उस रस को सूर्य से लेकर वायु बादलों में भर देती है।

तत् तु मेघगतं भूमौ शक्रो वर्षति तादृशम्।
तेन दिग्धा भवेद् देवी मही प्रीता च भारत।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ० XIII।।

भरतपुत्र! बादलों में एकत्र उस रस को इन्द्र पृथ्वी पर बरसा देते हैं। इस रस से आप्लावित होकर भूमि तृप्त हो जाती है।

तस्यां सस्यानि रोहन्ति यै जीविन्त्यखिलाः प्रजाः।
मांसमेदोऽस्थिमज्जानां सम्भवस्तेभ्य एव हि।।

।। आश्व 92 दा० पा० अ० XIII ।।

पृथ्वी में समाये हुए उस रस से (वर्षा जल से) अन्न उत्पन्न होता है। विभिन्न प्रकार के अन्नों से सारे प्राणी जीवित रहते हैं। अन्नों से ही सभी प्राणियों के मांस, चर्बी, हड्डियाँ, मज्जा और रक्त ये धातु बनते हैं।

अनित्य

अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः। शान्ति 330/14 ।।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृद्ध्येदेषु न पण्डितः।। स्त्री 2/25 ।। शान्ति 205/4 ।।

जवानी, रूप, जीवन, धन-सम्पत्ति का संग्रह, आरोग्य तथा प्रियजनों का साथ रहना ये सभी अनित्य हैं इसलिये बुद्धिमान पुरुष को इनमें आसक्त नहीं होना चाहिये।

यथा जीर्णमजीर्णं वा वस्त्रं त्यक्त्वा तु पूरुषः।
अन्यद् रोचयते वस्त्रमेवं देहाः शरीरिणाम्।। स्त्री 3/9 ।।

जैसे मनुष्य फटे या पुराने कपड़े उतारकर नये कपड़े पहनना चाहता है वैसे ही प्राणियों के शरीर समय-समय पर बदलते रहते हैं।

संयोगा विप्रयोगान्ता जातानां प्राणिनां ध्रुवम्।। शान्ति 27/29 ।।
बुद्बुदा इव तोयेषु भवन्ति न भवन्ति च।

जैसे पानी में बुलबुले उठते हैं और मिट जाते हैं वैसे ही उत्पन्न हुए प्राणी आपस में मिलकर बिछुड़ जाते हैं।

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।। शान्ति 27/30 ।।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्।। आश्व 44/19 ।।

जो भी वस्तु इकट्ठी की जाती है वह एक न एक दिन नष्ट हो जाती है। जो व्यक्ति उन्नति करता है उसका पतन भी होता है। संयोग के बाद बिछुड़ना पड़ता है। जीवन के बाद मृत्यु होती ही है।

न ह्यहानि निवर्तन्ते न मासा न पुनः समाः।
जातानां सर्वभूतानां न पक्षा न पुनः क्षपाः।। शान्ति 28/49।।

संसार में जन्म लेने वाली सभी प्राणियों के बीते हुए रात-दिन, पक्ष-मास और वर्ष लौटकर फिर नहीं आते।

अनित्यं सर्वमेवैतदहं च मम चास्ति यत्।। शान्ति 104/12।।

इस संसार में 'मैं' और 'मेरा' समझकर जो कुछ भी है वह सब अनित्य है।

यत् किंचिन्मन्यसेऽस्तीति सर्वं नास्ति विद्धि तत्।
एवं न व्यथते प्राज्ञः कृच्छ्रमप्यापदं गतः।।

शान्ति 104/13।।

तुम जिस किसी वस्तु को ऐसा मानते हो कि 'यह' है उसे पहिले हो समझ लो कि वह नहीं है। ऐसा समझने वाला भारी मुसीबत में भी परेशान नहीं होता।

यच्च पूर्वं समाहारे यच्च पूर्वं परे परे।
सर्वं तन्नास्ति ते चैव तज्ज्ञात्वा कोऽनुसंज्वरेत्।। शा० 104/15।।

जो वस्तु पहले बड़े समुदाय के पास थी तथा जिस पर एक के बाद दूसरे का अधिकार होता गया वह वस्तु तुम्हारे पास भी नहीं रहेगी यह समझ कर कौन शोक करेगा।

क्व नु तेऽद्य पिता राजन् क्व नु तेऽद्य पितामहः।
न त्वं पश्यसि तानद्य न त्वां पश्यन्ति तेऽपि च।। शान्ति 104/17।।

राजन्! आज तुम्हारे बाप दादा कहाँ हैं? उन्हें आज तुम नहीं देख रहे हो न ही वे तुम्हें देख रहे हैं।

निमेषमात्रमपि हि वयो गच्छन्न तिष्ठति।
स्वशरीरेष्वनित्येषु नित्यं किमनुचिन्तयेत्।। शान्ति 330/22।।

हमारी आयु लगातार बीतती जा रही है। वह पलभर के लिये भी नहीं ठहरती। जब अपना शरीर ही अनित्य है तब इस संसार की किस वस्तु को नित्य समझा जाय?

अहान्यस्तमायान्ति उदयान्ता च शर्वरी।
सुखस्यान्तं सदा दुःखं दुःखस्यान्तं सदा सुखम्।। आश्व 44/18।।

सूर्यास्त होने पर दिन समाप्त हो जाता है और सूर्योदय होने पर रात्रि। सुख का अन्त सदा दुख में होता है और दुःख के अन्त में सुख आता है।

सर्वं कृतं विनाशान्तं जातस्य मरणं ध्रुवम्।
अशाश्वतं हि लोकेऽस्मिन् सदा स्थावरजङ्गमम्।। आश्व 44/20।।

जो भी कुछ बना है वह एक दिन नष्ट हो जायेगा। जो प्राणी पैदा होता है उसकी मृत्यु निश्चित होती है। इस संसार में चल या अचल कोई भी वस्तु सदा नहीं रहती।

इष्टं दत्तं तपोऽधीतं व्रतानि नियमाश्च ये।
सर्वमेतद् विनाशान्तं ज्ञानस्यान्तो न विद्यते।। आश्व 44/21।।

जितने भी यज्ञ, दान, तप, अध्ययन, व्रत और नियम हैं उन सबका अन्त में विनाश होता है किन्तु ज्ञान का अन्त कभी नहीं होता।

अपना भला

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्। आदि 114/38।।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।। आदि 80/17 दा० पा० 18।।

कुल की भलाई के लिये एक मनुष्य को त्याग दे। ग्राम के भले के लिये कुल को और जनपद की भलाई के लिये एक गाँव की उपेक्षा कर दे और अपने भले के लिये सारी पृथ्वी की उपेक्षा कर दे।

आपदार्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि। उद्योग 37/18।।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।। आदि 157/27।।

संकट से बचने के लिये धन बचा कर रखना चाहिये और धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिये किन्तु स्त्री तथा धन दोनों से अपनी रक्षा करनी चाहिये।

एकतो वा कुलं कृत्स्नमात्मा वा कुलवर्धनः।
न समं सर्वमेवेति बुधानामेष निश्चयः।। आदि 157/28।।

एक ओर तो सारा परिवार हो और दूसरी ओर परिवार का पालन करने वाला एक व्यक्ति हो तो दोनों की तुलना में सारा कुल उस अकेले व्यक्ति के बराबर नहीं हो सकता। यही विद्वानों का कहना है।

आत्मकार्यं च सर्वेषां गरीयस्त्रिदशेश्वर।। कर्ण 87/71।।

हे देवेश्वर! सभी को अपना कार्य महत्त्वपूर्ण लगता है।

आत्मवृद्धिर्मित्रवृद्धिमित्रमित्रोदयस्तथा।। शान्ति 60/13।।

विपरीतं द्विषत्स्वेतत् षड्विधा वृद्धिरात्मनः।। शल्य 60/14।।

अपनी उन्नति छह तरह से होती है अपनी वृद्धि, मित्र की वृद्धि, मित्र के मित्र की वृद्धि तथा शत्रु की हानि, शत्रु के मित्र ही हानि और शत्रु के मित्र के मित्र की हानि।

सर्वात्मनैव धर्मस्य न परस्य न चात्मनः।
सर्वोपायैरुज्जिहीर्षेदात्मानमिति निश्चयः।। शान्ति 130/18।।

संकटकाल में मनुष्य को अपने या पराये धर्म की परवाह नहीं करनी चाहिये उसे तो हर तरह से अपने को संकट से छुड़ाने की इच्छा करनी चाहिये। यही सबका निश्चित विचार है।

पीडितस्य किमद्वारमुत्पथो विधृतस्य च।
अद्वारतः प्रद्रवति यदा भवति पीडितः।। शान्ति 130/22।।

आफत में फंसे मनुष्य के लिये बचने का कौन-सा रास्ता ठीक नहीं है? कैदी पुरुष के लिये कौन-सा मार्ग बुरा है? मुसीबत में फंसने पर मनुष्य बिना दरवाजे के भी निकल भागता है।

कृत्वा बलवता सन्धिमात्मानं यो न रक्षति।
अपथ्यमिव तद् भुक्तं तस्य नार्थाय कल्पते।। शान्ति 138/109।।

जो मनुष्य बलवान से सन्धि करके अपनी रक्षा नहीं क्ररता है तो उसकी वह मित्रता न पचने वाला अन्न खाने की तरह हितकर नहीं होती।

न च कश्चित् कृते कार्ये कर्तारं समवेक्षते।। शान्ति 138/111।।
तस्मात् सर्वाणि कार्याणि सावशेषाणि कारयेत्।

काम पूरा हो जाने पर, काम पूरा करने वाले की कोई भी परवाह नहीं करता इसलिये सभी काम अधूरे ही रखने चाहियें।

आत्मार्थे संततिस्त्याज्या राज्यं रत्नं धनानि च।। शा० 138/178।।
अपि सर्वमुत्सृज्य रक्षेदात्मानमात्मना।

अपने को बचाने के लिये सन्तान, राज्य, रत्न और धन सब कुछ छोड़ देना चाहिये। अपना सर्वस्व त्याग करके भी अपनी रक्षा करनी चाहिये।

आत्मा हि सर्वदा रक्ष्यो दारैरपि धनैरपि।। शान्ति 138/181।।

धन और स्त्री का त्याग करके भी अपनी रक्षा सदा करनी चाहिये।

शत्रुसाधारणे कृत्ये कृत्वा सन्धिं बलीयसा।। शान्ति 138/193।।
समाहितश्चरेद् युक्त्या कृतार्थश्च न विश्वसेत्।

जब अपने ऊपर और शत्रु के ऊपर एक जैसी मुसीबत आ पड़ी हो तब निर्बल को बलवान शत्रु से सन्धि करके बड़ी सावधानी और चतुराई से अपना काम निकालना चाहिये। काम हो जाने पर शत्रु पर विश्वास नहीं करे।

द्रव्याणि संततिश्चैव सर्वं भवति जीवितः।। शान्ति 138/196।।

जीवित रहने पर पुरुष को सन्तान और धन आदि सब मिल जाता है।

तस्मादभीतवद् भीतो विश्वस्तवदविश्वसन्।। शान्ति 138/206।।
न ह्यप्रमत्तश्चलति चलितो वा विनश्यति।

इसलिये मनुष्य को डरते हुए भी निडर जैसा और विश्वास न करते हुए भी विश्वास करने वाले जैसा आचरण करना चाहिये। उसे कभी असावधान रहकर नहीं चलना चाहिये यदि असावधान होकर चलता है तो नष्ट हो जाता है।

पूर्वं सम्मानना यत्र पश्चाच्चैव विमानना।
जह्यात् तत् सत्त्ववान् स्थानं शत्रोः सम्मानितोऽपि सन्।। शा०139/33।।

जहाँ पहले आदर मिल चुका हो वहीं बाद में यदि अपमान मिले तो शक्तिशाली मनुष्य को शत्रु का सम्मान फिर मिलने पर भी वह जगह छोड़कर चले जाना चाहिये।

उत्पतेत् सहजाद् देशाद् व्याधिदुर्भिक्षपीडितात्।
अन्यत्र वस्तुं गच्छेद् वा वसेद् वा नित्यमानितः।। शान्ति 139/91।।

अपनी जन्मभूमि भी यदि रोग और अकाल से ग्रस्त हो तो व्यक्ति को कहीं और रहने के लिये चले जाना चाहिये। अपने जन्म स्थान में सम्मान के साथ रहना चाहिये।

कुभार्यां च कुपुत्रं च कुराजानं कुसौहृदम्।
कुसम्बन्धं कुदेशं च दूरतः परिवर्जयेत्।। शान्ति 139/93।।

दुष्ट स्त्री, दुष्ट पुत्र, बुरे राजा, दुष्ट मित्र, बुरे सम्बन्ध और बुरे देश को दूर से ही छोड़ देना चाहिये।

कुपुत्रे नास्ति विश्वासः कुभार्यायां कुतो रतिः।
कुराज्ये निर्वृत्तिर्नास्ति कुदेशे नास्ति जीविका।। शान्ति 139/94।।

बिगड़े बेटे पर विश्वास नहीं किया जा सकता। दुष्ट स्वभाव की पत्नी से प्रेम नहीं किया जा सकता। बुरे राजा के राज्य में सुख चैन नहीं मिल सकता और बुरे देश में जीवन निर्वाह नहीं हो सकता।

कुमित्रे संगतिर्नास्ति नित्यमस्थिरसौहृदे।
अवमानः कुसम्बन्धे भवत्यर्थविपर्यये।। शान्ति 139/95।।

दुष्ट मित्र का स्नेह सदा नहीं रहता इसलिये उसके साथ मेल नहीं हो सकता। बुरे सम्बन्धों में स्वार्थ टकराने पर अपमान सहना पड़ता है।

सा भार्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यस्य निर्वृतिः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते।। शान्ति 139/96।।

प्रिय बोलने वाली पत्नी ही अच्छी होती है। जिस बेटे से सुख मिले वही अच्छा होता है। जिस मित्र पर विश्वास हो और जिस देश में जीविका चले वही अच्छा है।

धेनुर्वत्सस्य गोपस्य स्वामिनस्तस्करस्य च।
पयः पिबति यस्तस्यां धेनुस्तस्यास्ति निश्चयः।। शान्ति 174/32।।

गाय बछड़े की है या ग्वाले की या मालिक की या चोर की? जो गाय का दूध पीता है गाय उसी की ही होती है।

अलमन्यैरुपालम्भैः कीर्तितैश्च व्यतिक्रमैः।
पेशलं चानुरूपं च कर्तव्यं हितमात्मनः।। शान्ति 322/20।।

दूसरे को उलाहना देने से तथा दूसरों की बुरी बातों की चर्चा करने से कोई लाभ नहीं होता। जो अपने लिये हितकर, अनुकूल और सुन्दर लगे वह काम करना चाहिये।

राजसांस्तामसांश्चैव नित्यं दोषान् विवर्जयेत्।
सात्विकं मार्गमास्थाय पश्येदात्मानमात्मना।। शान्ति 326/28।।

मनुष्य को राजसिक और तामसिक दोषों का सदा परित्याग करना चाहिये और सात्त्विक मार्ग को अपनाकर बुद्धि के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिये।

दातव्यमसकृच्छक्त्या यष्टव्यमसकृत् तथा।
पुष्टिकर्मविधानं च कर्तव्यं भूतिमिच्छता।। अनु 141/77।।

अपना भला चाहने वाले को यथाशक्ति बार-बार दान देना चाहिये। सदा यज्ञ करना चाहिये और सदा पुष्टि बढ़ाने वाले काम करने चाहियें।

विघसाशिना सदा भाव्यं सत्पथालम्बिना तथा।
ब्राह्मं हि मार्गमाक्रम्य वर्तितव्यं बूभूषता।। अनु 143/55।।

अपना कल्याण चाहने वाले को सज्जनों के रास्ते पर सदा चलना चाहिये। उसे

अतिथियों और सेवकों को भोजन कराकर भोजन करना चाहिये। उसे वेदशास्त्रों में बताये मार्ग पर चलकर उत्तम आचरण करना चाहिये।

सत्यधर्मरताः सन्तः सर्वलिङ्ग विवर्जिताः।
धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः।। अनु० 145।।

जो मनुष्य धर्मपूर्वक कमाये हुए धन का उपभोग करते हैं। सभी आश्रमों के चिह्नों से दूर रहकर भी सत्य और धर्म का पालन करते हैं वे स्वर्ग में जाते हैं।

मध्याह्ने वार्धरात्रेः वा गमनं नैव रोचयेत्।। अनु० 145 दा० पा०।।

दोपहर को या आधी रात में घर से बाहर नहीं जाना चाहिये।

अयशस्करमर्थघ्नं कर्म यत् परपीडनम्।
भयाद् वा यदि वा लोभान्न कुर्वीत कदाचन।। अनु० 145 दा० पा०।।

डरकर या लोभ के कारण ऐसे काम कभी नहीं करने चाहियें जिनसे अपनी बदनामी हो, पैसे का नुकसान हो य किसी को कष्ट पहुँचे।

आत्मसाक्षी भवेन्नित्यमात्मनस्तु शुभाशुभे।
मनसा कर्मणा वाचा न च काङ्क्षेत् पातकम्।। अनु० 145 दा० पा०।।

अपने अच्छे और बुरे कामों में सदा अपने को ही गवाह मानना चाहिये। मन, वाणी, और अपने किसी भी काम से पाप करने की इच्छा नहीं करनी चाहिये।

बुद्धिः श्रद्धा च विनयः करणानि हितैषिणाम्।। अनु० 145 दा० पा।।

जो लोग अपना भला चाहते हैं उनके लिये बुद्धि, श्रद्धा और विनय उन्नति के साधन हैं।

अनाश्रित्योच्छ्रयं नास्ति मुख्यमाश्रयमाश्रयेत्।।

आश्व० 92 दा० पा० अ XXI

किसी का सहारा लिये बिना कोई भी पुरुष उन्नति नहीं कर सकता, इसलिये आगे बढ़ने के लिये किसी प्रभावशाली मनुष्य का सहारा लेना चाहिये।

अपमान

अवज्ञानं हि लोकेऽस्मिन् मरणादपि गर्हितम्।। वन 28/12।।

संसार में अपमानित होना मृत्यु से भी बुरा होता है।

गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते।। कर्ण० 70/52।।

बड़े आदमियों का अपमान ही उनकी मृत्यु कही जाती है।

सत्कृतं स्वजनेनेह परोऽपि बहु मन्यते।
स्वजनेन त्ववज्ञातं परे परिभवन्त्युत।। शान्ति 67/35।।

अपने लोग जिसका आदर करते हैं उसे दूसरे लोग भी बहुत मानते हैं। अपने लोगों से तिरस्कृत व्यक्ति का दूसरे भी अनादर करते हैं।

जाग्रतीह निराकृताः।। शान्ति० 103/31।।

अपमानित व्यक्ति बदला लेने के लिये सदा तैयार रहता है।

अवज्ञानमहंकारो दम्भश्चैव विगर्हितः।
अहिंसा सत्यमक्रोधः सर्वाश्रमगतं तपः।। शान्ति० 191/15।।

किसी का अपमान करना, अहंकार करना और ढोंग करना बुरा है। किसी को न मारना, सत्य बोलना और गुस्सा न करना यह सभी आश्रमवासियों के लिये तपस्या है।

अमृतस्येव संतृप्येदवमानस्य तत्त्ववित्।
विषस्येवोद्विजेन्नित्यं सम्मानस्य विचक्षणः।। शान्ति० 229/21।।

तत्त्वदर्शी पुरुष को अपमान को अमृत जैसा मानकर उससे सन्तुष्ट होना चाहिये। विद्वान को अपना सम्मान विष जैसा समझ कर उससे सदा डरते रहना चाहिये।

अवज्ञातः सुखं शेते इह चामुत्र चाभयम्।
विमुक्तः सर्वदोषेभ्यो योऽवमन्ता स बध्यते।। शान्ति० 229/22।।

सभी दोषों से मुक्त पुरुष अपमानित होने पर भी इस लोक में और परलोक में निर्भय होकर सुख से सोता है। परन्तु उसका अपमान करने वाला पुरुष पाप के बन्धन में पड़ जाता है।

आक्रोशनविमानाभ्यां नाबुधान् बोधयेद् बुधः।
तस्मान्न वर्धयेदन्यं न चात्मानं विहिंसयेत्।। शा० 299/25।।

बुद्धिमान मनुष्य को चाहिये कि वह गाली-गलौज करने वाले और अपमान करने वाले मूर्खों को समझाने का प्रयत्न न करे। उनके सामने दूसरों को बढ़ावा न दे और न ही अपने को पिटवाये।

अमृतस्येव संतृप्येदवमानस्य पण्डितः।
सुखं ह्यवमतः शेते योऽवमन्ता स नश्यति।। शान्ति० 299/26।।

विद्वान् को अपमानित होकर भी अमृत पीने की भाँति सन्तुष्ट रहना चाहिये। अपमानित पुरुष तो सुख से होता है किन्तु अपमान करने वाला नष्ट हो जाता है।

स्वयं प्राप्ते परिभवो भवतीति विनिश्चयः।। अनुशासन 82/14।।

बिना बुलाये किसी के पास जाने पर निश्चय ही अनादर होता है।

अभय

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति महीपते।
स गच्छति परं स्थानं विष्णोः पदमनामयम्।। स्त्री० 7/25।।

राजन्! जो मनुष्य सभी प्राणियों को अभय देता है अर्थात् जिससे किसी को डर नहीं लगता ऐसा मनुष्य अविनाशी परमात्मा को प्राप्त करता है।

न ह्यात्मनः प्रियतरं किंचिद् भूतेषु निश्चितम्।
अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत।। स्त्री० 7/27।।
तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दया कार्या विपश्चिता।। स्त्री० 7/28।।

यह बात निश्चित है कि प्राणियों को अपनी आत्मा से प्रिय और कोई वस्तु नहीं होती इसीलिये वे मरने से डरते हैं। बुद्धिमान मनुष्य को सभी प्राणियों पर दया करनी चाहिये।

यो ददाति सहस्राणि गवामश्वशतानि च।
दत्त्वाभयकृतं दानं तदा सिद्धिमवाप्नुते।। शान्ति 298/4।।

जो एक हजार गाय और एक सौ घोड़े दान करता है तथा जो सभी प्राणियों को अभयदान करता है वह गौ और घोड़ों का दान करने वाले से श्रेष्ठ होता है।

अराजकता

राष्ट्रस्यैतत् कृत्यतमं राज्ञ एवाभिषेचनम्।
अनिन्द्रमबलं राष्ट्रं दस्यवोऽभिभवन्त्युत।। शान्ति० 67/2।।

किसी भी राष्ट्र के लोगों का सबसे प्रधान काम यही है कि वे राजा को नियुक्त करें क्योंकि बिना राजा वाले कमजोर देश को दस्यु हड़प जाते हैं।

अराजकेषु राष्ट्रेषु धर्मो न व्यवतिष्ठते।
परस्परं च खादन्ति सर्वथा धिगराजकम्।। शान्ति० 67/3।।

जिस देश में अराजकता होती है वहाँ धर्म नहीं टिकता। वहां के लोग एक-दूसरे को हड़पने लगते हैं अत: अराजकता वाले देश को धिक्कार है।

नाराजकेषु राष्ट्रेषु वस्तव्यमिति रोचये।
नाराजकेषु राष्ट्रेषु हव्यमग्निर्वहत्युत।। शान्ति० 67/5।।

मेरी रुचि तो यही है कि अराजकता वाले देश में नहीं रहना चाहिये। ऐसे देशों में अग्नि यज्ञ की हवि भी नहीं ले जाती।

तस्माद् राजैव कर्तव्य: सततं भूतिमिच्छता।
न धनार्थो न दारार्थस्तेषां येषामराजकम्।। शान्ति० 67/12।।

इसलिये सदा कल्याण चाहने वालों को अपना राजा बनाना चाहिये। जिनके देश में अराजकता फैली होती है वहाँ लोगों के धन और स्त्रियों पर उनका अधिकार नहीं रहता।

प्रीयते हि हरन् पापः परवित्तमराजके।
यदास्य उद्धरन्त्यन्ये तदा राजानमिच्छति।। शान्ति० 67/13।।

अराजकता की हालत में पापी मनुष्य दूसरे का धन छीनकर प्रसन्न होता है। किन्तु जब और लोग उसका धन छीन लेते हैं तब वह चाहता है कि राजा होना चाहिये।

राजा चेन्न भवेल्लोके पृथिव्यां दण्डधारकः।
जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बलं बलवत्तराः।। शान्ति० 67/16।।

यदि पृथिवी पर दण्ड देने वाला राजा न हो तो बलवान मनुष्य कमजोर व्यक्ति को उसी तरह खा जायेंगे जैसे पानी में बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है।

हरेयुर्बलवन्तोऽपि दुर्बलानां परिग्रहान्।
हन्युर्व्यायच्छमानांश्च यदि राजा न पालयेत्।। शान्ति० 68/14।।

यदि राजा प्रजा की रक्षा न करे तो बलवान लोग कमजोर लोगों की वस्तुओं को छीन लेंगे और अपने घर-बार की रक्षा करने वालों को मार डालेंगे।

ममेदमिति लोकेऽस्मिन् न भवेत् सम्परिग्रहः।
न दारा न च पुत्रः स्यान्न धनं न परिग्रहः।
विष्वग्लोपः प्रवर्तेत यदि राजा न पालयेत्।। शान्ति० 68/15।।

यदि राजा रक्षा न करे तो इस संसार में स्त्री, पुत्र, धन अथवा घर आदि ऐसी

कोई भी वस्तु नहीं हो सकती जिसे हम अपना कह सकें। सभी की सम्पत्ति नष्ट हो जाय यदि राजा रक्षा न करे।

पतेद् बहुविधं शस्त्रं बहुधा धर्मचारिषु।
अधर्मः प्रगृहीतः स्याद् यदि राजा न पालयेत्।। शान्ति॰ 68/17।।

यदि राजा रक्षा न करे तो धार्मिक पुरुषों पर अनेक तरह के शस्त्रों की मार पड़े और लोगों को विवश होकर अधर्म का रास्ता अपनाना पड़े।

वधबन्धपरिक्लेशो नित्यमर्थवतां भवेत्।
ममत्वं च न विन्देयुर्यदि राजा न पालयेत्।। शान्ति॰ 68/19।।

यदि राजा रक्षा न करे तो धनी लोगों की हत्या और अपहरण होने लगेगा और कोई भी व्यक्ति किसी वस्तु को अपनी नहीं कह सकेगा।

न योनिदोषो वर्तेत न कृषिर्न वणिक्पथः।
मज्जेद् धर्मस्त्रयी न स्याद् यदि राजा न न पालयेत्।। शान्ति॰ 68/21।।

यदि राजा रक्षा न करे तो व्यभिचार से किसी को घृणा न हो। खेती नष्ट हो जाय, व्यापार चौपट हो जाय, धर्म डूब जाय, तीनों वेदों का पता ही न चले।

न यज्ञाः सम्प्रवर्तेयुर्विधिवत् स्वाप्तदक्षिणाः।
न विवाहाः समाजो वा यदि राजा न पालयेत्।। शान्ति॰ 68/22।।

यदि राजा रक्षा न करे तो विधिवत् किये जाने वाले पर्याप्त दक्षिणा वाले यज्ञ न हों, न ही विवाह और किसी भी प्रकार के सामाजिक उत्सव हों।

ब्राह्मणाश्चतुरो वेदान् नाधीयीरंस्तपस्विनः।
विद्यास्नाता व्रतस्नाता यदि राजा न पालयेत्।। शान्ति॰ 68/26।।

यदि राजा रक्षा न करे तो विद्या पढ़कर स्नातक बने और ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने वाले तपस्वी तथा ब्राह्मण चारों वेदों का अध्ययन नहीं करेंगे।

हस्ताद्धस्तं परिमुषेद् भिद्येरन् सर्वसेतवः।
भयार्तं विद्रवेत् सर्वं यदि राजा न पालयेत्।। शान्ति॰ 68/28।।

यदि राजा रक्षा न करे तो लुटेरे हाथ में रखी वस्तु छीन कर ले जायें। सारी मर्यादाएँ टूट जायें और लोग डरकर भागते फिरें।

अनयाः सम्प्रवर्तेरन् भवेद् वै वर्णसंकरः।
दुर्भिक्षमाविशेद् राष्ट्रं यदि राजा न पालयेत्।। शान्ति॰ 68/29।।

यदि राजा रक्षा न करे तो सब ओर अन्याय और अत्याचार होने लगे, वर्ण संकर सन्तान पैदा होने लगें और देश में अकाल पड़ जाय।

विवृत्य हि यथाकामं गृहद्वाराणि शेरते।
मनुष्या रक्षिता राज्ञा समन्तादकुतोभयाः।। शान्ति० 68/30।।

राजा से रक्षित मनुष्य सब ओर से निर्भय होकर अपनी इच्छानुसार घर के दरवाजे खुले छोड़कर सोते हैं।

नाक्रुष्टं सहते कुतो वा हस्तलाघवम्।
यदि राजा न सम्यग् गां रक्षयत्यपि धार्मिकः।। शान्ति० 68/31।।

यदि धर्मात्मा राजा पृथ्वी की भली-भाँति रक्षा न करे तो कोई मनुष्य गाली-गलौज या मारपीट का अपमान कैसे सहे।

स्त्रियश्चापुरुषा मार्गं सर्वालङ्कारभूषिताः।
निर्भयाः प्रतिपद्यन्ते यदि रक्षति भूमिपः।। शान्ति० 68/32।।

यदि राजा, प्रजा की रक्षा करता है तो सारे गहनों से सजी हुई स्त्रियाँ किसी पुरुष को साथ लिये बिना भी निर्भय घूमती हैं।

धर्ममेव प्रपद्यन्ते न हिंसन्ति परस्परम्।
अनुगृह्णन्ति चान्योन्यं यदा रक्षति भूमिपः।। शान्ति० 68/33।।

यदि राजा प्रजा की रक्षा करता है तो सब लोग धर्म पर चलते हैं, एक-दूसरे को नहीं मारते और परस्पर अनुग्रह करते हैं।

यदा राजा धुरं श्रेष्ठामादाय वहति प्रजाः।
महता बलयोगेन तदा लोकः प्रसीदति।। शान्ति० 68/36।।

जब राजा राज्य करने की बड़ी भारी जिम्मेदारी को सेना की सहायता से सम्हालता है तब सारी प्रजा प्रसन्न होती है।

अर्जुन

वपुषा हि तु भूतानां नेत्राणि हृदयानि च।
श्रोत्रं मधुरया वाचा रमयत्यर्जुनो नृणाम्।। आदि 199/7 दा० पा०।।

अर्जुन अपने सुन्दर शरीर से सभी मनुष्यों की आँखों और हृदयों को तृप्त करते हैं, तथा अपनी मीठी वाणी से सबके कानों को सुख पहुँचाते हैं।

न ह्युक्तं न चासक्तं नानृतं न च विप्रियम्।
भाषितं चारुभाषस्य जज्ञे पार्थस्य भारती।।

आदि 199/7 दा० पा०।।

मीठा बोलने वाले अर्जुन की वाणी ऐसी बात नहीं कहती जो अनुचित आसक्तिपूर्ण, असत्य या अप्रिय हो।

कुले जन्म प्रशंसन्ति वैद्याः साधु सुनिष्ठिताः।
बलेन सदृशं नास्ति वीर्यं तु मम रोचते।। सभा० 16/8।।

अनुभवी विद्वान् अच्छे कुल में जन्म की बहुत प्रशंसा करते हैं किन्तु बल के सामने अच्छा कुल कुछ भी नहीं है। मुझे तो पराक्रम ही अच्छा लगता है।

आत्मा हि कृष्णः पार्थस्य कृष्णस्यात्मा धनञ्जयः।। सभा० 52/31।।

श्री कृष्ण अर्जुन की आत्मा हैं और अर्जुन कृष्ण की आत्मा हैं।

यद् ब्रूयादर्जुनः कृष्णं सर्वं कुर्यादसंशयम्।
कृष्णो धनञ्जस्यार्थे स्वर्गलोकमपि त्यजेत्।। सभा 52/32।।

अर्जुन श्रीकृष्ण से जो कहेंगे उसे कृष्ण अवश्य पूरा करेंगे। श्री कृष्ण, अर्जुन के लिये स्वर्ग को भी छोड़ सकते हैं।

तथैव पार्थः कृष्णार्थे प्राणानपि परित्यजेत्।। सभा० 52/33।।

इसी तरह अर्जुन भी कृष्ण के लिये अपने प्राण भी न्यौछावर कर सकते हैं।

चलेद्धिहिमवान् स्थानान्निष्प्रभः स्याद् दिवाकरः।
शैत्यं सोमात् प्रणश्येत् मत्सत्यं विचलेत् यदि।। सभा० 77/35।।

यदि मेरी बात झूठी हो जायेगी तो हिमालय अपने स्थान से हिल जायेगा, सूर्य की कान्ति नष्ट हो जायेगी और चन्द्रमा की शीतलता नहीं रहेगी।

ममैव त्वं तवैवाहं ये मदीयास्तवैव ते।
यस्त्वां द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्त्वामनु स मामनु।। वन० 12/45।।

हे अर्जुन! तुम मेरे ही हो और मैं तुम्हारा ही हूँ। जो लोग मेरे हैं वे तुम्हारे भी हैं। जो तुमसे द्वेष करता है वह मुझसे भी द्वेष करता है। जो तुम्हारे अनुकूल है वह मेरे भी अनुकूल है।

अनन्यः पार्थ मत्तस्त्वं त्वत्तश्चाहं तथैव च।
नावयोरन्तरं शक्यं वेदितुं भरतर्षभ।। वन० 12/47।।

पार्थ तुम मुझ से अभिन्न हो और मैं तुमसे अलग नहीं हूँ। हम दोनों का भेद नहीं जाना जा सकता।

एवं युवा गुडाकेशः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम्।। विराट० 2/18।।

युवा गुडाकेश (नींद पर वश रखने वाला) अर्जुन धनुर्धारियों में श्रेष्ठ है।

रथी शरी चारुतली निषङ्गी शंखी पताकी कची किरीटी।
खड्गी च धन्वी च विभाति पार्थः शिखी वृत्तः स्रुग्भिरिवाज्यसिक्तः।।

।। विराट 23/9।।

रथ पर बैठे हुए अर्जुन ने बाण, सुन्दर दस्ताने, तरकस, शंख, कवच, मुकुट, खड्ग और धनुष धारण कर रखे हैं। उनके रथ पर पताका लहरा रही है। वे आज स्रुवा आदि यज्ञ पात्रों से घिरी घृत की आहुति से प्रज्वलित अग्नि की भाँति शोभायमान हैं।

अनाथान् दुःखितान् दीनान् कृशान् वृद्धान् पराजितान्।
न्यस्तशस्त्रान् निराशांश्च नाहं हन्मि कृताञ्जलीन्।।

।। विराट 67/4 दा० पा०।।

मैं अनाथ, दुखी, दीन, निर्बल, बूढ़े, हारे हुए, हथियार डालकर आत्मसमर्पण करने वाले, निराश और शरणागत व्यक्ति को नहीं मारता हूँ।

समर्थो बलवान् पार्थो दृढधन्वा जितक्लमः।। उद्योग० 52/6।।

अर्जुन समर्थ और शक्तिशाली है। उसका धनुष मजबूत है और उसे थकान नहीं होती।

एकान्तविजयस्त्वेव श्रूयते फाल्गुनस्य।। उद्योग० 52/10।।

अर्जुन की सदा विजय होती सुनी जाती है।

दर्शनीयो मनस्वी च लक्ष्मीवान् ब्रह्मवर्चसी।
मेधावी सुकृतप्रज्ञो धर्मात्मा पाण्डुनन्दनः।। उद्योग० 53/8।।

पाण्डुपुत्र अर्जुन दर्शनीय, मनस्वी, लक्ष्मीसम्पन्न, ब्रह्मर्षियों के समान तेजस्वी, बुद्धिमान, अच्छी बुद्धि वाले और धर्मात्मा हैं।

बलं वीर्यं च तेजश्च शीघ्रता लघुहस्तता।
अविषादश्च धैर्यं च पार्थान्नान्यत्र विद्यते।। उद्योग० 59/29।।

बल, पराक्रम, तेज, फुर्ती, कार्य कुशलता, धीरज और प्रसन्नता ये सब गुण अर्जुन के अतिरिक्त कहाँ मिलेंगे?

तेजसाऽऽदित्यसदृशो महर्षिसदृशो दमे।

क्षमया पृथिवीतुल्यो महेन्द्रसमविक्रमः।। उद्योग० 90/30।।

अर्जुन सूर्य के समान तेजस्वी हैं, महर्षियों के समान उनकी इन्द्रियाँ उनके वश में है। उनमें पृथ्वी जैसी क्षमा और इन्द्र जैसा पराक्रम है।

धनुर्धरो यस्य समः पृथिव्यां न विद्यते नो भविता कदाचित्।।

।। भीष्म० 22/10।।

अर्जुन के समान धनुर्धर इस पृथ्वी पर न तो है और न कभी होगा।

योधानामर्जुनः श्रेष्ठो गाण्डीवं धनुषां वरम्।। द्रोण० 7/29।।

सारे योद्धाओं में अर्जुन श्रेष्ठ है और धनुषों में गाण्डीव श्रेष्ठ है।

न स्मराम्यनृतं तावन्न स्मरामि पराजयम्।

न स्मरामि प्रतिश्रुत्य किंचिदप्यनृतं कृतम्।। द्रोण० 13/14।।

मैंने कभी झूठ बोला हो यह मुझे याद नहीं आता। न ही मुझे यह याद आता है कि मेरी कभी हार हुई है। न ही मुझे यह याद है कि मैंने कोई प्रतिज्ञा करके उसे झूठ कर दिया हो।

न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः।। द्रोण० 79/26।।

कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममार्जुनात्।। द्रोण 79/27।।

स्त्री, मित्र, सम्बन्धियों और बन्धु-बान्धवों तथा अन्य किसी से भी कहीं अधिक अर्जुन मेरा प्रिय है।

यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्तं चानु स मामनु।

इति संकल्प्यतां बुद्ध्या शरीरार्द्धं ममार्जुनः।। द्रोण० 79/33।।

जो व्यक्ति अर्जुन से द्वेष करता है वह मुझसे भी द्वेष करता है। जो अर्जुन का साथ देता है वह मेरे भी साथ है। आप अपनी बुद्धि से जान लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है।

बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा वाग्भिःशूरा द्विजातयः।

धनुषा फाल्गुनः शूरः कर्णः शूरोः मनोरथैः।। द्रोण० 158/23।।

क्षत्रिय अपनी भुजाओं से वीरता दिखाते हैं, ब्राह्मण वाणी से विद्वता प्रकट करते हैं। अर्जुन धनुष चलाने में सिद्धहस्त हैं और कर्ण मनसूबे बांधने में।

ज्ञानमेकस्थमाचार्ये ज्ञानं योगश्च पाण्डवे।
शौर्यमेकस्थमाचार्ये बलं शौर्यं च पाण्डवे।। द्रोण० 188/45।।

द्रोणाचार्य में सारा ज्ञान समाया हुआ है किन्तु अर्जुन में ज्ञान के साथ योग भी है। द्रोणाचार्य में वीरता भरी है किन्तु अर्जुन में वीरता और बल दोनों हैं।

सर्वेषां पाण्डुपुत्राणां जयः पार्थे प्रतिष्ठितः।। कर्ण० 40/11।।

पाण्डु के सभी पुत्रों की विजय अर्जुन पर निर्भर है।

कान्त्या शशाङ्कस्य जवेन वायोः स्थैर्येण मेरोः क्षमया पृथिव्याः।
सूर्यस्य भासा धनदस्य लक्ष्म्या शौर्येण शक्रस्य बलेन विष्णोः।।
।। कर्ण० 68/13।।

अर्जुन चन्द्रमा की कान्ति, वायु की गति, मेरु पर्वत जैसी स्थिरता, पृथ्वी जैसी क्षमा, सूर्य की चमक, कुबेर की लक्ष्मी, इन्द्र की शूरवीरता और विष्णु के बल से युक्त होगा।

अस्मात् पुरो नो भविता धुनर्धरो नैनं भूतं किंचन जातु जेता।
इच्छन्नयं सर्वभूतानि कुर्याद् वशे वशी सर्व समाप्तविद्यः।। कर्ण 68/12।।

इस अर्जुन से बढ़कर कोई धुनर्धर नहीं होगा। इसे कोई भी प्राणी जीत नहीं सकेगा, अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर यह सभी विद्याएँ प्राप्त करेगा और इच्छा करते ही सभी प्राणियों को अपने वश में कर लेगा।

युद्धधर्मेषु सर्वेषु क्रियाणां नैपुणेषु च।
न त्वया सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।। शान्ति० 19/6।।

सभी तरह के युद्धों में और संग्राम करने की कुशलता में तुम्हारे समान और कोई योद्धा तीनों लोकों में नहीं है।

एकाह्ना निर्दहेयं वै शत्रूनित्यर्जुनोऽब्रवीत्।
न च तत् कृतवानेष शूरमानी ततोऽपतत्।। महाप्रस्थान 2/21।।

अर्जुन को अपनी वीरता का बहुत घमण्ड था। उसने कहा था कि "मैं एक ही दिन में सारे शत्रुओं को भस्म कर डालूँगा" किन्तु ऐसा किया नहीं। इसीलिये आज अर्जुन पृथ्वी पर गिर पड़ा है।

अवमेने धनुर्ग्राहानेष सर्वांश्च फाल्गुनः।
तथा चैतन्न तु तथा कर्तव्यं भूतिमिच्छता।। महाप्रस्थान 2/22।।

अर्जुन ने सभी धनुर्धारियों का अपमान भी किया था। इसलिये अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य को किसी का अपमान नहीं करना चाहिये।

अर्थ

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।।
भीष्म 83/41।।

मनुष्य पैसे का गुलाम है पैसा किसी का गुलाम नहीं होता।

अर्थ इत्येव सर्वेषां कर्मणामव्यतिक्रमः।
न ह्यृतेऽर्थेन वर्तेते धर्मकामाविति श्रुतिः।। शान्ति० 167/12।।

अर्थ ही सारे कामों को निर्विघ्न पूरा करता है। अर्थ के बिना धर्म और काम भी सिद्ध नहीं होते ऐसा शास्त्र कहते हैं।

विषयैरर्थवान् धर्ममाराधयितुमुत्तमम्।
कामं च चरितुं शक्तो दुष्प्रापमकृतात्मभिः।। शान्ति० 167/13।।

धनवान मनुष्य विषय भोगों का और धर्म का भी भली-भांति सम्पादन कर सकता है। असंयमी पुरुषों की दुर्लभ इच्छाएँ भी अर्थ से पूरी की जा सकती हैं।

अर्थस्यावयवावेतौ धर्मकामाविति श्रुतिः।
अर्थसिद्ध्या विनिर्वृत्तावुभावेतौ भविष्यतः।। शान्ति० 167/14।।

शास्त्रों के अनुसार धर्म और काम ये दोनों अर्थ के ही अंग हैं। अर्थ की सिद्धि होने पर धर्म और काम भी सिद्ध हो जाते हैं।

जटाजिनधरा दान्ताः पङ्कदिग्धा जितेन्द्रियाः।
मुण्डा निस्तन्तवश्चापि वसन्त्यर्थार्थिनः पृथक्।। शान्ति० 167/16।।

जटाधारी, मृगचर्म पहनने वाले, संयमी, शरीर में भस्म लगाने वाले, जितेन्द्रिय, सिर मुण्डा कर रहने वाले और ब्रह्मचारी सभी अर्थ चाहते हैं।

आस्तिका नास्तिकाश्चैव नियताः संयमे परे।
अप्रज्ञानं तमोभूतं प्रज्ञानं तु प्रकाशिता।। शान्ति० 167/19।।

आस्तिक, नास्तिक और संयम-नियम करने वाले सभी लोग अर्थ चाहते हैं।

अर्थ का महत्त्व न समझना तमोमय अज्ञान है और अर्थ का महत्त्व समझ लेना मानो ज्ञान का प्रकाश है।

भृत्यान् भोगैर्द्विषो दण्डैर्यो योजयति सोऽर्थवान्।। शान्ति० 167/20।।

जो अपने सेवकों को भोग ऐश्वर्यों से और शत्रुओं को दण्ड देकर अपने वश में रखता है वही धनवान कहलाता है।

आसीनश्च शयानश्च विचरन्नपि वास्थितः।
अर्थयोगं दृढं कुर्याद् योगैरुच्चावचैरपि।। शान्ति० 167/22।।

मनुष्य को सोते-बैठते, चलते-फिरते सदैव अर्थप्राप्ति का प्रयत्न कर अपना पैसा बढ़ाना चाहिये। इसके लिये चाहे किसी भी तरह के उपाय क्यों न करने पड़ें।

अस्मिंस्तु वै विनिर्वृत्ते दुर्लभे परमप्रिये।
इह कामानवाप्नोति प्रत्यक्षं नात्र संशयः।। शान्ति० 167/23।।

अर्थ बहुत दुर्लभ और प्रिय वस्तु है। धन मिल जाने पर मनुष्य इस संसार में अपनी इच्छाएँ पूरी कर सकता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

योऽर्थो धर्मेण संयुक्तो धर्मो यश्चार्थसंयुतः।
तद्धि त्वामृतसंवादं तस्मादेतौ मताविह।। शान्ति० 167/24।।

जो अर्थ, धर्म से संयुक्त है और जो धर्म, अर्थ से संयुक्त है वह आपके लिए अमृत होगा। यह हमारा मत है।

अनर्थस्य न कामोऽस्ति तथार्थोऽधर्मिणः कुत।
तस्मादुद्विजते लोको धर्मादर्थाद् यो बहिष्कृतः।। शान्ति० 167/25।।

निर्धन मनुष्य की इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं। धर्म का पालन न करने वाले को अर्थ नहीं मिलता। इसलिये धर्म और अर्थ से रहित पुरुष से लोग परेशान रहते हैं।

तस्माद् धर्मप्रधानेन साध्योऽर्थः संयतात्मना।
विश्वस्तेषु हि भूतेषु कल्पते सर्वमेव हि।। शान्ति० 167/26।।

इसलिए मनुष्य को अपना मन वश में रखकर जीवन में धर्म को प्रधानता देकर अर्थ प्राप्त करना चाहिये। धर्मपरायण व्यक्ति का सभी विश्वास करते हैं और ऐसा होने पर उसके सब काम बन जाते हैं।

धर्मं समाचरेत् पूर्वं ततोऽर्थं धर्मसंयुतम्।
ततः कामं चरेत् पश्चात् सिद्धार्थः स हि तत्परम्।। शान्ति० 167/27

मनुष्य को पहले धर्म का पालन करना चाहिये। फिर धर्मपूर्वक अर्थ कमाना चाहिये। इसके बाद उसे अपनी कामनाएँ पूरी करनी चाहिएं। इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम पर चलने से मनुष्य के सभी मनोरथ सफल हो जाते हैं।

अनर्थं बाधते ह्यर्थो अर्थं चैव फलान्युत।। अनु० 145 दा० पा० अ V।।

धन अनर्थों को दूर करता है और अधिक धन तथा अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त कराता है।

सुखमर्थवतां लोके कृच्छ्राणां विप्रमोक्षणम्।। अनु० 145 दा० पा०अ V।।

धन, संकटों से छुड़ाता है इसलिये संसार में धनी लोग सुख से रहते हैं।

परार्थं नाहरेद् द्रव्यमनामन्त्र्य तु सर्वदा।। अनु० 145 दा० पा०अ V।।

परायी चीज पूछे बिना कभी भी नहीं लेनी चाहिये।

अर्थवन्तं नरं नित्यं पञ्चाभिघ्नन्ति शत्रवः।
राजा चोरश्च दायादा भूतानि क्षय एव च।।

अर्थमेवमनर्थस्य मूलमित्यवधारय।
न ह्यनर्थाः प्रबाधन्ते नरमर्थविवर्जितम्।। अनु 145 दा० पा० अ XIV।।

धनी मनुष्य पर ये पांच शत्रु सदा चोट करते रहते हैं:-

राजा, चोर, उत्तराधिकारी भाई-बन्धु, दूसरे लोग और धन का नाश। इसलिये अर्थ (धन) ही अनर्थों (मुसीबतों) की जड़ है यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। दरिद्र मनुष्य को मुसीबतें नहीं सतातीं।

अर्थप्राप्तिर्महद् दुःखमाकिंचन्यं परं सुखम्।
उपद्रवेषु चार्थानां दुःखं हि नियतं भवेत्।। अनु 145 दा० पा०अ XIV।।

धन बड़ी कठिनाइयां झेलकर मिलता है इसलिये गरीबी में ही सुख है। धन के नष्ट होने पर मनुष्य को निश्चय ही दुख होता है।

अल्पाहार

अल्पाहारतया त्वग्निं शमयौदर्यमुत्थितम्।। शान्ति० 17/5।।

अपना भोजन कम करके पेट की आग अर्थात् भूख को घटना चाहिये।

भोजनं ह्यन्तराशुद्धं चातुर्मास्ये विधीयते।। शान्ति० 35/29।।

चौमासे (वर्षा ऋतु) में एक दिन छोड़कर भोजन करने का विधान है।

मासार्धमासोपवासाद् यत् तपो मन्यते जनः।
आत्मतन्त्रोपघाती यो न तपस्वी न धर्मवित्।। अनु० 93/4।।

जो लोग पन्द्रह दिन या एक महीने तक उपवास करने को तपस्या मानते हैं वे अपने शरीर को व्यर्थ ही कष्ट देते हैं। केवल उपवास करने वाले न तो तपस्वी होते हैं और न ही धर्म के जानने वाले।

अन्तरासायमाशं च प्रातराशं च यो नरः।
सदोपवासी भवति यो न भुङ्क्तेऽन्तरा पुनः।। अनु० 93/10।।

जो व्यक्ति केवल सवेरे और शाम को भोजन करता है और बीच में कुछ नहीं खाता उसे सदा उपवास करने वाला माना जाता है।

भृत्यातिथिषु यो भुङ्क्ते भुक्तवत्सु नरः सदा।
अमृतं केवलं भुङ्क्ते इति विद्धि युधिष्ठिर।। अनु० 93/13।।

युधिष्ठिर! जो व्यक्ति अपने आश्रितों और अतिथियों के भोजन कर लेने के बाद स्वयं भोजन करता है वह अमृत का भोजन करता है।

देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च संश्रितेभ्यस्तथैव च।
अवशिष्टानि यो भुङ्क्ते तमाहुर्विघसाशिनम्।। अनु० 93/15।।

जो व्यक्ति देवताओं, पितरों और आश्रितों को भोजन कराने के बाद बचे हुए अन्न का भोजन करता है उसे 'विघसाशी' कहते हैं।

शरीरमलशान्त्यर्थमिन्द्रियोच्छोषणाय च।
एकभुक्तोपवासैस्तु धारयन्ते व्रतं नराः।।
लभन्ते विपुलं धर्मं तथाऽऽहारपरिक्षयात्।। अनु० 145 दा० पा०।।

शरीर के दोषों को दूर करने के लिये तथा इन्द्रियों को वश में रखने के लिये मनुष्य एक समय भोजन करते हैं या दोनों समय उपवास रखते हैं। जो लोग अपना आहार घटा देते हैं उन्हें बहुत धर्म अर्थात् स्वास्थ्य लाभ होता है।

सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम्।
नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासविधिर्हि सः।। अनु० 162/40।।

देवताओं ने मनुष्यों के लिये सवेरे और शाम को ही भोजन करने का विधान किया है। सवेरे और शाम के बीच में भोजन नहीं किया जाता। इस नियम का पालन करने से उपवास करने के लाभ मिलते हैं।

अवतार

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्। भीष्म॰28/7।। गीता4/7।।

हे भरतवंशी अर्जुन! संसार में जब कभी धर्म का नाश होने लगता है और अधर्म बढ़ने लगता है तभी मैं साकार रूप से संसार में प्रकट होता हूँ।

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। भीष्म 28/8।। गीता 4/8।।

सज्जनों की रक्षा करने के लिये, दुष्टों को नष्ट करने के लिये और धर्म को स्थापित करने के लिये मैं युग-युग में जन्म लेता हूँ।

अवसर

अन्यथा ह्याचरन् कर्म पुरुषः स्यात् सुबालिशः।। उद्योग॰ 5/2।।

अवसर के विपरीत आचरण करने वाला व्यक्ति मूर्ख होता है।

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत।। उद्योग॰ 39/2।।

भारत! अवसर के विपरीत यदि बृहस्पति भी कुछ कहें तो उनका अपमान ही होगा और उनकी बुद्धि पर लोग हँसेंगे।

न कर्मणा लभ्यते चिन्तया वा नाप्यस्ति दाता पुरुषस्य कश्चित्।
पर्याययोगाद् विहितं विधात्रा कालेन सर्वं लभते मनुष्यः।।
शान्ति॰ 25/5।।

कोई काम करने से या चिन्ता करने से कुछ नहीं मिलता। कोई ऐसा व्यक्ति भी नहीं है जो किसी को उसकी नष्ट हुई वस्तु दे दे। विधाता का यही नियम है कि मनुष्य को बारी-बारी से (पर्याय योग) समय आने पर सब कुछ मिल जाता है।

न बुद्धिशास्त्राध्ययनेन शक्यं प्राप्तुं विशेषं मनुजैरकाले।
मूर्खोऽपि चाप्नोति कदाचिदर्थान् कालो हि कार्यं प्रति निर्विशेषः।।
शा॰ 25/6

बुद्धि से या शास्त्र पढ़ने से भी मनुष्य अवसर न आने पर कोई विशेष वस्तु नहीं

पा सकता। कभी–कभी मूर्ख को भी खूब रुपया–पैसा मिल जाता है। इसलिये अवसर पर ही काम सिद्ध होता है।

प्राप्ते च प्रहरेत् काले न संवर्तते पुनः।। शान्ति० 103/20।।

अवसर मिलते ही वार करना चाहिये क्योंकि मौका बार-बार नहीं मिलता।

कालातीतमिहार्थं तु न प्रशंसन्ति पण्डिताः।। शान्ति० 138/60।।

काम बनने का अवसर बीत जाने की विद्वान प्रशंसा नहीं करते।

अकाले कृत्यमारब्धं कर्तुर्नार्थाय कल्पते।
तदेव काल आरब्धं महतेऽर्थाय कल्पते।। शान्ति 138/95।।

अवसर आये बिना शुरू किया गया काम लाभदायक या सफल नहीं होता किन्तु ठीक समय पर शुरू किया गया काम सफल हो जाता है।

अविश्वास

यस्मिन्नाश्वसते कश्चिद् यश्च नाश्वसिति क्वचित्।
न तौ धीराः प्रशंसन्ति नित्यमुद्विग्नमानसौ।। शान्ति० 138/59।।

जिस व्यक्ति का कोई विश्वास नहीं करता और जो व्यक्ति किसी का विश्वास नहीं करता ऐसे दोनों तरह के लोगों की विद्वान सराहना नहीं करते क्योंकि इन दोनों के मन अशान्त बने रहते हैं।

संक्षेपो नीतिशास्त्राणामविश्वासः परो मतः।। शान्ति 138/196।।
नृषु तस्मादविश्वासः पुष्कलं हितमात्मनः।।

संक्षेप में नीतिशास्त्रों का सार यही है कि किसी का विश्वास न करना ही उचित है। इसलिये मनुष्यों पर विश्वास न करने से अपना बहुत भला होता है।

वध्यन्ते न ह्यविश्वस्ताः शत्रुभिर्दुर्बला अपि।। शा० 138/197।।
विश्वस्तास्तेषु वध्यन्ते बलवन्तोऽपि दुर्बलैः।

जो लोग किसी का बहुत विश्वास नहीं करते हैं वे कमजोर होने पर भी बलवान शत्रु से नहीं मारे जाते किन्तु विश्वास करने वाले बलवानों को भी निर्बल शत्रु मार डालता है।

एकान्ततो न विश्वासः कार्यो विश्वासघातकैः।। शान्ति० 139/128।।

विश्वासघाती मनुष्यों का तो पूरी तरह विश्वास नहीं करना चाहिये।

पूजितस्यार्थमानाभ्यां जन्तोः पूर्वापकारिणः।
मनो भवत्यविश्वस्तं कर्म त्रासयतेऽबलान्।। शान्ति० 139/32।।

जो व्यक्ति पहले हमारा बुरा कर चुका हो यदि उसे पैसा और आदर देकर प्रसन्न भी किया जाय तब भी मन में विश्वास नहीं जमता क्योंकि कमजोर मनुष्यों को उनके पिछले बुरे कामों से डर लगा रहता है।

अशङ्क्यमपि शङ्केत नित्यं शङ्केत शङ्कितात्।
भयं ह्यशङ्किताज्जातं समूलमपि कृन्तति।। शन्ति 140/45।।

जो सन्देह करने योग्य न हो उस पर भी सन्देह करना चाहिये और सन्देह वाले पर तो सदा अविश्वास करना चाहिये। जिससे कोई डर नहीं होता उस पर सन्देह न करने से जो संकट आ जाता है वह जड़ समेत नष्ट कर देता है।

असत्य

नानृतं हि सदा लोके पूज्यते दानवोत्तम।। आदि 5/34।।

दानवश्रेष्ठ! संसार में असत्य की प्रतिष्ठा कभी नहीं होती।

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि।।

आदि० 82/16।।

राजन्! पांच प्रकार का असत्य भाषण पापरहित बताया गया है। ये हैं–हँसी में, स्त्रियों से, विवाह के अवसर पर, प्राण संकट में पड़ने पर और धन नष्ट होने पर।

पृष्टं तु साक्ष्ये प्रवदन्तमन्यथा वदन्ति मिथ्या पतितं नरेन्द्र।
एकार्थतायां तु समाहितायां मिथ्या वदन्तं त्वनृतं हिनस्ति।।

आदि० 82/17।।

महाराज! किसी निर्दोष प्राणी को बचाने के लिये झूठी गवाही देने वाले को पापी कहना अनुचित है किन्तु अपने और दूसरे के प्राण बचाने के अवसर पर अपने ही प्राण बचाने के लिये झूठ बोलना ठीक नहीं होता।

न रूपमनृतस्यास्ति नानृतस्यास्ति संततिः।
नानृतस्याधिपत्यं च कुत एव गतिः शुभा। उद्योग० 107/9।।

झूठे मनुष्य का कोई जीवन नहीं होता न ही झूठे को सन्तान मिलती है। झूठे मनुष्य को प्रभुत्व भी नहीं मिलता। उसे शुभ गति भी नहीं मिलती।

अनृतं जीवितस्यार्थे वदन्न स्पृशतेऽनृतैः।। द्रोण० 190/47।।

किसी की प्राण रक्षा के लिये यदि झूठ बोलना पड़े तो झूठ बोलने वाले को असत्य बोलने का पाप नहीं लगता।

प्राणत्राणेऽनृतं वाच्यमात्मनो वा परस्य च।
गुर्वर्थे स्त्रीषु चैव स्याद् विवाहकरणेषु च।। शान्ति० 34/25।।

अपने या किसी दूसरे के प्राण बचाने के लिये, गुरु के लिये, स्त्रियों से विनोद करते समय और विवाह के प्रसंग में यदि झूठ बोल दिया जाय तो पाप नहीं लगता।

प्राणात्यये विवाहे च वक्तव्यमनृतं भवेत्।। शान्ति 109/19।।

अर्थस्य रक्षणार्थाय परेषां धर्मकारणात्।

प्राणों पर संकट आ पड़ने पर, विवाह के अवसर पर, दूसरे के धन की रक्षा करने के लिये और धर्म की रक्षा के लिये झूठ बोला जा सकता है।

अनृतं तमसो रूपं तमसा नीयते ह्यधः।
तमोग्रस्ता न पश्यन्ति प्रकाशं तमसाऽऽवृत्तः।। शान्ति० 190/2।।

असत्य अन्धकार ही है। अन्धकार या तमोगुण मनुष्य को गिराता है। अज्ञान के अन्धकार से घिरे मनुष्य अर्थात् तमोगुणी व्यक्ति ज्ञान का प्रकाश नहीं देख पाते।

नायं लोकोऽस्ति न परो न च पूर्वान् स तारयेत्।
कुत एष जनिष्यांस्तु मृषावादपरायणः।। शान्ति० 199/61।।

झूठ बोलने वाले को न इस लोक में सुख मिलता है न परलोक में। वह अपने पूर्वजों को भी नहीं तार सकता। वह होने वाली सन्तान का भी भला नहीं करता।

मृषावादे भवेद् दोषाः सत्ये दोषो न विद्यते।। अनुशासन 38/9।।

झूठ बोलने से दोष लगता है। सत्य बोलने से दोष नहीं लगता।

अनृतं न वदेद् विद्वांस्तपस्तप्त्वा न विस्मयेत्।
नार्तोऽप्यभिभवेद् विप्रान् न दत्त्वा परिकीर्तयेत्।।

आश्व० दा० पा० अ XII।।

विद्वान व्यक्ति को झूठ नहीं बोलना चाहिये। उसे तपस्या करके अभिमान नहीं

करना चाहिये। कष्ट में पड़ने पर भी ब्राह्मण का अपमान नहीं करना चाहिये। दान देकर उस दान की चर्चा नहीं करनी चाहिये।

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात्।
आयुर्विप्रावमानेन दानं तु परिकीर्तनात्।। आश्व० दा० पा० अ XII।।

झूठ बोलने से यज्ञ का फल नष्ट हो जाता है। अभिमान करने से तपस्या नष्ट हो जाती है। ब्राह्मण का अपमान करने से आयु नष्ट हो जाती है और दान का ढिंढोरा पीटने से दान का फल नष्ट हो जाता है।

असन्तोष

असन्तोषः श्रियो मूलं तस्मात् तं कामयाम्यहम्।
समुच्छ्रये यो यतते स राजन् परमो नयः।। सभा० 55/11।।

असन्तुष्ट रहना ही सम्पत्ति पाने का मूल कारण होता है अतः मैं इसे अच्छा मानता हूँ। राजन्! जो व्यक्ति उन्नति के लिये प्रयत्न करता है उसका ऐसा प्रयत्न ही सर्वोत्तम राजनीति होती है।

असन्तोषपरा मूढाः सन्तोषं यान्ति पण्डिताः।। वन० 216/22।।

मूर्ख मनुष्य असन्तोषी होते हैं। ज्ञानवान् पुरुष सन्तुष्ट रहते हैं।

वैचित्रवीर्य पुरुषाः क्रोधहर्षसमावृताः।
सिता बहुविधैः पाशैर्ये न तुष्टाः स्वकैर्धनैः।। उद्योग० 69/13।।
यमस्य वशमायान्ति काममूढाः पुनः पुनः।
अन्धनेत्रा यथैवान्धा नीयमानाः स्वकर्मभिः।। उद्योग० 69/14।।

विचित्रवीर्यकुमार! जो मनुष्य अपने धन से सन्तुष्ट नहीं होते और काम आदि तरह-तरह के बन्धनों में जकड़े रहते हैं वे क्रोध और हर्ष के भंवर में पड़े हुए अपने कर्मों से यमराज के बन्धन में उसी तरह पड़ जाते हैं जैसे अन्धा अपने साथी अन्धों को भी गड्ढे में गिरा देता है।

अहंकार

दर्पान्मानः समभवन्मानात् क्रोधोव्यजायत।
क्रोधादह्रीस्ततोऽलज्जा वृत्तं तेषां ततोऽनशत्।। वन० 94/8।।

असुरों में घमण्ड से अभिमान आ गया और मान से क्रोध। क्रोध से निर्लज्जता आयी और निर्लज्जता से उनका सदाचार नष्ट हो गया।

तानलज्जान् गतह्रीकान् हीनवृत्तान् वृथाव्रतान्।
क्षमा लक्ष्मीः स्वधर्मश्च न चिरात् प्रजहुस्ततः।। वन० 94/9।।

लज्जा, संकोच और सदाचार से हीन और निष्फल व्रतों वाले उन असुरों को क्षमा, लक्ष्मी और स्वधर्म ने शीघ्र ही त्याग दिया।

न हि मानप्रदग्धानां कश्चिदस्ति शमः क्वचित्।। उद्योग० 123/17।।

अभिमान की आग में जलने वालों को कहीं शान्ति नहीं मिलती।

न गर्वेण भवेत् प्राज्ञः कदाचिदपि मानवः।। शान्ति० 36/9।।

बुद्धिमान मनुष्य को कभी भी अभिमान नहीं करना चाहिये।

दर्पो नाम श्रियः पुत्रो जज्ञेऽधर्मादिति श्रुतिः।
राजा भवति तं जित्वा दासस्तेन पराजितः।। शान्ति 90/28।।

श्रुति के अनुसार अभिमान सम्पत्ति का पुत्र है जो अधर्म के अंश से पैदा हुआ है। अभिमान को जीत लेने वाला राजा होता है और जो अभिमान से हार जाता है वह इसका दास बन जाता है।

सर्वे लाभाः साभिमाना इति सत्यवती श्रुतिः।। शान्ति० 180/10।।

संसार के जितने भी लाभ हैं उन सबके कारण मनुष्य अभिमान करने लगता है कि यह लाभ मुझे अपने पुरुषार्थ से हुआ है। यह बात सत्य बात बताने वाले वेदज्ञान में कही गई है।

अज्ञान प्रभवं दुःखमहंकारं परित्यजेत्।। शान्ति० 212/18।।

अज्ञान से उत्पन्न दुःख और अहंकार को छोड़ देना चाहिये।

महाभूतानीन्द्रियाणि गुणाः सत्त्वं रजस्तमः।
त्रैलोक्यं सेश्वरं सर्वमहंकारे प्रतिष्ठितम्।। शान्ति० 212/19।।

पंचमहाभूत, इन्द्रियाँ, सत्त्व, रजस् और तमस् ये गुण तथा लोकपालों सहित तीनों लोक यह सब अहंकार (समष्टिबुद्धि) में प्रतिष्ठित हैं।

यथेह नियतः कालो दर्शयत्यार्तवान् गुणान्।
तद्वद् भूतेष्वहंकारं विद्यात् कर्मप्रवर्तकम्।। शान्ति० 212/20।।

जैसे निश्चित समय आने पर ऋतुओं के अनुसार फल-फूल उगने लगते हैं वैसे ही प्राणियों को अंहकार ही कामों में लगाता है।

प्रभवश्च प्रभावश्च नात्मसंस्थः कदाचन।। शान्ति० 224/27।।

प्रभुता और प्रभाव अपने अधीन नहीं है।

मुञ्चेच्छां कामभोगेषु मुञ्चेमं श्रीभवं मदम्।। शान्ति०. 227/64
एवं स्वराज्यनाशे त्वं शोकं सम्प्रसहिष्यसि।

तुम काम भोगों की इच्छा छोड़ दो। तुम लक्ष्मी के मद को भी छोड़ दो। ऐसी अवस्था में यदि तुम्हारा राज्य नष्ट भी हो जायेगा तब भी तुम उस दुःख को सहन कर सकोगे।

अधीयानः पण्डितं मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परेषाम्।
प्रभ्रश्यतेऽसौ चरते न सत्यं लोकास्तस्य ह्यन्तवन्तो भवन्ति।।

अनु० 22/13।।

जो व्यक्ति पढ़-लिखकर अपने को बहुत विद्वान मानने लगता है और अपने पाण्डित्य से दूसरों का यश नष्ट करता है वह धर्म से भ्रष्ट होकर सत्यमार्ग पर नहीं चलता इसलिये उसे नष्ट हो जाने वाले लोक मिलते हैं।

अभिमानः श्रियं हन्ति पुरुषस्याल्पमेधसः।
गर्भेण दुष्यते कन्या गृहवासेन च द्विजः।। अनुशासन 36/17।।

कम बुद्धि वाला पुरुष यदि अभिमान करता है तो उसकी लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। गर्भ धारण करने से कन्या और घर में ही रहने से ब्राह्मण दूषित हो जाते हैं।

अन्यथा बहु बुद्ध्याढ्यो वाक्यं वदति संसदि।
अन्यथैव ह्यहंवादी दुर्बलं वदते वचः।। अनु० 146/30।।

अत्यन्त बुद्धिमान् मनुष्य सभा में अपने ही ढंग से बात कहता है। किन्तु अहंकारी मनुष्य सभा में हल्की बातें कहता है।

अहिंसा

न वधः पूज्यते वेदे हितं नैव कथंचन।। भीष्म 3/54।।

वेद में हिंसा की प्रशंसा नहीं की गई है। हिंसा से किसी प्रकार का भला नहीं हो सकता।

अहिंसा सर्वभूतेषु धर्मं ज्यायस्तरं विदुः।। द्रोण० 192/38।।

सभी प्राणियों को न मारना सबसे अच्छा धर्म माना गया है।

प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान् मतो मम।
अनृतां वा वदेद् वाचं न तु हिंस्यात् कथंचन।। कर्ण० 69/23।।

प्रिय! मेरे विचार में किसी भी प्राणी को न मारना ही सबसे अच्छी बात है। किसी की प्राण रक्षा के लिये यदि झूठ भी बोलना पड़े तो बोल दे, किन्तु किसी को मारे नहीं।

अयुध्यमानस्य वधस्तथाशत्रोश्च मानद।
पराङ्मुखस्य द्रवतः शरणं चापि गच्छतः।। कर्ण 69/25।।

कृताञ्जलेः प्रपन्नस्य प्रमत्तस्य तथैव च।
न वधः पूज्यते सद्भिस्तच्च सर्वं गुरौ तव।। कर्ण० 69/26।।

हे माननीय! जो युद्ध न कर रहा हो, शत्रुता न रखता हो, युद्ध में पीठ दिखाकर भाग रहा हो, शरण में आ गया हो, हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो और असावधान या पागल हो उसे नहीं मारना चाहिये। अर्जुन! तुम्हारे बड़े भाई युधिष्ठिर पर ये सभी बातें पूरी उतरती हैं।

प्रकीर्णकेशे विमुखे ब्राह्मणेऽथ कृताञ्जलौ।। कर्ण 90/111।।

शरणागते न्यस्तशस्त्रे याचमाने तथाऽर्जुन।
अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा।। कर्ण 90/112।।

न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि शूराः साधुव्रते स्थिताः।

अर्जुन! जो व्यक्ति अपने केश खोले खड़ा हो, जिसने युद्ध से मुँह मोड़ लिया हो, जो ब्राह्मण हो या हाथ जोड़कर खड़ा हो और शरण में आ गया हो, जिसने हथियार रख दिये हों, जो अपने प्राणों की भीख मांग रहा हो, जिसके हाथ में बाण न हो, जिसका कवच और हथियार टूट फूट गये हों उस पर अच्छे वीर प्रहार नहीं करते।

न वधः पूज्यते लोके सुप्तानामिह धर्मतः।
तथैवपास्तशस्त्राणां विमुक्तरथवाजिनाम्।। सौप्तिक 5/11।।

ये च ब्रूयूस्तवास्मीति ये च स्युः शरणागताः।
विमुक्तमूर्धजा ये च ये चापि हतवाहनाः।। सौप्तिक 5/12।।

जो सोये हुए हों, जिन्होंने हथियार डाल दिये हों, जिन्होंने रथ और घोड़े खोल

दिये हों, मैं आपका ही हूँ ऐसा कहने वालों का, जो शरण में आ गये हों, जिनके सिर के बाल खुले हों और जिनके वाहन (सवारी) नष्ट हो गए हों उन्हें मारना धर्म की दृष्टि से ठीक नहीं होता।

गोब्राह्मणनृपस्त्रीषु सख्युर्मातुर्गुरोस्तथा।। सौप्तिक 6/21।।
हीनप्राणजडान्धेषु सुप्तभीतोत्थितेषु च।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तेषु न शस्त्राणि च पातयेत्।। सौप्तिक 6/22।।

गाय, ब्राह्मण, राजा, स्त्री, मित्र, माता, गुरु, कमजोर, जड़, अन्धे, सोये हुए, डरे हुए, एकदम जागे हुए, पागल, शराब के नशे में चूर और असावधान पुरुष पर हथियार नहीं चलाने चाहियें।

वृथा पशुसमालम्भं नैव कुर्यान्न कारयेत्।। शान्ति० 34/28।।

मनुष्य को पशुओं की हिंसा बिना बात नहीं करनी चाहिये और न ही करानी चाहिये।

मा वधीस्त्वं स्त्रियं भीरुं मा शिशुं मा तपस्विनम्।
नायुद्ध्यमानो हन्तव्यो न च ग्राह्या बलात् स्त्रियः।। शान्ति० 135/13।।

तुम्हें स्त्री, डरे हुए प्राणी, शिशु, तपस्वी, युद्ध न करने वाले किसी भी पुरुष को नहीं मारना चाहिये और न ही जबर्दस्ती स्त्री को छीनना चाहिये।

सर्वथा स्त्री न हन्तव्या सर्वसत्त्वेषु केनचित्।। शान्ति० 135/14।।

किसी को भी किसी भी प्राणी की स्त्री जाति को नहीं मारना चाहिये।

न हिंसयति यो जन्तून् मनोवाक्काय हेतुभिः।
जीवितार्थापनयनैः प्राणिभिर्न स हिंस्यते।। शान्ति० 175/27।।

जो मनुष्य मन, वचन और शरीर से प्राणियों की हिंसा नहीं करता उसे भी जीवन और धन नष्ट करने वाले प्राणी नहीं मारते।

एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमपिधीयते।
अमृतः स नित्यं वसति यो हिंसां न प्रपद्यते।। शान्ति० 245/19।।

उसी प्रकार सारा धर्म और अर्थ अहिंसा में समाया हुआ है। जो व्यक्ति किसी की हिंसा नहीं करता वह जन्म-मरण से मुक्त (अमृत) होकर रहता है।

सर्वकर्मस्वहिंसा हि धर्मात्मा मनुरब्रबीत्।
कामकाराद् विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून् नराः।। शान्ति० 265/5।।

धर्मात्मा मनु ने सभी कर्मों में अहिंसा का ही प्रतिपादन किया है। मनुष्य अपनी इच्छा से ही यज्ञ की बाह्यवेदी पर पशुओं का बलिदान करते हैं।

अहिंसा सर्वभूतेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता।। शान्ति० 265/6।।

सभी प्राणियों के लिये अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म मानी गयी है।

सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्त्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम्।। शान्ति० 265/9।।

शराब, मछली, मधु, मांस, आसव तथा तिल और चावल की खिचड़ी का यज्ञों में विधान धूर्तों ने ही प्रचलित किया है। वेदों में इनके उपयोग का विधान नहीं है।

यथा शरीरं न ग्लायेन्नेयान्मृत्युवशं यथा।
तथा कर्मसु वर्तेत समर्थो धर्ममाचरेत्।। शान्ति० 265/14।।

सभी कर्मों में इस तरह लगना चाहिये जिससे शरीर की शक्ति समाप्त न हो और मृत्यु न हो जाय क्योंकि शरीर के समर्थ होने पर ही मनुष्य धर्म का पालन कर सकता है।

अहिंसा सकलो धर्मो हिंसाधर्मस्तथाहितः।। शान्ति० 272/20।।

अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्म है। हिंसा अधर्म है और अधर्म से किसी का भला नहीं होता।

रूपमैश्वर्यमारोग्यमहिंसा फलमश्नुते।। अनुशासन 7/15।।

अहिंसा का पालन करने से रूप, ऐश्वर्य और आरोग्य की प्राप्ति होती है।

आत्मोपमस्तु भूतेषु यो वै भवति पूरुषः।
न्यस्तदण्डो जितक्रोधः स प्रेत्य सुखमेधते।। अनु० 113/6।।

जो मनुष्य सभी प्राणियों को अपने जैसा ही समझता है, किसी को नहीं मारता पीटता तथा क्रोध पर काबू पा लेता है वह मृत्यु के बाद सुख भोगता है।

यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पदगामिनाम्।
सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे।। अनु० 114/6।।
एवं लोकेष्वहिंसा तु निर्दिष्टा धर्मतः पुरा।

जैसे हाथी के पाँव में चलने वाले सभी प्राणियों के पैर समा जाते हैं वैसे ही इस संसार में अहिंसा में सारे धर्मों का समावेश हो जाता है। अहिंसा का पालन करने से सभी धर्मों का पालन हो जाता है।

कर्मणा लिप्यते जन्तुर्वाचा च मनसापि च।। अनु० 114/7।।

पूर्वं तु मनसा त्यक्त्वा तथा वाचाथ कर्मणा।
न भक्षयति यो मांसं त्रिविधं स विमुच्यते।। अनु० 114/8।।

प्राणी, मन, वचन और कर्म से हिंसा करता है। किन्तु जो मनुष्य पहले मन से और फिर वाणी और अपने कामों से हिंसा का त्याग करके मांस नहीं खाता वह तीनों प्रकार की हिंसा के दोषों से छूट जाता है।

रूपमव्यङ्गतामायुर्बुद्धिं सत्त्वं बलं स्मृतिम्।
प्राप्तुकामैर्नरैर्हिंसा वर्जिता वै महात्मभिः।। अनु० 115/6।।

जो मनुष्य सुन्दरता, पूर्णाङ्गता, दीर्घायु, उत्तम बुद्धि, आरोग्य, बल और स्मरणशक्ति पाना चाहते हैं ऐसे महापुरुष हिंसा को सदा के लिए छोड़ देते हैं।

अधृष्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु।
साधूनां सम्मतो नित्यं भवेन्मांसं विवर्जयन्।। अनु० 115/11।।

जो मनुष्य मांस खाना छोड़ देता है उसको कोई भी प्राणी दबा नहीं सकता। सभी प्राणी उसका विश्वास करते हैं और अच्छे लोग उसकी सदा प्रशंसा करते हैं।

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते।। अनु० 115/23।।

अहिंसा सबसे अच्छा धर्म है। अहिंसा सबसे अच्छी तपस्या है। अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ सत्य है क्योंकि उसी से धर्म चलता है।

शरण्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु।
अनुद्वेगकरो लोके न चाप्युद्विजते सदा।। अनु० 115/28।।

मांस न खाने वाला मनुष्य सभी प्राणियों को शरण देने वाला और सभी प्राणियों का विश्वासपात्र बन जाता है। संसार में वह किसी को दुःखी नहीं करता और अपने आप भी कभी दुःख नहीं पाता।

धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत्।
मांसस्याभक्षणं प्राहुर्नियताः परमर्षयः।। अनु० 115/35।।

नियमपरायण महर्षियों ने मांस खाना छोड़ देने को धन, यश, आयु और स्वर्ग पाने का उपाय बताया है। मांस न खाने से मनुष्य का महान् कल्याण होता है।

ये भक्षयन्ति मांसानि भूतानां जीवितैषिणाम्।
भक्ष्यन्ते तेऽपि भूतैस्तैरिति मे नास्ति संशयः।। अनु० 116/24

जो जीवित रहना चाहने वाले प्राणियों का मांस खाते हैं उन्हें दूसरे जन्म में वही प्राणी निश्चय ही खाते हैं।

माम् स भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वमनुबुद्धयस्व भारत।। अनु० 116/25।।

हे भरतनन्दन! आज जो मनुष्य मुझे खा रहा है उसे मैं भी कभी खाऊँगा। यही मांस का मांसत्व अर्थात् मांस शब्द का अर्थ है।

येन येन शरीरेण यद् यत् कर्म करोति यः।
तेन तेन शरीरेण तत्तत् फलमुपाश्नुते।। अनु० 116/27।।

प्राणी जिस जिस शरीर से जैसा काम करता है वह उस-उस शरीर से अपने किये कर्म का फल भोगता है।

अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परमं फलम्।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्।। अनु० 116/29।।

अहिंसा सबसे श्रेष्ठ यज्ञ है। अहिंसा का फल अच्छा मिलता है। अहिंसा सबसे अच्छा मित्र और सबसे अच्छा सुख है।

अहिंस्रस्य तपोऽक्षय्यमहिंस्रो यजते सदा।
अहिंस्रः सर्वभूतानां यथा माता तथा पिता।। अनु० 116/31।।

हिंसा न करने वाले की तपस्या कभी नष्ट नहीं होती। अहिंसक मनुष्य सदा यज्ञ करता रहता है। अहिंसक पुरुष सभी प्राणियों के लिये माता-पिता के समान होता है।

अहिंसा परमो धर्मो ह्यहिंसा परमं सुखम्।
अहिंसा धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु परमं पदम्।। अनु० 145 दा० पा०।।

अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है। अहिंसा से अत्यधिक सुख मिलता है। सभी धर्मशास्त्रों में अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ पद माना गया है।

अहिंसा सर्वभूतानामेतत् कृत्यतमं मतम्।। आश्व० 50/2।।

सभी प्राणियों की अहिंसा सर्वश्रेष्ठ कर्म माना गया है।

आकाश

अनन्तमेतदाकाशं सिद्धदैवतसेवितम्।
रम्यं नानाश्रयाकीर्णं यस्यान्तो नाधिगम्यते।। शान्ति० 182/23।।

यह आकाश अनन्त है। इसमें सिद्ध पुरुष और देवता निवास करते हैं। इस रमणीय आकाश में अनेक लोक हैं। इसका अन्त नहीं है।

ऊर्ध्वं गतेरधस्तात्तु चन्द्रादित्यौ न दृश्यतः।
तत्र देवाः स्वयं दीप्ता भास्वराभाग्निवर्चसः।। शान्ति० 182/24।।

अनन्त आकाश में ऊपर या नीचे जाने पर सूर्य और चन्द्रमा नहीं दिखते। वहाँ सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी देवता अपनी आभा से स्वयं ही प्रकाशित होते हैं।

ते चाप्यन्तं न पश्यन्ति नभसः प्रथितौजसः।
दुर्गमत्वादनन्तत्वादिति मे विद्धि मानद।। शान्ति० 182/25।।

हे माननीय! वे तेजस्वी देवता भी आकाश का अन्त नहीं देख पाते, क्योंकि आकाश अनन्त है और दुर्गम है।

अग्निमारुततोयानां वर्णाः क्षितितलस्य च।
आकाशादवगृह्यन्ते भिद्यन्तेऽतत्त्वदर्शनात्।। शान्ति० 182/30।।

अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी के रंग-रूप आकाश से ही आते हैं। किन्तु वास्तविक ज्ञान न होने के कारण ये भिन्न लगते हैं।

आत्म प्रशंसा

कामं नैतत् प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम्।
गुणसंकीर्तनं चापि स्वयमेव शतक्रतो।। आदि० 34/2।।

हे इन्द्र! साधु पुरुष अपने बल की प्रशंसा और अपने गुणों का बखान करना अच्छा नहीं मानते।

न ह्यात्मस्तव संयुक्तं वक्तव्यमनिमित्ततः।। आदि० 34/3।।

अकारण ही अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये।

किं श्लाघसे दुर्लभो वै मनीषी।। वन० 133/8।।

अपनी प्रशंसा क्यों करते हो, ज्ञानी पुरुष मिलना बड़ा कठिन है।

न लोके राजते मूर्खः केवलमात्मप्रशंसया।। वन० 207/49।।

मूर्ख व्यक्ति आत्मप्रशंसा के बल से ही जगत् में प्रतिष्ठा नहीं पाता।

असदाचरितं ह्येतद् यदात्मानं प्रशंसति।। उद्योग० 61/24।।

अपनी प्रशंसा करना भले आदमी का काम नहीं है।

आर्येण हि न वक्तव्या कदाचित् स्तुतिरात्मनः।। द्रोण० 195/21।।

श्रेष्ठ पुरुष को कभी भी अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये।

सर्वो हि मन्यते लोक आत्मानं बुद्धिमत्तरम्।
सर्वस्यात्मा बहुमतः सर्वात्मानं प्रशंसति।। सौप्तिक 3/4।।

सभी लोग अपने आप को बहुत बुद्धिमान समझते हैं। उन्हें अपनी बुद्धि ही बहुत महत्त्वपूर्ण दिखाई देती है। सब अपनी ही बुद्धि की प्रशंसा करते हैं।

निर्गुणास्त्वेव भूयिष्ठमात्मसम्भाविता नराः।
दोषैरन्यान् गुणवतः क्षिपन्त्यात्मगुणक्षयात्।। शान्ति० 287/26।।

गुणहीन व्यक्ति ही अधिकतर अपनी प्रशंसा किया करते हैं। वे अपने गुणों की कमी देखकर गुणवान पुरुषों के गुणों में दोष दिखाकर गुणी पुरुषों पर आक्षेप किया करते हैं।

अनूच्यमानास्तु पुनस्ते मन्यन्ते महाजनात्।
गुणवत्तरमात्मानं स्वेन मानेन दर्पिताः।। शान्ति० 287/27।।

यदि ऐसे लोगों को उत्तर न दिया जाय तो वे अपने घमण्ड में भरकर अपने आपको महापुरुषों से भी अधिक गुणवान मानने लगें।

अब्रुवन् कस्यचिन्निन्दामात्मपूजामवर्णयन्।
विपश्चिद् गुणसम्पन्नः प्राप्नोत्येव महद् यशः।। शान्ति० 287/28।।

जो मनुष्य किसी की निन्दा और अपनी प्रशंसा नहीं करता ऐसा गुणवान और विद्वान व्यक्ति ही महान यश का भागी होता है।

अब्रुवन् वाति सुरभिगन्धिः सुमनसां शुचिः।
तथैवाव्याहरन् भाति विमलो भानुरम्बरे।। शान्ति० 87/29।।

फूलों की मनोहर और पवित्र सुगन्ध बिना बोले ही महक उठती हैं। निर्मल सूर्य आत्मप्रशंसा किये बिना ही आकाश में चमक उठता है।

न लोके दीप्यते मूर्खः केवलात्मप्रशंसया।
अपि चापिहितः श्वभ्रे कृतविद्यः प्रकाशते।। शान्ति० 287/31।।

मूर्ख अपनी प्रशंसा करने से ही संसार में प्रसिद्धि नहीं पा सकता। विद्वान् पुरुष गुफा में छिपा रहे तो भी उनकी सर्वत्र प्रसिद्धि हो जाती है।

असदुच्चैरपि प्रोक्तः शब्दः समुपशाम्यति।
दीप्यते त्वेव लोकेषु शनैरपि सुभाषितम्।। शान्ति० 287/32।।

जोर-जोर से कही गई बुरी बात थोड़ी ही देर में शून्य आकाश में शान्त हो जाती है किन्तु धीरे से कही गई अच्छी बात का संसार में आदर किया जाता है।

आत्महत्या

आत्मघाती ह्यघो याति वाच्यतां चायशस्करीम्।। वन० 252/2।।

आत्महत्या करने वाले को अधोगति मिलती है और लोग उसकी निन्दा करते हैं। निन्दा से उसका अपयश होता है।

हत्वाऽऽत्मानमात्मना प्राप्नुयास्त्वं वधाद् भ्रातुर्नरकं चाति घोरम्।।
कर्ण० 70/28।।

भाई की हत्या करने से जो घोर नरक मिलता है अपनी हत्या करने से उससे भी अधिक भयंकर नरक मिलता है।

आत्मा

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव भविष्यामः सर्वे वयमतः परमः।। भीष्म० 26/12; गीता2/12।।

ऐसी बात नहीं है कि मैं पहले नहीं था या तुम और ये राजा भी नहीं थे। और न ही ऐसा ही है कि हम सब आगे भी भविष्य में भी नहीं रहेंगे।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।। भीष्म० 26/13; गीता 2/13

जैसे इस शरीर में कुमारावस्था, युवावस्था और बुढ़ापा आता है वैसे ही आत्मा; दूसरे शरीर में चला जाता है। अतः तत्त्वज्ञान या वास्तविकता को जानने वाले मृत्यु होने पर परेशान नहीं होते।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत।।
भीष्म० 26/17; गीता 2/18।।

हमारे इस शरीर में रहने वाला, नित्य आत्मा कभी नहीं मरता। इस आत्मा का ठीक- ठीक स्वरूप भी समझ में नहीं आता। हमारा शरीर नष्ट हो जाता है अतः तुम युद्ध करो।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा ना भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।

भीष्म० 26/20; गीता 2/20।।

प्राणियों का आत्मा न कभी पैदा होता है और न ही मरता है। यह आत्मा पहले कभी पैदा होकर बार-बार उत्पन्न भी नहीं होता। यह आत्मा अज अर्थात् कभी पैदा न होने वाला, नित्य, शाश्वत अर्थात् सदा रहने वाला और पुराण अर्थात् पुरातन और सनातन है। शरीर के मारे जाने पर यह आत्मा नहीं मारा जाता।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

।। भीष्म० 26/22; गीता 2/22।।

जैसे कोई मनुष्य फटे-पुराने कपड़े उतार कर नये कपड़े पहिन लेता है वैसे ही हमारा आत्मा बूढ़े शरीर को त्याग कर नये शरीर में चला जाता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।

।। भीष्म० 26/23; गीता 2/23।।

इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, आग जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती।

अव्यक्योऽयमचिन्त्योऽयमविकार्यो ऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।

।। भीष्म० 26/25; गीता 2/25।।

यह आत्मा न दिखने वाला, समझ में न आने वाला और बिगड़ने वाला नहीं है अतः यह जानकर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये।

न बिभेति यदा चायं यदा चास्मान्न बिभ्यति।
कामद्वेषौ च जयति तदाऽऽत्मानं च पश्यति।। शान्ति० 21/4।।

जब मनुष्य किसी से नहीं डरता और दूसरे प्राणी भी उससे नहीं डरते तथा जब

वह इच्छा (राग-काम) और द्वेष को जीत लेता है तब वह अपने आत्मा का साक्षात् कर लेता है।

यदासौ सर्वभूतानां न दुह्यति न काङ्क्षति।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। शान्ति० 21/5।।

जब मनुष्य मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी के साथ न तो लड़ाई -झगड़ा करता है और न ही किसी प्राणी से कुछ चाहता है तब वह ब्रह्म को साक्षात् कर लेता है।

आत्मा फलति कर्माणि नाश्रमो धर्मकारणम्।। शान्ति० 111/13।।

आत्मा ही शुभकर्मों के लिये प्रेरित करता है आश्रम धर्म का कारण नहीं होता।

बहुश्रुत्यं तपस्त्यागः श्रद्धा यज्ञक्रिया क्षमा।
भावशुद्धिर्दया सत्यं संयमश्चात्मसम्पदः।। शान्ति० 167/5।।

बहुत से शास्त्रों का अध्ययन, तपस्या, त्याग, श्रद्धा, यज्ञ, क्षमा, पवित्र-विचार, दया, सत्य और संयम ये सब आत्मा की सम्पत्ति हैं।

आत्मा क्षेत्रज्ञ इत्युक्तः संयुक्तः प्राकृतैर्गुणैः।
तैरेव तु विनिर्मुक्तः परमात्मेत्युदाहृतः।। शान्ति० 187/23।।

जब आत्मा, प्रकृति के गुणों से युक्त होता है तब उसे क्षेत्रज्ञ अर्थात् प्राणी के शरीर के सुख-दुःख अनुभव करने वाला कहते हैं। प्रकृति के गुणों से छूट जाने पर या मुक्त हो जाने पर वह परमात्मा कहलाता है।

आत्मानं तं विजानीहि सर्वलोकहितात्मकम्।।
तस्मिन् यः संश्रितो देहे ह्यब्बिन्दुरिव पुष्करे।। शान्ति० 187/24।।

क्षेत्रज्ञ को ही आत्मा समझना चाहिये। वह सभी प्राणियों और संसार का हित करने वाला है। इस शरीर में रहकर भी वह आत्मा कमल-पत्र पर पड़ी हुई जल की बूँद की तरह वास्तव में शरीर से अलग ही है।

न चात्मा शक्यते द्रष्टुमिन्द्रियैश्च विभागशः।
तत्र तत्र विसृष्टैश्च दुर्वार्यैश्चाकृतात्मभिः।। शान्ति० 194/58।।

जिन्होंने अपने मन को वश में नहीं किया है और विषयों की ओर स्वभाविक रूप से दौड़ने वाली जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं रहतीं वे अपनी इन्द्रियों से आत्मा का साक्षात् नहीं कर सकते।

राजसैर्तामासैर्भावै युक्तो हेतुबलान्वितः।
क्षेत्रज्ञमेवानुयाति पांसुर्वातेरितो यथा।। शान्ति० 211/13।।

राजसिक और तामसिक भावों से युक्त अनेक कारणों से प्रेरित सूक्ष्म शरीर, जीवात्मा (क्षेत्रज्ञ) के साथ दूसरे स्थूल शरीर में वैसे ही चला जाता है जैसे वायु के साथ धूल।

न च तैः स्पृशते भावैर्न ते तेन महात्मना।
सरजस्कोऽरजस्कश्च नैव वायुर्भवेद् यथा।। शान्ति० 211/14।।

जैसे धूल के उड़ने से वायु न तो धूल से लिप्त होती है और न ही अलिप्त रहती है वैसे ही आत्मा उन राजसिक और तामसिक भावों से न तो लिप्त रहता है और न ही अलिप्त रहता है।

बीजान्यग्न्युपदिग्धानि न रोहन्ति यथा पुनः।
ज्ञानदग्धैस्तथा क्लेशैर्नात्मा सम्पद्यते पुनः।। शा० 211/17।।

जैसे आग में भुने हुए बीजों से फिर अंकुर नहीं निकलते वैसे ही ज्ञान की अग्नि से अविद्या, अस्मिता आदि क्लेश नष्ट हो जाने पर आत्मा इस संसार में फिर जन्म नहीं लेता।

लोहयुक्तं यथा हेम विपक्वं न विराजते।
तथापक्वकषायाख्यं विज्ञानं न प्रकाशते।। शान्ति० 212/6।।

जैसे लोहा मिला सोना आग में तपाकर शुद्ध किये बिना नहीं चमकता वैसे ही चित्त के राग-द्वेष आदि दोष नष्ट हुए बिना ज्ञानस्वरूप आत्मा प्रकाशित नहीं होता।

इन्द्रियाणि मनोयुङ्क्ते वश्यान् यन्तेव वाजिनः।
मनश्चापि सदा युङ्क्ते भूतात्मा हृदयाश्रितः।। शान्ति० 239/11।।

जैसे सारथि घोड़ों को वश में रखता है वैसे ही मन; इन्द्रियों को काबू में रखकर उन्हें विषयों में लगाता है। परन्तु हृदय में रहने वाला जीवात्मा उस मन पर भी सदा शासन करता है।

यथा मरीच्यः सहिताश्चरिन्त सर्वत्र तिष्ठन्ति च दृश्यमानाः।
देहै र्विमुक्तानि चरन्ति लोकांस्तथैव सत्त्वान्यतिमानुषाणि।।
शान्ति० 253/2।।

जैसे सूर्य की किरणें आपस में मिली हुई सब जगह फैलती हैं और दिखाई देती हैं वैसे ही अलौकिक जीवात्मा शरीर से निकलकर सम्पूर्ण लोकों में जाते हैं।

जाजले तीर्थमात्मैव मा स्म देशातिथिर्भव।। शान्ति० 263/43।।

मुनिवर जाजलि! यह आत्मा ही प्रधान तीर्थ है तुम तीर्थयात्रा के लिये इधर–उधर मत भटको।

नेशेऽयं सततं देही नृपते पापपुण्ययोः।
तत एव समुत्थेन तमसा रुध्यतेऽपि च।। शान्ति० 279/8।।

राजन्! यह जीवात्मा पाप और पुण्य के फल सुख और दुख भोगने में स्वतन्त्र नहीं है। यह जीवात्मा पाप और पुण्य कर्मों के संस्कारों के अन्धकार से घिर जाता है।

ज्ञानेन हि यदा जन्तुरज्ञान प्रभवं तमः।
व्यपोहति तदा ब्रह्म प्रकाशति सनातनम्।। शान्ति० 279/11।।

जब जीवात्मा तत्त्वज्ञान द्वारा अज्ञान से पैदा हुए अन्धकार को दूर कर देता है तब उसके हृदय में सनातन ब्रह्म प्रकाशित हो उठता है।

अयत्नसाध्यं मुनयो वदन्ति ये चापि मुक्तास्त उपासितव्याः।।
शा० 279/12।।

ऋषिमुनि कहते हैं कि ब्रह्म की प्राप्ति किसी प्रकार के प्रयत्न से नहीं हो सकती। इसके लिये जीवन्मुक्त लोगों की उपासना करनी चाहिये।

निर्विकारः सदैवात्मा स्त्रीत्वं पुंस्त्वं न चात्मनि।
कर्मप्रकारेण तथा जात्यां जात्यां प्रजायते।।
कृत्वा तु पौरुषं कर्म स्त्री पुमानपि जायते।
स्त्री भावयुक् पुमान् कृत्वा कर्मणा प्रमदा भवेत्।।
अनु० 145 दा पा० VIII।।

आत्मा सदा किसी भी विकार से रहित है। आत्मा न तो स्त्री है और न ही पुरुष। आत्मा कर्म के अनुसार विभिन्न जातियों में जन्म लेता है। कोई स्त्री; पुरुषों जैसे काम करके पुरुष का जन्म ले सकती है। इसी प्रकार कोई पुरुष; स्त्रियों के काम करके स्त्री का जन्म ले सकता है।

श्रृणु भामिनि कर्तारमात्मा हि न च कर्मकृत्।
प्रकृत्या गुणयुक्तेन क्रियते कर्म नित्यशः।। अनु० 145 दा० पा०VIII।।

मेरी धर्मपत्नी पार्वती! सुनो शरीर में कौन काम करता है? आत्मा कोई कर्म नहीं करता। प्रकृति के सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों वाला प्राणी सदा तरह–तरह के काम करता रहता है।

शरीरं प्राणिनां लोके यथा पित्तकफानिलैः।
व्याप्तमेभिस्त्रिभिर्दोषैस्तथा व्याप्तं त्रिभिर्गुणैः।। अनु० 145 दा० पा०अ VIII ।।

इस संसार में प्राणियों के शरीरों में जैसे वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं वैसे ही उनके शरीरों में सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण भी हैं।

सत्त्वं रजस्तमश्चैव, गुणास्त्वेते शरीरिणः।
प्रकाशात्मकमेतेषां सत्त्वं सततमिष्यते।।

रजो दुःखात्मकं तत्र तमो मोहात्मकं स्मृतम्।
त्रिभिरेतैर्गुणैयुक्तं लोके कर्म प्रवर्तते।। अनु० 145 दा० पा०अ VIII ।।

सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीनों गुण सभी प्राणियों में होते हैं। इनमें सत्त्व सदा प्रकाश स्वरूप माना जाता है। रजोगुण, दुःखरूप और तमोगुण, मोहरूप बताया गया है। इन तीन गुणों के कारण संसार में प्राणी तरह-तरह के काम करते हैं।

सत्यं प्राणिदया शौचं श्रेयः प्रीतिः क्षमा दमः।
एवमादि तथान्यच्च कर्म सात्त्विकमुच्यते।। अनु० 145 दा० पा०अ VIII ।।

सत्य व्यवहार, प्राणियों पर दया, पवित्रता, श्रेय मार्ग की इच्छा, प्रेम, क्षमा और इन्द्रिय संयम तथा ऐसे ही अन्य काम सत्त्व गुण की प्रेरणा से मनुष्य करते हैं।

दाक्ष्यं कर्मपरत्वं च लोभो मोहो विधिं प्रति।
कलत्रसङ्गो माधुर्यं नित्यमैश्वर्यलुब्धता।।

रजसश्चोद्भवं चैतत् कर्म नानाविधं सदा।। अनु० 145 दा० पा०अ VIII ।।

चतुराई, कर्म परायणता, लोभ, भाग्य के प्रति मोह, स्त्रीसंग, मधुरता, सदा सुख-ऐश्वर्य की चाह आदि ऐसे अनेक तरह के काम मनुष्य रजोगुण के प्रभाव से करता है।

अनृतं चैव पारुष्यं धृतिर्विद्वेषिता भृशम्।
हिंसासत्यं च नास्तिक्यं निद्रालस्य भयानि च।।

तमसश्चोद्भवं चैतत् कर्म पापयुतं तथा।। अनु० 145 दा० पा०अ VIII ।।

झूठ बोलना, रूखापन, अत्यधिक अधीरता, हिंसा, झूठ-फरेब, नास्तिकता, नींद, आलस्य, डर और पापपूर्ण काम तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य करता है।

सात्त्विकाः पुण्यलोकेषु राजसा मानुषे पदे।
तिर्यग्योनौ च नरके तिष्ठेयुस्तामसा नराः।। अनु० 145 दा० पा०अ VIII ।।

सात्त्विक स्वभाव के पुरुष पुण्यलोकों में जाते हैं। राजसिक वृत्ति के लोग

मनुष्यलोक में जन्म लेते हैं। तमोगुणी मनुष्य पशु–पक्षियों की योनियों में और नरक में जाते हैं।

कर्मक्षये तु सम्प्राप्ते प्राणिनां जन्मधारिणाम्।
उपद्रवो भवेद देहे येन केनापि हेतुना।।

तन्निमित्तं शरीरी तु शरीरं प्राप्य संक्षयम्।
अपयाति परित्यज्य ततः कर्मवशेन सः।। अनु० 145 दा० पा०अ VIII ।।

जन्म लेने वाले प्राणियों के कर्मों के नष्ट हो जाने पर उनके शरीर में कुछ न कुछ गड़बड़ी किसी न किसी कारण से होने लगती है। इस गड़बड़ी के कारण शरीर नष्ट हो जाने पर आत्मा प्राणी के बचे हुए कर्मों के अधीन होकर पुराने शरीर को छोड़ कर चला जाता है।

देहः क्षयति नैवात्मा वेदनाभिर्न चाल्यते।
तिष्ठेत् कर्मफलं यावद् व्रजत् कर्मक्षये पुनः।। अनु० 145 दा० पा०अ VIII ।।

शरीर नष्ट होता है। आत्मा नष्ट नहीं होता। आत्मा दु:ख–दर्द से भी विचलित नहीं होता। जब तक प्राणी के कर्मों के भोग (फल) बचे रहते हैं तब तक आत्मा; शरीर में रहता है और कर्म फल नष्ट हो जाने पर शरीर से चला जाता है।

न त्वसौ चक्षुषा ग्राह्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः।
मनसैव प्रदीपेन महानात्मा प्रदृश्यते।। आश्व० 19/48 ।।

उस परम और महान् आत्मा को इन आँखों से या सारी इन्द्रियों से भी नहीं देखा जा सकता। मन के दीपक से ही उस महान् आत्मा को देखा जाता है।

घ्राणेन न तदाघ्रेयं नास्वाद्यं चैव जिह्वया।
स्पर्शनेन तदस्पृश्यं मनसा त्ववगम्यते।। आश्व० 20/12 ।।

वह परब्रह्म परमात्मा नाक से नहीं सूंघा जा सकता, न ही जीभ से उसको चखा जा सकता है और न ही त्वचा के द्वारा उसको छूआ जा सकता है। उसे तो केवल अपने मन द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

अधिष्ठाता मनो नित्यं भूतानां महतां तथा।
बुद्धिरैश्वर्यमाचष्टे क्षेत्रज्ञश्च स उच्यते।। आश्व० 51/2 ।।

पंचमहाभूतों का नित्य नियामक मन ही है। बुद्धि जिसका ऐश्वर्य प्रकट करती है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

इन्द्रियाणि मनो युङ्क्ते सदश्वानिव सारथिः।
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः क्षेत्रज्ञे युज्यते सदा।। आश्व० 51/3।।

जैसे सारथि अच्छे घोड़ों को वश में रखता है वैसे ही मन सारी इन्द्रियों को वश में रखता है। इन्द्रियाँ, मन, और बुद्धि सदा क्षेत्रज्ञ से सम्बद्ध रहते हैं।

महदश्वसमायुक्तं बुद्धिसंयमनं रथम्।
समारुह्य स भूतात्मा समन्तात् परिधावति।। आश्व० 51/4।।

जिस शरीररूपी रथ में इन्द्रियों के घोड़े जुते हुए हैं। बुद्धि सारथि बनकर इस रथ पर काबू रखती है। भूतात्मा (क्षेत्रज्ञ) इस रथ पर सवार होकर चारों ओर दौड़ता रहता है।

इन्द्रियग्रामसंयुक्तो मनःसारथिरेव च।
बुद्धिसंयमनो नित्यं महान् ब्रह्ममयो रथः।। आश्व० 51/5।।

ब्रह्ममय रथ सदा रहने वाला और महान है। इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं, मन सारथि है और बुद्धि लगाम है।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्थमात्मा तीर्थं सर्वतीर्थप्रधानम्।
आत्मा यज्ञः सततं मन्यते वै स्वर्गो मोक्षः सर्वमात्मन्यधीनम्।।

आश्व० 92 दा० पा० अ० XIX।।

भरतनन्दन! आत्मारूपी नदी पवित्रतीर्थ है। यह आत्मा सभी तीर्थों में मुख्य तीर्थ है। आत्मा को सदा यज्ञरूप माना गया है। स्वर्ग और मोक्ष सभी कुछ आत्मा के अधीन हैं।

आदर्श राज्य

यथा मनुर्महाराजो रामो दाशरथिर्यथा।
तथा भरतसिंहोऽपि पालयामास मेदिनीम्।। आश्व० 14 दा० पा०।।

जैसे महाराजा मनु और दशरथ पुत्र राम पृथ्वी का पालन करते थे उसी तरह युधिष्ठिर भी शासन करने लगे।

ववर्ष भगवान् देवः काले देशे यथेप्सितम्।
निरामयं जगदभूत् क्षुत्पिपासे न किंचन।। आश्व 14 दा० पा०।।

युधिष्ठिर के राज्य के प्रत्येक भाग में समय पर पर्याप्त वर्षा होती थी। प्रजा नीरोग थी। कोई भूखा-प्यासा नहीं रहता था।

नार्यः पतिव्रताः सर्वा रूपवत्यः स्वलंकृताः।
यथोक्तवृत्ताः स्वगुणैर्बभूवुः प्रीतिहेतवः।। आश्व० 14 दा० पा०।।

युधिष्ठिर के राज्य की सभी स्त्रियाँ सुन्दर, पतिव्रता और गहनों से सजी संवरी रहती थीं। वे शास्त्रोक्त सदाचार का पालन करती थीं और अपने गुणों के कारण पति की प्रसन्नता बढ़ातीं थीं।

पुमांसः पुण्यशीलाढ्याः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः।
सुखिनः सूक्ष्ममप्येनो न कुर्वन्ति कदाचन।। आश्व० 14 दा० पा०।।

पुरुष पुण्यशाली, अपने अपने धर्म का पालन करने वाले और सुखी थे। वे छोटा-सा भी कोई पाप कर्म नहीं करते थे।

सर्वे नराश्च नार्यश्च सततं प्रियवादिनः।
अजिह्ममनसः शुक्लाः बभूवुः श्रमवर्जिताः।। आश्व० 14 दा० पा०।।

सभी स्त्री-पुरुष सदा मीठा बोलते थे। उनके मन में कुटिलता नहीं थी। वे सदाचारी थे। उन्हें थकान नहीं होती थी।

अवन्ध्यकाला मनुजाः पुरुषार्थेषु च क्रमात्।
विषयेष्वनिषिद्धेषु वेदशास्त्रेषु चोद्यताः।। आश्व० 14 दा० पा०।।

मनुष्य अपना समय व्यर्थ नहीं गंवाते थे। वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में क्रमशः प्रवृत्त होते थे। शास्त्रों में जिन विषय भोगों का निषेध नहीं किया गया है वे उन्हीं विषय भोगों का सेवन करते थे और वेदशास्त्रों का स्वाध्याय करने के लिये सदा तत्पर रहते थे।

धर्मार्थकामसंयुक्तं मोक्षाभ्युदयसाधनम्।
प्रह्लादजननं पुण्यं सम्बभूवाथ मानसम्।। आश्व० 14 दा० पा०।।

सबका मन, धर्म, अर्थ और काम में लगा रहता था। प्रजा, मोक्ष और अभ्युदय की साधना में तत्पर रहती थी। सभी लोगों के मन आनन्द और पवित्र विचारों से भरे होते थे।

मनोऽनुकूलाः सर्वेषां चेष्टा भूस्तापवर्जिता।
यथा बभूव राजर्षिस्तदवृत्तमभवद् भुवि।। आश्व० 14 दा० पा०।।

सभी लोगों की चेष्टाएँ मनोनुकूल होती थीं। पृथ्वी पर किसी तरह की परेशानी नहीं थी। राजर्षि युधिष्ठिर का जैसा आचार-व्यवहार था वैसा ही आचार-व्यवहार पृथ्वी पर होने लगा।

सर्वलक्षणसम्पन्नाः पाण्डवा धर्मचारिणः।
ज्येष्ठानुवर्तिनः सर्वे बभूवुः प्रियदर्शनाः।। आश्व० 14 दा० पा०।।

सारे पाण्डव शुभ लक्षणों वाले और धर्म का पालन करने वाले थे। वे अपने बड़े भाई की आज्ञा मानते थे। उन्हें देखकर सभी प्रसन्न होते थे।

सिंहोरस्का जितक्रोधास्तेजोबलसमन्विताः।
आजानुबाहवः सर्वे दानशीला जितेन्द्रियाः।। आश्व० 14 दा० पा०।।

चारों भाइयों की छाती सिंह के समान थी। उन्होंने क्रोध पर विजय पा ली थी। वे तेज और बल से सम्पन्न थे। उनकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी थीं। वे सब दानी और जितेन्द्रिय थे।

तेषु शासत्सु धरणीमृतवः स्वगुणैर्बभुः।
सुखोदयाय वर्तन्ते ग्रहास्तारागणैः सह।। आश्व० 14 दा० पा०।।

पाण्डवों के शासन काल में पृथ्वी पर सभी ऋतुएँ अपने-अपने गुणों से सुशोभित होती थीं। ताराओं सहित सभी ग्रह भी सारी प्रजा के लिए सुखद हो गये थे।

महाकुलानि धर्मिष्ठा वर्धयन्तो विशेषतः।
मनुप्रणीतया कृत्या तेऽन्वशासन् वसुन्धराम्।। आश्व० 14 दा० पा०।।

धर्म का पालन करने वाले पाण्डव श्रेष्ठ कुलों को प्रोत्साहन देते थे। वे मनु द्वारा बनायी गई राजनीति के अनुसार पृथ्वी का शासन करते थे।

राजवृत्तिर्हि सा शश्वद् धर्मिष्ठाभून्महीतले।
प्रायो लोकमतिस्तात राजवृत्तानुगामिनी।। आश्व० 14 दा० पा०।।

प्रिय! पृथ्वी पर पाण्डव राजाओं का व्यवहार सदा धर्मानुकूल रहता था। प्रायः प्रजा की बुद्धि राजा के आचरण का अनुसरण करती है।

आयु

अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्।। उद्योग० 37/10।।

एत एवासयस्तीक्ष्णा कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।। उद्योग० 37/11।।

राजन्! अत्यधिक अभिमान, बहुत बोलना, त्याग न करना, क्रोध करना, अपना ही पेट पालना और मित्र द्रोह ये छह बातें आयु घटाने वाली तेज तलवारें हैं।

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना।। उद्योग० 39/52।।

सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव, ईर्ष्या न करना, क्षमा, धैर्य और मित्रों का अपमान न करना ये बातें आयु बढ़ाती हैं।

दीर्घमायुरथेच्छन् हि त्रिरात्रं चोष्णपो भवेत्।। शान्ति० 36/9।।

यदि दीर्घायु चाहते हो तो तीन रात गरम दूध, घी और पानी पियें।

स्त्रवन्ति न निवर्तन्ते स्त्रोतांसि सरितामिव।
आयुरादाय मर्त्यानां रात्र्यहानि पुनः पुनः।। शान्ति० 331/5।।

जैसे नदियों का प्रवाह आगे ही बढ़ता चला जाता है पीछे नहीं लौटता वैसे ही रात और दिन भी मनुष्यों की आयु लेने के लिये बार-बार आते रहते हैं।

पापेन कर्मणा देवि बद्धो हिंसारतिर्नरः।
अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते।। अनु 144/55।।

देवि! पाप के कर्मों से बंधा हुआ, हिंसा में लगा रहने वाला मनुष्य सभी प्राणियों का अप्रिय होने के कारण कम आयु का हो जाता है।

आर्यावर्त

आसमुद्राच्च यत् पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात्।
हिमाद्रिविन्ध्ययोर्मध्ये आर्यावर्तं प्रचक्षते।। आश्व० 92 दा० पा० अ०XV।।

पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक और हिमालय तथा विन्ध्याचल के बीच का प्रदेश आर्यावर्त कहलाता है।

सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तद्देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते।। आश्व० 92 दा० पा० अ० XV।।

सरस्वती और दृषद्वती इन दो देव नदियों के बीच देवताओं द्वारा बनाया गया देश ब्रह्मावर्त कहलाता है।

कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनयः।
एते ब्रह्मर्षिदेशास्तु ब्रह्मावर्तादनन्तराः।। आश्व० 92 दा० पा० अ XV।।

कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल और शूरसेन ये प्रदेश ब्रह्मर्षियों के देश हैं। ये प्रदेश ब्रह्मावर्त के पास हैं।

कुरुक्षेत्र - दिल्ली के पास का विस्तृत प्रदेश। सरस्वती के दक्षिण से लेकर दृषद्वती के उत्तर तक यह प्रदेश फैला हुआ है। इसे प्राचीन काल से पवित्र माना जाता है। इस स्थान को समन्त पंचक भी कहा जाता है। समन्त पंचक का अर्थ है परशुराम द्वारा मारे गये क्षत्रियों के रक्त के पाँच तालाब। इतिहासकार कनिंघम के अनुसार कुरुक्षेत्र जनपद की प्रत्येक भुजा पाँच योजन लम्बी थी। इसका सारा घेरा बीस योजन का था।

शूरसेन - मथुरा के पास वाला प्रदेश।

मत्स्य या विराट - यह प्रदेश वर्तमान धौलपुर के पश्चिम में है। मत्स्य देश या विराट् प्रदेश की राजधानी सम्भवत: वैराट थी जो इन दिनों जयपुर से उत्तर में चालीस मील दूर वैरात के नाम से पुकारी जाती है। कहते हैं कि पाण्डव अज्ञातवास के लिये दशार्ण के उत्तर में शूरसेन तथा रोहितक (रोहतक) के इलाके से होते हुए यमुना के किनारे इस प्रदेश में आये थे।

दशार्ण (मालवा का पूर्वी भाग) जिसकी राजधानी विदिशा (भेलसा) थी। विदिशा, वेत्रवती (बेतवा) नदी के तट पर थी।

पञ्चाल - राजशेखर के अनुसार यह प्रदेश गंगा-यमुना के बीच था। राजा द्रुपद के समय यह प्रदेश चर्मण्वती (चम्बल नदी) के किनारे से लेकर उत्तर में गंगाद्वार (हरिद्वार) तक फैला हुआ था। गंगा या भागीरथी नदी का उत्तरी भाग उत्तर पंचाल कहलाता था। इसकी राजधानी अहिच्छत्र थी। इस प्रदेश का दक्षिणी भाग दक्षिण पंचाल कहलाता था जो द्रुपद की मृत्यु के बाद हस्तिनापुर में विलीन हो गया।

मध्य देश - **हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विशसनादपि।**
प्रत्यगेव प्रयागात् तु मध्यदेशः प्रकीर्तितः।।

आश्व० 92 दा० पा० अ० XV।।

हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में कुरुक्षेत्र से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम का प्रदेश मध्यदेश कहलाता है।

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्ततः परम्।।

आश्व० 92 दा०पा०अ०XV।

जिस प्रदेश में कृष्णसार हरिण स्वाभाविक रूप से विचरता है। वही प्रदेश यज्ञ के लिये उपयुक्त है। इससे भिन्न इलाके म्लेच्छदेश हैं।

आलसी

एकान्तफलसिद्धिं तु न विन्दत्यलसः क्वचित्।। वन० 32/40।।

आलसी मनुष्य को कभी निश्चित सफलता नहीं मिलती।

अलक्ष्मीराविशत्येनं शयानमलसं नरम्।। वन० 32/42।।

सोते हुए आलसी मनुष्य को गरीबी ही मिलती है।

अवश्यं क्रियमाणस्य कर्मणो दृश्यते फलम्।
न हि निर्वेदमागम्य किंचित् प्राप्नोति शोभनम्।। वन० 216/26।।

अवश्य किये जाने वाले कर्म का फल दिखाई देता है। खिन्न होकर बैठे रहने से कोई अच्छा फल नहीं मिलता।

तत्रालसा मनुष्याणां ये भवन्त्यमनस्विनः।
उत्थानं ते विगर्हन्ति प्राज्ञानां तन्न रोचते।। सौप्तिक 2/12।।

आलसी और मन पर काबू न रखने वाले मनुष्य पुरुषार्थ की निन्दा करते हैं। विद्वानों को उनकी यह बात अच्छी नहीं लगती।

शक्नोति जीवितुं दक्षो नालसः सुखमेधते।। सौप्तिक 2/15।।

पुरुषार्थ करने वाला बुद्धिमान मनुष्य सुख से जीवन बिताता है। आलसी सुख से नहीं रहता।

न हि प्रमादात् परमस्ति कश्चिद् वधो नराणामिह जीवलोके।
प्रमत्तमर्था हि नरं समन्तात् त्यजन्त्यनर्थाश्च समाविशन्ति।।

सौप्तिक 10/19।।

आलस्य से बढ़कर मनुष्य की इस संसार में और कोई मृत्यु नहीं है। आलसी मनुष्य को सम्पत्तियाँ सब ओर से छोड़ देती हैं और उसका हर तरह से अनर्थ होने लगता है।

न हि प्रमत्तेन नरेण शक्यं विद्या तपः श्रीर्विपुलं यशो वा।।

सौप्तिक 10/22।।

आलसी मनुष्य; विद्या, तप, लक्ष्मी, और महान् यश प्राप्त नहीं कर सकता।

सुखं दुःखान्तमालस्यं दाक्ष्यं दुःखं सुखोदयम्।
भूतिः श्रीर्ह्रीर्धृतिः कीर्तिर्दक्षे वसति नालसे।। शान्ति० 27/31।।

आलस्य सुख जैसा लगता है किन्तु आलस्य के कारण दुःख ही मिलता है। कोई काम ठीक तरह करने में बुरा लगता है किन्तु इसके कारण सुख मिलता है। अपना काम करने में चतुर पुरुष को ही वैभव, लक्ष्मी, लज्जा, धैर्य और यश मिलता है। आलसी व्यक्ति को कुछ नहीं मिलता।

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न क्लीबा नाभिमानिनः।
न च लोकरवाद् भीता न वै शश्वत् प्रतीक्षिणः।। शान्ति० 140/23।।

आलसी, नपुंसक, अभिमानी, लोक निन्दा से डरने वाले और सदा प्रतीक्षा करते रहने वाले धन नहीं पा सकते।

सुखं दुःखान्तमालस्यं दुःखं दाक्ष्यं सुखोदयम्।
भूतिस्त्वेवं श्रिया सार्धं दक्षे वसति नालसे।। शान्ति० 174/38।।

शुरु में आलस्य से सुख अनुभव होता है, किन्तु आलसी मनुष्य अन्त में दुःख भोगता है। इसके विपरीत कोई भी काम कुशलतापूर्वक करने में कष्ट होता है लेकिन अन्त में सुख मिलता है। कार्यकुशल मनुष्य को ही लक्ष्मी सहित ऐश्वर्य और सुख मिलता है आलसी पुरुष को सुख और लक्ष्मी नहीं मिलती।

आशा

सर्वस्याशा सुमहती पुरुषस्योपजायते।
तस्यां विहन्यमानायां दुःखो मृत्युर्न संशयः।। शान्ति० 125/4।।

सभी लोगों के मन में कोई न कोई बड़ी आशा होती है। उस आशा के पूरी न होने पर बहुत दुःख होता है और मृत्यु भी हो जाती है।

आशां महत्तरां मन्ये पर्वतादपि सद्रुमात्।
आकाशादपि वा राजन्नप्रमेयैव वा पुनः।। शान्ति० 125/6।।

राजन्! मैं आशा को वृक्षों सहित पर्वत से भी बड़ी समझता हूँ। आशा को मापा नहीं जा सकता। आशा आकाश से भी बड़ी होती है।

हिमवान् वा महाशैलः समुद्रो वा महोदधिः।
महत्त्वान्नावपद्येतां नभसो वान्तरं तथा।। शान्ति० 126/13।।

आशायास्तपसिश्रेष्ठास्तथा नान्तमहं गतः।

श्रेष्ठ तपस्वियो! महान् हिमालय पर्वत अथवा अगाघ महासागर और अनन्त

आकाश भी आशा के सामने छोटे पड़ जाते हैं। मैं आशा का अन्त कहीं भी नहीं देख पाया हूँ।

आशा हि पुरुषं बालमुत्थापयति तस्थुषी।। शान्ति० 128/6।।

मन में बहुत समय से बैठी हुई आशा ही मूर्ख पुरुष को काम में लगा देती है।

कृशत्वेन समं राजन्नाशाया विद्यते नृप।। शान्ति० 128/9।।

राजन्! आशा या आशा करने वाले पुरुष जैसा दुर्बल व्यक्ति और कोई नहीं है।

कृशाकृशे मया ब्रह्मन् गृहीते वचनात् तव।
दुर्लभत्वं च तस्यैव वेदवाक्यमिव द्विज।। शान्ति० 128/10।।

ब्रह्मन्! मैंने आपकी यह बात वेदवाक्य की तरह मान ली कि जो व्यक्ति आशा करता है वह कमजोर होता है और जो आशा नहीं करता वह बलवान होता है। जिस वस्तु की आशा की जाती है वह दुर्लभ होती है।

दुर्लभोऽप्यथवा नास्ति योऽर्थी धृतिमवाप्नुयात्।
स दुर्लभतरस्तात योऽर्थिनं नावमन्यते।। शान्ति० 128/13।।

प्रिय! ऐसा व्यक्ति बड़ी मुश्किल से मिल पाता है जो किसी वस्तु की आवश्यकता होने पर भी उसे न मांगे अर्थात् उस वस्तु के बिना ही धैर्य से रह सके। किन्तु ऐसे व्यक्ति से भी कहीं अधिक दुर्लभ वह व्यक्ति होता है जो मांगने वाले का अपमान किये बिना उसकी इच्छा पूरी कर देता है।

सत्कृत्य नोपकुरुते परं शक्त्या यथार्हतः।
या सक्ता सर्वभूतेषु साऽऽशा कृशतरी मया।। शान्ति० 128/14।।

जब कोई मनुष्य मांगने वाले का आदर करके और उसे आशा दिलाकर भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार मांगने वाले को कुछ नहीं देता। ऐसी स्थिति में सभी लोगों के मन में जो आशा जगी रहती है वह मुझसे भी कहीं दुर्बल है।

कृतघ्नेषु च या सक्ता नृशंसेष्वलसेषु च।
अपकारिषु चासक्ता साऽऽशा कृशतरी मया।। शा० 128/15।।

कृतघ्न, क्रूर, आलसी और बुरा करने वालों के मन में जो आशा लगी रहती है वह मुझसे भी कहीं अधिक दुर्बल होती है।

एकपुत्रः पिता पुत्रे नष्टे वा प्रोषितेऽपि वा।
प्रवृत्तिं यो न जानाति साऽऽशा कृशतरी मया।। शान्ति० 128/16।।

इकलौते बेटे के पिता के मन में पुत्र के खो जाने या परदेस चले जाने के बाद उसका कोई समाचार न मिलने पर जो आशा लगी रहती है वह मुझसे भी कहीं अधिक दुर्बल होते हैं।

प्रसवे चैव नारीणां वृद्धानां पुत्रकारिता।
तथा नरेन्द्र धनिनां साऽऽशा कृशतरी मया।। शान्ति० 128/17।।

राजन्! वृद्धा स्त्रियों के मन में पुत्र पैदा होने की जो आशा बनी रहती है या धनियों के मन में और अधिक धन मिलने की आशा लगी रहती है वह मुझसे भी कहीं अधिक दुर्बल हैं।

प्रदानकाङ्क्षिणीनां च कन्यानां वयसि स्थिते।
श्रुत्वा कथास्तथायुक्ताः साऽऽशा कृशतरी मया।। शान्ति 128/18।।

युवती कन्या जब विवाह करना चाहती है तब अपने विवाह की बातें सुनकर उसके मन में जो आशा जग उठती है वह मुझसे भी कहीं अधिक दुर्बल होती है। अर्थात् आशा करने वालों के मन बहुत कमजोर पड़ जाते हैं।

आशीर्वाद

अगदं वोऽस्तु भद्रं वो।। सभा० 78/21।।

तुम्हें कोई रोग न सताये। तुम्हारा कल्याण हो।

अरिष्टं व्रज पन्थानं मदनुध्यानबृंहिता।। सभा० 79/6।।

जाओ, तुम्हारा मार्ग विघ्न बाधा रहित हो। मेरे शुभ चिन्तन से तुम्हारा अभ्युदय हो।

नमो धात्रे विधात्रे च स्वस्ति गच्छ ह्यनामयम्।। वन० 37/32।।

धाता और विधाता को नमस्कार है। आप स्वस्थ और कुशलता पूर्वक जाइये।

ह्रीः श्रीः कीर्तिर्द्युतिः पुष्टिरुमा लक्ष्मीः सरस्वती।
इमा वै तव पान्थस्य पालयन्तु धनञ्जय।। वन० 37/33।।

अर्जुन! ह्री, श्री, कीर्ति, द्युति, पुष्टि, उमा, लक्ष्मी और सरस्वती ये सब देवियाँ मार्ग में आपकी रक्षा करें।

प्रपद्येऽहं वसून् रुद्रानादित्यान् समरुद्गणान्।
विश्वेदेवांस्तथा साध्याञ्छान्त्यर्थं भरतर्षभ।। वन० 37/35।।

भरतश्रेष्ठ! मैं आपकी शान्ति और सुख के लिये वसुओं, रुद्रों, आदित्यों, मरुतों, विश्वेदेवों तथा साध्य देवताओं की शरण लेती हूँ।

स्वस्ति तेऽस्त्वन्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यश्च भारत।

दिव्येभ्यश्चैव भूतेभ्यो ये चान्ये परिपन्थिनः।। वन० 37/36।।

हे भारत! अन्तरिक्ष और पृथ्वी के प्राणियों से, दिव्य भूतों से और अन्य सभी विघ्न डालने वालों से आपका कल्याण हो।

कीर्तिरस्तु तवाक्षय्या जीव वर्षशतं सुखी।। वन० 78/28।।

आपकी अक्षय कीर्त्ति बनी रहे। आप सुख से सौ वर्ष तक जियें।

स्वस्ति तेऽस्तु धर्मस्त्वां परिरक्षतु।। वन० 216/31।।

आपका कल्याण हो। धर्म सदा आपकी रक्षा करे।

स्वस्ति ते चान्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यश्च पुत्रक।

दिव्येभ्यश्चैव भूतेभ्स्तथा तोयचराश्च ये।। वन० 308/10।।

मेरे पुत्र! पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक के प्राणियों से और जलचरों से तुम्हारी रक्षा हो।

शिवास्ते सन्तु पन्थानो।। वन० 308/11।।

मार्ग में तुम्हारा कल्याण हो।

गच्छामि शिवं सुखं वः सौम्येन मां पश्यत चक्षुषा नृपाः।।

उद्योग० 30/2।।

मैं जाता हूँ। आपको सुख और कल्याण प्राप्त हो। राजाओं आप मुझे स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखिये।

कल्याणा वः सन्तु पतयोऽनुकूला यूयं पतीनां भवतानुकूलाः।।

उद्योग० 30/37।।

पुत्रियो! तुम्हें कल्याणकारी पति प्राप्त हों और वे तुम्हारे अनुकूल बने रहें। तुम भी अपने पतियों के अनुकूल बनी रहो।

राजन् भद्रं ते।। उद्योग० 36/67।।

राजन् आपका कल्याण हो।

जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धाः।। उद्योग० 36/72।।

राजन्! सभी सुखी और समृद्ध होकर जीवन व्यतीत करें।

आयुष्मन्तः कुरवः सन्तु सर्वे।। उद्योग० 48/109।।

सभी कौरव दीर्घायु हों।

"अनामयं स्वस्ति च"।। उद्योग० 146/27।।

तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें कोई कष्ट न हो।

आगमा वः शिवाः सन्तु स्वस्था भवत पुत्रकाः।। आश्रमवास 36/40।।

पुत्रो! तुम्हारे मार्ग कल्याणकारी हों और तुम सदा स्वस्थ रहो।

आहार

आहारात् सर्वभूतानि सम्भवन्ति महीपते।
आहारेण विवर्धन्ते तेन जीवन्ति जन्तवः।। वन० 131/7।।

महाराज! भोजन से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं और आहार से ही वे बढ़ते हैं। आहार से ही जीव-जन्तु जीवित रहते हैं।

शक्यते दुस्त्यजेऽप्यर्थे चिररात्राय जीवितुम्।
न तु भोजनमुत्सृज्य शक्यं वर्तयितुं चिरम्।। वन० 131/8।।

यद्यपि पैसे को छोड़ना बहुत कठिन होता है फिर भी पैसे के बिना मनुष्य काफी समय तक जीवित रह सकता है किन्तु भोजन के बिना वह देर तक नहीं जी सकता।

आहार प्रभवाः प्राणा मनो दुर्निग्रहं चलम्।। वन० 260/25।।

भोजन से ही प्राणों की रक्षा होती है। चंचल मन को वश में करना बड़ा कठिन है।

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे यत् तदाद्यं भूतिमिच्छता।। उद्योग० 34/14।।

अपना कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को वही वस्तु खानी चाहिये जो खायी जा सके, और खाने पर पच जाये तथा पचने पर जो शरीर के लिये हितकारी हो।

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ।। उद्योग० 34/49।।

भरतश्रेष्ठ! धनी लोगों के भोजन में मांस की, मध्यम वर्ग के लोगों के भोजन में दूध, दही, घी की और दरिद्रों के भोजन में तेल की प्रधानता होती है।

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति।।

उद्योग० 37/34।।

थोड़ा भोजन करने वाले को ये छह लाभ मिलते हैं आरोग्य, दीर्घायु, बल, सुख, उत्तम सन्तान तथा लोगों द्वारा पेटू न कहलाना।

सम्प्रीतिभोज्यान्यान्नानि आपदभोज्यानि वा पुनः। उद्योग 91/25।।

किसी के घर प्रेम के कारण या संकट में पड़ने पर भोजन किया जाता है।

द्विषदन्नं न भोक्तव्यं द्विषन्तं नैव भोजयेत्।।

उद्योग० 91/31–32 दा० पा०।।

द्वेष करने वाले व्यक्ति का अन्न नहीं खाना चाहिये। उसे भोजन भी नहीं खिलाना चाहिये।

आयुः सत्त्वबलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।।

भीष्म० 41/8; गीता० 17/8।।

सात्त्विक आहार वह है जिससे आयु, मानसिक शक्ति, शारीरिक बल, आरोग्य, सुख और प्रेम बढ़ता है। सात्त्विक भोजन रसीले, घी आदि चिकने पदार्थों वाले, शरीर में देर तक असर करने वाले और मन को अच्छे लगने वाले होते हैं।

कट्वम्ललवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहाराः राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।।

भीष्म० 41/9।। गीता 17/9।।

कड़वे, खट्टे, नमकीन, बहुत गरम, तीखे, रूखे और जलन पैदा करने वाले भोज्य पदार्थ राजसिक लोगों को अच्छे लगते हैं। इनसे दुःख, चिन्ता और रोग पैदा होते हैं।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।

भीष्म० 41/10; गीता 17/10।।

अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी, झूठा और अपवित्र भोजन तामसिक लोगों को अच्छा लगता है।

मृष्टं भुञ्जीत नाहितम्।। शान्ति० 70/8।।

शुद्ध और स्वादिष्ट भोजन करना चाहिये, नुकसान देने वाला नहीं।

यस्तु तिक्तं कषायं वा स्वादु वा मधुरं हितम्।
आहारं कुरुते नित्यं सोऽमृतत्वाय कल्पते।। शान्ति०139/80।।

जो मनुष्य प्रतिदिन तीखा, कसैला, स्वादिष्ट या मीठा हितकारी भोजन करता है वह भोजन उसको अमृत जैसा लाभ करता है।

पथ्यं मुक्त्वा तु यो मोहाद् दुष्टमश्नाति भोजनम्।
परिणाममविज्ञाय तदन्तं तस्य जीवितम्।। शान्ति० 139/81।।

जो मनुष्य परिणाम या प्रभाव पर विचार किये बिना ही हितकर भोजन छोड़कर नुकसान देने वाला भोजन मूर्खतावश करता है तो ऐसे अपथ्य भोजन से उसकी मृत्यु हो जाती है।

तद्वत् संसार कान्तारमातिष्ठञ्श्रमतत्परः।
यात्रार्थमद्यादाहारं व्याधितो भेषजं यथा।। शान्ति० 212/14।।

संसाररूपी वन में रहने वाला गृहस्थ परिश्रम करके जीवन निर्वाह के लिये उसी तरह शुद्ध सात्त्विक आहार खाये जैसे रोगी जीवन रक्षा के लिये औषधि खाता है।

आहारनियमेनास्य पाप्मा शाम्यति राजसः।। शान्ति० 217/18।।

नियमित भोजन करने से रजोगुण से पैदा हुआ पाप (विकार) शान्त हो जाता है।

वैमनस्यं च विषये यान्त्यस्य करणानि च।
तस्मात् तन्मात्रमादद्यात् यावदत्र प्रयोजनम्।। शान्ति० 217/19।।

नियमपूर्वक भोजन करने से साधक की इन्द्रियाँ सांसारिक विषय भोगों से विरक्त हो जाती है। इसलिये साधक को उतना ही भोजन करना चाहिये जितना जीवन रक्षा के लिये आवश्यक हो।

अन्तरा प्रातरांश च सायमाशं तथैव च।
सदोपवासी स भवेद् यो न भुङ्क्तेऽन्तरा पुनः।। शान्ति० 221/10।।

जो व्यक्ति प्रतिदिन सवेरे खाने के बाद शाम को ही भोजन करे और बीच में कुछ नहीं खाये वह सदा उपवास करने वाला होता है।

न भक्षयेत् तथा मांसममांसाशी भवत्यति।
दाननित्यः पवित्रश्च अस्वप्नश्च दिवास्वपन्।। शान्ति० 221/12।।

जो व्यक्ति कभी मांस न खाये वह, मांस न खाने वाला होता है। जो सदा दान करता है वह पवित्र माना जाता है। जो दिन में कभी नहीं सोता वह सदा जागते रहने वाला समझा जाता है।

भृत्यातिथिषु यो भुङ्क्ते भुक्तवत्सु सदा सदा।
अमृतं केवलं भुङ्क्ते इति विद्धि युधिष्ठिर।। शान्ति० 221/13।।

युधिष्ठिर जो सदा भरण-पोषण करने वाले माता-पिता, कुटुम्बी जनों, सेवकों और अतिथियों के भोजन कर लेने पर ही भोजन करता है वह केवल अमृत का भोजन करता है। ऐसा समझो।

ब्रह्मचर्यात् परं तात मधुमांसस्य वर्जनम्।
मर्यादायां स्थितो धर्मः शमश्चैवास्य लक्षणम्।। अनुशासन० 22/25।।

प्रिय! शराब और मांस को त्याग देना ब्रह्मचर्य से भी अच्छा है। शास्त्रों के अनुसार मर्यादा में रहना श्रेष्ठ धर्मपालन है। इन्द्रिय संयम ही धर्म की पहचान है।

स्वशरीरं सदा रक्षेदाहाराचारयोरपि।
हितं पथ्यं सदाहारं जीर्णं भुञ्जीत मात्रया।। अनु० 145 दा० पा० V।।

भोजन से और अपने आचरण से अपने शरीर की रक्षा सदा करनी चाहिये। हितकारी, नुकसान न पहुँचाने वाला और पकाया हुआ भोजन निश्चित मात्रा में खाना चाहिये।

अमांसमद्यमक्लेद्यमपर्युषितमेव च।
अतिकट्वम्ललवणहीनं च शुभगन्धि च।।
कृमि केशमलैर्हीनं संवृतं शुद्धदर्शनम्।।

अनुशासन 145 दा० पा० XI।।

मांस, शराब से रहित, बिना पसीजा हुआ, बासी न हुआ, जो बहुत कड़वा, खट्टा, और नमकीन न हों, जिसमें सुगन्ध आ रही हो, जो कीड़ों, बालों और गन्दगी वाला न हो, ढका हुआ हो और देखने में अच्छा लगता हो ऐसा भोजन शुद्ध होता है।

अतिवेलमुपाश्नाति स्वविरुद्धान्यनात्मवान्।। आश्व० 17/8।।

मन पर नियन्त्रण न होने के कारण मनुष्य असमय में तथा अपनी प्रकृति के विरुद्ध भोजन करता है।

दुष्टान्नामिषपानं च यदन्योन्यविरोधि च।
गुरु चाप्यमितं भुङ्क्ते नातिजीर्णेऽपि वा पुनः।। आश्व० 17/10।।

ऐसा मनुष्य कभी खराब अन्न, मांस और मदिरा आदि भी ले लेता है। कभी एक-दूसरे के विरुद्ध गुणों वाली वस्तुएँ एक साथ खा जाता है। किसी दिन देर से पचने वाली चीजें बहुत अधिक खा लेता है और कभी पहला भोजन पचे बिना ही फिर भोजन कर लेता है।

व्यायाममतिमात्रं च व्यवायं चोपसेवते।
सततं कर्मलोभाद् वा प्राप्तं वेगं विधारयेत्।। आश्व० 17/11।।

वह अधिक व्यायाम और स्त्रीसम्भोग करता है। सदा काम में लगे रहने के लोभ से मल-मूत्र का वेग रोके रखता है।

अपक्वानागते काले स्वयं दोषान् प्रकोपयेत्।। आश्व० 17/12।।
स्वदोषकोपनाद् रोगं लभते मरणान्तिकम्।।

वह खाये हुए अन्न के पचने से पहले ही भोजन का समय न होने पर भी भोजन करके वात, पित्त और कफ को अपने शरीर में कुपित कर देता है। वात, पित्त और कफ के बिगड़ने से उसे प्राणलेवा रोग हो जाते हैं।

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीयात् प्राङ्मुखश्चासने शुचौ।
पादाभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा पादेनैकेन वा पुनः।।

आश्व० 92 (दा० पा० अ०) XIV।।

पैर धोकर, साफ आसन पर बैठकर और पूर्व दिशा की ओर मुख करके भोजन करना चाहिये। भोजन के समय एक या दोनों पैर पृथ्वी से छूते रहने चाहियें।

अन्नं पूर्वं नमस्कुर्यात् प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
नान्यदालोकयेदन्नान्न जुगुप्सेत तत्परः।। आश्व 92 दा०पा०, अ० XIV।।

मनुष्य को प्रसन्नचित्त होकर सबसे पहले अन्न को नमन करना चाहिये। भोजन करते समय अन्न पर ही दृष्टि रखनी चाहिये और अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

सदा चात्यशनं नाद्यान्नाति हीनं च कर्हिचित्।
यथान्नेन व्यथा न स्यात् तथा भुञ्जीत नित्यशः।।

आश्व० 92 दा० पा० अ XIV।।

कभी भी बहुत अधिक या कम भोजन नहीं करना चाहिये। सदा उतना ही खाना चाहिये जिससे शरीर को हानि न हो।

इच्छा

अथवा कं नरं लोके न स्पृशन्ति मनोरथाः।। कर्ण० 46 दा० पा० 4-5।।

इस संसार में किस मनुष्य के मन में इच्छाएँ नहीं उठतीं?

संयुक्ता काममन्युभ्यां क्रोधहर्षासमञ्जसाः।
न ते जयफलं किंचिद् भोक्तारो जातु कर्हिचित्।। शान्ति० 7/20।।

जो लोग इच्छा और रोष के कारण हर्ष और क्रोध में भरकर अपना सन्तुलन खो बैठते हैं वे अपनी विजय का फल तनिक भी नहीं भोग सकते।

नाह्ना पूरयितुं शक्यां न मासैर्भरतर्षभ।
अपूर्यां पूरयन्निच्छामायुषापि न शक्नुयात्।। शान्ति 17/4।।

भरतश्रेष्ठ! इच्छा को एक दिन में या कई महीनों में भी पूरा नहीं किया जा सकता। सारी आयु प्रयत्न करने पर भी पूरी न हुई इच्छा पूरी नहीं की जा सकती।

यदा संहरते कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
तदाऽऽत्मज्योतिरचिरात् स्वात्मन्येव प्रसीदति।। शान्ति० 21/3।।

जब मनुष्य अपनी सब इच्छाओं को उसी प्रकार समेट लेता है जैसे कछुआ अपने सारे अंगों को समेट लेता है, तब ज्योतिस्वरूप आत्मा अन्तःकरण में प्रकाशित हो जाता है।

यद् यत् जयति कामानां तत् सुखस्याभिपूर्यते।
कामानुसारी पुरुषः कामाननुविनश्यति।। शान्ति० 174/45।।

मनुष्य जिस-जिस इच्छा को छोड़ देता है छोड़ी हुई वह कामना उसका सुख बढ़ाती है। मनुष्य कामनाओं का दास है, और इन कामनाओं के पीछे दौड़ कर वह अपना सर्वनाश कर लेता है।

एतां बुद्धिं समास्थाय सुखमास्ते गुणान्वितः।
सर्वान् कामान् जुगुप्सेत कामान् कुर्वीत पृष्ठतः।। शान्ति० 174/49।।

गुणवान् मनुष्य ऐसी विवेकयुक्त बुद्धि अपना कर सुख से रहता है। मनुष्य को सभी तरह की इच्छाओं से मन को अलग रखना चाहिये और इच्छाओं को जीवन में महत्त्व नहीं देना चाहिये।

वृत्त एष हृदि प्रोढौ मृत्युरेष मनोभवः।
क्रोधो नाम शरीरस्थो देहिनां प्रोच्यते बुधैः।। शान्ति० 174/50।।

मन से पैदा होने वाली इच्छाएँ हृदय में पलती हैं। बाद में यही कामनाएँ मृत्यु का रूप ले लेती हैं। विद्वानों का कहना है कि जब कामनाएँ पूरी नहीं हो पातीं तब वे शरीर में क्रोध बनकर प्रकट होती हैं।

नोर्ध्वं नावाङ् न तिर्यक् च न क्वचिच्छक्र कामये।
न हि ज्ञेये न विज्ञाने न ज्ञाने कर्म विद्यते।। शान्ति 222/32।।

इन्द्र! मुझेऊपर (स्वर्ग की), नीचे (पाताल की) तथा बीच के लोक (मर्त्यलोक की) की कभी कामना नहीं होती। ज्ञान-विज्ञान और ज्ञेय के लिये भी मेरे लिये कोई कर्म नहीं बचा है।

कामगीता

नाहं शक्योऽनुपायेन हन्तुं भूतेन केनचित्।। आश्व० 13/12।।

मुझे अर्थात् कामना (इच्छा) को कोई व्यक्ति वास्तविक साधनों (निर्ममता और योगाभ्यास) का सहारा लिये बिना नष्ट नहीं कर सकता।

यो मां प्रयतते हन्तुं ज्ञात्वा प्रहरणे बलम्।
तस्य तस्मिन् प्रहरणे पुनः प्रादुर्भवाम्यहम्।। आश्व० 13/13।।

जो व्यक्ति अपने हथियारों के बल से मुझे मारने का प्रयत्न करता है मैं (कामना) उसके अस्त्र-बल में अभिमान के रूप में फिर प्रकट हो जाती हूँ।

यो मां प्रयतते हन्तुं यज्ञैर्विविधदक्षिणैः।
जङ्गमेष्विव धर्मात्मा पुनः प्रादुर्भवाम्यहम्।। आश्व० 13/14।।

जो व्यक्ति मुझे अनेक तरह की दक्षिणाओं वाले यज्ञों से नष्ट करने का प्रयत्न करता है। मैं (कामना) उसके मन में वैसे ही प्रकट हो जाती हूँ जैसे उत्तम जंगम (चल) योनियों में धर्मात्मा व्यक्ति उत्पन्न होते हैं।

यो मां प्रयतते हन्तुं धृत्या सत्यपराक्रमः।
भावो भवामि तस्याहं स च मां नावबुध्यते।। आश्व० 13/16।।

सत्य का सदा आचरण करने वाला पुरुष यदि मुझे अपने धैर्य की शक्ति से नष्ट करने का प्रयत्न करता है तो मैं उसके मन के भावों में इस तरह घुल-मिल जाती हूँ कि वह मुझे (कामना को) पहचान नहीं पाता।

यो मां प्रयतते हन्तुं मोक्षमास्थाय पण्डितः।
तस्य मोक्षरतिस्थस्य नृत्यामि च हसामि च।
अवध्यः सर्वभूतानामहमेकः सनातनः।। आश्व० 13/18।।

जो ज्ञानी पुरुष मोक्ष का सहारा लेकर मुझे मारने का प्रयत्न करता है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति मोक्ष के प्रति असक्ति में बंधा हुआ है यह देखकर मुझे उस पर हँसी आती है और मैं खुशी से नाचने लगती हूँ। मैं (काम या कामना) ही एकमात्र ऐसी हूँ जिसे कोई प्राणी नष्ट नहीं कर सकता। मैं सदा रहने वाली हूँ।

इन्द्रिय संयम

ऋतौ दारांश्च गच्छन्ति तत् तथा भरतर्षभ।
ततेऽवर्धन्त धर्मेण सहस्रशतजीविनः।। आदि० 64/11।।

प्राचीनकाल में संयमी पुरुष ऋतुकाल में ही अपनी स्त्रियों से समागम करते थे इसीलिये उनकी सन्तान हजारों और सैकड़ों वर्षों तक जीवित रहती थी और ऐसी सन्तान निरन्तर उन्नति करती थी।

ताः प्रजाः पृथिवीपाल धर्मवृतपरायणाः।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव विमुक्ताः सर्वशो नराः।। आदि० 64/12।।

हे राजा! उस युग की प्रजा धर्म और व्रतों का पालन किया करती थी। ऐसे लोग शारीरिक और मानसिक रोगों से और चिन्ताओं से मुक्त होते थे।

इन्द्रियाण्येव तत् सर्वं यत् स्वर्गनरकावुभौ।
निगृहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च।। वन० 211/19।।

स्वर्ग और नरक इन्द्रियों के संयम से या इन्द्रियों को विषयों में लगाने से ही मिलता है। इन्द्रिय संयम से स्वर्ग और असंयम से नरक मिलता है।

एष योगविधिः कृत्स्नो यावदिन्द्रियधारणम्।। वन० 211/20।।

मन सहित सभी इन्द्रियों को वश में रखना ही सम्पूर्ण योगविधि है।

इन्द्रियाणां प्रसृष्टानां हयानामिव वर्त्मसु।
धृतिं कुर्वीत सारथ्ये धृत्या तानि जयेत् ध्रुवम्।। वन० 211/25।।

सड़क पर भागने वाले घोड़ों की तरह विषयों की ओर भागने वाली इन्द्रियों को वश में करने के लिये धैर्यपूर्वक प्रयत्न करना चाहिये। धैर्य के साथ प्रयत्न करने पर अवश्य ही इन्द्रिय संयम होता है।

एवं पुन ब्रह्मचर्याप्रसक्तो हित्वा धर्मं यः प्रकरोत्यधर्मम्।
अश्रद्दधत् परलोकाय मूढो हित्वा देहं तप्यते प्रेत्य मन्दः।।

उद्योग० 27/9।।

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन न करके, धर्म को त्याग कर, अधर्म में प्रवृत्त होता है, ऐसा मूर्ख परलोक में विश्वास नहीं करता। वह शरीर छोड़ने के बाद परलोक में बहुत कष्ट पाता है।

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः।
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव।। उद्योग॰ 34/54।।

विषयों में रमने वाली इन्द्रियों के वश में न होने से लोग उसी तरह दुःख भोगते हैं जैसे सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों से नक्षत्रों की चमक फीकी पड़ जाती हैं।

यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट्।। उद्योग॰ 34/55।।

जो मनुष्य प्राणियों को वश में करने वाली आँख, नाक, कान आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के वश में रहता है उसकी कठिनाइयाँ शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ती जाती हैं।

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण योजयेत्।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते।। उद्योग॰ 34/57।।

जो व्यक्ति सबसे पहले मन सहित ज्ञानेन्द्रियों को शत्रु समझकर जीत लेता है वह बाद में यदि मन्त्रियों और शत्रुओं को जीतना चाहे तो उन्हें जीत लेता है।

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम्।। उद्योग॰ 34/61।।

इन्द्रियों को वश में न रखने के कारण मूर्ख व्यक्ति अनर्थ को अर्थ और अर्थ को अनर्थ मानकर बहुत बड़े दुःख को भी सुख मान बैठता है।

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्री प्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते।। उद्योग॰ 34/62।।

जो धर्म और अर्थ को त्याग कर इन्द्रियों के वश में हो जाता है वह ऐश्वर्य, प्राण, धन और स्त्री से जल्दी ही हाथ धो बैठता है।

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद् भ्रश्यते हि सः।। उद्योग॰ 34/63।।

जो बहुत पैसा होने पर भी अपनी इन्दियों को वश में नहीं रखता वह इन्द्रियों के वश में न होने के कारण ऐश्वर्य और सम्पत्ति से हाथ धो बैठता है।

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद् दैवतान्यपि।। उद्योग० 39/51।।

इन्द्रियों को पूरी तरह वश में रखना तो मृत्यु से भी कठिन है किन्तु इन्हें खुली छोड़ देने से देवताओं तक का नाश हो जाता है।

दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं दम उत्तमम्।
विपाप्मा वृद्धतेजास्तु पुरुषो विन्दते महत्।। उद्योग० 63/11।।

इन्द्रिय संयम से तेज बढ़ता है। दम, पवित्र और श्रेष्ठ साधन है। दम से निष्पाप और बढ़े हुए तेज वाला पुरुष परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

अलोलुपस्तथाल्पेप्सुः कामानामविचिन्तिता।
समुद्रकल्पः पुरुषः स दान्तः परिकीर्तितः।। उद्योग० 63/17।।

लोभरहित, कम से कम चाहने वाला, भोगों की चिन्ता से दूर रहने वाला और समुद्र की तरह गम्भीर पुरुष इन्द्रियजयी कहा जाता है।

इन्द्रियैर्नियतैर्बुद्धिर्वर्धतेऽग्निरिवेन्धनैः।। उद्योग० 129/26।।

इन्द्रियों को वश में कर लेने से बुद्धि वैसे ही बढ़ती है जैसे लकड़ी डालने से आग।

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण योजयेत्।। उद्योग 129/29।।

सबसे पहले अपने मन को शत्रु मानकर उसे वश में करना चाहिये।

आत्मवन्तं न कर्माणि निबन्धनन्ति धनंजय।।

भीष्म० 28/41; गीता 4/41।।

वश में की गई इन्द्रियों वाले संयमी पुरुष को कर्मों का बन्धन नहीं बांध सकता।

निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते।।

भीष्म० 29/3; गीता 5/3।।

सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों से रहित संयमी पुरुष संसार बन्धन से छूट जाता है।

शुश्रूषुरपि दुर्मेधाः पुरुषोऽनियतेन्द्रियः।
नालं वेदयितुं कृत्स्नौ धर्मार्थाविति मे मतिः।। सौप्तिक 5/1।।

जिस मनुष्य की बुद्धि में बुरी भावनाएँ हैं और जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं

वह धर्म और अर्थ बातें सुनना चाहते हुए भी इन बातों को पूरी तरह नहीं समझ सकता।

तथैव तावन्मेधावी विनयं यो न शिक्षते।
न च किंचन जानाति सोऽपि धर्मार्थ निश्चयम्।। सौप्तिक० 5/2।।

इसी तरह जिस बुद्धिमान पुरुष में विनय या नम्रता नहीं होती वह भी धर्म और अर्थ के तत्त्व को तनिक भी नहीं जान पाता।

चिरं ह्यपि जडः शूरः पण्डितं पर्युपास्य हि।
न स धर्मान् विजानाति दर्वी सूपरसानिव।। सौप्तिक० 5/3।।

मूर्ख शूरवीर भी बहुत दिनों तक विद्वानों के साथ रहने पर भी धर्मों का रहस्य नहीं जान पाता जैसे दाल में डूबी रहने पर भी करछुल दाल का स्वाद नहीं जानती।

मुहूर्तमपि तं प्राज्ञः पण्डितं पर्युपास्य हि।
क्षिप्रं धर्मान् विजानाति जिह्वा सूपरसानिव।। सौप्तिक० 5/4।।

बुद्धिमान् पुरुष विद्वान के पास थोड़ी देर बैठकर भी धर्म के रहस्य एकदम समझ जाता है जैसे जीभ दाल का स्वाद एकदम जान जाती है।

शुश्रूषुस्त्वेव मेघावी पुरुषो नियतेन्द्रियः।
जानीयादागमान् सर्वान् ग्राह्यं च न विरोधयेत्।।

सौप्तिक० 5/5।।

अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला बुद्धिमान पुरुष यदि विद्वानों की बात सुनना चाहे तो वह सभी शास्त्रों को समझ लेता है और ग्रहण करने योग्य वस्तु का विरोध नहीं करता।

अनेयस्त्ववमानी यो दुरात्मा पापपूरुषः।
दिष्टमुत्सृज्य कल्याणं करोति बहुपापकम्।। सौप्तिक० 5/6।।

जिस पुरुष को सन्मार्ग पर नहीं लाया जा सकता, जो दूसरों की अवहेलना करता है। जिसका अन्तःकरण दूषित है ऐसा पापी व्यक्ति बताये हुए कल्याण के मार्ग को छोड़कर अनेक तरह के पाप कर्म करने लगता है।

यतेन्द्रियो नरो राजन् क्रोधलोभनिराकृतः।
सन्तुष्टः सत्यवादी यः स शान्तिमधिगच्छति।। स्त्री० 7/18।।

राजन्! जो मनुष्य जितेन्द्रिय, क्रोध और लोभ से दूर, सन्तोषी और सत्यवादी होता है उसे अपने जीवन में शान्ति प्राप्त होती है।

साधुः परमदुःखानां दुःखभैषज्यमाचरेत्।
ज्ञानौषधमवाप्येह दूरपारं महौषधम्।
छिन्द्याद् दुःखमहाव्याधिं नरः संयतमानसः।। स्त्री० 7/21।।

सज्जन को चाहिये कि वह अपने मन को वश में करके ज्ञानरूपी महान् औषधि को प्राप्त करे। ज्ञान की यह औषधि बड़ी मुश्किल से मिलती है। ज्ञान की इस औषधि से दु:खरूपी रोग को नष्ट करना चाहिये।

न विक्रमो न चाप्यर्थो न मित्रं न सुहृज्जनः।
तथोन्मोचयते दुःखाद् यथाऽऽत्मा स्थिरसंयमः।। स्त्री० 7/22।।

पराक्रम, धन और मित्र भी दु:ख से वैसा छुटकारा नहीं दिला सकते जैसा वश में रहने वाला अपना मन दु:खों से छुटकारा दिला सकता है।

दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्रह्मणो हयाः।। स्त्री० 7/23।।

शीलरश्मिसमायुक्तः स्थितो यो मानसे रथे।

त्यक्त्वा मृत्युभयं राजन् ब्रह्मलोकं स गच्छति।। स्त्री० 7/24।।

राजन्! दम (इन्द्रिय संयम), त्याग और अप्रमाद ये तीन गुण परमात्मा की शरण में ले जाने वाले घोड़े हैं। मित्रता रूपी शील (स्वभाव) की लगाम को पकड़कर जो मनुष्य इन तीन घोड़ों से जुते हुए मनरूपी रथ पर सवार होता है वह मृत्यु का भय छोड़कर ब्रह्मलोक में चला जाता है।

नियच्छ यच्छ संयच्छ इन्द्रियाणि मनो गिरम्।

प्रतिषेद्धा न चाप्येषु दुर्बलेष्वहितेष्वपि।। शान्ति० 104/47।।

अपनी इन्द्रियों, वाणी और मन को वश में करो। इन दुर्बल और अहित करने वाली इन्द्रियों, मन और वाणी को अपने सिवाय और कोई नहीं रोक सकता।

सत्त्वेन रजसा चैव तमसा चैव मोहिताः।
चक्रवत् परिवर्तन्ते ह्यज्ञानाज्जन्तवो भृशम्।। शान्ति० 212/17।।

असंयमी मनुष्य अज्ञान के कारण सत्त्व, रजस् और तमस् के कारण मोह में पड़कर चक्र की तरह जीवन-मरण के फेर में पड़े रहते हैं।

सत्यशौचार्जवत्यागैर्वर्चसा विक्रमेण च।
क्षान्त्या धृत्या च बुद्ध्या च मनसा तपसैव च।। शान्ति० 212/15।।

भावान् सर्वानुपावृत्तान् समीक्ष्य विषयात्मकान्।
शान्तिमिच्छन्नदीनात्मा संयच्छेदिन्द्रियाणि च।। शान्ति० 212/16।।

उत्साहयुक्त मनुष्य सत्य, शौच, सरल व्यवहार, त्याग, तेज, पराक्रम, क्षमा, धैर्य, बुद्धि, मन और तपस्या के द्वारा विषय सम्बन्धी सभी विचारों पर ध्यानपूर्वक सोचे और शान्ति प्राप्त करने की इच्छा से अपनी इन्द्रियों को वश में रखे।

क्रिया तपश्च सत्यं च दमे सर्वं प्रतिष्ठितम्।। शान्ति० 220/3।।

सारे कार्यों, तपस्या और सत्य का आधार इन्द्रिय संयम ही है।

विपाप्मा निर्भयो दान्तः पुरुषो विन्दते महत्।। शा० 220/4।।

मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाला पुरुष पाप और भय से मुक्त होकर 'महत्' पद प्राप्त कर लेता है।

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र सर्वसंत्यागात् सिद्धिं विन्दति कश्चन।। शान्ति० 239/5।।

विद्या, तपस्या, इन्द्रिय संयम और सर्वस्व त्याग के बिना कोई भी व्यक्ति कोई सफलता नहीं पा सकता।

चतुर्द्वारं पुरुषं चतुर्मुखं चतुर्धा चैनमुपयाति वाचा।
बाहुभ्यां वाच उदरादुपस्थात् तेषां द्वारं द्वारपालो बुभूषेत्।।
शान्ति० 269/23।।

हाथ-पैर, वाणी, पेट और शिश्न (जननेन्द्रिय) मनुष्यों के शरीर में ये चार द्वार हैं। मनुष्य इनका द्वारपाल बनने की इच्छा करे अर्थात् इन्हें वश में रखे। इन चारों द्वारों के संयम से प्राप्त होने वाले ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार मुखों से युक्त परम पुरुष को भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग और अष्टांग योग इन चार उपायों से प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

नाक्षैर्दीव्येन्नाददीतान्यवित्तं न वायोनीयस्य शृतं प्रगृह्णात्।
क्रुद्धो न चैव प्रहरेत धीमांस्तथास्य पाणिपादं सुगुप्तम्।।
शा० 269/24।।

बुद्धिमान् पुरुष जुआ न खेले। दूसरों का धन न ले। नीच पुरुष का बनाया हुआ अन्न न खाये। क्रोध में आकर किसी को मारे नहीं। ऐसा करने से मनुष्य के हाथ पैर सुरक्षित रहते हैं।

नाक्रोशमृच्छेन्न वृथा वदेच्च न पैशुनं जनवादं च कुर्यात्।
सत्यव्रतो मितभाषोऽप्रमत्तस्तथास्यवाग्द्वारमथोसुगुप्तम्।।

शान्ति 268/25।।

किसी को गाली न दे। व्यर्थ ही न बोले। किसी की चुगली और बदनामी न करे। सत्य बोले। कम बोले। सत्य बोलने और कम बोलने में सदा सावधान रहे। ऐसा करने से वाणी की सुरक्षा होती है।

नानाशनः स्यान्न महाशनः स्यादलोलुपः साधुभिरागतः स्यात्।
यात्रार्थमाहारमिहाददीत तथास्य स्याज्जाठरी द्वारगुप्तिः।।

शान्ति० 269/26।।

उपवास न करता रहे। बहुत अधिक भी न खाये। भोजन के लिये सदा लालच न करता रहे। सज्जनों का संग करे और जीवन निर्वाह के लिये जितना भोजन आवश्यक हो उतना ही खाये। ऐसा करने से पेट के द्वार की रक्षा होती है।

न वीर पत्नीं विहरेत नारीं न चापि नारीमनृतावाह्वयीत।
भार्याव्रतं ह्यात्मनि धारयीत तथास्योपस्थद्वारगुप्तिर्भवेत्।।

शा० 269/27।।

वीर युधिष्ठिर! अपनी पत्नी के साथ ही विहार करे परायी स्त्री के साथ नहीं। जब तक पत्नी ऋतुमती न हो तब तक उसे अपने पास न बुलाये। मन में एक पत्नी का व्रत धारण करे। ऐसा करने से मनुष्य के शिश्न द्वार की रक्षा होती है।

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमास्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्।। शान्ति० 299/13।।

वेदाध्ययन का सार सत्यभाषण है। सत्यभाषण का सार इन्द्रिय संयम है। इन्द्रियसंयम का फल मोक्ष है, यही सम्पूर्ण शास्त्रों का उपदेश है।

चत्वारि यस्य द्वाराणि सुगुप्तान्यमरोत्तमाः।
उपस्थमुदरं हस्तौ वाक् चतुर्थी स धर्मवित्।। शान्ति० 199/28।।

हे श्रेष्ठ देवो! जिस पुरुष का पेट, जननेन्द्रिय, दोनों हाथ पैर और वाणी ये चार द्वार भली-भाँति वश में रहते हैं वही धर्मज्ञ होता है।

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संनियम्य तु तान्येव सिद्धिमाप्नोति मानवः।। शान्ति 323/8।।

इसमें सन्देह नहीं कि इन्द्रियों की विषयासक्ति के कारण ही मनुष्य दुःख पाता है, किन्तु इन्द्रियों को वश में कर लेने पर उसे सफलता मिलती है।

परिग्रहं परित्यज्य भव तात जितेन्द्रियः।
अशोकं स्थानमातिष्ठ इह चामुत्र चाभयम्।। शान्ति० 329/20।।

प्रिय ! तुम सांसारिक वस्तुओं को इकट्ठा न करके जितेन्द्रिय बनो। तुम उस पद को प्राप्त करो जो इस लोक तथा परलोक में शोक और भय से रहित है।

हरन्ति दोषजातानि नरं जातं यथेच्छकम्।
प्रभवामि सदा धृत्या भद्रे स्वशयनं व्रज।। अनुशासन 20/16।।

भद्रे ! स्वेच्छारी मनुष्य को ही सभी तरह के पाप और बुराइयाँ अपनी ओर खींचती हैं। मैं धैर्य के द्वारा मन को वश में रखता हूँ। तुम अपने बिस्तरे पर जाओ।

दान्ताः सर्वत्र सुखिनो दान्ताः सर्वत्र निर्वृताः।। अनु० 75/11।।

जितेन्द्रिय पुरुष सब जगह सुखी और सन्तुष्ट रहते हैं।

दाता कुप्यति नो दान्तस्तस्माद् दानात् परं दमः।। अनु० 75/15।।

दान देने वाले को क्रोध आ जाता है किन्तु जितेन्द्रिय व्यक्ति क्रोध नहीं करता, अतः दान करने वाले की अपेक्षा जितेन्द्रिय व्यक्ति श्रेष्ठ होता है।

इन्द्रियाणां निरोधेन दानेन च दमेन च।
नरः सर्वमवाप्नोति मनसा यद् यदिच्छति।। अनु० 145 दा० पा०अ IV।।

इन्द्रियों को वश में रखने से, दान देने से और मन पर संयम करने से मनुष्य के मन की सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं।

निवृत्तिः परमो धर्मो निवृत्तिः परमं सुखम्।
मनसा विनिवृत्तानां धर्मस्य निचयो महान्।। अनु० 145 दा० पा० अ IV।।

मन को विषय भोगों से हटा लेना सर्वश्रेष्ठ धर्म है। ऐसा करने से मनुष्य को बहुत सुख मिलता है। मन को संयम में रखने से बहुत धर्म लाभ होता है।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु नैव धीरो नियोजयेत्।
मनः षष्ठानि संयम्य नित्यमात्मनि योजयेत्।।
इंन्द्रियाणां विसर्गेण दोषमृच्छत्यसंशयम्।
संनियम्य नु तान्येव ततः सिद्धिमवाप्नुयात्।।

षण्णामात्मनि युक्तानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति।
न च पापैर्न चानर्थैः संयुज्येत विचक्षणः।। अनु० 145 दा० पा० अ० XIV।।

बुद्धिमान मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को उनके रूप, रस, गन्ध आदि विषयों में नहीं लगाना चाहिये। मन सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को खुली छूट देने से अनेक कष्ट होने लगते हैं। किन्तु इन्हें वश में रखकर मनुष्य कोई भी सफलता पा सकता है। मन सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को परमात्म चिन्तन में लगाकर इन पर जो व्यक्ति अपना वश कर लेता है वह पापों में और अनर्थों में नहीं पड़ता।

अप्रमत्तः सदा रक्षेदिन्द्रियाणि विचक्षणः।
अरक्षितेषु तेष्वाशु नरो नरकमेति हि।। अनु० 145 दा० पा० अ० XIV।।

बुद्धिमान पुरुष को सदा सावधान रहकर अपनी इन्द्रियों की रक्षा करनी चाहिये। इन्द्रियों को छूट देने से मनुष्य नरक में जाता है।

इन्द्रियेषु च जीर्यत्सु च्छिद्यमाने तथाऽऽयुषि।
पुरस्ताच्च स्थिते मृत्यौ किं सुखं पश्यतः शुभे।।

अनु० 145 दा० पा० अ०XIV।।

हे शुभ विचारों वाली! इन्द्रियाँ लगातार कमजोर होती जा रही हैं और आयु भी घटती जा रही है तथा मौत सामने खड़ी है। यह सब देखते हुए संसार में किसे सुख मिलेगा?

व्याधिभिः पीड्यमानस्य नित्यं शारीरमानसैः।
नरस्याकृतकृत्यस्य किं सुखं मरणे सति।। अनु० 145 दा० पा० अ० XIV।।

मनुष्य सदा शारीरिक और मानसिक रोगों से दुखी रहता है। वह अपनी अधूरी इच्छाएँ लिये हुए ही मर जाता है। यह सब देखते हुए किसी को संसार में क्या सुख दीखेगा?

संचिन्तयानमेवार्थं कामानामवितृप्तकम्।
व्याघ्रः पशुमिवारण्ये मृत्युरादाय गच्छति।।
जन्ममृत्युजरादुःखैः सततं समभिद्रुतः।
संसारे पच्यमानस्तु पापान्नोद्विजते जनः।। अनु० 145 दा० पा० अ० XIV।।

मनुष्य अपनी इच्छाएँ पूरी करने के उपाय सोचता रहता है और उसकी कामनाएँ कभी पूरी नहीं होतीं, तभी उसे मृत्यु उठा कर वैसे ही ले जाती है जैसे जंगल में पशु

को बाघ उठा कर ले जाता है। मनुष्य इस संसार में जन्म, मरण और बुढ़ापे के दुखों से परेशान रहता है फिर भी वह पाप के काम करना नहीं छोड़ता।

यच्छेद्वाङ्मनसी नित्यमिन्द्रियाणि तथैव च।। अनु० 162/49।।

मन, वाणी, और इन्द्रियों को सदा वश में रखना चाहिये।

इन्द्रियाणां निरोधेन सर्वेषां विषयैषिणाम्।
मुनेर्जनपदत्यागादध्यात्माग्निः समिध्यते।। आश्व० 42/48।।

भोग विषयों को चाहने वाली सभी इन्द्रियों को वश में करके और नगर आदि भीड़ के स्थानों को छोड़ देने से परमात्मा के ज्ञान की अनुभूति विशेषरूप से होने लगती है।

कामं क्रोधं भयं लोभमभिद्रोहमथानृतम्।
इन्द्रियाणां निरोधेन सदा त्यजति दुस्त्यजान्।। आश्व० 42/56।।

काम, क्रोध, डर, लोभ, वैर और झूठ बोलना इन सब बुराइयों को छोड़ना बड़ा कठिन है किन्तु इन्द्रियों को वश में कर लेने पर ये सारी बुराइयाँ सदा के लिये छूट जाती हैं।

ईर्ष्या

हृत्तपो मत्सरः स्मृतः।। वन० 313/98।।

हृदय की जलन ही ईर्ष्या (मत्सर) होती है।

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः।। उद्योग० 34/42।।

जो पराये धन, सौन्दर्य, पराक्रम, कुल, सुख, सौभाग्य और सम्मान में ईर्ष्या करता है उसका यह रोग असाध्य होता है।

अमर्षवशमापन्नो न किंचिद् बुध्यते जनः।। उद्योग० 124/42।।

ईर्ष्या के वश में पड़ा मनुष्य कोई बात ठीक तरह से नहीं समझ पाता है।

बहवः पण्डिता मूर्खा लुब्धा मायोपजीविनः।
कुर्युर्दोषमदोषस्य बृहस्पतिमतेरपि।।

शान्ति० 111/63।।

ऐसे बहुत से विद्वान, मूर्ख, लोभी और कपटी व्यक्ति होते हैं जो बृहस्पति जैसी बुद्धि वाले निर्दोष लोगों में भी दोष निकालते हैं।

श्रियं विशिष्टां विपुलं यशो धनं न दोषदर्शी पुरुषः समुश्नते।।

शान्ति० 120/54।।

दूसरों के दोष देखने वाला पुरुष विशिष्ट सम्पत्ति, यश और धन नहीं पा सकता।

सत्यत्यागात् तु मात्सर्यमहितानां च सेवया।
एतत् तु क्षीयते तात साधूनामुपसेवनात्।। शान्ति० 163/15।।

सत्य व्यवहार छोड़ देने से और दुष्ट लोगों के साथ रहने से ईर्ष्या पैदा होती है। ताता सज्जनों के साथ रहने से यह नष्ट हो जाती है।

ईर्ष्या कामात् प्रभवति संहर्षाच्चैव जायते।
इतरेषां तु सत्त्वानां प्रज्ञया सा प्रणश्यति।। शान्ति० 163/17।।

मन में कामनाएँ होने से तथा दूसरे लोगों की हँसी-खुशी देखने से ईर्ष्या पैदा होती है। विवेकयुक्त बुद्धि से ईर्ष्या नष्ट हो जाती है।

न तथा वक्तुमिच्छन्ति कल्याणान् पुरुषे गुणान्।
यथैषां वक्तुमिच्छन्ति नैर्गुण्यमनुयुञ्जकाः।। शान्ति 299/23।।

किसी से ईर्ष्या करने वाले मनुष्य जिस प्रकार उसके दोषों का बखान करते हैं। उसी तरह उसके अच्छे गुणों का वर्णन करना नहीं चाहते।

अनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्मादिर्ष्यां विवर्जयेत्।। अनु० 104/137।।

ईर्ष्या करने से आयु घटती है इसलिये ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये।

ईश्वर

धातैव खलु भूतानां सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
दधाति सर्वमीशानः पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरन्।। वन० 30/22।।

विधाता ही सब प्राणियों के पिछले कर्मों के अनुसार उन्हें सुख, दुख देते हैं तथा उनका भला-बुरा करते हैं। ईश्वर ही सब प्राणियों के स्वामी हैं।

यथा दारुमयी योषा नरवीर समाहिता।
ईरयत्यङ्गमङ्गानि तथा राजन्निमाः प्रजाः।। वन० 30/23।।

नरवीर राजन्! जैसे कठपुतली सूत्रधार की इच्छानुसार अपने अंग चलाती है वैसे ही सारे प्राणी ईश्वर की प्रेरणा से अपने सब काम करते हैं।

आकाश इव भूतानि व्याप्य सर्वाणि भारत।
ईश्वरो विदधातीह कल्याणं यच्च पापकम्।। वन० 30/24।।

भारत! ईश्वर सभी प्राणियों में आकाश की भांति व्याप्त होकर प्राणियों के कर्मानुसार सुख-दुःख का विधान करते हैं।

शकुनिस्तन्तुबद्धो वा नियतोऽयमनीश्वरः।
ईश्वरस्य वशे तिष्ठेन्नान्येषां नात्मनः प्रभुः।। वन० 30/25।।

जीव स्वतंत्र नहीं है। वह तागे में बंधे हुए पक्षी की तरह कर्मों के बन्धनों से बंधा हुआ है। वह ईश्वर के अधीन है। उसका न अपने पर वश चलता है और न ही दूसरों पर।

मणिः सूत्र इव प्रोतो नस्योत इव गोवृषः।
स्रोतसो मध्यमापन्नः कूलाद् वृक्ष इव च्युतः।। वन० 30/26।।

धातुरादेशमन्वेति तन्मयो हि तदर्पणः।
नात्माधीनो मनुष्योऽयं कालं भजति कंचन।। वन० 30/27।।

तागे में पिरोई हुई मणि, नकेल पड़े हुए बैल और किनारे से उखड़ कर धार में पड़े हुए पेड़ की भाँति सभी प्राणी ईश्वर के आदेश के अनुसार चलते हैं। ईश्वर सभी जीवों में समाया हुआ है और जीव ईश्वर के ही अधीन है। मनुष्य स्वतन्त्र होकर समय नहीं बिताता।

अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।। वन० 30/28।।

यह जीव अज्ञानी है तथा अपना सुख-दुःख करने में असमर्थ है।

यथा वायोस्तृणाग्राणि वशं यान्ति बलीयसः।
धातुरेव वशं यान्ति सर्वभूतानि भारत।। वन० 30/29।।

भारत! जैसे आंधी में तिनके उड़ते-फिरते हैं वैसे ही सारे प्राणी ईश्वर के वश में होकर रहते हैं।

आर्ये कर्मणि युञ्जानः पापे वा पुनरीश्वरः।
व्याप्य भूतानि चरते न चायमिति लक्ष्यते।। वन० 30/30।।

कोई व्यक्ति चाहे अच्छे कर्म कर रहा हो या पाप कर्म। ईश्वर तो सभी प्राणियों में व्याप्त होकर विचर रहे हैं किन्तु किसी को दीखते नहीं।

हेतुमात्रमिदं धातुः शरीरं क्षेत्रसंज्ञितम्।
येन कारयते कर्म शुभाशुभफलं विभुः।। वन॰ 30/31।।

हमारा यह शरीर ईश्वर का साधन ही है। इसे क्षेत्र कहा जाता है। इस शरीर के द्वारा परमेश्वर प्राणियों से अच्छे-बुरे काम कराते हैं।

अन्यथा परिदृष्टानि मुनिभिस्तत्वदर्शिभिः।
अन्यथा परिवर्तन्ते वेगा इव नभस्वतः।। वन॰ 30/33।।

तत्त्वदर्शी मुनियों ने संसार के पदार्थों का स्वरूप किसी और ही प्रकार का देखा है किन्तु अज्ञानियों को वस्तुएँ किसी और रूप में दीखती हैं जैसे सूर्य की किरणें मरुस्थल में पानी जैसी दीखती हैं।

सम्प्रयोज्य वियोज्यायं कामकारकरः प्रभुः।
क्रीडते भगवान् भूतैर्बालः क्रीडनकैरिव।। वन॰ 30/37।।

जैसे बालक खिलौनों से खेलता है वैसे ही स्वेच्छानुसार कर्म करने वाले भगवान प्राणियों का संयोग-वियोग कराकर लीला करते रहते हैं।

उत सन्तमसन्तं वा बालं वृद्धं च संजय।
उताबलं बलीयांसं धाता प्रकुरुते वशम्।। उद्योग॰ 31/1।।

संजय! सज्जन-दुष्ट, बालक-वृद्ध और निर्बल-बलवान सभी को विधाता अपने वश में रखता है।

परप्रयुक्तः पुरुषो विचेष्टते सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा। उद्योग॰32/13।।

तागे में बंधी हुई कठपुतली की तरह मनुष्य परमात्मा की प्रेरणा से ही कार्य करता है।

यतो न वेदा मनसा सहैनमनुप्रविशन्ति ततोऽथमौनम्।
यत्रोत्थितो वेदशब्दस्तथायं स तन्मयत्वेन विभाति राजन्।।

उद्योग॰ 43/2।।

राजन्! जहाँ मन के साथ वाणीरूप वेद नहीं पहुँच पाते उसी परमात्मा का नाम मौन है। जिससे वैदिक और लौकिक शब्द प्रकट हुए हैं वे परमात्मा तन्मय होकर ध्यान लगाने से प्रकाशित होते हैं।

तूष्णीम्भूत उपासीत न चेष्टेन्मनसापि च।। उद्योग॰ 43/59।।

मौन रहकर और मन से भी कोई चेष्ठ्य न कर परमात्मा की उपसना करे।

रसैर्विमुक्तं विविधैश्च गन्धैरशब्दमस्पर्शमरूपव ञ्च।
अग्राह्यमव्यक्तमवर्णमेकं पञ्चप्रकारान् ससृजे प्रजानाम्।।

शा० 201/26।।

वह नाना प्रकार के रसों और गन्धों से रहित है। वह शब्द, स्पर्श और रूप से भी रहित है। मन, बुद्धि और वाणी से उसे जाना नहीं जा सकता। वह अव्यक्त (अप्रकट) तथा रंगरहित है फिर भी उसने प्राणियों के लिये रूप, रस,. गन्ध, शब्द और स्पर्श ये पाँच विषय बनाये हैं।

न स्त्री पुमान् नापि नपुंसकं च न सन्न चासत् सदसच्च तन्न।
पश्यन्ति यद् ब्रह्मविदो मनुष्यास्तदक्षरं न क्षरतीति विद्धि।।

शा० 201/27।।

वह न तो स्त्री है, न पुरुष है, न ही नपुंसक है। वह न सत् है, न असत् है और न ही सत्-असत् रूप है। ब्रह्मज्ञानी ही उसे साक्षात् करते हैं। वह अविनाशी परमात्मा अक्षर अर्थात् नष्ट न होने वाला कहलाता है यह समझ लो।

नोष्णं न शीतं मृदु नापि तीक्ष्णं नाम्लं कषायं मधुरं न तिक्तम्।
न शब्दवन्नापि च गन्धवत्तन्न रूपवत् तत् परमस्वभावम्।।

शा० 202/3।।

परमात्मतत्त्व न गर्म है, न ठण्डा है, न कोमल है, न तीक्ष्ण है, न खट्टा है, न कसैला, मीठा या चरपरा है। वह शब्द, गन्ध और रूप से रहित है। वह परमात्त्मतत्व सबसे उत्कृष्ट और विलक्षण है।

न ह्ययं चक्षुषा दृश्यो न च सर्वैरपीन्द्रियैः।
मनसा तु प्रदीपेन महानात्मा प्रकाशते।। शान्ति० 239/16।।

इस परमात्मा को आँखों से और सारी इन्द्रियों से भी नहीं देखा जा सकता। यह विशुद्ध मन के दीपक से बुद्धि में प्रकाशित होता है।

अशब्दस्पर्शरूपं तदरसागन्धमव्ययम्।
अशरीरं शरीरेषु निरीक्षेत निरिन्द्रियम्।। शा० 239/17।।

वह आत्मतत्त्व यद्यपि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से रहित अविकारी

तथा शरीर और इन्द्रियों से रहित है फिर भी शरीरों के अन्दर ही इसका पता लगाना चाहिये।

यावानात्मनि वेदात्मा तावानात्मा परात्मनि।
य एवं सततं वेद सोऽमृतत्वाय कल्पते।। शान्ति० 239/22।।

हमारे अपने शरीर के भीतर जैसा ज्ञान स्वरूप आत्मा है वैसा ही दूसरों के शरीरों में भी है। जिस व्यक्ति का यह ज्ञान सदा बना रहता है वह अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येवात्मनात्मनि।
यस्मिंस्तु पच्यते कालस्तं वेदेह न कश्चन।। शान्ति० 239/25।।

काल सभी प्राणियों को अपने अन्दर पचाता रहता है किन्तु जहाँ काल को भी पचाया जाता है उस परमात्मा को कोई नहीं जानता।

विधूम इव सप्तार्चिरादित्य इव रश्मिमान्।
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे दृश्यतेऽऽत्मा तथाऽऽत्मनि।। शान्ति० 306/20।।

ध्यानमग्न योगी को अपने हृदय में परमात्मा का उसी प्रकार साक्षात् होता है जैसे धूमरहित अग्नि का, किरणों से युक्त सूर्य का और आकाश में विद्युत का।

ईश्वरेण च युक्तोऽयं साध्वसाधु च मानवः।
करोति पुरुषः कर्म तत्र का परिदेवना।। आश्व० 3/2।।

मनुष्य ईश्वर की प्रेरणा से भले-बुरे काम करता है इसलिये शोक नहीं करना चाहिये।

ऋण

वर्धमानं ऋणं तिष्ठत् परिभूताश्चशत्रवः।
जनयन्ति भयं तीव्रं व्याधयश्चाप्युपेक्षिता।। शान्ति 140/59।।

यदि बढ़ता हुआ कर्ज बचा रहे और हारे हुए शत्रु जीवित रहें तथा रोगों की परवाह न की जाय तो इन सबसे महान संकट आ जाता है।

देवतातिथि भृत्येभ्यः पितृभ्यश्चात्मनस्तथा।
ऋणवान् जायते मर्त्यस्तस्मादनृणतां व्रजेत्।। शान्ति 292/9।।

मनुष्य; देवता, अतिथि, भरण-पोषण के योग्य कुटुम्बीजनों, पितरों तथा अपना भी ऋणी होकर जन्म लेता है। उसे इन ऋणों से मुक्त होना चाहिये।

स्वाध्यायेन महर्षिभ्यो देवेभ्यो यज्ञकर्मणा।

पितृभ्यः श्राद्धदानेन नृणामभ्यर्चनेन च।। शान्ति 282/10।।

शास्त्रों का स्वाध्याय करके महर्षियों के, यज्ञ द्वारा देवताओं के, श्राद्ध और दान से पितरों के और सेवा-सत्कार से अतिथि के ऋण छूटना चाहिये।

वाचा शेषावहार्येण पालनेनात्मनोऽपि च।

यथावद् भृत्यवर्गस्य, चिकीर्षेत् कर्म आदितः।। शा॰292/11।।

वेदवाणी के पठन, श्रवण और मनन से, यज्ञ शेष अन्न का भोजन करने से तथा जीवों की रक्षा करने से मनुष्य अपने ऋण से मुक्त हो जाता है। भरण-पोषण करने योग्य परिवार वालों का पालन शुरू से ही करना चाहिये। ऐसा करने से उनके ऋण से भी मुक्ति मिल जाती है।

उन्नति

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः।

समीक्ष्य च स समारभ्यो विद्धि मूलं भवस्य तु।। उद्योग॰ 39/68।।

उद्यम, संयम, चातुर्य, सावधानी, धैर्य, स्मरणशक्ति और सोच-विचार कर काम प्रारम्भ करने का स्वभाव उन्नति के मूल मंत्र हैं।

अनिर्वेदः सदा कार्यो निर्वेदाद्धि कुतः सुखम्।। शान्ति॰ 153/51।।

अपने हृदय में सदा हिम्मत बनाये रखनी चाहिये। हिम्मत हार जाने से सुख कैसे मिल सकता है?

अनिर्वेदेन दीर्घेण निश्चयेन ध्रुवेण च।। शान्ति॰ 153/116।।

देवदेवप्रसादाच्च क्षिप्रं फलमवाप्यते।।

सदा हिम्मत और धैर्य धारण करने से, दृढ़ निश्चय से और देवाधिदेव भगवान की कृपा से मनुष्य को शीघ्र ही सफलता मिलती है।

उपकार का बदला

यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्यादभ्यधिकं ततः।। आदि॰ 156/14।।

कोई मनुष्य हमारा जितना उपकार करे हमें उससे अधिक उसका उपकार करना चाहिये।

एतावानेव पुरुषः कृतं यस्मिन् न नश्यति।। आदि० 161/14।।

मनुष्य वही है जो उपकार न भूले (जिसके प्रति किया उपकार नष्ट नहीं होता)

यावच्च कुर्यादन्योऽस्य कुर्याद् बहुगुणं ततः।। आदि० 161/15।।

दूसरा मनुष्य जितना उपकार करे उससे कई गुना उपकार बदले में करना चाहिये।

कृतं शतगुणं कुर्यात्।। वन० 194/5।।

उपकार का बदला सौगुना उपकार करके चुकाना चाहिये।

यस्य चार्द्रस्य वृक्षस्य शीतच्छायां समाश्रयेत्।
न तस्य पर्णं द्रुह्येत पूर्ववृत्तमनुस्मरन्।। विराट० 16/19 दा० पा०।।

जिस हरे भरे पेड़ की शीतल छाया में रहा जाता है उसका यह उपकार देखते हुए हमें उस पेड़ का एक पत्ता भी नहीं तोड़ना चाहिये।

इच्छन्ति बहुलं सन्तः प्रतिकर्तुं महत् प्रियम्।। उद्योग० 60/7।।

सज्जन उपकार करने वाले का बदला चुकाने के लिये उनका प्रिय कार्य बार-बार करना चाहते हैं।

जीवितस्य प्रदातारं कृतज्ञः को नु पूजयेत्।। शान्ति० 138/131।।

कौन कृतज्ञ व्यक्ति अपने जीवनदाता का सत्कार नहीं करेगा?

एकता

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ।। उद्योग० 36/60।।

भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र! जलती हुई लकड़ी अलग पड़ी हुई धुँआ देती है किन्तु साथ मिलने पर जलने लगती है। इसी तरह सगे सम्बन्धी भी आपस में फूट होने पर दुःख पाते हैं और मिलकर रहने से सुखी होते हैं।

महानप्येको वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात्।। उद्योग० 36/62।।

बड़ा वृक्ष अकेला होने पर गहरी जड़ों के बाजजूद क्षण भर में आंधी के झोंके से तने सहित गिर पड़ता है।

अथ ये सहिता वृक्षाः सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्य संश्रयात्।। उद्योग० 36/63।।

जो पेड़ झुण्ड में होते हैं और जिनकी जड़ें मजबूत होती हैं वे एक दूसरे का सहारा पाकर वायु के तेज झोंके भी सह लेते हैं।

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम्।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम्।। उद्योग० 36/64।।

इसी तरह सभी गुणों से युक्त अकेले पुरुष को शत्रु अपनी शक्ति से नष्ट करने की बात सोचते हैं जैसे अकेले खड़े पेड़ को वायु।

कड़वा बोल

निःसंशयो विशेषेण परुषं मर्मकृन्तनम्।
सुहृन्मित्रजनास्तेषु सौहृदं न च कुर्वते।।

आदि० 79/12 दा० पा० 13।।

कड़वा बोल निश्चय ही हृदय में चुभता है। कटुभाषी मनुष्य से उसके मित्र और सगे-सम्बन्धी भी प्रेम नहीं करते।

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
शनैर्दुःखं शस्त्र विषाग्नि जातं तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु।।

आदि० 79।। 13 दा० पा०।।

मुख से निकले हुए कठोर वचनों के बाणों से मनुष्य रातदिन परेशान रहता है। शस्त्र, विष और अग्नि से होने वाला दुःख धीरे-धीरे अनुभव होता है किन्तु कटुवचन एकदम चुभने लगते हैं। इसलिये बुद्धिमान पुरुष को दूसरों के साथ कड़वा नहीं बोलना चाहिये।

संरोहति शरैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्।। आदि 1/13 दा० पा०।।

बाणों से बिंधा हुआ और कुल्हाड़े से काय हुआ जंगल फिर उग आता है किन्तु कड़वी और कठोर बात से हृदय में हुआ घाव कभी नहीं भरता है।

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत। शान्ति०299/8।।

ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेदुषतीं पापलोक्याम्।। आदि०87/8।।

मनुष्य को किसी के हृदय को चोट पहुँचाने वाली और कठोर बता नही कहनी चाहिए, उसे अनुचित उपाय से शत्रु को भी वश में नहीं करना चाहिये। किसी के हृदय

को ठेस पहुँचाने वाली बात नहीं कहनी चाहिये क्योंकि दुर्जन और पाप करने वाले ही कठोर बातें करते हैं।

अरुन्तुदं परुषं तीक्ष्णवाचं वाक्कण्टकैर्वितुन्दन्तं मनुष्यान्।

उद्योग० 36/8।।

विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वहन्तम्।। आदि०87/8।।

दूसरों के मर्मस्थल को चोट पहुँचाने वाले, कठोर स्वभाव वाले, कड़वी बात बोलने वाले और अपने शब्दों के बाणों से लोगों को व्यथित करने वाले व्यक्ति को सबसे घटिया मानना चाहिये क्योंकि उनके मुँह में पिशाचिनी बैठी रहती है।

तस्मात् सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित्।
पूज्यान् सम्पूज्येद् दद्यान्न च याचेत कदाचन।। आदि० 87/13।।

मनुष्य को कभी भी कठोर बात नहीं कहनी चाहिये अपितु सदा सान्त्वना भरी मीठी वाणी बोलनी चाहिये। पूजनीय पुरुषों का आदर करना चाहिये और स्वयं किसी से कभी भी कुछ भी नहीं मांगना चाहिये, अपितु दूसरों को देना चाहिये।

अमित्रतां याति नरोऽक्षमं ब्रुवन् निगूहते गुह्यममित्रसंस्तवे।। सभा० 64/5।।

अक्षम्य कड़वी बात बोलने वाला मनुष्य शत्रु बन जाता है। शत्रु की प्रशंसा करते हुए भी लोग अपने गुप्त मनोभावों को छिपाये रखते हैं।

भषन्ति हैवं श्वनराः सदैव।। सभा० 66/9।।

दुर्योधन! तुम्हारे जैसे कुत्ते ही दूसरों पर भौंका करते हैं और कड़वा बोलते हैं।

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहुभाषितुम्।। उद्योग० 34/76।।

राजन्! वाणी का संयम बहुत कठिन होता है। अर्थयुक्त और चमत्कारपूर्ण बात अधिक नहीं बोली जा सकती अतः वाणी का संयम करना ही उचित है।

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते।। उद्योग० 34/77।।

राजन्! मधुर शब्दों में कही गयी बात अनेक तरह से कल्याण करती है किन्तु यदि वही बात कड़वे शब्दों में कही जाये तो अनर्थ कर देती है।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।। आदि० 79/13 दा० पा०।।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्।। उद्योग० 34/78।।

बाणों से बिंधा हुआ घाव भर जाता है और फरसे से काटा गया वन फिर से उग आता है किन्तु कटुवचन से हृदय में हुआ भयंकर घाव कभी नहीं भरता।

वाक्शल्यस्तु न निर्हन्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः।। उद्योग० 34/79।।

कटुवचन का बाण नहीं निकाला जा सकता क्योंकि वह हृदय में धंस जाता है।

वाक्सायका वदनान्निषपतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।

परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः।।

उद्योग० 34/80।।

कटुवचन के बाण मुख से निकलकर दूसरों के मर्मस्थल को बींध देते हैं। उनसे चोट खाया हुआ मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है अतः विद्वान् दूसरों पर ऐसे बाण न छोड़े।

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून् रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम्।

तस्माद् वाचमुषतीं रूक्षरूपां धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत।।

उद्योग० 36/7।।

रूखी वाणी मनुष्यों के मर्मस्थलों, हड्डियों, हृदय, तथा प्राणों को जला डालती है। इसलिये रोषभरी और रूखी वाणी को धर्म प्रेमी मनुष्य सदा के लिये त्याग दे।

कर्ण

ब्रह्मण्यः सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रतः।

रिपुष्वपि दयावांश्च तस्मात् कर्णो वृषः स्मृतः।। द्रोण० 180/24।।

कर्ण; ब्राह्मण भक्त, सत्य बोलने वाले, तपस्वी, नियमों का पालन करने वाले और शत्रुओं के प्रति भी दया दिखाने वाले हैं इसलिये उन्हें वृष अर्थात् धर्मात्मा कहा जाता है।

युद्धशौण्डो महाबाहुर्नित्योद्यतशरासनः।। द्रोण० 180/25।।

महाबाहु कर्ण युद्ध करने में कुशल हैं उनके हाथ में सदा धनुष रहता है।

वृषो महेन्द्रो देवेषु वृषः कर्णो नरेष्वपि।। कर्ण० 8/23।।

देवताओं में देवराज इन्द्र को वृष कहा जाता है क्योंकि वे जल की वर्षा करते हैं। मनुष्यों में कर्ण भी वृष हैं क्योंकि वे दान की वर्षा करते हैं।

वरो महेन्द्रो देवानां कर्णः प्रहरतां वरः।। कर्ण० 8/25।।

देवताओं में इन्द्र श्रेष्ठ हैं और योद्धाओं में कर्ण श्रेष्ठ योद्धा हैं।

यो बलं धार्तराष्ट्राणां पाण्डवानां यतो भयम्।। कर्ण 9/17।।

कर्ण; कौरवों का बल (सहारा) था और पाण्डव उससे डरते थे।

व्यूढोरस्कं कमलनयनं तप्तहेमावभासं
कर्णं दृष्ट्वा भुवि निपतितं पार्थबाणाभितप्तम्।
पांशुग्रस्तं मलिनमसकृत् पुत्रमन्वीक्षमाणो-
मन्दं मन्दं व्रजति सविता मन्दिरं मन्दरश्मिः।।

कर्ण 91/अन्तिम श्लोक।।

जिसकी छाती चौड़ी और आँखें कमल जैसी सुन्दर थीं। जिसका शरीर तपाये हुए सोने जैसी कान्ति वाला था। अजुर्न के बाणों से बिंधे हुए, ज़मीन पर मिट्टी में पड़े हुए और धूल से लथपथ अपने पुत्र कर्ण को बार-बार देखते हुए हल्की किरणों वाले सूर्य अपने घर अस्ताचल को जा रहे थे।

जातोऽसि धर्मलोपेन ततस्ते बुद्धिरीदृशी।। भीष्म० 122/12।।

नीचाश्रयान्मत्सरेण द्वेषिणी गुणिनामपि।
तेनासि बहुशो रूक्षं श्रावितः कुरुसंसदि।। भीष्म० 122/13।।

तुम्हारा जन्म (कन्यावस्था में कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण) धर्मलोप से हुआ है इसीलिये नीच लोगों की संगति से तुम्हारी बुद्धि गुणी पाण्डवों से भी द्वेष करने वाली हो गई है। इसी कारण मैंने कौरवों की सभा में तुम्हें कई बार कड़वी बातें कहीं।

जानामि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि।
ब्रह्मण्यतां च शौर्ये च दाने च परमां स्थितिम्।। भीष्म० 122/14।।

मैं जानता हूँ कि तुम्हारा पराक्रम युद्धभूमि में शत्रु सहन नहीं कर सकते। तुम ब्राह्मण भक्त, शूरवीर और बहुत बड़े दानी हो।

इष्वस्त्रे चास्त्रसन्धाने लाघवेऽस्त्रबले तथा।
सदृशः फाल्गुनेनासि कृष्णेन च महात्मना।। भीष्म० 122/16।।

तुम बाण चलाने, दिव्यास्त्रों का सन्धान करने, फुर्ती दिखाने और अस्त्रबल में अर्जुन और श्रीकृष्ण के बराबर हो।

कपटी पुरुष

निकृत्योपचरन् वध्य एष धर्मः सनातन।। वन० 12/7।।

छल कपट करके सुख भोगने वाले व्यक्ति को मार डालना चाहिये। यही सनातन धर्म है।

निकृत्या निकृतिप्रज्ञा हन्तव्या इति निश्चयः।। वन० 52/22।।

छल कपट करने वालों को छल कपट से ही मार डालना चाहिये।

अधर्मा धर्मरूपेण तृणैः कूपा इवावृताः।। वन० 207/59।।

तिनकों से ढके हुए कुएं की तरह धर्म की आड़ में अनेक अधर्म किये जा रहे हैं।

सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।। शान्ति० 79/21।।

सब तरह की कुटिलता मृत्यु का स्थान है और सरलता ब्रह्म प्राप्ति का उपाय है।

दौष्कुलेयाश्च लुब्धाश्च नृशंसा निरपत्रपाः।
ते त्वां तात निषेवेयुर्यावदार्द्रकपाणयः।। शान्ति० 83/7।।

प्रिय युधिष्ठिर! निन्दित कुल में उत्पन्न, लोभी, क्रूर और निर्लज्ज मनुष्य तुम्हारी सेवा तब तक ही करेंगे जब तक उनके हाथ गीले रहेंगे।

यथा काकाश्च गृध्राश्च तथैवोपधिजीविनः।
ऊर्ध्वं देहविमोक्षात् ते भवन्त्येतासु योनिषु।। शान्ति० 109/29।।

छल-कपट से पेट पालने वाले लोग कौओं और गीधों के समान होते हैं। ये लोग मरने के बाद इन्हीं योनियों में जन्म लेते हैं।

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया बाधितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः।।

शा० 109/30।।

जो मनुष्य जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना धर्म कहलाता है। छल-कपट करने वाले से छल-कपट का व्यवहार करना चाहिये और अच्छा व्यवहार करने वाले से अच्छा बर्ताव करना चाहिये।

व्याजेन विन्दन् वित्तं हि धर्मात् स परिहीयते।। शान्ति० 132/18।।

जो पुरुष छल-कपट से धन कमाना चाहता है वह धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

न ह्यत्यन्तं बलवन्तो भवन्ति सुखिनोऽपि वा।
तस्मादनार्जवे बुद्धिर्न कार्या ते कदाचन।। शान्ति० 259/14।।

संसार में कोई भी बहुत अधिक शक्तिशाली या बहुत सुखी नहीं होता इसलिये तुम्हें कभी भी मन में कुटिलता का विचार नहीं लाना चाहिये।

याथातथ्यमविज्ञाय शास्त्राणां शास्त्रदस्यवः।
ब्रह्मस्तेना निरारम्भा दम्भमोहवशानुगाः। शान्ति० 268/53।।

ये लोग शास्त्रों का असली अर्थ नहीं जानते इसलिये वे शास्त्रदस्यु अर्थात् शास्त्रों पर डाका डालने वाले कहलाते हैं। कपटी पुरुष ब्रह्म को नहीं मानते इसलिये इन्हें ब्रह्मचोर कहा जाता है। ये लोग शम-दम आदि उपायों का भी अभ्यास कभी नहीं करते और अहंकार तथा मोह के वश में पड़े रहते हैं।

कर्म

कर्मणामी भान्ति देवाः परत्र कर्मणैवेह प्लवते मातरिश्वा।
अहोरात्रे विदधत् कर्मणैव अतन्द्रितो नित्यमुदेति सूर्यः।।

उद्योग० 29/9।।

कर्म से ही देवता चमक रहे हैं। कर्म से ही वायु बह रही है। सूर्य भी आलस्य रहित कर्म करके नित्य उदय होकर दिन और रात का विधान कर रहा है।

मासार्धमासानथ नक्षत्रयोगानतन्द्रितश्चन्द्रमाश्चाभ्युपैति।
अतन्द्रितो दहते जातवेदाः समिध्यमानः कर्म कुर्वन् प्रजाभ्यः।।

उद्योग 29/10।।

चन्द्रमा आलस्य त्याग कर नक्षत्रों से सम्पर्क बनाकर मास और आधा मास बना रहा है। तन्द्रारहित अग्नि प्रज्ज्वलित होकर प्रजाओं के लिये काम कर रही है।

अतन्द्रिता भारमिमं पहान्तं बिभर्ति देवी पृथिवी बलेन।
अतन्द्रिताः शीघ्रमपो वहन्ति संतर्पयन्त्यः सर्वभूतानि नद्यः।।

उद्योग० 29/11।।

देवी पृथ्वी बिना आलस्य के अपने बल से इस भारी बोझ को ढो रही है। नदियाँ भी आलस्य छोड़कर जलों को बहाकर सभी प्राणियों का हित कर रही हैं।

अतन्द्रितो वर्षति भूरितेजाः संनादयन्नन्तरिक्षं दिशश्च।
अतन्द्रितो ब्रह्मचर्यं चचार श्रेष्ठत्वमिंच्छन् बलभिद् देवतानाम्।।

उद्योग० 29/12।।

बादल तन्द्रा छोड़कर दिशाओं और आकाश को गम्भीर ध्वनि से गुंजाते हुए जल बरसाते हैं। इन्द्र ने आलस्य त्यागकर और ब्रह्मचर्य का पालन करके देवताओं में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया।

तथा नक्षत्राणि कर्मणामुत्र भान्ति रुद्रादित्या वसवोऽथापि विश्वे।।

उद्योग० 29/15।।

रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेव और सारे नक्षत्र भी कर्म से ही प्रकाशित हो रहे हैं।

ब्रह्मविद्यां ब्रह्मचर्यं क्रियां च निषेवमाणा ऋषयोऽमुत्रभान्ति।।

उद्योग० 29/16।।

ऋषि भी वेदज्ञान, ब्रह्मचर्य और कर्म का पालन करके ही तेजस्वी बनते हैं।

कर्मण्येवधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।। भीष्म० 26/47।।

तुम्हें कर्म करने का ही अधिकार है उन कर्मों का फल पाने का अधिकार नहीं है।

प्रायशो हि कृतं कर्म नाफलं दृश्यते भुवि।
अकृत्वा च पुनर्दुःखं कर्म पश्येन्महाफलम्।। सौप्तिक० 2/13।।

प्रायः देखने में आता है कि इस संसार में किये गये कर्म का फल मिलता है। काम न करने से दुःख ही मिलता है। कर्म महान् फलदायक होता है।

कर्मणा प्राप्यते स्वर्गः सुखं दुःखं च भारत।। स्त्री० 3/11।।

भरतनन्दन! मनुष्य अपने कर्मों से स्वर्ग, सुख और दुख पाता है।

न हि नाशोऽस्ति वार्ष्णेय कर्मणोः शुभपापयोः।। स्त्री० 18/12।।

वार्ष्णेय! किये गये अच्छे और बुरे कर्मों का नाश, उनका भोग (फल) मिले बिना नहीं होता।

अवेक्षस्व यथा स्वैः स्वैः कर्मभिर्व्यापृतं जगत्।
तस्मात् कर्मैव कर्तव्यं नास्ति सिद्धिरकर्मणः।। शान्ति० 10/28।।

देखिये सारा संसार अपने-अपने कार्यों में लगा हुआ है। इसलिये हमें भी अपने कर्तव्य कर्म करने चाहियें। काम न करने वाले को सफलता नहीं मिलती।

शुभं हि कर्म राजेन्द्र शुभत्वायोपपद्यते।। शान्ति० 59/130।।

राजेन्द्र! शुभ कर्म भलाई के लिये ही होता है।

कर्मणा वर्धते धर्मो यथा धर्मस्तथैव सः।। शान्ति 65/10।।

कर्म से ही धर्म बढ़ता है। जो जैसा धर्म अपनाता है वह वैसा ही हो जाता है।

कर्म चात्महितं कार्यं तीक्ष्णं वा यदि वा मृदु।
ग्रस्यतेऽकर्मशीलस्तु सदानर्थैरकिञ्चनः।। शान्ति० 139/83।।

जो अपने लिये हितकर कठोर या कोमल कर्म हो उसे करना चाहिये। जो काम नहीं करता वह निर्धन हो जाता है और उसे मुसीबतें घेर लेती हैं।

तस्मात् सर्वं व्यपोह्यार्थं कार्य एव पराक्रमः।
सर्वस्वमपि संत्यज्य कार्यमात्महितं नरैः।। शान्ति० 139/84।।

इसलिये काल, दैव और स्वभाव आदि सभी बातों का भरोसा छोड़कर पराक्रम ही करना चाहिये। मनुष्य को सर्वस्व को भी दाँव पर रखकर अपना हित सिद्ध करना चाहिये।

विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पञ्चमम्।
मित्राणि सहजान्याहुर्वर्तयन्तीह तैर्बुधाः।। शान्ति० 139/85।।

विद्या, वीरता, चतुराई, बल और धीरज ये पाँच मनुष्य के स्वाभाविक मित्र होते हैं। बुद्धिमान पुरुष इन्हीं के सहारे काम करते हैं।

निवेशनं च कुप्यं च क्षेत्रं भार्या सुहृज्जनः।
एतान्युपहितान्याहु सर्वत्र लभते पुमान्।। शान्ति० 139/86।।

घर, तांबा आदि धातुएँ, खेत, स्त्री और मित्र ये हितकारी सहायक मित्र होते हैं जिन्हें मनुष्य हर जगह पा लेता है।

यत् कृतं स्याच्छुभं कर्म पापं वा यदि वाश्नुते।
तस्माच्छुभानि कर्माणि कुर्याद् वा बुद्धिकर्मभिः।। शा० 215/5।।

मनुष्य जो भी अच्छे-बुरे कर्म करता है उनका फल उसे भोगना पड़ता है। इसलिये मन, बुद्धि और शरीर से सदा अच्छे कर्म करने चाहिये।

कर्मफल

नान्यः कर्तुः फलं राजन्नुपभुङ्क्ते कदाचन।। वन० 128/14।।

राजन्! कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कर्मों का फल नहीं भोगता है।

अयमादिशरीरेण देवसृष्टेन मानवः।
शुभानामशुभानां च कुरुते संचयं महत्।। वन० 183/76।।

आयुषोऽन्ते प्रहायेदं क्षीणप्रायं कलेवरम्।
सम्भवत्येव युगपद् योनौ नास्त्यन्तराभवः।। वन० 183/77।।

ईश्वर द्वारा रचे गये पूर्व शरीर के द्वारा शुभ और अशुभ कर्म करके मनुष्य उनकी बहुत बड़ी राशि जमा कर लेता है (अन्तःकरण में)। फिर आयु पूरी होने पर वह बुढ़ापे से कमजोर हुई देह को त्याग कर एकदम दूसरे शरीर में उत्पन्न हो जाता है। पहला शरीर छोड़ने और दूसरा शरीर ग्रहण करने के बीच वह असंसारी नहीं होता।

तत्रास्य स्वकृतं कर्म छायेवानुगतं सदा।
फलत्यथ सुखार्हो वा दुखार्हो वाथ जायते।। वन० 183/78।।

कृतान्तविधिसंयुक्तः स जन्तुर्लक्षणैः शुभैः।
अशुभैर्वा निरादानो लक्ष्यते ज्ञानदृष्टिभिः।। वन० 183/79।।

पहले शरीर में किये हुए उसके कर्म छाया की भाँति उसके पीछे लगे रहते हैं और समय आने पर अपना फल देते हैं इसीलिये जीव सुख या दुःख भोगने योग्य जन्म लेता है। यमराज के विधान से बंधा हुआ जीव अपने शुभ या अशुभ लक्षणों द्वारा मिले सुख या दुःख को दूर नहीं कर सकता। यह बात ज्ञानियों ने देखी है।

मनुष्यास्तप्ततपसः सर्वागमपरायणाः।
स्थिरव्रताः सत्यपरा गुरुशुश्रूषणे रताः।। वन० 183/81।।

सुशीलाः शुक्लजातीयाः क्षान्ता दान्ताः सुतेजसाः।
शुचियोन्यन्तरगताः प्रायशः शुभलक्षणाः।। वन० 183/82।।

ज्ञानी पुरुष तपस्वी, सभी शास्त्रों का स्वाध्याय करने वाले, स्थिरबुद्धि से व्रतों का पालन करने वाले, सत्यशील, गुरुजनों की सेवा करने वाले, सुशील, सात्त्विक, क्षमाशील, जितेन्द्रिय और तेजस्वी होते हैं। वे शुद्ध योनि में जन्म लेते हैं और प्रायः शुभ लक्षणों वाले होते हैं।

जितेन्द्रियत्वाद् वशिनः शुक्लत्वान्मन्दरोगिणः।
अल्पब्राधपरित्रासाद् भवन्ति निरुपद्रवाः।। वन० 186/83।।
च्यवन्तं जायमानं च गर्भस्थं चैव सर्वशः।
स्वात्मानं परं चैव बुध्यन्ते ज्ञानचक्षुषाः।। वन० 186/84।।

जितेन्द्रिय होने के कारण उनका मन वश में रहता है। सात्त्विक वृत्ति का अन्तःकरण होने से वे नीरोग होते हैं। दुःख और भय कम होने के कारण उनका जीवन उपद्रवरहित होता है। ज्ञानी पुरुष गर्भ से जन्म लेते समय, गर्भ से गिरते समय और गर्भ में भी अपनी ज्ञान दृष्टि से सदा आत्मा और परमात्मा को देखते हैं।

किंचिद् दैवाद् हठात् किंचित् किंचिदेव स्वकर्मभिः।
प्राप्नुवन्ति नरा राजन् मा तेऽस्त्वन्या विचारणा।। वन० 183/86।।

राजन्! विवेकशील पुरुषों को कर्मों का कुछ फल प्रारब्धवश मिलता है। कुछ फल हठात् प्राप्त होता है और कुछ कर्मों का फल अपने कर्मों से ही प्राप्त होता है।

धनानि येषां विपुलानि सन्ति नित्यं रमन्ते सुविभूषिताङ्गाः।
तेषामयं शत्रुवरघ्न लोको नासौ सदा देहसुखे रतानाम्।। वन० 183/89।।

जिनके पास काफी धन होता है, जो अपने शरीर को सजा-धजाकर सदा ऐश्वर्य और भोगों में लिप्त रहते हैं। शत्रुसंहारक राजन्! सदा अपने शरीर के सुख में आसक्त ऐसे पुरुषों को इसी लोक में सुख मिलता है परलोक में नहीं।

ये योगयुक्तास्तपसि प्रसक्ता स्वाध्यायशीलाः जरयन्ति देहान्।
जितेन्द्रियाः प्राणिवधे निवृत्तास्तेषामसौ नायमरिघ्न लोकः।।
वन० 183/90।।

शत्रूसूदन! जो मनुष्य इस लोक में योग साधना और तपस्या करते हैं, स्वाध्याय करते रहते हैं, प्राणियों की हिंसा नहीं करते तथा जितेन्द्रिय रहकर अपनी देह को दुर्बल कर देते हैं उन्हें इस लोक में सुख नहीं मिलता, किन्तु परलोक में उनका कल्याण होता है।

ये धर्ममेव प्रथमं चरन्ति धर्मेण लब्ध्वा च धनानि काले।
दारानवाप्य क्रतुभिर्यजन्ते तेषामयं चैव परश्च लोकः।। वन० 183/91।।

जो लोग शुरू से धर्माचरण करते हैं और धर्मपूर्वक धन कमाकर विवाह करने

के बाद यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान करते हैं उनका यह लोक और परलोक दोनों ही सुखद हैं।

ये नैव विद्यां न तपो न दानं न चापि मूढाः प्रजने यतन्ति।

न चानुगच्छन्ति सुखानि भोगांस्तेषामयं नैव परश्च लोकः।।

वन० 183/92।।

जो मूर्ख व्यक्ति विद्या, तपस्या, दान और धर्मपूर्वक सन्तान उत्पन्न करने के लिये प्रयत्न नहीं करते वे न तो सुख पाते हैं और न ही भोग भोगते हैं। उन्हें न तो इस लोक में और न ही परलोक में सुख मिलता है।

कृतमन्वेति कर्तारं पुराकर्म द्विजोत्तम।। वन० 207/23।।

विप्रवर! पहिले किये हुए कर्म का फल कर्म करने वाले को भोगना ही पड़ता है।

विषमां च दशां प्राप्तो देवान् गर्हति वै भृशम्।

आत्मनः कर्मदोषाणि न विजानात्यपण्डितः।। वन० 209/6।।

मूर्ख मनुष्य संकट में पड़ने पर देवताओं को खूब कोसता है किन्तु यह नहीं समझता कि उसे अपने कर्मों का ही यह फल मिल रहा है।

शुभैः प्रयोगैर्देवत्वं व्यामिश्रैर्मानुषो भवेत्।

मोहनीयैर्वियोनीषु त्वधोगामी च किल्विषी।। वन० 209/32।।

अच्छे कर्म करने से जीव को देव योनि मिलती है। जीव, भले और बुरे कर्म करने से मनुष्य योनि में, मोह में डालने वाले तामसिक कर्म करने से पशु–पक्षी योनियों में तथा पाप कर्म करने से नरक में जाता है।

स चेन्निवृत्तबन्धस्तु विशुद्धश्चापि कर्मभिः।

तपोयोग सभारम्भं कुरुते द्विजसत्तम।। वन० 209/39।।

विप्रवर! बन्धन के कारण बने कर्मों का भोग पूरा हो जाने पर और अच्छे कर्मों से मन और शरीर शुद्ध हो जाने पर मनुष्य तपस्या और योगाभ्यास शुरू कर देता है।

ध्रुवं न नाशोऽस्ति कृतस्य लोके।। वन० 236/27।।

इस संसार में किये हुए कर्म का फल नष्ट नहीं होता।

न कर्मणां विप्रणाशोऽस्त्यमुत्र पुण्यानां वाप्यथवा पापकानाम्।
पूर्वं कर्तुर्गच्छति पापपुण्यं पश्चात् त्वेनमनुयात्येव कर्त्ता।।

उद्योग० 27/10।।

परलोक में पुण्य कर्म और पाप कर्म नष्ट नहीं होते। मनुष्य के पाप और पुण्य कर्म परलोक में पहले जाते हैं और पीछे इन्हें करने वाला पहुँचता है।

इह क्षेत्रे क्रियते पार्थ कार्यं न वै किंचित् क्रियते प्रेत्यकार्यम्।।

उद्योग० 27/12।।

पार्थ! इसी शरीर के रहते पाप-पुण्य कर्म किये जा सकते हैं मरने के बाद कोई कर्म नहीं किया जा सकता।

जहाति मृत्युं च जरां भयं च न क्षुत्पिपासे मनसोऽप्रियाणि।
न कर्त्तव्यं विद्यते तत्र किंचिद्न्यत्र वै चेन्द्रियप्रीणनाद्धि।।

उद्योग० 27/13।।

स्वर्ग में जाकर पुण्यात्मा मनुष्य मृत्यु, बुढ़ापा, भय, भूख, प्यास और मन को अच्छी न लगने वाली बातों से छूट जाता है। वहां इन्द्रियों को सुख देने वाले काम करने के सिवाय कोई कर्तव्य कर्म नहीं रहता।

तस्मिन् स्थितो वाप्युभयं हि नित्यं ज्ञानेन विद्वान् प्रतिहन्ति सिद्धम्।
तथान्यथा पुण्यमुपैति देही तथागतं पापमुपैति सिद्धम्।।

उद्योग० 42/24।।

परमात्मा में स्थित होने पर विद्वान् परमात्मा के ज्ञान से अपने पाप और पुण्य दोनों ही तरह के कर्मों का नाश कर देता है। यदि उसे परमात्मा का ज्ञान नहीं होता तो वह कभी अपने पुण्यकर्मों का फल पाता है कभी पाप कर्मों का।

न नूनं सुकृतस्येह फलं कश्चित् समश्नुते।। द्रोण० 3/10।।

निश्चय ही कोई भी मनुष्य इस लोक में अपने पुण्य कर्मों का फल नहीं भोगता।

नूनं पूर्वकृतं कर्म सुघोरमनुभूयते।। शल्य० 59/22।।

सभी लोग अपने पहले किये गये अत्यन्तं भयंकर कर्मों का फल अवश्य भोगते हैं।

शयानं चानुशेते हि तिष्ठन्तं चानुतिष्ठति।
अनुधावति धावन्तं कर्म पूर्वकृतं नरम्।। स्त्री० 2/32।।

मनुष्य का पहले किया हुआ कर्म उसके सोने के साथ ही सोता है, उठने पर साथ ही उठता है और दौड़ने पर साथ ही दौड़ता है। वह पीछा नहीं छोड़ता।

यस्यां यस्यामवस्थायां यत् करोति शुभाशुभम्। अनुशासन 7/4।।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समुपाश्नुते।। स्त्री० 2/33।।

मनुष्य जिन-जिन अवस्थाओं में जो भी अच्छा-बुरा काम करता है। उसी-उसी परिस्थिति में उसे उस अच्छे-बुरे कर्म का फल मिलता है।

येन येन शरीरेण यद्यत् कर्म करोति यः।। अनुशासन० 7/3।।
तेन तेन शरीरेण तत्फलं समुपाश्नुते।। स्त्री० 2/34।।

प्राणी जिस-जिस शरीर में जो-जो कर्म करता है वह उसी-उसी शरीर से उस कर्म का फल भी भुगतता है।

शुभाशुभफलं प्रेत्य लभते भूतसाक्षिकम्।
अतिरिच्येत यो यत्र तत्कर्ता लभते फलम्।। शान्ति 35/40।।

मनुष्य के अच्छे और बुरे कर्मों के गवाह पाँच महाभूत होते हैं। इन कर्मों का फल मृत्यु के बाद मिलता है। अच्छे और बुरे कर्मों में जैसे कर्म अधिक होते हैं उनका फल पहले मिलता है।

न कर्मणा पितुः पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा।
मार्गेणान्येन गच्छन्ति बद्धाः सुकृत दुष्कृतैः।। शान्ति० 153/38।।

पिता के कर्म से पुत्र का और पुत्र के कर्म से पिता का कोई सम्बन्ध नहीं है। जीव अपने-अपने पाप-पुण्य कर्मों के बन्धन में बंधे हुए अलग-अलग रास्तों से अपने कर्मों के अनुसार जाते हैं।

संचिनोत्यशुभं कर्म कलत्रापेक्षया नरः।
एकः क्लेशानवाप्नोति परत्रेह च मानवः।। शान्ति० 174/25।।

मनुष्य अपनी पत्नी और परिवार के लिये अनुचित काम करता है। इन कर्मों का फल उसे इस संसार में और परलोक में अकेले ही भुगतना पड़ता है।

पूर्वदेहकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम्।
प्राज्ञं मूढं तथा शूरं भजते यादृशं कृतम्।। शान्ति० 174/47।।

पूर्वजन्म में मनुष्य जैसे भी अच्छे या बुरे काम करता है उनका फल उसे मिलता है। कर्मफल बुद्धिमान, मूर्ख और शूरवीर सभी को मिलता है।

सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधवति।
शेते सहशयानेन येन येन यथा कृतम्।। शान्ति० 181/8।।
उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति।
करोति कुर्वतः कर्म च्छायेवानुविधीयते।। शान्ति० 181/9।।

जिस-जिस मनुष्य ने जैसा कर्म किया होता है वह कर्म उसके साथ लगा रहता है। यदि कर्म करने वाला मनुष्य दौड़ता है तो उस का कर्म भी उसके साथ भागता है। यदि मनुष्य कहीं जाता है तो कर्म भी उसके साथ जाता है। यदि मनुष्य सोता है तो कर्म भी उसके साथ सो जाता है। यदि मनुष्य खड़ा हो जाता है तो कर्म भी उठ खड़ा होता है। कोई काम करते हुए कर्म का संस्कार मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता वह छाया की तरह पीछे लगा ही रहता है।

येन येन यथा यद् यत् पुरा कर्म समीहितम्। शान्ति० 322/10।।
तदेकतरो भुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मना।। शान्ति० 181/10।।

जिस-जिस मनुष्य ने अपने-अपने पिछले जन्मों में जैसे कर्म किये होते हैं। वह अपने किये हुए इन कर्मों का फल अकेले ही भुगतता है।

अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि फलानि च। शान्ति० 322/12।।
स्वं कालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुरा कृतम्।। शान्ति० 181/12।।

जैसे फूल और फल किसी की प्रेरणा के बिना ही उचित समय आने पर वृक्षों पर लग जाते हैं वैसे ही पूर्वजन्म के कर्म भी अपने फल भुगतने के समय का उल्लंघन नहीं करते हैं। उचित समय आने पर उनका फल मिलता है।

आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखम्। शान्ति० 322/14।।
गर्भशय्यामुपादाय भुज्यते पौर्वदेहिकम्।। शान्ति० 181/14।।

दुःख और सुख अपने ही किये कर्मों का फल है। जीव गर्भ में आते ही अपने पूर्वजन्म के कर्मों का फल भुगतने लगता है।

यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति।। शान्ति० 181/16।।

जैसे बछड़ा हजारों गायों के बीच में से अपनी माँ को पहचान लेता है वैसे ही पहले जन्म के कर्म भी करने वाले के पास पहुँच जाते हैं।

दीर्घकालेन तपसा सेवितेन तपोवने।
धर्मनिर्धूतपापानां सम्पद्यन्ते मनोरथाः।। शान्ति० 181/18।।

तपोवन में रहकर बहुत समय तक तपस्या करने से तथा धर्म का पालन करने से अपने पापों को धोकर मनुष्य के मनोरथ पूरे हो जाते हैं।

यः करोत्यनभिसंधिपूर्वकं तच्च निर्णुदति यत्पुराकृतम्।
नाप्रियं तदुभयं कुतः प्रियं तस्य तज्जनयतीह सर्वतः।।

शान्ति० 194/61।।

जो मनुष्य निष्काम भाव से कर्म करता है तो उसके ये कर्म पहले किये हुए कर्मों के संस्कारों को नष्ट कर देते हैं। इसलिये पूर्वजन्म के और इस जन्म के कर्म उसे प्रिय या अप्रिय फल नहीं देते।

यथाकर्म तथा लाभ इति शास्त्रनिदर्शनम्।। शान्ति० 279/20।।

शास्त्र का सिद्धान्त है कि जैसा कर्म होता है वैसा ही फल मिलता है।

तिर्यग् गच्छन्ति नरकं मानुष्यं देवमेव च।
सुखदुःखे प्रिये द्वेष्ये चरित्वा पूर्वमेव ह।। शा० 279/21।।

प्राणी पहले सुख-दुःख तथा प्रिय और अप्रिय विषयों में फंसकर अपने कर्मों के अनुसार पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्य या देवयोनि और नरक आदि में जाता है।

भोजनाच्छादने चैव मात्रा पित्रा च संग्रहम्।
स्वकृतेनाधिगच्छन्ति नास्त्यकृतं पुरा।।

शान्ति० 288/17।।

प्राणी पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार ही भोजन, वस्त्र तथा अपने माता-पिता के द्वारा इकट्ठा किया हुआ धन पाता है। संसार में जो कुछ मिलता है वह पिछले जन्मों के कर्मों के फल के सिवाय और कुछ नहीं होता।

नाबीज्जायते किंचिन्नाकृत्वा सुखमेधते।
सुकृतैर्विदन्ते सौख्यं प्राप्य देहक्षयं नरः।। शान्ति० 290/12।।

जैसे बीज के बिना कुछ पैदा नहीं होता वैसे ही पुण्य कर्म किये बिना किसी को सुख नहीं मिलता। देहान्त हो जाने पर पुण्य कर्मों से ही मनुष्य को सुख मिलता है।

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
कुरुते यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते।। शान्ति० 290/16।।

मनुष्य; आँख, मन, वाणी और हाथ-पैर आदि से जैसा काम करता है उसके अनुसार मनुष्य को फल मिलता है।

निरन्तरं च मिश्रं च लभते कर्म पार्थिव।
कल्याणं यदि वा पापं न तु नाशोऽस्य विद्यते।। शा० 290/17।।

राजन्! मनुष्य अपने कर्मों के फलस्वरूप कभी सुख और कभी दु:ख पाता है। पुण्य या पाप कर्म का फल भोगे बिना किसी कर्म का नाश नहीं होता।

नायं परस्य सुकृतं दुष्कृतं चापि सेवते।
करोति यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते।। शान्ति० 280/2।।

जीवात्मा किसी दूसरे के पाप और पुण्य कर्मों का फल नहीं भोगता अपितु वह जैसे कर्म करता है उनके अनुसार उसे भोग मिलता है।

न माता न पिता किंचित् कस्यचित् प्रतिपद्यते।
दानपथ्यौदनो जन्तुः स्वकर्मफलमश्नुते।। शान्ति० 298/39।।

माता-पिता भी परलोक सुधारने में किसी की सहायता नहीं कर सकते। अपना किया हुआ दान ही परलोक के मार्ग में सहायता करता है और जीव को अपने कर्मों के अनुसार ही भोग मिलते हैं।

माता पुत्रः पिता भ्राता भार्या मित्रजनस्तथा।
अष्टापदपदस्थाने लक्षमुद्रेव लक्ष्यते।। शान्ति० 298/40।।

माता-पिता, पुत्र, स्त्री और मित्र ये सभी सोने के सिक्कों के स्थान पर लाख के सिक्के ही होते हैं।

स्वकर्मनिक्षेपं विधानपरिरक्षितम्।
भूतग्राममिमं कालः समन्तादपकर्षति।। शान्ति० 322/11।।

मनुष्य के अपने कर्मों का फल धरोहर जैसा है। यह कर्मफल शास्त्रों के विधान के अनुसार सुरक्षित रहता है। अनुकूल अवसर आने पर काल सभी प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार खींच कर ले जाता है।

योऽयमिच्छेद् यथाकामं कामानां तदवाप्नुयात्।
यदि स्यान्न पराधीनं पुरुषस्य क्रियाफलम्।। शा० 331/9।।

यदि मनुष्य किये हुए अपने कर्मों के फल के अधीन नहीं होता तो वह जिस वस्तु को चाहता उसे वह वस्तु उसकी इच्छानुसार मिल जाती।

शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा।
कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित्।। अनुशासन 6/10।।

अच्छे कर्म करने से सुख और पाप कर्म करने से दुःख मिलता है। अपना किया हुआ कर्म सब जगह फल देता है। बिना किये हुए कर्म का फल कभी भी नहीं भोगा जाता।

न नश्यति कृतं कर्म सदा पञ्चेन्द्रियैरिह।
ते ह्यस्य साक्षिणो नित्यं षष्ठ आत्मा तथैव च।। अनु० 7/5।।

मनुष्य की पाँचों इन्द्रियों द्वारा किया गया कर्म कभी नष्ट नहीं होता। पांचों इन्द्रियां और छठा मन ये सब उस कर्म के साक्षी होते हैं।

नाकृतं भुज्यते कर्म न कृतं नश्यते फलम्।।

अनुशासन 96 दा० पा०।।

बिना किये हुए कर्म का फल किसी को नहीं मिलता तथा किये हुए कर्म का फल भोगे बिना नष्ट नहीं होता है।

तथा शुभसमाचारो ह्यशुभानि विवर्जयेत्।
शुभान्येव समादद्यात् या इच्छेद् भूतिमात्मनः।।

अनुशासन 96 दा० पा०।।

जो मनुष्य अपना कल्याण चाहता हो वह अच्छे कर्म ही करे और बुरे कामों को छोड़ दे। ऐसा करने से वह अच्छे कर्मों का फल प्राप्त करेगा।

पुण्यान् पुण्यकृतो यान्ति पापान् पापकृतो नराः।। अनु० 102/2।।

पुण्यकर्म करने वाले पुण्यलोकों में और पापकर्म करने वाले मनुष्य पापमय लोकों में जाते हैं।

कर्म भूमिकृतं देवा भुञ्जते तिर्यगाश्च ये।
धर्मोऽपि हि मनुष्येषु कमार्थश्च तथा गुणाः।। अनु० 118/4।।

देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि की योनियों में पड़े हुए प्राणी अपनी कर्म-भूमि में किये हुए कर्मों का फल भोगते हैं। मनुष्य अपनी कोई इच्छा पूरी कराने के लिये धर्म का आचरण करते हैं और गुणों को अपनाते हैं।

शुभकृच्छुभयोनीषु पापकृत् पापयोनिषु।। अनु० 119/9।।

अच्छे कर्म करने वाला प्राणी अच्छी योनियों में और पाप कर्म करने वाला मनुष्य पापयोनियों में जन्म लेता है।

वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः कर्मबन्धनैः।
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किंचन।। अनु० 144/7।।

जो मनुष्य कर्म, मन और वचन से किसी की हिंसा नहीं करते और जिनका सभी तरह का लगाव समाप्त हो गया है ऐसे पुरुष कर्म बन्धनों से छूट जाते हैं।

तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः।। अनु० 144/9।।

जिनके लिये शत्रु और प्रिय मित्र दोनों ही समान हैं ऐसे जितेन्द्रिय पुरुष कर्मों के बन्धनों से छूट जाते हैं।

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते।
स्वकृतस्य फलं भुङ्क्ते नान्यस्तद् भोक्तुमर्हति।।

अनु ०145 दा० पा० अ०VI।।

प्राणी जैसा काम करता है उसे उस काम का वैसा ही फल मिलता है। वह अपने कर्मों का फल अपने आप ही भोगता है। उसके कर्मों का फल कोई दूसरा नहीं भोगता।

सर्वदाऽऽत्मा कर्मवशो नानाजातिषु जायते।। अनु० 145 दा० पा०अ०X।।

जीवात्मा सदैव्र अपने कर्मों के अधीन रहकर अनेकविध योनियों में जन्म लेती है।

केवलं चाभिसंधाय संरम्भाच्च करोति यत्।
कर्मणस्तस्य नाशस्तु न कथंचन विद्यते।। अनु० 145 दा० पा०अ० VIII।।

व्यक्ति यदि सोच-समझ कर किसी उद्देश्य से या क्रोध में आकर कोई बुरा काम करता है तो उसे उसका फल भोगना ही पड़ता है।

अन्यथा यत् कृतं पापं प्रमादाद् वा यदृच्छया।
प्रायश्चित्ताश्वमेधाभ्यां श्रेयसा तत् प्रणश्यति।।

अनु 145 दा० पा०अ०VIII।।

यदि असावधानी से या दैवेच्छा से मनुष्य से कोई बुरा काम हो जाता है तो प्रायश्चित्त, अश्वमेध यज्ञ या कोई अच्छा काम करने से किये हुए पाप-कर्म का भोग नष्ट हो जाता है।

कर्म कर्त्ता नरोऽभोक्ता स नास्ति दिवि वा भुवि।।

अनु ०145 दा० पा० अ०VIII।।

स्वर्ग में या पृथ्वी पर ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसे अपने किये हुए कर्मों का फल न भोगना पड़ता हो।

न शक्यं कर्म चाभोक्तुं सदेवासुरमानुषैः।। अनु० 145 दा० पा०VIII।।

देवता, असुर और मनुष्य कोई भी अपने कर्मों का फल भोगे बिना नहीं रह सकता।

न हि कश्चित् स्वयं मर्त्यः स्ववशः कुरूते क्रियाम्।। आश्व० 3/1।।

कोई भी मनुष्य स्वाधीन होकर अपने आप कोई काम नहीं करते।

शुभानामशुभानां च नेह नाशोऽस्ति कर्मणाम्।

प्राप्य प्राप्यानुपच्यन्ते क्षेत्रं क्षेत्रं तथा तथा।। आश्व० 18/1।।

इस संसार में अच्छे और बुरे कर्मों का फल भोगे बिना पाप और पुण्य कर्म नष्ट नहीं होते। पाप और पुण्य के कर्म एक के बाद दूसरा शरीर धारण कराकर अपना भोग देते रहते हैं।

पुरुषस्यात्मनिःश्रेयः शुभाशुभनिदर्शनम्।। आश्व० 50/20।।

मनुष्य का अपना कल्याण साधन ही उसके पूर्वजन्म के अच्छे-बुरे संस्कारों को बताता है।

यथा कर्म कृतं लोके तथैतानुपपद्यते।। आश्व० 50/31।।

संसार में मनुष्य जैसा काम करता है उसे उसका वैसा ही फल मिलता है।

यस्य यद् विहितं वीर सोऽवश्यं तदुपाश्नुते।। महा प्रस्थान 2/17।।

जिस व्यक्ति का जैसा काम होता है उसे उस काम का फल अवश्य भुगतना पड़ता है।

कल्याण के उपाय

सम्यक्संकल्पसंबन्धात् सम्यक् चेन्द्रियनिग्रहात्।
सम्यग्व्रतविशेषाच्च सम्यक् च गुरुसेवनात्।। वन० 2/78।।

सम्यागाहारयोगाच्च सम्यक् चाध्ययनागमात्।
सम्यक्कर्मोपसंन्यासात् सम्यक् चित्तनिरोधनात्।। वन० 2/79।।

अपने संकल्पों को पूरी तरह एक ध्येय में लगा देने से, इन्द्रियों को भली-भाँति वश में कर लेने से, अहिंसा आदि व्रतों का ठीक प्रकार पालन करने से, गुरु की भली भाँति सेवा करने से, उचित आहार करने से, वेदादि शास्त्रों का उचित अध्ययन करने से, कर्मों के फलों का भली-भाँति भगवत समर्पण करने से और चित्त का ठीक निरोध करने से मनुष्य कल्याण को प्राप्त करता है।

कर्म चेत्किंचिदन्यत् स्यादितरन्न समाचरेत्।
यत् कल्याणमभिध्यायेत् तत्रात्मानं नियोजयेत्।। वन० 207/44।।

यदि भूल से कोई अनुचित कार्य कर बैठे तो वैसा काम फिर नहीं करना चाहिये। विचार करने पर जो काम कल्याणकारी लगे उसी को करना चाहिये।

मृषा वादं परिहरेत् कुर्यात् प्रियमयाचितः।
न च कामान्न संरम्भान्न द्वेषाद् धर्ममुत्सृजेत्।। वन० 207/42।।

झूठ बोलना छोड़ दे, बिना कहे ही दूसरों का भला करे। काम, क्रोध तथा द्वेष के कारण धर्माचरण को न छोड़े।

विकर्मणा तप्यमानः पापाद् विपरिमुच्यते।
त तत् कुर्यां पुनरिति द्वितीयात् परिमुच्यते।। वन० 207/51।।

जो मनुष्य अनुचित काम करके हृदय से पश्चात्ताप करता है वह पाप से छूट जाता है। मैं ऐसा अनुचित काम फिर नहीं करुंगा यह दृढ़निश्चय कर लेने पर वह भविष्य में होने वाले बुरे कामों से बच जाता है।

काम लोभ ग्रहाकीर्णां पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि संतर।। वन० 207/72।।

यह शरीर नदी है। पाँच इन्द्रियाँ इस नदी का पानी हैं और काम तथा लोभ जैसे मगरमच्छ इसमें भरे पड़े हैं इसलिये धैर्य की नाव पर बैठकर तुम इस नदी के दुर्गम स्थानों अर्थात् जन्म आदि दुखों को पार कर लो।

नित्यं क्रोधात् तपो रक्षेद् धर्मं रक्षेच्च मत्सरात्।
विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः।। वन० 213/29।।

तप को क्रोध से, धर्म को द्वेष से, विद्या को मान और अपमान से तथा अपने का आलस्य से सदा बचाना चाहिये।

आनृशंस्यं परो धर्मः क्षमा च परमं बलम्।
आत्मज्ञानं परं ज्ञानं सत्यं व्रतपरं व्रतम्।। वन० 213/30।।

दया सबसे महान् धर्म है। क्षमा सबसे बड़ी शक्ति है। परमात्मा का तत्त्वज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान है और सत्य व्यवहार सबसे बड़ा व्रत है।

न हिंस्यात् सर्वभूतानि मैत्रायणगतश्चरेत्।
नेदं जीवितमासाद्य वैरं कुर्वीत केनचित्।। वन० 213/34।।

किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिये। सभी के प्रति मित्रता का भाव रखना चाहिये। इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर किसी से वैर नहीं करना चाहिये।

आकिञ्चन्यं सुसन्तोषो निराशित्वमचापलम्। शान्ति० 329/19।।
एतदेव परं ज्ञानं सदात्मज्ञानमुत्तमम्।। वन० 213/35।।

अपने पास कुछ भी संग्रह न करना, सभी परिस्थितियों में सन्तुष्ट रहना, कामना और लोभ का त्याग करना तथा आत्मतत्त्व को जानना यही उत्तम ज्ञान है।

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र लोभ संत्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ।। उद्योग० 36/51।।

हे पापरहित! विद्या, तपस्या, इन्द्रिय संयम और लोभ त्याग के सिवाय आपके लिये मैं शान्ति का और कोई उपाय नहीं देखता।

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति।। उद्योग० 36/52।।

मनुष्य बुद्धि से भय को दूर करता है। तपस्या से महत् पद पाता है। गुरुजनों की सेवा से ज्ञान और योगाभ्यास से शान्ति प्राप्त करता है।

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः।
तपसश्च सुतप्तस्यान्ते सुखमेधते।। उद्योग० 36/54।।

सम्यक् अध्ययन, न्यायोचित युद्ध, पुण्य कर्म और अच्छी तरह की गई तपस्या के अन्त में सुख बढ़ता है।

हितं यत् सर्वभूतानामत्मनश्च सुखावहम्।
तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थ सिद्धये।। उद्योग० 37/40।।

जो सभी प्राणियों के लिये हितकर हो और अपने लिये भी सुखद हो, ऐसे काम को ईश्वरार्पण बुद्धि से करना चाहिये। सम्पूर्ण सिद्धियों का यही मूल मन्त्र है।

मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम्।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्ण दर्शनम्।। उद्योग० 39/56।।

मांगलिक वस्तुओं का स्पर्श, योगाभ्यास, स्वाध्याय, उद्यमशीलता, सरलता और सज्जनों का संग मनुष्य का कल्याण करते हैं।

स्वधर्ममर्थं सर्वं कामं च त्रितयं योऽभिवाञ्छति।। द्रोण० 75/42।।

रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं ब्राह्मणं स्त्रियम्।। द्रोण० 175/43।।

जो व्यक्ति अपने धर्म, अर्थ, और काम इन तीनों को पूरा करना चाहता है उसे राजा, ब्राह्मण और स्त्री से खाली हाथ नहीं मिलना चाहिये।

द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम्।। शान्ति० 13/4।।

'मम' अर्थात् 'यह मेरा है' इन दो अक्षरों की भावना मन में बनाये रखने से मनुष्य मौत के मुँह में रहता है किन्तु 'न मम' (मेरा नहीं) इन तीन अक्षरों की भावना मन में रखने से मनुष्य शाश्वत नित्य ब्रह्म के सम्पर्क में रहता है।

ईषदप्यङ्ग दाराणां पुत्राणां वा चराप्रियम्।
ततो ज्ञास्यसि कः कस्य केन वा कथमेव च।। शान्ति० 25/27।।

प्रिय बन्धु! तुम अपनी पत्नी या पुत्र का थोड़ा-सा भी अप्रिय काम कर दो। तब तुम्हें पता चल जायेगा कि कौन किस कारण से किसी से सम्बन्ध क्यों रखता है?

हितहितांस्तु बुद्ध्येथा मा परोक्षमतिर्भवेः।। शान्ति० 82/34।।

स्वयं अपना भला-बुरा समझना चाहिये। दूसरों की बात का विश्वास नहीं करना चाहिये।

निगृहीतादमात्याश्च स्त्रीभ्यश्चैव विशेषतः।
पर्वतात् विषमाद् दुर्गाद्धस्तिनोऽश्वात् सरीसृपात्।। शा० 90/31।।
एतेभ्यो नित्ययत्तः स्यान्नक्तंचर्यां च वर्जयेत्।
अत्यागं चाभिमानं च दम्भं क्रोधं च वर्जयेत्।। शान्ति० 90/32।।

कैद किये हुए मन्त्री से, विशेषरूप से परायी स्त्रियों से, ऊँचे-नीचे पहाड़ से, हाथी से, घोड़े से और सांप से बचकर रहना चाहिये। रात में घूमना-फिरना नहीं चाहिये। कंजूसी, अभिमान और क्रोध से दूर रहना चाहिये।

अविज्ञातासु च स्त्रीषु क्लीबासु स्वैरिणीषु च।
परभार्यासु कन्यासु नाचेरन्मैथुनं नृपः।। शान्ति० 90/33।।

राजा को अपरिचित स्त्रियों, बांझ स्त्रियों, वेश्याओं, दूसरे की स्त्रियों और कुमारी कन्याओं के साथ सम्भोग नहीं करना चाहिये।

क्रोधं निहन्तुं यो वेद तस्य द्वेष्टा न विद्यते।। शान्ति० 94/9।।

जो व्यक्ति क्रोध को मार डालने की कला जानता है उससे कोई द्वेष नहीं करता है।

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिश्च यः।
द्वावेव सुखमेधेते दीर्घसूत्री विनश्यति।। शान्ति० 137/1।।

जो संकट आने से पहले ही अपनी रक्षा का उपाय कर लेता है तथा जिसे ठीक समय पर संकट से रक्षा करने का उपाय सूझ जाता है ऐसे पुरुष ही सुख से अपनी उन्नति करते हैं किन्तु हर काम में अनावश्यक विलम्ब करने वाला अर्थात् दीर्घसूत्री मनुष्य नष्ट हो जाता है।

परीक्ष्यकारी युक्तश्च स सम्यगुपपादयेत्।
देशकालावभिप्रेतौ ताभ्यां फलमवाप्नुयात्।। शान्ति० 137/24।।

देखभाल करके और सावधान रहकर जो मनुष्य कोई काम भली-भाँति करता है और समय तथा परिस्थिति का ध्यान रखता है उसे सफलता मिलती है।

अप्रियं परुषं वापि परद्रोहं परस्त्रियम्।
अधर्ममनृतं चैव दूरात् प्राज्ञो विवर्जयेत्।। शान्ति० 153/80।।

बुद्धिमान मनुष्य को अच्छा न लगने वाला व्यवहार, कठोर वाणी, दूसरों से झगड़ा, परस्त्रीगमन, अधर्माचरण और झूठ को दूर से छोड़ देना चाहिये।

धर्मं सत्यं श्रुतं न्याय्यं महतीं प्राणिनां दयाम्।
अजिह्मत्वमशाठ्यं च यत्नतः परिमार्गत।। शान्ति० 153/81।।

धर्माचरण, सत्यव्यवहार, शास्त्रज्ञान, न्यायपूर्ण आचरण, प्राणियों पर दया, जीवन में सरल व्यवहार और दुष्टता का त्याग इन गुणों को अपनाने का यत्न करना चाहिये।

सोऽहं ह्यहिंस्रः सत्यार्थी कामक्रोधबहिष्कृतः।
समदुःखसुखः क्षेमी मृत्युं हास्याम्यमर्तवत्।। शान्ति० 175/31।।

अब मैं हिंसा छोड़कर सत्य की खोज करूँगा। काम और क्रोध को हृदय से निकाल दूँगा। सुख और दुःख में समान भाव बनाये रखूँगा। सबका भला करुँगा और देवताओं की तरह मृत्यु के भय से मुक्त हो जाऊँगा।

सर्वसाम्यमनायासं सत्यवाक्यं च भारत।
निर्वेदश्चाविधित्सा च यस्य स्यात् स सुखी नरः।। शान्ति० 177/2।।

सभी अवस्थाओं में समान भाव (सर्वसाम्य), पुरुषार्थ न करना (अनायास), सत्य बोलना, वैराग्य और शान्ति (निर्वेद) और कुछ करने या पाने की इच्छा न करना (अविधित्सा) अर्थात् कामों में फल की आसक्ति न होना ये पाँच गुण जिनमें होते हैं वे मनुष्य सुखी होते हैं।

क्षमिष्ये क्षिपमाणानां न हिंसिष्ये विहिंसितः।
द्वेष्ययुक्तः प्रियं वक्ष्याम्यनादृत्य तदप्रियम्।। शान्ति० 177/43।।

जो लोग मुझ पर आक्षेप करेंगे उन्हें मैं क्षमा कर दूँगा। जो मुझे मारेंगे उन्हें मैं नहीं मारूँगा। जो लोग मुझसे द्वेष करके मुझे बुरा-भला कहेंगे मैं उनकी बातों की परवाह न करके उनके साथ मीठा बोलूँगा।

निर्वेदं निर्वृत्तिं तृप्तिं शान्तिं सत्यं दमं क्षमाम्।
सर्वभूतदयां चैव विद्धि मां समुपागतम्।। शान्ति० 177/45।।

अब मुझमें वैराग्य, सुख, तृप्ति, शान्ति, सत्य, संयम, क्षमा और सब प्राणियों पर दया करने का भाव आ गया है।

तस्मात् कामश्च लोभश्च तृष्णा कार्पण्यमेव च।
त्यजन्तुं मां प्रतिष्ठन्तं सत्त्वस्थो ह्यस्मि साम्प्रतम्।। शान्ति० 177/46।।

इसलिये अब काम, लोभ, तृष्णा और कंजूसी मुझे छोड़ दें। मैं अब सत्त्वगुण में पूरी तरह से प्रतिष्ठित हो गया हूँ।

पुस्तकालय 147089 विश्वविद्यालय

तपोनित्येन दान्तेन मुनिना संयतात्मना।
अजितं जेतुकामेन भाव्यं सङ्गेष्वसङ्गिना।। शान्ति० 189/14।।

मनुष्य को सदा तपस्या करनी चाहिये। जितेन्द्रिय बनना चाहिये। मननशील रहकर मन को वश में रखना चाहिए। अपने शरीर और घर का लगाव छोड़कर न जीते हुए को अर्थात् परमात्मा को जीतने या पाने का प्रयत्न करना चाहिये।

अविस्त्रम्भे न गन्तव्यं विस्त्रम्भे धारयेन्मनः।
मनः प्राणे निगृह्णीयात् प्राणं ब्रह्मणि धारयेत्।। शा० 189/16।।

जो मार्ग विश्वास के योग्य नहीं है उस पर नहीं चलना चाहिये। विश्वास करने योग्य बात में मन लगाना चाहिये। मन को प्राण में लगाना चाहिये और प्राण को ब्रह्म में लगाना चाहिये।

शब्दादीन् विषयांस्तान्न संरागादयं व्रजेत्।
क्रोधो हर्षो विषादश्च जायन्तेह परस्परात्।। शान्ति० 212/8।।

मनुष्य को राग के वश में पड़कर शब्द आदि विषयों का सेवन नहीं करना चाहिये क्योंकि विषयों का सेवन करने से हर्ष, क्रोध और विषाद ये सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भाव मन में उठने लगते हैं।

गुरुपूजा च सततं वृद्धानां पर्युपासनम्।
श्रवणं चैव शास्त्राणां कूटस्थं श्रेय उच्यते।। शान्ति० 287/2।।

सदैव गुरुजनों का आदर, वृद्ध पुरुषों की सेवा और शास्त्रों को सुनना ये तीन कल्याण के निश्चित साधन हैं।

परेषां यदसूयेत न तत् कुर्यात् स्वयं नरः।। शा० 290/24।।

मनुष्य दूसरे मनुष्यों के जिस काम की निन्दा करे वह काम स्वयं न करे।

यदा व्यपेत हृल्लेखं मनो भवति तस्य वै।
नानृतं भवति तदा कल्याणमृच्छति।। शान्ति० 294/31।।

जब मनुष्य का मन कामनाओं और कर्म संस्कारों से रहित हो जाता है और मिथ्याचार रहित हो जाता है तब उसका कल्याण हो जाता है।

निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता।
सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्।। शान्ति० 329/7।।

पाप के कामों से दूर रहना, सदा पुण्य के काम करना, श्रेष्ठ पुरुषों का संग और सदाचार का पालन करना यही कल्याण के उपाय हैं।

नित्यं क्रोधात् तपो रक्षेच्छ्रियं रक्षेच्चमत्सरात्।
विद्यां मानावमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः।। शान्ति० 329/11।।

मनुष्य को चाहिये कि वह तपस्या पर क्रोध का, लक्ष्मी पर ईर्ष्या का, विद्या पर मान-अपमान का और अपने पर आलस्य का प्रभाव न पड़ने दे।

न हि त्वां प्रस्थितं कश्चित् पृष्ठतोऽनुगमिष्यति।
सुकृतं दुष्कृतं च त्वां यास्यन्तमनुयास्यति।। शान्ति० 329/35।।

जब तुम इस संसार से जाओगे तब तुम्हारे साथ कोई नहीं जायेगा। तुमने अपने जीवन में जो अच्छे और बुरे कर्म किये होंगे वही तुम्हारे साथ जायेंगे।

त्यज धर्ममधर्मं च तथा सत्यानृते त्यज।
उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तं त्यज।। शान्ति० 329/40।।

धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, इन सबको छोड़ दो। जिस बुद्धि से इन्हें छोड़ा है उस बुद्धि को भी तुम त्याग दो।

त्यज धर्ममसंकल्पादधर्मं चाप्यलिप्सया।
उभे सत्यानृते बुद्ध्या बुद्धिं परम निश्चयात्।। शा० 329/41।।

कामनाओं के त्याग द्वारा धर्म को और लालसा को समाप्त कर अधर्म को छोड़ दो। अपनी बुद्धि से सत्य और असत्य को छोड़कर परमतत्त्व का निश्चय कर बुद्धि को भी त्याग दो।

काम

त्यागः कामवतीनां हि स्त्रीणां सद्भिर्विगर्हितः।। आदि० 97/5।।

कामवासना वाली पास आई हुई स्त्री का त्याग सज्जनों ने अनुचित कहा है।

सततं यश्च कामार्थी नेतरावनुतिष्ठति।
मित्राणि तस्य नश्यन्ति धर्मार्थाभ्यां च हीयते।। वन० 33/26।।

जो केवल काम के पीछे पड़कर धर्म-अर्थ को भुला देता है उसके मित्र उससे छूट जाते हैं। धर्म और अर्थ तो रहते ही नहीं।

तस्य धर्मार्थ हीनस्य कामान्ते निधनं ध्रुवम्।
कामतो रममाणस्य मीनस्येवाम्भसः क्षये।। वन० 33/27।।

जैसे पानी सूख जाने पर मछली मर जाती है वैसे ही जो व्यक्ति धर्म और अर्थ की परवाह न करके काम में ही रमण करता रहता है उसकी भोगसामग्री नष्ट हो जाने पर उसकी मृत्यु हो जाती है।

तस्माद् धर्मार्थयोर्नित्यं न प्रमाद्यन्ति पण्डिताः।
प्रकृतिः स हि कामस्य पावकस्यारणिर्यथा।। वन० 33/28।।

इसलिये बुद्धिमान पुरुष धर्म और अर्थ की ओर से प्रमाद नहीं करते क्योंकि धर्म और अर्थ से ही काम की प्राप्ति होती है जैसे अरणि से आग की।

द्रव्यार्थस्पर्शसंयोगे या प्रीतिरुपजायते।
स कामश्चित्रसंकल्पः शरीरं नास्य दृश्यते।। वन० 33/30।।

स्त्री, खान-पान आदि वस्तुओं के स्पर्श से और पैसा आदि मिलने से जो प्रसन्नता होती है, और इस प्रसन्नता को पाने के लिये मन में जो विचार उठता है वही

काम होता है इसीलिये काम का शरीर नहीं देखा जाता। इसीलिये काम को अनङ्ग कहते हैं।

इन्द्रियाणां च पञ्चानां मनसो हृदयस्य च।
विषये वर्तमानानां या प्रीतिरुपजायते।। वन० 33/37।।
स काम इति मे बुद्धिः कर्मणां फलमुत्तमम्।।

पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धि की अपने विषयों में लगने पर जो प्रसन्नता होती है वही काम है। वह कर्मों का उत्तम फल है।

पुमांसमिष्टश्च विषयो मैथुनाय न संशयः।। विराट० 24/4।।

पुरुषों को मैथुन के लिये विषय भोग अच्छे लगते हैं।

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते।
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः।। उद्योग० 39/44।।

देहाभिमान से रहित पुरुष को भी यदि वांछित पदार्थ मिलते हैं तो वह इन्हें अस्वीकार नहीं करता। फिर कामासक्त मनुष्य इन्हें कैसे ठुकरा सकता है।

कामार्थौ लिप्समानस्तु धर्ममेवादितश्चरेत्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः कामो वापि कदाचन।। उद्योग० 124/37।।

काम और अर्थ को प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति को पहले धर्म का ही पालन करना चाहिये क्योंकि अर्थ और काम, धर्म से कभी अलग नहीं होते।

कामक्रोधौ शरीरस्थौ प्रज्ञानं तौ विलुम्पतः।। उद्योग० 129/31।।

शरीर में बैठे हुए काम और क्रोध मनुष्य का विवेक नष्ट कर देते हैं।

न चापि तृप्तिः कामानां विद्यतेऽद्यापि कस्यचित्।। भीष्म० 9/74।।

आज तक किसी की भी कामनाओं की तृप्ति नहीं हुई है।

कामे प्रसक्तः पुरुषः किमकार्यं विवर्जयेत्।। शान्ति० 88/21।।

कामवासना से युक्त मनुष्य ऐसा कौन सा बुरा काम है जो वह नहीं करता।

संकल्पाज्जायते कामः सेव्यमानो विवर्धते।। शान्ति० 163/8।।
यदा प्राज्ञो विरमते तदा सद्यः प्रणश्यति।।

मन के संकल्प से काम पैदा होता है। काम का सेवन किया जाय तो वह बढ़ता है। जब बुद्धिमान पुरुष काम से विरक्त हो जाता है तब यह नष्ट हो जाता है।

नाकामः कामयत्यर्थं नाकामो धर्ममिच्छति।
नाकामः कामयानोऽस्ति तस्मात् कामः विशिष्यते।। शा० 167/29।।

जिसके मन में कोई इच्छा नहीं होती वह धर्म और अर्थ कमाना नहीं चाहता। वह भोग-ऐश्वर्य भी नहीं चाहता इसलिये धर्म, अर्थ और काम में काम ही प्रधान है।

वणिजः कर्षकाः गोपाः कारवः शिल्पिनस्तथा।
देवकर्मकृतश्चैव युक्ताः कामेन कर्मसु।। शान्ति० 167/32।।

व्यापारी, किसान, ग्वाले, कारीगर, कलाकार और पूजा-पाठ कराने वाले ये सभी कामना के कारण ही अपना काम करते हैं।

नवनीतं यथा दघ्नस्तथा कामोऽर्थधर्मतः।
श्रेयस्तैलं हि पिण्याकाद् घृतं श्रेय उदश्वितः।।
श्रेयः पुष्पफलं काष्ठात् कामो धर्मार्थयोर्वरः।। शान्ति० 167/35।।

जैसे दही की अपेक्षा मक्खन श्रेष्ठ है वैसे ही काम, धर्म और अर्थ से श्रेष्ठ है। जैसे खली से तेल, मट्ठे से घी और लकड़ी से फल-फूल श्रेष्ठ हैं उसी तरह धर्म और अर्थ से काम श्रेष्ठ है।

यः कामानाप्नुयात् सर्वान् यश्चैतान् केवलांस्त्यजेत्।
प्रापणात् सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते।।
शान्ति० 177/16।।

जो व्यक्ति अपनी सारी कामनाओं को पा लेता है और जो व्यक्ति अपनी कामनाओं का त्याग कर देता है इन दोनों में से अर्थात् कामनाएँ पूरी करने और कामनाओं का त्याग करने से कामनाओं का त्याग ही अच्छा होता है।

न पूर्वे नापरे जातु कामानामन्तमाप्नुवन्।।
त्यक्त्वा सर्वसमारम्भान् प्रतिबुद्धोऽस्मि जागृमि।। शान्ति० 177/22।।

पहले वाले और पीछे वाले कोई भी व्यक्ति अपनी कामनाओं का अन्त नहीं पा सके हैं। इसलिये मैं सारे काम छोड़कर सावधान हो गया हूँ और पूरी तरह जाग गया हूँ।

जानामि काम त्वां चैव यच्च किंचित् प्रियं तव।
तवाहं प्रियमन्विच्छन्नात्मन्युपलभे सुखम्।। शान्ति० 177/24।।

अरे काम! मैं तुझे जान गया हूँ। मुझे यह भी पता चल गया है कि तुझे क्या अच्छा लगता है। तेरा प्रिय कार्य करने की चेष्टाएँ मैंने बहुत कीं किन्तु मुझे इनसे सुख नहीं मिला।

काम जानामि ते मूलं संकल्पात् किल जायसे।
न त्वां संकल्पयिष्यामि समूलो न भविष्यसि।। शान्ति० 177/25।।

अरे काम! मैं तेरी जड़ को जानता हूँ। तू निश्चय ही संकल्प से पैदा होता है। अब मैं कोई संकल्प नहीं करूँगा और तू जड़ से मिट जायेगा।

तृष्णाशोकश्रमाणां हि त्वं काम प्रभवः सदा।। शान्ति० 177/33।।

काम! तू ही तृष्णा, शोक और परिश्रम का उत्पत्ति स्थान है।

यद् यदालम्बसे काम तत्तदेवानुरुध्यसे।। शान्ति० 177/37।।

काम! तू जिसका भी सहारा लेता है उसी के पीछे पड़ जाता है।

अतत्त्वज्ञोऽसि बालश्च दुस्तोषोऽपूरणोऽनलः।
नैव त्वं वेत्थ सुलभं नैव त्वं वेत्थ दुर्लभम्।। शान्ति० 177/38।।

काम! तू वास्तविक ज्ञान से रहित है और बच्चे की तरह मूर्ख है। तेरा पेट आग की तरह कभी नहीं भरता। तुझे कभी भी सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। तू यह भी नहीं जानता कि कौन-सी वस्तु आसानी से मिल सकती है और कौन-सा पदार्थ नहीं मिल सकता।

परित्यजामि काम त्वां हित्वा सर्वमनोगतीः।
न त्वं मया पुनः काम वत्स्यसे न च रंस्यसे।। शान्ति० 177/42।।

अरे काम! मैं अपनी सारी मनोकामनाएँ छोड़कर तुझे सदा के लिये छोड़ता हूँ। अब तू मेरे मन में नहीं रह सकेगा और न ही मौज मना सकेगा।

तृप्तः स्वस्थेन्द्रियो नित्यं यथालब्धेन वर्तयन्।
न सकामं करिष्यामि त्वामहं शत्रुमात्मनः।। शान्ति० 177/44।।

मैं सदा तृप्त और स्वस्थ इन्द्रियों से युक्त रहकर भाग्य से जो कुछ मिलेगा उसी से अपना गुजारा करूँगा। काम! मैं तुझे कभी भी सफल नहीं होने दूँगा, क्योंकि तू मेरा शत्रु है।

यद् यत् त्यजति कामानां तत् सुखस्याभिपूर्यते।
कामस्य वशगो नित्यं दुःखमेव प्रपद्यते।। शान्ति० 177/48।।

मनुष्य जिस–जिस कामना को छोड़ देता है उससे उसका सुख ही बढ़ता है। कामनाओं के वश में रहनेवाले को दुख ही मिलता है।

कामानुबन्धं नुदेत यत् किंचित् पुरुषो रजः।
कामक्रोधोद्भवं दुःखमह्रीररतिरेव च।। शान्ति० 177/49।।

काम से सम्बद्ध जितना भी रजोगुण हो उसे दूर कर देना चाहिये। दुःख, बेशरमी और असन्तोष ये सब काम और क्रोध से पैदा होते हैं।

आत्मना सप्तमं कामं हत्वा शत्रुमिवोत्तमम्।
प्राप्यावध्यं ब्रह्मपुरं राजेव स्यामहं सुखी।। शान्ति० 177/52।।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य और ममता इन सातों में से काम मेरा सबसे बड़ा शत्रु है। मैं इसे मारकर अविनाशी ब्रह्मपुर में बैठे राजा की तरह सुखी हो जाऊँगा।

परिच्छिद्यैव कामानां सर्वेषां चैव कर्मणाम्।
मूलं बुद्धिरिन्द्रियग्रामं शकुन्तमिव पञ्जरे।। शान्ति० 180/28।।

बुद्धि और इन्द्रियाँ ही सारी कामनाओं और कार्यों की जड़ हैं। इन्हें पिंजरे में बन्द पक्षी की तरह वश में रखना चाहिये।

न खल्वप्यरसज्ञस्य कामः क्वचन जायते।
संस्पर्शाद् दर्शनाद् वापि श्रवणाद् वापि जायते।। शान्ति० 180/30।।

जो व्यक्ति किसी विषय भोग का स्वाद (रस) नहीं जानता उसके मन में किसी भोग की इच्छा नहीं होती। छूने से, देखने से या सुनने से कोई इच्छा पैदा होती है।

यां यामवस्थां पुरुषोऽधिगच्छेत् तस्यां रमेतापरितप्यमानः।
एवं प्रवृद्धं प्रणुदन्मनोजं संतापनीयं सकलं शरीरात्।।

शान्ति० 226/17।।

पुरुष जैसी भी परिस्थिति में हो उसमें उद्विग्न न होकर उसे आनन्द से रहना चाहिये। इस प्रकार संतापजनक बढ़ी हुई काम वासना को भी अपने मन और शरीर से पूरी तरह निकाल देना चाहिये।

हृदि कामद्रुमश्चित्रो मोहसंचयसम्भवः।
क्रोधमानमहास्कन्धो विधित्सापरिषेचनः।। शान्ति० 254/1।।

तस्य चाज्ञानमाधारः प्रमादः परिषेचनम्।
सोऽभ्यसूयापलाशो हि पुरा दुष्कृतसारवान्।। शान्ति० 254/2।।

मनुष्य के हृदय में मोह के बीज से पैदा हुआ विचित्र वृक्ष है, जिसे काम कहा जाता है। क्रोध और अभिमान उसके तने हैं। कुछ करने की इच्छा उसे सींचने का बर्तन है। अज्ञान उसकी जड़ है। आलस्य ही उसे सींचने का पानी है। दूसरों के दोष देखना उस वृक्ष के पत्ते हैं। पहले जन्मों में किये हुए पाप उसके सार भाग हैं।

सम्मोहचिन्ताविटपः शोकशाखो भयाङ्कुरः।
मोहनीभिः पिपासाभिर्लताभिरनुवेष्टितः।। शान्ति० 254/3।।

उस पेड़ की डालियाँ मोह और चिन्ता हैं। शोक उसकी शाखा है और डर उसका अंकुर। मोह में डालने वाली तृष्णारूपी लताएँ उस पेड़ से लिपटी हुई हैं।

उपासते महावृक्षं सुलुब्धास्तत्फलेप्सवः।
आयसैः संयुताः पाशैः फलदं परिवेष्ट्य तम्।। शान्ति० 254/4।।

लोभी मनुष्य लोहे की जंजीरों के समान वासना के बन्धनों में बंधकर उस फलदायक महान वृक्ष को चारों ओर से घेरकर बैठे हैं और उसका फल पाना चाहते हैं।

यस्तान् पाशान् वशे कृत्वा तं वृक्षमपकर्षति।
गतः स दुःखयोरन्तं जरामरणयोर्द्वयोः।। शान्ति० 254/5।।

जो मनुष्य वासना के उन बन्धनों को वश में करके वैराग्य के शस्त्र से उस काम वृक्ष को काट डालता है, वह बुढ़ापे और मृत्यु इन दोनों के दुखों से पार हो जाता है।

इच्छतोरत्र यो लाभः स्त्रीपुंसोरमृतोपमः।
अलाभश्चापि रक्तस्य सोऽपि दोषो विषोपमः।। शान्ति० 320/69।।

जब स्त्री और पुरुष एक-दूसरे को चाहते हों तो उस समय उनका संभोग सुख अमृत जैसा होता है। यदि अनुरक्त स्त्री को अपने मन के अनुकूल पुरुष नहीं मिलता है तो उनका संयोग विष के समान होता है।

सर्वोपायात् तु कामस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः।
कार्यः श्रेयोऽर्थिना तौ हि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ।।-शान्ति० 329/10।।

अपना कल्याण चाहने वाले को काम और क्रोध पर नियन्त्रण रखना चाहिये क्योंकि काम और क्रोध कल्याण को नष्ट करने के लिये तैयार रहते हैं।

कामचारी तु कामेन य इन्द्रियसुखे रतः।। आश्व० 26/15।।

तरह-तरह की इच्छाओं में फंसा व्यक्ति इन्द्रियों के सुख में ही सुख मानता है।

कायर

उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैवं पराजितः।। उद्योग० 133/8।।

अरे कायर, उठ खड़ा हो। शत्रु से हार कर घर में इस तरह मत सो।

सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः।।
सुसन्तोषः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति।। उद्योग० 133/9।।

छोटी नदी थोड़े से पानी से लबालब भर जाती है। चूहे की अंजलि भी जरा से अन्न से भर जाती है। कायर भी सन्तोषी होता है। वह थोड़े से ही संतुष्ट रहता है।

यस्य वृत्तं न जल्पन्ति मानवा महदद्भुतम्।
राशिवर्धनमात्रं स नैव स्त्री न पुनः पुमान्।। उद्योग० 133/22।।

लोग जिसके महान् और अद्भुत पराक्रम और चरित्र की चर्चा नहीं करते ऐसा व्यक्ति न तो स्त्री है न ही पुरुष। वह तो केवल जनसंख्या बढ़ाता है।

दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः।। उद्योग० 133/23।।

दान, तपस्या, सत्यभाषण, विद्या तथा धन कमाने के लिये जिस पुरुष की कीर्त्ति नहीं होती ऐसा पुरुष तो माता के मल-मूत्र जैसा ही होता है।

श्रुतेन तपसा वापि श्रिया वा विक्रमेण वा।
जनान् योऽभिभवत्यन्यान् कर्मणा हि स वै पुमान्।। उद्योग० 133/24।।

जो मनुष्य अपने ज्ञान, तप, लक्ष्मी या पराक्रम से दूसरे लोगों को पराजित कर देता है वही वास्तव में पुरुष होता है।

निरमर्षं निरुत्साहं निर्वीयमरिनन्दनम्।
मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशम्।। उद्योग० 133/30।।

कोई भी स्त्री ऐसे पुत्र को जन्म न दे जो रोषरहित, उत्साहहीन, पराक्रम शून्य और शत्रुओं को प्रसन्न करने वाला हो।

एतावानेव पुरुषो यदमर्षी यदक्षमी।
क्षमावान् निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान्।। उद्योग० 133/32।।

जिसके हृदय में रोष है और जो शत्रु को क्षमा नहीं करता वही वास्तव में पुरुष है। क्षमाशील और रोषहीन व्यक्ति न तो पुरुष होता है और न ही स्त्री।

क्लीबा हि वचनोत्तराः।। उद्योग० 162/44।।

नपुंसक तो केवल बातों से उत्तर देते हैं कुछ करके नहीं।

परवीर्यं समाश्रित्य यः समाह्वयते परान्।
अशक्तः स्वयमादातुमेतदेव नपुंसकम्।। उद्योग० 162/55।।

जो अपने आप शत्रु का सामना नहीं कर सकता और दूसरों के बल बूते पर शत्रुओं को ललकारता है वह नपुंसक होता है।

कृपणं विलपन्नार्तो जरयाभिपरिप्लुतः।
म्रियते रुदतां मध्ये ज्ञातीनां न स पूरुषः।। शल्य० 5/34।।

बुढ़ापे से जरजर शरीर वाला, रोगी, रोते रहने वाला और रोते हुए सम्बन्धियों से घिरा जो पुरुष मरता है वह पुरुष कहलाने योग्य नहीं होता।

कुलीन पुरुष

कुलीनस्य च या निन्दा वधोवामित्रकर्शन।
महागुणो वधो राजन् न तु निन्दा कुजीविका।। उद्योग० 73/24।।

शत्रुसूदन! कुलीन पुरुष की निन्दा हो या वध, इन दोनों में से उसका वध होना ही अच्छा होता है क्योंकि निन्दा से उसका जीवन नरक बन जाता है।

राजमार्गे गवां मध्ये धान्यमध्ये च धर्मिणः।
नोपसेवन्ति राजेन्द्र सर्गं मूत्रपुरीषयोः।। अनु० 162/35।।

धर्मात्मा पुरुष; रास्तों पर, गौओं के बीच और खेतों में उगे हुए अन्न के बीच मल-मूत्र नहीं करते हैं।

पञ्चानामशनं दत्त्वा शेषमश्नन्ति साधवः।
न जल्पन्ति च भुञ्जाना न निद्रान्त्यार्द्रपाणयः।। अनु० 162/36।।

सज्जन; देवता, पितर, प्राणी, अतिथि और कुटुम्बीजन इन पाँचों को भोजन देकर बचा हुआ अन्न खाते हैं। वे खाते हुए बोलते नहीं और गीले हाथ होने पर सोते नहीं।

न हि व्यसनमासाद्य सीदन्ति कृतबुद्धयः।। आश्व 61/22।।

पवित्र बुद्धि वाले कुलीन पुरुष संकट आने पर विचलित नहीं होते।

काल

विधातृविहितं मार्गं न कश्चिदतिवर्तते।
कालमूलमिदं सर्वं भावाभावौ सुखासुखे।। आदि० 1/247।।

विधाता का जो विधान है उसे कोई नहीं टल सकता। जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, इन सबका मुख्य कारण काल ही है।

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
संहरन्तं प्रजाः कालं कालः शमयते पुनः।। आदि० 1/248।।

काल ही प्राणियों को उत्पन्न करता है और काल ही सभी जीवधारियों को नष्ट कर देता है। प्राणियों का संहार करने वाले इस काल को महाकाल स्वरूप परमात्मा ही शान्त करते हैं।

कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः।
कालः सर्वेषु भूतेषु चरत्यविधृतः समः।। आदि० 1/250।।

प्राणियों के सो जाने पर भी काल जागता रहता है। काल की गति का कोई उल्लघंन नहीं कर सकता। काल, सब प्राणियों के बीच समान भाव से बेरोकटोक सदा गतिशील रहता है।

अतीतानागता भावा ये च वर्तन्ति साम्प्रतम्।
तान् निर्मितान् बुद्ध्वा न संज्ञां हातुमर्हसि।। आदि० 1/251।।

इस संसार में जितने पदार्थ आदि हो चुके हैं या इस समय हैं अथवा भविष्य में कभी होंगे उन सबको बनाने वाला काल ही है इसलिये यह बात जानकर तुम्हें अपना विवेक नहीं छोड़ना चाहिये।

त्रीण्यर्पितान्यत्र शतानि मध्ये षष्टिश्च नित्यं चरति ध्रुवेऽस्मिन्।
चक्रे चतुर्विंशतिपर्वयोगे षड् वै कुमाराः परिवर्तयन्ति।।
आदि० 3/146।।

निरन्तर गतिमान इस कालचक्र में तीन सौ साठ अरे हैं, चौबीस पर्व हैं और इस कालचक्र को छह कुमार घुमा रहे हैं।

तन्त्रं चेदं विश्वरूपे युवत्यौ वयतस्तन्तून् सततं वर्तयन्त्यौ।
कृष्णान् सितांश्चैव विवर्तयन्त्यौ भूत्यान्यजस्त्रं भुवनानि चैव।।

आदि०3/147।।

यह सम्पूर्ण संसार जिनका स्वरूप है ऐसी दो युवतियाँ करघा चलाती हुईं काले और सफेद तागों से वासनारूपी जाल बुनती रहती हैं। ये युवतियाँ ही सम्पूर्ण प्राणियों को और संसार को भी चला रही हैं।

बहुविघ्नः सुराः कालः कालः कालं नयिष्यति।। उद्योग० 12/26।।

देवताओं! समय अनेक विघ्नों से पूर्ण होता है किन्तु काल ही इसे काल के गाल में डाल देगा।

न कालो दण्डमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित्।
कालस्य बलमेतावद् विपरीतार्थदर्शनम्।। सभा० 81/11।।

काल डण्डा उठाकर किसी का सिर नहीं फोड़ता। काल का तो बल यही है कि वह मनुष्य की बुद्धि उलट देता है।

मन्ये पर्याय धर्मोऽयं कालस्यात्यन्तगामिनः।
चक्रे प्रधिरिवासक्तो नास्य शक्यं पलायितुम्।। उद्योग० 51/58।।

मैं मानता हूँ कि तेज गति से घूमने वाले काल का क्रम से सुख दुख का आना निश्चित नियम है। मैं इस कालचक्र की धुरि से बंधा होने के कारण इस कालचक्र से छूटकर कहीं भाग नहीं सकता।

कालपर्यायमाज्ञाय मा स्म शोके मनः कृथाः।। भीष्म० 2/5।।

इसे काल का निश्चित नियम (चक्र) समझकर मन में दुःख मतकर।

असंशयं पार्थिवेन्द्र कालः संक्षिपते जगत्।
सृजते च पुनर्लोकान् नेह विद्यति शाश्वतम्।। भीष्म० 3/52।।

राजन्! काल निस्सन्देह इस संसार को नष्ट करता है और फिर नई सृष्टि का निर्माण करता है। संसार में कोई पदार्थ सदा विद्यमान नहीं रहता।

कालो नूनं महावीर्यः सर्वलोकदुरत्ययः।। भीष्म० 14/60।।

निश्चय ही काल अत्यधिक बलशाली है। यह सम्पूर्ण जगत् के लिये दुर्लंघ्य है।

कालः सर्वाणि भूतानि नियच्छति परे विधौ।। द्रोण० 80/6।।

काल सभी प्राणियों को विधाता के निश्चित विधान में लगा देता है।

मोक्षो न नूनं कालात् तु विद्यते भुवि कस्यचित्।। शल्य० 27/18।।

इस पृथ्वी पर किसी को भी काल से छुटकारा निश्चय ही नहीं मिलता।

कालोपहतचित्ता हि सर्वे मुह्यन्ति भारत।। शल्प० 63/47।।

भारत! काल के प्रभाव से दूषित चित्त के कारण सभी लोग भ्रम में पड़ जाते हैं।

कालं प्राप्य महाबाहो न कश्चिदतिवर्तते।। शल्प० 64/10।।

हे महाबाहु! काल के वश में पड़ा कोई भी व्यक्ति उससे बच नहीं सकता।

कालः कर्षति भूतानि सर्वाणि विविधान्युत।
न कालस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यः कुरुसत्तम।। स्त्री० 2/8।।

हे कुरुश्रेष्ठ! काल नाना प्रकार के सभी प्राणियों को खींच लेता है। कोई भी प्राणी काल का प्रिय नहीं है। काल किसी प्राणी से द्वेष भी नहीं करता।

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।। स्त्री० 2/24।।

काल सभी प्राणियों को पकाता है और काल ही सारे प्राणियों को नष्ट कर डालता है।

न तस्य मातापितरौ नानुग्राह्यो हि कश्चन।
कर्मसाक्षी प्रजानां यस्तेन कालेन संहृताः।। शान्ति० 33/17।।

काल के माता-पिता नहीं हैं। वह किसी पर कृपा भी नहीं करता। काल सारी प्रजा के कर्म देखता रहता है। उसी काल ने इन सबका संहार किया है।

हेतुमात्रमिदं तस्य विहितं भरतर्षभ।
यद्धन्ति भूतैर्भूतानि तदस्मै रूपमैश्वरम्।। शान्ति० 33/18।।

भरतश्रेष्ठ! उस काल ने इस युद्ध को केवल कारण बनाया है। काल; प्राणियों के द्वारा प्राणियों का वध करता है वही उसका ईश्वरीय रूप है।

कर्मसूत्रात्मकं विद्धि साक्षिणं शुभपापयोः।
सुखदुःखगुणोदर्कं कालं कालफलप्रदम्।। शान्ति० 33/19।।

काल जीव के पाप और पुण्यकर्मों को देखता रहता है। काल इन अच्छे-बुरे

कर्मों की डोरी के सहारे जीव को समय आने पर उसके कर्मों के अनुसार सुख-दुःख का भोग देता है।

कालो नित्यमुपादत्ते सुखं दुःखं च देहिनाम्।। शान्ति० 139/52।।

काल ही सभी प्राणियों के लिये सुख-दुःख उत्पन्न करता है।

कालः सर्वं समादत्ते कालः सर्वं प्रयच्छति।
कालेन विहितं सर्वं मा कृथाः शक्र पौरुषम्।। शान्ति० 224/25।।

इन्द्र! काल ही सब कुछ ले लेता है और काल ही सब कुछ दे देता है। काल ने ही सब कुछ किया है इसलिये अपने पुरुषार्थ का गर्व मत करो।

कालः स्थापयते सर्वं कालः पचति वै तथा।। शान्ति० 224/38।।

काल ही सबको विभिन्न अवस्थाओं में रखकर पालन करता है और काल ही सबको पचाता अर्थात् नष्ट कर डालता है।

मासमासार्धवेश्मानमहोरात्राभिसंवृतम्।
ऋतुद्वारं वर्षमुखमायुर्वेदविदो जनाः।। शान्ति० 224/46।।

वेदवेत्ता मनुष्य कहते हैं कि मास और पक्ष, काल के शरीर या घर हैं। दिन और रात उसके कपड़े हैं। ऋतुएँ उसके द्वार हैं अर्थात् मन और इन्द्रियाँ हैं और वर्ष मुख है। यह काल आयुस्वरूप है।

ऋतून् मासार्धमासाश्च दिवसांश्च क्षणांस्तथा।
पूर्वाह्णमपराह्णं च मध्यान्हमपि चापरे।। शान्ति० 224/53।।

मुहूर्तमपि चैवाहुरेकं सन्तमनेकधा।
तं कालमिति जानीहि यस्य सर्वमिदं वशे।। शान्ति 224/54।।

कुछ लोग उस काल को ऋतु, मास, पक्ष, दिन, क्षण, पूर्वाह्ण, मध्यान्ह, और अपराह्ण (तीसरा पहर) कहते हैं। उसी को विद्वान् मुहूर्त्त भी कहते हैं। वह काल एक होकर भी अनेक प्रकार का है। यह सारा जगत उसी के अधीन है। तुम उस काल को समझो।

न विद्या न तपो दानं न मित्राणि न बान्धवाः।
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम्।। शान्ति० 227/31।।

काल की मार से मारे हुए मनुष्य को उसकी विद्या, तपस्या, दान, मित्र और बन्धु-बान्धव कोई भी नहीं बचा सकता।

लाभालाभौ सुखं दुःखं कामक्रोधौ भवाभवौ।। शान्ति० 227/83।।

वधबन्ध प्रमोक्षं च सर्वं कालेन लभ्यते।

पुरुष को हानि–लाभ, सुख–दुख, काम–क्रोध, उन्नति–अवनति, वध, कैद और कैद से छुटकारा सब कुछ काल से मिलता है।

न च कालेन कालज्ञः स्पृष्टः शोचितुमर्हति।। शान्ति० 227/86।।

तेन शक्र न शोचामि नास्ति शोके सहायता।

इन्द्र! जो काल के प्रभाव को जानता है वह काल की मार खाकर भी शोक नहीं करता। इसीलिये मैं भी शोक नहीं करता। विपत्ति दूर करने में शोक करने से सहायता नहीं मिलती।

न चात्र परिहारोऽस्ति कालस्पृष्टस्य कस्यचित्।। शा० 227/93।।

जो मनुष्य काल की पकड़ में आ चुका है उसको कोई नहीं छुड़ा सकता।

अप्रमत्तः प्रमत्तेषु कालो जागर्ति देहिषु।। शान्ति० 227/95।।

देहधारी प्राणी बेसुध होकर सोते हैं किन्तु काल सावधान रहकर जागता रहता है।

अहोरात्रांश्च मासांश्च क्षणान् काष्ठा लवान् कलाः।। शा० 227/97।।

सम्पीडयति यः कालो वृद्धिं वार्धुषिको यथा।

जैसे साहूकार ब्याज जोड़कर ऋण लेने वालों को तंग करता है वैसे ही काल दिन–रात, मास, क्षण, काष्ठा, लव और कला तक का हिसाब लगाकर प्राणियों को तंग करता है।

आवर्तमानमजरं विवर्तनं षण्णाभिकं द्वादशारं सुपर्व।
यस्येदमास्ये परियाति विश्वं तत् कालचक्रं निहितं गुहायाम्।।

शान्ति० 245/32।।

जो सदा घूमता रहता है। कभी जीर्ण या नष्ट नहीं होता। जो सभी प्राणियों की आयु नष्ट करता है। छह ऋतुएँ जिसकी नाभि हैं। बारह महीने जिसके अरे हैं और दर्श पौणमास आदि यज्ञ जिसके सुन्दर पर्व (पोर) हैं। यह सारा संसार जिसके मुख में चला जा रहा है वह कालचक्र बुद्धिरूपी गुफा में है।

यथाऽऽकाशे न तिष्ठेत द्रव्यं किंचिदचेतनम्।
तथा धावति कालोऽयं क्षणं किंचिन्न तिष्ठति।। अनु० 145 दा० पा०।।

जैसे आकाश में कोई जड़ पदार्थ स्थिर नहीं रह सकता वैसे ही काल निरन्तर दौड़ता रहता है। क्षण भर के लिये भी नहीं ठहरता।

कालो हि परमेश्वरः।। अनु० 148/39।।

काल ही सर्वसमर्थ ईश्वर है।

एवं बुद्धिश्च तेजश्च प्रतिपत्तिश्च भारत।। मौसल 8/32।।
भवन्ति भवकालेषु विपद्यन्ते विपर्यये।

भरतनन्दन! मनुष्य की उन्नति का समय आने पर उसकी बुद्धि, तेज और ज्ञान बढ़ जाते हैं किन्तु विपरीत समय आने पर उसकी बुद्धि, पराक्रम और ज्ञान साथ नहीं देते।

कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनञ्जय।। मौसल० 8/33।।
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया।

धनञ्जय! काल ही सब की जड़ है। संसार की उत्पत्ति का बीज भी काल ही है। काल ही अचानक इस सब का विनाश कर डालता है।

स एव बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बलः।। मौसल० 8/34।।
स एवेशश्च भूत्वेह परैराज्ञाप्यते पुनः।

वही मनुष्य कभी शक्तिशाली बनकर फिर अशक्त हो जाता है। वही मनुष्य कभी शासक बनकर फिर दूसरों का आज्ञापालक बन जाता है।

कालः पचति भूतानि सर्वाण्येव महामते।। महाप्रस्थान० 1/3।।

परमबुद्धिमान अर्जुन! काल ही सभी प्राणियों को विनाश की ओर ले जा रहा है।

कृतघ्न

कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम्।। शान्ति० 173/20।।

अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।। उद्योग० 107/10।।

उपकार न मानने वाले को यश, प्रतिष्ठा और सुख नहीं मिलता। कृतघ्न व्यक्ति का कोई विश्वास नहीं करता। कृतघ्न व्यक्ति का उद्धार कभी नहीं होता।

ब्रह्महत्या फलं तस्य यैः कृतं नावबुध्यते।। द्रोण० 183/28।।

जो मनुष्य किसी के उपकार को याद नहीं रखता उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है।

नानार्थिकोऽर्थसम्बन्धं कृतघ्नेन समाचरेत्।
अर्थी तु शक्यते भोक्तुं कृतकार्योऽवमन्यते।
तस्मात् सर्वाणि कार्याणि सावशेषाणि कारयेत्।। शान्ति० 140/20।।

मनुष्य को कृतघ्न व्यक्ति के साथ बिना मतलब किसी काम का सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। जिसका कुछ काम होता है वह मनुष्य मुँह जोहता रहता है। किन्तु जिसका काम कर दिया जाता है वह उपेक्षा करने लगता है। इसलिये दूसरों के सभी कामों को अटकाये रखना चाहिये।

क्रव्यादा अपि राजेन्द्र कृतघ्नं नोपभुञ्जते।। शान्ति० 172/24।।

मांसाहारी पशु भी कृतघ्न व्यक्ति का मांस नहीं खाते हैं।

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा। शान्ति० 271/11

निष्कृतिर्विहिता राजन् कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।। शान्ति० 172/25

राजन्! ब्राह्मण के हत्यारे, शराबी, चोर और व्रत तोड़ने वालों के लिये प्रायश्चित्त का विधान है। किन्तु कृतघ्न का उद्धार कभी नहीं होता।

मित्रद्रोही नृसंशश्च कृतघ्नश्च नराधमः।
क्रव्यादैः कृमिभिश्चैव न भुज्यन्ते हि तादृशाः।। शान्ति० 172/26।।

मित्रद्रोही, क्रूर, कृतघ्न और नीच मनुष्यों का मांस, मांसाहारी पशु और कीड़े मकोड़े भी नहीं खाते।

परित्याज्यो बुधैः पापः कृतघ्नो निरपत्रपः।
मित्रद्रोही कुलांगार पापकर्म नराधमः।। शान्ति० 173/24।।

निर्लज्ज, मित्रद्रोही, कुलांगार, पापी, नीच कृतघ्न पुरुष से बुद्धिमान दूर रहे।

आशायास्तनयोऽधर्मः क्रोधोऽसूयाया सुतः स्मृतः।
लोभः पुत्रो निकृत्यास्तु कृतघ्नो नार्हति प्रजाम्।। शान्ति० 271/12।।

आशा का पुत्र अधर्म है। असूया (डाह) का पुत्र क्रोध है। निकृति (शठता) का पुत्र लोभ है किन्तु कृतघ्न मनुष्य सन्तान पाने योग्य नहीं होता।

कृतघ्नानां गतिस्तात नरकं शाश्वती समाः।
मातापितृगुरूणां च ये न तिष्ठन्ति शासने।।

कृमिकीट पिपीलेषु जायन्ते स्थावरेषु च।
दुर्लभो हि पुनस्तेषां मानुष्ये पुनरुद्भवः।। अनु० 12 दाक्षिणात्य पाठ।।

कृतघ्न मनुष्यों की एक ही गति है कि वे सदा नरक में पड़े रहते हैं। जो लोग माता-पिता तथा गुरुजनों का कहना नहीं मानते हैं वे कीड़े-मकौड़ों, पतंगों और वृक्ष आदि की योनियों में जन्म लेते हैं। मनुष्य योनि में फिर जन्म लेना उनके लिये कठिन हो जाता है।

कृतघ्ना नरकं यान्ति ये तु विश्वासघातिनः।। अनु० 12 दा० पा०।।

कृतघ्न और विश्वासघात करने वाले लोग नरक में जाते हैं।

कृष्ण

यतः कृष्णस्ततः सर्वे यतः कृष्णस्ततो जयः।। आदि० 204/26।।

जिधर कृष्ण होंगे उसी ओर सब उनके साथ रहेंगे और कृष्ण जिस पक्ष के साथ रहेंगे उसी की विजय होगी।

त्वद्बुद्धिबलमाश्रित्य सर्वं प्राप्स्यति धर्मराट्।
जयोऽस्माकं गोविन्द येषां नाथो भवान् सदा।।

सभा० 15/ दा० पा० 13।।

गोविन्द! आपके बुद्धिबल के सहारे धर्मराज युधिष्ठिर सब कुछ पा लेंगे। आप जिनके स्वामी होते हैं उनकी (हमारी) विजय निश्चित है।

न हि त्वमग्रतस्तेषां येषां लक्ष्मीः पराङ्मुखी।। सभा० 20/10।।

लक्ष्मी ने जिनसे मुहं मोड़ लिया है आप उनके पास नहीं आते।

न शौरिणा विना पार्थो न शौरिः पाण्डवं विना।। सभा० 20/14।।

श्रीकृष्ण के बिना अर्जुन और अर्जुन के बिना श्रीकृष्ण नहीं रह सकते।

एवं प्रज्ञानयबलं क्रियोपायसमन्वितम्।
पुरस्कुर्वीत कार्येषु कृष्णं कार्यार्थ सिद्धये।। सभा० 20/19।।

सभी लोगों को अपने कामों को पूरा करने के लिये बुद्धि, नीति, बल, उपाय, और प्रयत्न से युक्त श्रीकृष्ण को कोई कार्य शुरू करने से पहले याद करना चाहिये।

न हि केवलमस्कामयमर्च्यतमोऽच्युतः।
त्रयाणामपि लोकानामर्चनीयो महाभुजः।। सभा० 38/9।।

महाबाहु श्रीकृष्ण केवल हमारे लिये ही परम पूजनीय नहीं हैं अपितु वे तीनों लोकों में भी पूजनीय हैं।

वेदवेदाङ्गविज्ञानं बलं चाभ्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते।। सभा० 38/19।।

श्रीकृष्ण; वेद-वेदांग के विद्वान् तो हैं ही उनमें शारीरिक बल भी बहुत है। उनके सिवाय इस संसार में कौन व्यक्ति उनसे बढ़कर है।

दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्त्तिर्बुद्धिरुत्तमा।
सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताच्युते।। सभा० 38/20।।

श्रीकृष्ण में दान, दक्षता, विद्वत्ता, वीरता, लज्जा, यश, बुद्धिमत्ता, विनय, शालीनता, धैर्य, सन्तोष और परिपक्वता ये सभी गुण हैं।

ऋत्विग् गुरुस्तथाऽऽचार्यः स्नातको नृपतिः प्रियः।
सर्वमेतद् हृषीकेशस्तस्मादभ्यर्चितोऽच्युतः।। सभा० 38/22।।

श्रीकृष्ण, हमारे ऋत्विक्, गुरु, आचार्य, स्नातक, राजा और प्रिय मित्र सब कुछ हैं, अतः हमने इनका सम्मान किया है।

क्षेत्रज्ञ सर्वभूतानामादिरन्तश्च केशव।
निधानं तपसां कृष्ण यज्ञस्त्वं च सनातनः।। वन० 12/17।।

केशव ! आप सब प्राणियों की आत्मा और उनके आदि तथा अन्त हैं। हे कृष्ण आप तपस्याओं के अधिष्ठान, साक्षात् यज्ञ और सनातन पुरुष हैं।

न क्रोधो न च मात्सर्यं नानृतं मधुसूदन।
त्वयि तिष्ठति दाशार्ह न नृशंस्यं कुतोऽनृजु।। वन० 12/35।।

मधुसूदन ! आप में न तो क्रोध है न ईर्ष्या, न असत्य, न ही निर्दयता। फिर हे दाशार्ह ! आप में छल कपट कैसे हो सकता है?

द्वारकामात्सात् कृत्वा समुद्रं गमयिष्यसि।। वन० 12/55।।

आप द्वारका नगरी को अपने में विलीन करके समुद्र में चले जायेंगे।

द्यौश्च ते शिरसा व्याप्ता पद्भ्यां च पृथिवी प्रभो।
जठरं त इमे लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः।। वन०12/55।।

हे प्रभु ! आपके मस्तक में स्वर्गलोक और पैरों में पृथिवी लोक समाये हुए हैं। आपके पेट में अन्य सब लोक हैं। आप सनातन पुरुष हैं।

यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः।। उद्योग० 68/9।।

जिस ओर सत्य, धर्म, लज्जा और सरलता ये गुण होते हैं उसी के पक्ष में श्रीकृष्ण रहते हैं और जहाँ श्रीकृष्ण होते हैं वहीं विजय होती है।

कालचक्रं जगच्चक्रं युगचक्रं च केशवः।
आत्मयोगेन भगवान् परिवर्तयतेऽनिशम्।। उद्योग० 68/12।।

वे भगवान केशव ही अपनी योग की शक्ति से कालचक्र, संसार चक्र और युगचक्र को रात-दिन घुमाते रहते हैं।

त्वं त्राता त्वं महद्ब्रह्म त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यथैवात्थ तथैवैतत् त्वयि सत्यं भविष्यति।। उद्योग० 90/104।।

कृष्ण! तुम्हीं रक्षक हो, तुम्हीं परब्रह्म हो, तुम में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। तुम जो कह रहे हो वह सब उचित है और सत्य है। यह सब होगा।

गुणभूतो जयः कृष्णे पृष्ठतोऽभ्येति माधवम्।। भीष्म० 21/13।।

श्रीकृष्ण का एक गुण विजय है जो उनके पीछे-पीछे चलती है।

अनन्त तेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः।
पुरुषः सनातनमयो यतः कृष्णस्ततो जयः।। भीष्म० 21/14।।

श्री कृष्ण अनन्त तेजसम्पन्न हैं। वे शत्रुओं के बीच घबराते नहीं। वे सनातन पुरुष हैं। जहाँ कृष्ण होते हैं वहाँ विजय होती है।

यत्र धर्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्री श्रीस्तथा मतिः।
यतो धर्मस्ततो कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।। भीष्म० 23/29।।

जहाँ न्यायपूर्ण आचरण, तेज, कान्ति, लज्जा, श्री तथा बुद्धि है और जहाँ धर्म है वहाँ श्री कृष्ण हैं तथा जहाँ श्री कृष्ण हैं वहाँ विजय है।

ध्रुवं वै ब्राह्मणे सत्यं ध्रुवा साधुषु संनतिः।
श्रीर्ध्रुवापि यज्ञेषु ध्रुवो नारायणे जयः।। द्रोण० 76/25।।

जैसे सच्चे ब्राह्मण में सत्य, साधु पुरुषों में नम्रता और यज्ञों में लक्ष्मी का होना निश्चित है, वैसे ही जहां आप नारायण हैं वहाँ विजय भी निश्चित है।

जय एव ध्रुवस्तस्य कुत एव पराजयः।
यस्य त्वं पुरुषव्याघ्र सारथ्यमुपजग्मिवान्।। द्रोण० 79/43।।

हे पुरुष सिंह! आप जिस व्यक्ति के सारथि बन गये हैं उसकी पराजय कैसे हो सकती है। उसकी तो विजय निश्चित है ही।

कृष्णो न धर्मं संजह्यात् सर्वे ते हि तदन्वयाः। द्रोण० 85/36।।

कृष्ण कभी भी धर्म को नहीं छोड़ते और पाण्डव उनके पीछे चलते हैं।

ये हि धर्मस्य लोप्तारो वध्यास्ते मम पाण्डव।
धर्मसंस्थापनार्थं हि प्रतिज्ञैषा ममाव्यया।। द्रोण० 181/29।।

अर्जुन! जो लोग धर्म को नष्ट करने वाले हैं उन्हें मैं मारे जाने योग्य मानता हूँ। धर्म की स्थापना के लिये ही मैंने यह अटल प्रतिज्ञा की हुई है।

ब्रह्म सत्यं दमः शौचं धर्मो ह्रीः श्रीर्धृतिः क्षमा।
यत्र तत्र रमे नित्यमहं सत्येन ते शपे।। द्रोण० 181/30।।

मैं तुम से शपथ खाकर कहता हूँ कि जहाँ वेद, सत्य, इन्द्रिय संयम, पवित्रता, धर्म, लज्जा, श्री, धैर्य और क्षमा होगी वहाँ पर मैं सदा सुख से रहता हूँ।

कृष्णो हि मूलं पाण्डूनां पार्थः स्कन्ध इवोद्गतः।
शाखा इवेतरे पार्थाः पाञ्चाला पत्रसंज्ञिताः।। द्रोण० 182/23।।

श्रीकृष्ण ही पाण्डवों की जड़ हैं। अर्जुन तने जैसे हैं। उनके भाई शाखाओं की तरह हैं और पाञ्चाल सैनिक पत्तों के समान हैं।

कृष्णाश्रयाः कृष्णबलाः कृष्णनाथाश्च पाण्डवाः।
कृष्णः परायणं चैषां ज्योतिषामिव चन्द्रमा।। द्रोण० 182/24।।

श्रीकृष्ण ही पाण्डवों का सहारा है, कृष्ण ही पाण्डवों के बल और रक्षा करनेवाले हैं। जैसे चन्द्रमा, नक्षत्रों का आश्रय है वैसे ही कृष्ण पाण्डवों की शरण हैं।

सर्वेषां वृष्णिवीराणां कृष्णे लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता।। कर्ण 40/11।।

वृष्णि कुल के सारे वीरों की सम्पत्ति का आधार श्रीकृष्ण हैं।

आगमो हि परः कृष्ण त्वत्तो नो वासवानुज।। शान्ति० 48/15।।

इन्द्र के छोटे भाई कृष्ण! कोई भी शास्त्र आप से बढ़कर नहीं है।

कृते युगे धर्म आसीत् समग्रस्त्रेताकाले ज्ञानमनुप्रपन्नः।
बलं त्वासीद् द्वापरे पार्थ कलौ कृष्णः त्वधर्मः क्षितिमेवाजगाम।।

अनु० 158/10।।

पार्थ! सत्युग में श्रीकृष्ण सम्पूर्ण धर्म के रूप में विराजमान थे। वे त्रेतायुग में ज्ञान या विवेकशक्ति के रूप में थे। द्वापर युग में श्रीकृष्ण बल के रूप में उपस्थित

थे। कलियुग में वे अधर्म के रूप में विद्यमान रहेंगे। तब अधर्म का ही बोलबाला होगा।

क्रोध

क्रोधो हि धर्मं हरति यतीनां दुःखसंचितम्।। आदि० 42/8।।

अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त साधकों के धर्म को क्रोध नष्ट कर देता है।

यः समुत्पतितं क्रोधं निगृह्णाति हयं यथा।
स यन्तेत्युच्यते सद्भिर्न यो रश्मिषु लम्बते।। आदि० 79/2।।

जो व्यक्ति बढ़े हुए क्रोध को घोड़े की भाँति अपने वश में कर लेता है उसे ही सज्जन सच्चा सारथि कहते हैं लगाम पकड़ने वाले को नहीं।

यः समुत्पतितं क्रोधमक्रोधेन निरस्यति।
देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम्।। आदि० 79/3।।

देवयानि! जो व्यक्ति उत्पन्न हुए गुस्से को क्षमा भाव से नष्ट कर देता है या अपने मन से निकाल देता है वही व्यक्ति सारे संसार को वश में कर सकता है।

यः संधारयते मन्युं योऽतिवादांस्तितिक्षते।
यश्च तप्तो न तपति दृढं सोऽर्थस्य भाजनम्।। आदि० 79/5।।

जो व्यक्ति क्रोध पर काबू पा लेता है, जो निन्दा सह लेता है और किसी के सताने पर भी दुखी नहीं होता वही सद्गुणों का पात्र होता है।

पुत्रभृत्य सुहृन्मित्र भार्या धर्मश्च सत्यता।
तस्यैतान्यपयास्यन्ति क्रोधशलीस्य निश्चितम्।।

आदि० 79/6 दा० पा० 7।।

जो स्वभाव से ही क्रोधी होता है उसके पुत्र, नौकर, मित्र, पत्नी, धर्म, और सत्य निश्चित रूप से उसे छोड़ देते हैं।

अशिष्टानां नियन्ता हि शिष्टानां परिरक्षिता।
स्थाने रोषः प्रयुक्तः स्यान्नृपैः सर्वजिगीषुभिः।। आदि० 179/4।।

सबको जीतने की इच्छा वाले राजाओं द्वारा उचित अवसर पर किया गया क्रोध दुष्टों का दमन करता है और सज्जनों की रक्षा करता है।

यो हि कारणतः क्रोधं संजातं क्षन्तुमर्हति।
नालं स मनुजः सम्यक् त्रिवर्गं परिरक्षितुम्।। आदि०179/3।।

जो व्यक्ति किसी कारण उत्पन्न क्रोध को सह लेता है वह धर्म, अर्थ और काम की रक्षा नहीं कर सकता।

आशीविषान् नेत्रविषान् कोपयेन्न पण्डितः।। सभा० 64/20।।

बुद्धिमान् पुरुष को साँपों को और आँखों से क्रोध उगलने वालों को नाराज नहीं करना चाहिये।

अव्याधिजं कटुकं तीक्ष्णमुष्णं यशोमुषं परुषं पूतिगन्धि। उद्योग० 27/23।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य।। सभा ०64/18।।

महाराज! क्रोध किसी रोग से पैदा नहीं होता अपितु वह कड़वी बातों से पैदा होता है। क्रोध बहुत तीखा, दुःखदायक, यश को नष्ट करने वाला, कठोर और दुर्गन्ध युक्त होता है। ऐसे क्रोध को दुष्ट लोग नहीं पी सकते किन्तु सज्जन इसे पी जाते हैं अतः तुम क्रोध को पीकर शान्त हो जाओ।

अस्थाने वा यदि स्थाने सततं रजसाऽऽवृतः।
क्रुद्धो दण्डान् प्रणयति विविधान् स्वेन तेजसा।। वन० 28/17।।

क्रोधी व्यक्ति रजोगुण से युक्त होकर, उचित-अनुचित अवसर का विचार किये बिना उत्तेजित होकर लोगों को तरह-तरह के दण्ड देता रहता है।

मित्रैः सह विरोधं च प्राप्नुते तेजसाऽऽवृतः।
आप्नोति द्वेष्यतां चैव लोकात् स्वजनतस्तथा।। वन० 28/18।।

उत्तेजित रहने के कारण वह अपने मित्रों से विरोध करने लगता है। साधारण लोग और उसके सम्बन्धी उससे द्वेष करने लगते हैं।

यस्मादुद्विजते लोकः कथं तस्य भवो भवेत्।। वन० 28/22।।

जिससे सभी परेशान रहते हैं ऐसा व्यक्ति कैसे समृद्ध हो सकता है?

क्रोधो हन्ता मनुष्याणां क्रोधो भावयिता पुनः।। वन० 29/1।।

क्रोध मनुष्यों का नाश कर देता है यदि क्रोध को जीत लिया जाय तो मनुष्य की उन्नति होती है।

क्रुद्धः पापं नरः कुर्यात् क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि।
क्रुद्धः परुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते।। वन० 29/4।।

क्रोधी मनुष्य पाप के काम करता है। वह गुरुजनों की हत्या भी कर देता है। क्रोधी मनुष्य कटुवाणी से भला करने वालों का भी अपमान कर देता है।

वाच्यावाच्ये हि कुपितः न प्रजानाति कर्हिचित्।
नाकार्यमस्ति क्रुद्धस्य नावाच्यं विद्यते तथा।। वन० 29/5।।

क्रोधी मनुष्य को यह पता नहीं रहता कि क्या कहना चाहिये क्या नहीं कहना चाहिये। क्रोधी व्यक्ति कुछ भी कर सकता है और कुछ भी कह सकता है।

हिंस्यात् क्रोधादवध्यांस्तु वध्यान् सम्पूजयीत च।
आत्मानमपि च क्रुद्धः प्रेषयेद् यमसादनम्।। वन० 29/6।।

क्रोधी व्यक्ति न मारने योग्य मनुष्य की हत्या कर देता है और मारे जाने योग्य पुरुष का आदर करने लगता है। वह आत्महत्या भी कर लेता है।

क्रोधः परमदारुणः।। वन० 29/2।।

क्रोध बहुत विनाश कर देता है।

अशक्तस्य मन्योर्नियमनं स्मृतम्।। वन० 29/11।।

निर्बल पुरुष को अपने क्रोध को रोकना ही अच्छा होता है।

मन्योर्हि विजयं कृष्णे प्रशंसन्तीह साधवः।। वन० 29/14।।

द्रौपदि! सज्जन क्रोध पर काबू पाने को ही अच्छा कहते हैं।

क्रुद्धो हि कार्यं सुश्रोणि न यथावत् प्रपश्यति।। वन० 29/18।।

सुन्दरि! क्रुद्ध मनुष्य किसी काम को अच्छी तरह नहीं समझ सकता।

क्रोधमूलो हि विग्रहः।। वन० 29/25।।

लड़ाई-झगड़े की जड़ क्रोध ही है।

मन्युस्तु हन्यात् पुरुषस्य धैर्यम्।। वन० 34/5।।

क्रोधावेश मनुष्य का धैर्य नष्ट कर देता है।

क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम।। वन० 206/32।।

श्रेष्ठ ब्राह्मण! मनुष्य के शरीर में क्रोध, शत्रु बनकर रहता है।

क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुः।। वन० 313/92।।

क्रोध ऐसा शत्रु है जिसे जीतना बहुत कठिन होता है।

क्षरतीति तपः क्रोधादृषयो न शपन्ति हि।। विराट० 16/51-दा० पा०।।

क्रोध से तपस्या नष्ट हो जाती है इसलिये ऋषि भी एकदम शाप नहीं देते।

धर्मार्थावभिसंत्यज्य संरम्भं योऽनुमन्यते।

हसन्ति व्यसने तस्य दुर्हृदो नचिरादिव।। उद्योग० 128/30।।

जो धर्म और अर्थ की परवाह न करके गुस्सा करता रहता है, उसे जल्दी ही मुसीबत में फंसा देखकर शत्रु उसकी हँसी उड़ाते हैं।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात्।

कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।।

भीष्म० 29/23; गीता 5/23।।

जो मनुष्य शरीर छोड़ने से पहले इसी जन्म में काम और क्रोध का वेग रोक सकता है वही सुखी होता है और वही योगी होता है।

कामक्रोध वियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।

अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम्।।

भीष्म० 29/26।। गीता 5/26।।

काम और क्रोध से रहित, मन को जीत लेने वाले योगियों और ऐसे ज्ञानी पुरुषों को जिन्होंने परमात्मा का साक्षात् कर लिया है, सब ओर परमात्मा की ही अनुभूति होती रहती है।

क्रोधो दुःखतरो नृणाम्।। द्रोण० 143/58।।

क्रोध मनुष्यों के लिये बड़ा दुःखदायी होता है।

किं तु रोषान्वितो जन्तुर्हन्यादात्मानमप्युत।। द्रोण० 156/95।।

क्रोध के वश में पड़ा मनुष्य अपना भी विनाश कर डालता है।

न वित्तेन न पारुष्यैर्न सान्त्वेन न च श्रुतैः।

कोपाग्निः शाम्यते राजंस्तोयाऽग्निरिव सागरे।। शान्ति० 139/45।।

राजन्! जैसे समुद्र की अग्नि किसी तरह नहीं बुझ पाती उसी तरह गुस्से की आग न धन से, न कठोर आचरण से, न समझाने-बुझाने से और न ही शास्त्रों के ज्ञान से शान्त हो पाती है।

लोभात् क्रोधः प्रभवति परदोषैरुदीर्यते।। शान्ति० 163/7।।

क्षमया तिष्ठते राजन् क्षमया विनिवर्तते।।

राजन्! लोभ से क्रोध पैदा होता है। दूसरों के दोष देखने से क्रोध बढ़ता है। क्षमा करने से क्रोध रुक जाता है और क्षमा से ही शान्त हो जाता है।

सर्वोपायैस्तु लोभस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः।
एतत् पवित्रं ज्ञानानां तथा चैवात्मसंयमः।। शान्ति० 189/9।।

सभी उपायों से लोभ और क्रोध को रोकना चाहिये। यही सबसे अच्छा और पवित्र ज्ञान है और लोभ-क्रोध पर नियंत्रण ही आत्मसंयम है।

वार्यौ सर्वात्मना तौहि श्रेयोघातार्थमुच्छ्रितौ।
नित्यं क्रोधाच्छ्रियं रक्ष्येत् तपोरक्षेच्च मत्सरात्।। शा० 189/10।।
विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः।

क्रोध और लोभ मनुष्य के कल्याण को नष्ट करने के लिये सदा तैयार रहते हैं इसलिये पूरी शक्ति लगाकर इन दोनों को रोकना चाहिये। क्रोध से धन सम्पत्ति को सदा बचाना चाहिये और तप की ईर्ष्या से रक्षा करनी चाहिये। विद्या को मान-अपमान से और अपने को आलस्य से दूर रखना चाहिये।

शरीरवानुपादत्ते मोहात् सर्वान् परिग्रहान्।
क्रोधलोभादिभिर्भावैर्युक्तो राजसतामसैः।। शान्ति० 212/4।।

देहधारी जीव मोह या अज्ञान के कारण क्रोध, लोभ, राजसिक और तामसिक भावों से युक्त होकर सब तरह की वस्तुएँ इकट्ठी करने लगता है।

तस्य माया पिनद्धाङ्गा नष्टज्ञाना विचेतसः।
मानवा ज्ञानसम्मोहात् ततः क्रोधं प्रयान्ति वै।। शान्ति० 213/3।।

ईश्वर की माया में फंस जाने पर मनुष्यों का ज्ञान और विवेक नष्ट हो जाता है। वे बुद्धि भ्रष्ट हो जाने से क्रोध के वश में पड़ जाते हैं।

क्रोधात् काममवाप्याथ लोभमोहौ च मानवाः।
मानदर्पावहंकारमहंकारात् ततः क्रियाः।। शान्ति० 213/4।।

क्रोध से काम पैदा होता है और काम से मनुष्यों में लोभ, मोह, अभिमान, घमण्ड और अहंकार आ जाते हैं। अहंकार से प्रेरित होकर मनुष्य सारे काम करते हैं।

क्रियाभिः स्नेह सम्बन्धात्स्नेहाच्छोकमनन्तरम्।
सुख दुःखक्रियारम्भाज्जन्माजन्मकृतक्षणाः।। शान्ति० 213/5।।

कर्म करने से मनुष्य में आसक्ति या लगाव पैदा हो जाता है। आसक्ति से शोक होता है। सुख-दुःख से युक्त कार्य शुरू करने पर मनुष्य जन्म और मृत्यु के कष्ट भोगता है।

मोघः श्रमो भवति हि क्रोधनस्य।। शान्ति० 299/27।।

क्रोधी पुरुष का सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है।

न च रोषादहं साध्वि पश्येयमधिकं तमः।। शान्ति० 360/14।।

पतिव्रते! मैं क्रोध से बढ़कर ऐसा और कोई दोष नहीं देखता जो मनुष्य को मोह के अन्धकार में डाल देता है।

क्षमा

न श्रेयः सततं तेजो न नित्यं श्रेयसी क्षमा।। वन० 28/6।।

न तो तेज ही सदा श्रेयस्कर होता है और न ही सदा क्षमा करना अच्छा होता है।

यो नित्यं क्षमते तात बहून् दोषान् स विन्दति।
भृत्याः परिभवन्त्येनमुदासीनास्तथारयः।। वन० 28/7।।

वत्स! जो व्यक्ति सदा क्षमा करता रहता है उसे अनेक दोष घेर लेते हैं। उसके नौकर, शत्रु और उदासीन व्यक्ति भी उसका तिरस्कार करते हैं।

अथास्य दारानिच्छन्ति परिभूय क्षमावतः।
दाराश्चास्य प्रवर्तन्ते यथाकाममचेतसः।। वन० 28/14।।

क्षमाशील पुरुष के नौकर उसकी अवहेलना करके उसकी स्त्रियों को भी हथियाना चाहते हैं और मूर्ख स्त्रियाँ भी मनमाना आचरण करने लगती हैं।

पूर्वोपकारी यस्ते स्यादपराधे गरीयसि।
उपकारेण तत् तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः।। वन० 28/26।।

तुम्हारा जिसने कभी उपकार किया हो यदि उससे कोई बड़ा अपराध हो जाये तो उसके पहले उपकार का कुछ मान रखकर उसे क्षमा कर देना चाहिये।

अबुद्धिमाश्रितानां तु क्षन्तव्यमपराधिनाम्।
न हि सर्वत्र पाण्डित्यं सुलभं पुरुषेण वै।। वन० 28/27।।

यदि किसी ने अनजाने ही अपराध कर दिया हो तो उसे क्षमा कर देना चाहिये क्योंकि कोई पुरुष सदा सोच-विचार कर काम नहीं कर पाता।

क्षमावतो जयो नित्यं।। वन० 29/14।।

क्षमा करने वालों की सदा विजय होती है।

यदि न स्युर्मानुषेषु क्षमिणः पृथिवी समाः।
न स्यात् सन्धिर्मनुष्याणां क्रोधमूलो हि विग्रहः।। वन० 29/25।।

यदि मनुष्यों में पृथिवी जैसी क्षमा शक्ति वाले पुरुष न हों तो आपस में कभी सुलह समझौता नहीं हो सकता। क्रोध ही लड़ाई की जड़ है।

क्षमयेदं धृतं जगत्।। वन० 29/37।।

क्षमा ने ही इस संसार को बचा रखा है।

यदा हि क्षमते सर्वं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। वन० 29/42।।

जब मनुष्य सब कुछ सहन कर लेता है तब वह ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है।

क्षान्तिः परा मता।। वन० 29/44।।

क्षमा को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वम्।। वन०313/88।।

मान-अपमान, सुख-दुःख, गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्वों को सहन करना ही क्षमा होती है।

क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा धर्मः क्षमा तपः।
क्षमावतामयं लोकः परलोकः क्षमावताम्।। विराट ०16/42 दा० पा०।।

क्षमा ही सत्य, दान, धर्म और तप है। यह लोक और परलोक क्षमाशील पुरुषों के लिये है।

क्षमा गुणवतां बलम्।। उद्योग० 34/75।।

गुणी पुरुषों का बल क्षमा होती है।

क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा।। उद्योग० 33/49।।

क्षमा निर्बलों का गुण तथा समर्थों का भूषण होती है।

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।। उद्योग० 33/50।।

इस संसार में क्षमा वशीकरण मंत्र ही है। क्षमा से क्या काम नहीं किया जा सकता?

क्षमैका शान्तिरुत्तमा।। उद्योग० 33/52।।

एकमात्र क्षमा ही शान्ति का सर्वोत्तम उपाय है।

नातः श्रीमत्तरं किंचिदन्यत् पथ्यतमं मतम्।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा।। उद्योग० 39/58।।

तात! समर्थ पुरुष के लिये सब स्थानों में और सदा क्षमा करने के समान हितकारी तथा शोभायुक्त बनाने वाला और कोई उपाय नहीं होता।

क्षमेदशक्यः सर्वत्र शक्तिमान् धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता।। उद्योग० 39/59।।

शक्तिहीन पुरुष को सब जगह क्षमा अपनानी चाहिये, समर्थ पुरुष को धर्म के कारण क्षमा करनी चाहिये, जिसकी दृष्टि में अर्थ और अनर्थ दोनों ही समान हैं उसके लिये क्षमा सदा हितकारी होती है।

तपोबलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम्।। उद्योग० 39/69।।

तपस्वियों का बल तपस्या है, ब्रह्मवेत्ताओं का बल ब्रह्मज्ञान है, दुष्टें का बल मारपीट है और गुणियों का बल क्षमा होता है।

न दुष्करमिदं पुत्र यत् प्रभुर्घातयेत् परम्।
श्लाघनीया यशस्या च लोके प्रभवतां क्षमा।। शान्ति० 111/68।।

पुत्र! किसी शक्तिशाली राजा आदि के लिये किसी को मार डालना कठिन काम नहीं होता किन्तु शक्तिशाली पुरुषों में क्षमा के गुण की प्रशंसा की जाती है और उरःसे यश मिलता है।

तस्मात् क्षमेत बालाय जडान्धबधिराय च।
बलाधिकाय राजेन्द्र तद् दृष्टं त्वयि शत्रुहन्।। शान्ति० 157/13।।

शत्रुओं के नाशक राजन्! बालक, मूर्ख, अन्धे, बहरे और अपने से अधिक बलवान व्यक्ति को क्षमा कर देना चाहिये। तुममें क्षमा का यह गुण है।

यस्तु शत्रोर्वशस्थस्य शक्तोऽपि कुरुते दयाम्।
हस्तप्राप्तस्य वीरस्य तं चैव पुरुषं विदुः।। शान्ति० 227/23।।

जो पुरुष शक्तिशाली होने पर भी अपने वश में आये हुए या हाथ में पड़े हुए शत्रु पर भी दया करता है वही श्रेष्ठ पुरुष माना जाता है।

श्रेष्ठं ह्येतद् यत्क्षमामाहुरार्याः सत्यं तथैवार्जवमानृशंस्यम्।।
शान्ति 299/12।।

श्रेष्ठ पुरुष क्षमा, सत्य, सरल-व्यवहार और दया को ही उत्तम मानते हैं।

पापीयसः क्षमेतैव श्रेयसः सदृशस्य च।
विमानितो हतोत्क्रुष्ट एवं सिद्धिं गमिष्यति।। शान्ति० 299/18।।

पाप करने वाला आयु में अपने से बड़ा हो या बराबर का, उस से अपमानित होकर, मार खाकर और गाली सुनकर भी उसे क्षमा कर देना चाहिये। क्षमा करने वाला व्यक्ति परम सिद्धि को पाता है।

नाहं शप्तः प्रतिशपामि किंचिद् दमं द्वारं ह्यमृतस्येह वेद्मि।
गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्।।

शा० 299/20।।

कोई मुझे शाप दे तो बदले में मैं उसे शाप नहीं देता हूँ। मैं इन्द्रियसंयम को ही मोक्ष का द्वार मानता हूँ। मैं रहस्य की बात बताता हूँ कि मनुष्य योनि से बढ़कर कोई और उत्तम योनि नहीं है।

मानितोऽमानितो वापि पूजितोऽपूजितोऽपि वा।
आक्रुष्टस्तर्जितो वापि क्षमावांस्तीर्थमुच्यते।।

आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

मान मिले या अपमान, कहीं पूजा हो या तिरस्कार, कोई गाली दे या डांटे, जो व्यक्ति इन सभी परिस्थितियों में क्षमाशील बना रहता है। ऐसा व्यक्ति तीर्थ स्वरूप ही होता है।

क्षमा यशः क्षमा दानं क्षमा यज्ञः क्षमा दमः।
क्षमाहिंसा क्षमा धर्मः क्षमा चेन्द्रियनिग्रहः।।

आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

क्षमा ही यश, दान, यज्ञ और दम अर्थात् मनोनिग्रह हैं। अहिंसा, धर्म और इन्द्रियसंयम भी क्षमा के रूप हैं।

क्षमा दया क्षमा यज्ञः क्षमयैव धृतं जगत्।
क्षमावान् ब्राह्मणो देवः क्षमावान् ब्राह्मणो वरः।।

आश्व 92 दा० पा० अ XIX।।

क्षमा ही दया और यज्ञ है। क्षमा के कारण ही यह संसार चल रहा है।

क्षमाशील ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ होता है। ऐसा ब्राह्मण साक्षात् देवता ही का स्वरूप होता है।

क्षमावान् प्राप्नुयात् स्वर्गं क्षमावानाप्नुयाद् यशः।
क्षमावान् प्राप्नुयात् मोक्षं तस्मात् साधुः स उच्यते।।

आश्व० 82 दा० पा० अ XIX।।

क्षमाशील पुरुष को स्वर्ग और यश मिलता है। क्षमाशील मनुष्य को मुक्ति मिलती है। इसलिये क्षमाशील पुरुष श्रेष्ठ मनुष्य कहलाता है।

क्षत्रिय

क्षत्रियो बाहुवीर्यस्तु न तथा वाक्वीर्यवान्।। सभा० 21/51।।

क्षत्रिय की भुजाओं में बल होता है वह बोलने में वीर नहीं होता।

क्षत्रियस्य महाराज जये वृत्तिः समाहिता।
स वै धर्मस्त्वधर्मो वा स्ववृत्ती का परीक्षणा।। सभा० 55/7।।

महाराज! क्षत्रिय विजय के लिये ही तन-मन से प्रयत्न करता रहता है चाहे विजय धर्मानुसार मिले या अधर्म से अतः इस बारे में क्या सोचना।

यो न दर्शयते तेजः क्षत्रियः काल आगते।
सर्वभूतानि तं पार्थ सदा परिभवन्त्युत।। वन० 27/38।।

पार्थ! जो क्षत्रिय अवसर आने पर अपना पराक्रम नहीं दिखाता उसका सभी प्राणी सदा तिरस्कार करते हैं।

तथैव यः क्षमाकाले क्षत्रियो नोपशाम्यति।
अप्रियः सर्वभूतानां सोऽमुत्रेह नश्यति।। वन० 27/40।।

इसी प्रकार जो क्षत्रिय क्षमा करने का समय आने पर शान्त नहीं होता वह सब प्राणियों का अप्रिय बन जाता है और इस लोक तथा परलोक में नष्ट हो जाता है।

न हि धर्मो महाराज क्षत्रियस्य वनाश्रयः।
राज्यमेव परं धर्मं क्षत्रियस्य विदुर्बुधाः।। वन० 52/15।।

महाराज! वन में रहना क्षत्रिय का धर्म नहीं है। विद्वानों ने तो राज्य करने को ही क्षत्रिय का सर्वोत्तम धर्म माना है।

धृतिमान् देशकालज्ञः सर्वधर्मविधानवित्।
क्षत्रिय क्षत्रियश्रेष्ठ प्रशास्ति पृथिवीं चिरम्।। वन० 162/3।।

हे क्षत्रियश्रेष्ठ! जो क्षत्रिय धैर्यशाली, देश और काल (स्थान और अवसर) को समझने वाला है और सभी धर्मों का विधान जानता है। वह देर तक राज्य करता है।

श्रीश्च राज्यं च दण्डश्च क्षत्रियाणां द्विजोत्तम।। वन० 207/30।।

विप्रवर! सम्पत्ति कमाना, राज्य की रक्षा और अपराधियों को दण्ड देना क्षत्रियों के काम हैं।

इष्वस्त्रमेषां देवत्वं यज्ञ एषां सतामिव।
भयं वो मानुषो भावः परित्यागोऽसतामिव।। वन० 313/52।।

बाण आदि अस्त्र-शस्त्र चलाना क्षत्रियों का देवत्व है, यज्ञ उनका सज्जनों जैसा काम है। डरना, मनुष्यपना है और शरणागत को ठुकरा देना दुष्ट आचरण है।

नैष शूरैः स्मृतो धर्मः क्षत्रियस्य पलायनम्।
श्रेयस्तु मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम्।। विराट० 38/29।।

वीर पुरुष युद्ध से भागना क्षत्रिय का धर्म नहीं बताते। युद्ध से भागने की अपेक्षा युद्ध में मरना अच्छा है।

क्षत्रियो धनुराश्रित्य यजेच्चैव न याजयेत्।। विराट० 50/5।।

क्षत्रिय धनुष लेकर अपनी जीविका कमाये, यज्ञ करे किन्तु यज्ञ न कराये।

तथा राजन्यो रक्षणं वै प्रजानां कृत्वा धर्मेणाप्रमत्तोऽथ दत्वा।
यज्ञैरिष्ट्वा सर्ववेदानधीत्य दारान् कृत्वा पुण्य कृदावसेद् गृहान्।।
उद्योग० 29/24।।

क्षत्रिय; धर्मानुसार सावधान रहकर प्रजा की रक्षा करें, दान दें, यज्ञ करें और सब वेदों को पढ़कर विवाह करें। वे पुण्य कर्म करते हुए गृहस्थाश्रम में रहें।

आददानस्य शस्त्रं हि क्षत्रधर्मं परीप्सतः।
निधनं क्षत्रियस्याजौ वरमेवाहुरुत्तमम्।। उद्योग० 51/51।।

शस्त्र हाथ में लेकर क्षात्रधर्म की रक्षा करने के इच्छुक क्षत्रिय की युद्ध में मृत्यु सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

क्रव्याद् भय इव भूतानामदान्तेभ्यः सदा भयम्।
येषां च प्रतिषेधार्थं क्षत्रं सृष्टं स्वयम्भुवा।। उद्योग० 63/12।।

जैसे मांसभक्षी हिंसक पशुओं से सभी पशु डरते हैं वैसे ही असंयमी पुरुषों से प्राणियों को डर लगा रहता है। असंयमी पुरुषों को मार-काट करने से रोकने के लिये ब्रह्मा ने क्षत्रियों को उत्पन्न किया।

जयो वधो वा संग्रामे धात्राऽऽदिष्टः सनातनः।
स्वधर्मः क्षत्रियस्यैष कार्पण्यं न प्रशस्यते।। उद्योग० 73/4।।

क्षत्रिय के लिये विधाता ने यही सनातन कर्त्तव्य निश्चित किया है कि वह युद्ध में विजय पाये या प्राणों को त्यागे। उसे कायरता या दीनता नहीं दिखानी चाहिये।

यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः।।

उद्योग० 90/75।। द्रोण 186/9।।

क्षत्राणी जिस लिये पुत्र उत्पन्न करती है उसका समय अब आ गया है।

युद्धाय क्षत्रियः सृष्टः संजयेह जयाय च।। उद्योग० 135/13।।

संजय! इस संसार में क्षत्रिय को लड़ने के लिये और जीतने के लिये उत्पन्न किया गया है।

स्ववीर्याद् यः पराक्रम्य पाप आह्वयते परान्।
अभीतः पूरयन् वाक्यमेष वै क्षत्रियः पुमान्।। उद्योग० 162/52।।

अरे पापी! जो किसी से न डर कर अपने वचन को पूरा करता है और अपने बल-बूते पर शत्रुओं को ललकारता है वही पुरुष क्षत्रिय होता है।

क्षत्रियस्य तुः धर्मोऽथ यद् युद्धं भृगुनन्दन।। उद्योग० 185/11।।

परशुराम! युद्ध करना क्षत्रिय का धर्म है।

अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद् व्याधिमरणं गृहे।
यदयोनिधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः।। भीष्म० 17/11।।

रोगी रहकर घर में मरना क्षत्रिय के लिये अधर्म होता है। युद्ध में लोहे के अस्त्र- शस्त्रों से घायल होकर मरना क्षत्रिय का सनातन धर्म है।

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।। भीष्म० 26/31।।

क्षत्रिय के लिये धर्मयुद्ध से बढ़कर कोई और काम इतना कल्याणकारी नहीं होता।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।। भीष्म० 26/32।।

ऐसे धर्मयुद्ध का अवसर भाग्यशाली क्षत्रिय ही पाते हैं।

बाहुभिः क्षत्रियाः शूरा।। द्रोण० 158/23।।

क्षत्रिय अपनी भुजाओं से वीरता दिखाते हैं।

क्षतत्राता क्षताज्जीवन् क्षन्ता स्त्रीष्वपि साधुषु।
क्षत्रियः क्षितिमाप्नोति क्षिप्रं धर्मं यशः श्रियः।। द्रोण० 197/4।।

जो संकट में अपनी तथा दूसरों की रक्षा करता है, युद्ध में शत्रु को नुकसान पहुँचाना ही जिसका काम है और जो स्त्रियों तथा सज्जनों को क्षमा करता है ऐसा क्षत्रिय जल्दी ही भूमि का राज्य, धर्म, यश और सम्पत्ति प्राप्त करता है।

क्षत्रियस्य हि धर्मोऽयं हन्याद्धन्येत वा पुनः।। द्रोण० 197/38।।

क्षत्रिय का यही धर्म है कि वह शत्रु को मारे या स्वयं शत्रु के हाथों मारा जाय।

गोप्तारः संगृहीतारो दातारः क्षत्रियाः स्मृताः।। कर्ण० 32/45।।

क्षत्रिय सबकी रक्षा करने वाले, कर लेने वाले और दान करने वाले होते हैं।

एष मुख्यतमो धर्मः क्षत्रियस्येति नः श्रुतम्।
यदाजौ निहतःशेते सद्भिः समभिपूजितः।। कर्ण० 40/43-44।।

हमने सुना है कि क्षत्रिय का यही धर्म है कि वह युद्ध में मारा जाकर युद्धभूमि में सो जाय और सज्जनों से आदर पाये।

क्षात्रं बुधा बाहुबलं वदन्ति।। कर्ण० 70/12।।

विद्वान् लोग कहते हैं कि क्षत्रियों का बल उनकी भुजाओं में होता है।

नान्यत् कर्मास्ति पापीयः क्षत्रियस्य पलायनात्।। शल्य० 3/57।।

क्षत्रिय के लिये युद्ध के मैदान से भाग जाने से बढ़कर कोई और पापपूर्ण काम नहीं है।

गृहे यत् क्षत्रियस्यापि निधनं तद् विगर्हितम्।। शल्य० 5/32।।

घर में क्षत्रिय की मृत्यु अच्छी नहीं मानी जाती।

न हि धर्मः स्मृतो राजन् क्षत्रियस्य प्रतिग्रहः।। शल्य 31/57।।

राजन्! क्षत्रिय के लिये दान लेना धर्म नहीं बताया गया है।

प्रतिज्ञापालनं धर्मः क्षत्रियस्येह वेद्म्यहम्।। शल्य० 60/16।।

मैं क्षत्रिय का धर्म अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना ही मानता हूँ।

निस्तेजाः क्षत्रियोऽधमः।। सौप्तिक० 3/ 20।।

तेज से रहित क्षत्रिय अच्छा नहीं समझा जाता है।

यज्ञो विद्या समुत्थानमसन्तोषः श्रियं प्रति।

दण्डधारणमुग्रत्वं प्रजानां परिपालनम्।। शान्ति० 23/10।।

वेदज्ञानं तथा कृत्स्नं तपः सुचरितं तथा।

द्रविणोपार्जनं भूरि पात्रे च प्रतिपादनम्।। शान्ति० 23/11।।

यज्ञ करना, पढ़ना, शत्रुओं पर आक्रमण करना, राज्य लक्ष्मी से कभी सन्तोष न करना, दुष्टों को दण्ड देना, तेजस्वी रहना, प्रजा पालन करना, वेद पढ़ना, तपस्या, सदाचरण, पैसा कमाना और सत्पात्र को दान देना, ये सारे काम क्षत्रिय राजा के हैं।

दण्ड एव हि राजेन्द्र क्षत्रधर्मो न मुण्डनम्।। शान्ति० 23/47।।

महाराज! क्षत्रिय का धर्म दुष्टों को दण्ड देना है न कि सिर मुंडाकर संन्यासी बन जाना।

चातुराश्रम्यधर्माश्च यतिधर्माश्च पाण्डव।

लोकवेदोत्तराश्चैव क्षात्रधर्मे समाहिताः।। शान्ति० 64/1।।

चारों आश्रमों के धर्म, यतिधर्म तथा लौकिक और वैदिक उत्कृष्ट धर्म ये सभी क्षात्र धर्म में प्रतिष्ठित हैं।

प्रत्यक्षं सुखभूयिष्ठमात्मसाक्षिकमच्छलम्।

सर्वलोकहितं धर्मं क्षत्रियेषु प्रतिष्ठितम्।। शान्ति० 64/5।।

जो धर्म प्रत्यक्ष है, बहुत सुख देने वाला है, अपना आत्मा जिसका साक्षी है, जो छलरहित है, जो सभी लोकों के लिये हितकारी है, ऐसा धर्म क्षात्र धर्म है।

आत्मत्यागः सर्वभूतानुकम्पा लोकज्ञानं पालनं मोक्षणं च।

विषण्णानां मोक्षणं पीडितानां क्षात्रे धर्मे विद्यते पार्थिवानाम्।।

शान्ति० 64/27।।

युद्ध में अपने शरीर की आहुति दे देना, सब प्राणियों पर दया करना, लोकव्यवहार का ज्ञान पाना, दुःखों आदि से छुड़ाकर प्रजा का पालन करना, दुःखी लोगों को और पीड़ितों को कष्ट से छुड़ाना ये सब बातें क्षात्रधर्म में विद्यमान हैं।

क्षत्रिये संगतं नास्ति न प्रीतिर्न सौहृदम्।

कारणात् सान्त्वयन्त्येते कृतार्थाः संत्यजन्ति च।। शान्ति० 139/16।।

क्षत्रिय में साथ निभाने की भावना नहीं होती। उसमें प्रेम और मित्रता भी नहीं होती। क्षत्रिय किसी मतलब से ही दूसरों से मीठी बातें करता है और काम बन जाने पर अपने साथी को छोड़ देता है।

क्षत्रियेषु न विश्वासः कार्यः सर्वापकारिषु।
अपकृत्यापि सततं सान्त्वयति निरर्थकम्।। शान्ति० 139/17।।

क्षत्रियों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। वे सब का बुरा ही करते हैं और बुरा करके भी व्यर्थ ही सान्त्वना देते रहते हैं।

कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।। शान्ति० 188/11।।

क्षत्रिय; विषयभोगों के प्रेमी, तीखे स्वभाव वाले, क्रोधी और साहस का काम पसन्द करने वाले होते हैं।

क्षत्रज्ञं सेवते कर्म वेदाध्ययन संगतः।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते।। शान्ति० 189/5।।

जो व्यक्ति क्षत्रियों के काम युद्ध आदि करता है। वेद पढ़ता है। दान देता है और प्रजा से कर लेकर उसकी रक्षा करता है वह क्षत्रिय कहलाता है।

बाहुभ्यां क्षत्रियाः सृष्टास्तस्मात् ते बाहुगर्विताः।। अनु० 141 दा० पा०।।

विधाा की दोनों भुजाओं से क्षत्रिय पैदा हुए हैं इसलिये उन्हें अपनी भुजाओं के बल पर गर्व रहता है।

क्षत्रियस्य स्मृतो धर्मः प्रजापालनमादितः।। अनु० 141/47।।

क्षत्रिय का प्रधान कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करना है।

कर्तव्यं निधनं काले मर्तव्यं क्षत्रबन्धुना।। आश्रमवास० 10/33।।

क्षत्रिय को परिस्थिति और समय के अनुसार शत्रुओं का नाश करना चाहिये और प्राणों का बलिदान करना चाहिये।

गान्धारी

पतिव्रता महाभागा समानव्रतचारिणी।
उग्रेण तपसा युक्ता सततं सत्यवादिनी।। स्त्री० 16/2।।

गान्धारी; पतिव्रता, परम सौभाग्यशालिनी, पति के समान ही व्रत का पालन करने वाली, कठोर तपस्या करने वाली और सदा सत्य बोलने वाली हैं।

महाप्रज्ञा बुद्धिमती देवी धर्मार्थदर्शिनी।
आगमापायतत्वज्ञा कच्चिदेषा न शोचति।। आश्रमवास० 28/5।।

देवी गान्धारी बहुत बुद्धिमती और परम विदुषी हैं। वे धर्म और अर्थ को समझती हैं। उन्हें जन्म और मरण के तत्त्व का भी पूरी तरह ज्ञान है। इन्हें वनवास में कभी दुःख तो नहीं होता?

ग्रह नक्षत्र

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव शुभाशुभ निवेदकाः।
मानवानां महाभागे न तु कर्मकराः स्वयम्।। अनु० 145 दा० पा०।।

महान् भाग्यशालिनी पार्वती! ग्रह-नक्षत्र मनुष्यों को शुभ और अशुभ की सूचना देते हैं। ग्रह-नक्षत्र स्वयं कुछ नहीं करते।

केवलं ग्रहनक्षत्रं न करोति शुभाशुभम्।
सर्वमात्मकृतं कर्म लोकवादो ग्रहा इति।। अनु० 145 दा० पा०।।

केवल ग्रह-नक्षत्र ही शुभ और अशुभ कर्म नहीं करते। सारा अपना किया हुआ कर्म ही अच्छे और बुरे फल को देता है किन्तु लोगों का यह कहना गलत है कि ग्रहों ने शुभ या अशुभ काम कर दिया।

प्रजानां तु हितार्थाय शुभाशुभ विधिं प्रति।
अनागतमतिक्रान्तं ज्योतिष्चक्रेण बोध्यते।। अनु० 145 दा० पा०।।

लोगों की भलाई के लिये ग्रह-नक्षत्र मण्डल के द्वारा भविष्य में होने वाले और अतीत में हुए अच्छे-बुरे कामों की सूचना मिल जाती है।

गुण

मा हासीः साम्पराये त्वं बुद्धिं तामृषिपूजिताम्।। सभा० 78/17।।

ऋषियों द्वारा सम्मानित परलोक से सम्बद्ध विज्ञान को तुम कभी मत त्यागना।

शक्त्या जयसि राज्योऽन्यानृषीन् धर्मोपसेवया।

ऐन्द्रे जये धृतमना याम्ये कोपविधारणे।। सभा० 78/18।।

तुम शक्ति से राजाओं को और धर्म सेवन से ऋषियों को जीत लेते हो। तुम इन्द्र से मन में विजय का बल पाओ और यम से क्रोध पर वश करना सीखो।

तथा विसर्गे कौबेरे वारुणे चैव संयमे।
आत्मप्रदानं सौम्यत्वमद्भ्यश्चैवोपजीवनम्।। सभा० 78/19।।

उदारता और दान में कुबेर का तथा संयम में वरुण का आदर्श अपनाओ। परहित के लिये अपने को न्यौछावर करना, सौम्यता (शीतलता) और किसी के लिये जीवन दान करना जल से सीखो।

भूमेः क्षमा च तेजश्च समग्रं सूर्यमण्डलात्।
वायोर्बलं प्राप्नुहि त्वं भूतेभ्यश्चात्मसम्पदम्।। सभा० 78/20।।

तुम पृथिवी से क्षमा, सूर्य मण्डल से तेज, वायु से बल तथा सभी भूतों से अपनी सम्पत्ति प्राप्त करो।

अब्रुवन् कस्यचिन्निदामत्मपूजामवर्णयन्।
न कश्चिद् गुणसम्पन्नः प्रकाशो भुवि दृश्यते।। वन० 207/49।।

किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये और आत्मप्रशंसा भी नहीं करनी चाहिये। परनिन्दा और आत्मप्रशंसा छोड़े बिना गुणी पुरुष को प्रतिष्ठा नहीं मिलती।

सत्यवादी लभेतायुरनायासमथार्जवम्।
अक्रोधनोऽनसूयश्च निर्वृत्तिं लभते पराम्।। वन० 259/22।।

सत्यवादी पुरुष को दीर्घायु, सुख और सरलता मिलती है। क्रोध और ईर्ष्या से रहित पुरुष परमानन्द प्राप्त करता है।

दान्तः शमपरः शश्वत् परिक्लेशं न विन्दति।
न च तप्यति दान्तात्मा दृष्ट्वा परगतां श्रियम्।। वन० 259/23।।

जो मनुष्य इन्द्रियों पर संयम रखकर मन को वश में रखता है उसे कभी दुःख का सामना नहीं करना पड़ता। ऐसा व्यक्ति दूसरों की सम्पत्ति देखकर दुखी नहीं होता।

संविभक्ता च दाता च भोगवान् सुखवान् नरः।
भवत्यहिंसकश्चैव परमारोग्यमश्नुते।। वन० 259/24।।

जो देवों और अतिथियों का भाग उन्हें देता है और दान करता है वह सुखी और समृद्ध होता है। वह किसी की हिंसा नहीं करता। उसे उत्तम आरोग्य प्राप्त होता है।

मान्यमानयिता जन्म कुले महति विन्दति।
व्यसनैर्न तु संयोगं प्राप्नोति विजितेन्द्रियः।। वन० 259/25।।

माननीय पुरुषों का सम्मान करने वाला पुरुष बड़े कुल में जन्म लेता है। जितेन्द्रिय पुरुष व्यसनों में नहीं फंसता।

शुभानुशयबुद्धिर्हि संयुक्तः कालधर्मणा।
प्रादुर्भवति तद्योगात् कल्याणमतिरेव सः।। वन० 259/26।।

जिस मनुष्य की बुद्धि अच्छे विचारों वाली होती है वह मरने के बाद शुभ विचारों के संस्कारों के कारण कल्याण बुद्धिवाला ही फिर पैदा होता है।

षडेते तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः।। उद्योग० 33/81।।

मनुष्य को ये छह गुण कभी भी नहीं छोड़ने चाहियें-सत्य, दान, आलस्य का त्याग, ईर्ष्या का न होना, क्षमा और धैर्य।

अष्टौः गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च।।

उद्योग० 35/52; उद्योग० 37/31।।

बुद्धि, अच्छा कुल, इन्द्रियनिग्रह, विद्वत्ता, पराक्रम, बहुत न बोलना, सामर्थ्य के अनुसार दान देना और कृतज्ञ रहना ये आठ गुण पुरुष का यश बढ़ाते हैं।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।। उद्योग० 35/56।।

यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और लोभ न करना ये आठ बातें धर्म का मार्ग हैं।

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः।। उद्योग० 38/38।।

धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रियनिग्रह, , पवित्रता, दया, मधुरवाणी और मित्र से द्रोह न करना इन सात गुणों से लक्ष्मी बनती है।

न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः।
यथा सत्यानृशंसाभ्यां धर्मणैवोद्यमेन च।। भीष्म० 21/10।।

विजय चाहने वाले बल-पराक्रम से उतना नहीं जीतते जितना सत्य, सज्जनता, धर्म और उत्साह से।

गुणवन्तं हि यो द्वेष्टि निर्गुणं कुरुते प्रभुम्।
स शोचति नृपः कृष्ण क्षिप्रमेवागते क्षये।। कर्ण० 74/11।।

कृष्ण! जो राजा गुणी पुरुष से द्वेष करता है और गुणहीन व्यक्ति को अधिकारी बना देता है वह जल्दी ही विनाश काल आने पर शोक में डूब जाता है।

नात्यन्तं गुणवत् किंचिन्न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम्।
उभयं सर्वकार्येषु दृश्यते साध्वसाधु वा।। शान्ति० 15/50।।

कोई भी वस्तु या व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसमें सारी अच्छाई हों या जिसमें कोई भी अच्छाई न हो। सभी कामों में अच्छाई और बुराई देखने में आती है।

वाग्देह मनसां शौचं क्षमा सत्यं धृतिः स्मृतिः।
सर्वधर्मेषु धर्मज्ञा ज्ञापयन्ति गुणाञ्छुभान्।। शा० 214/6।।

धर्म को जानने वाले; मन, वचन और शरीर की पवित्रता, क्षमा, सत्य, धैर्य और स्मृति इन गुणों को सभी धर्मों में अच्छा मानते हैं।

आर्जवेनाप्रमादेन प्रसादेनात्मवत्तया।
वृद्धशुश्रूषया शक्र पुरुषो लभते महत्।। शान्ति० 222/34।।

इन्द्र! सरल व्यवहार, सावधानी, चित्त की निर्मलता और मन की स्थिरता तथा बड़े बूढ़ों की सेवा से पुरुष महत् पद प्राप्त करता है।

दमः क्षमा धृतिस्तेजः संतोषः सत्यवादिता।
ह्रीरहिंसाव्यसनिता दाक्ष्यं चेति सुखावहाः।। शान्ति० 290/20।।

इन्द्रिय संयम, क्षमा, धैर्य, तेजस्विता, सन्तोष, सत्य भाषण, लज्जा, अहिंसा, दुर्व्यसनों में न फंसना और कुशल व्यवहार ये गुण सुख प्रदान करते हैं।

सत्यं दमं ह्यार्जवमानृशंस्यं धृतिं तितिक्षामतिसेवमानः।
स्वाध्यायनित्योऽस्पृहयन् परेषामेकान्तशील्यूर्ध्वगतिर्भवेत सः।।

शा० 299/29।।

जो मनुष्य सत्य, इन्द्रिय संयम, सरल व्यवहार, दया, धैर्य और तितिक्षा को खूब अपनाता है, सदा स्वाध्याय करता है, दूसरों की वस्तु लेना नहीं चाहता और एकान्त स्थान में रहता है उसकी ऊर्ध्वगति होती है।

लोको ह्यार्यगुणानेव भूयिष्ठं तु प्रशंसति।। अनु० 122/2।।

संसार के लोग उत्तम गुणों वाले पुरुष की बहुत प्रशंसा करते हैं।

न जात्या पूजितो राजन् गुणाः कल्याणकारणाः।।

आश्व० 92 दा० पा० अ० XX।।

राजन्! जाति के कारण किसी पुरुष को सम्मान नहीं मिलता अपितु मनुष्य के गुण ही उसका कल्याण करते हैं।

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत।
निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च।। आश्रमवास 28/9।।

महाराज भरतनन्दन! किसी से वैर न रखना, सच बोलना और गुस्सा न करना ये तीन गुण सभी प्राणियों के लिये श्रेष्ठ माने जाते हैं।

गुप्त मन्त्रणा

मन्त्रमूला नयाः सर्वे चाराश्च भरतर्षभ।। वन० 150/43।।

भरतश्रेष्ठ! सभी नीतियों और गुप्तचरों का आधार मन्त्रणा को गुप्त रखना है।

स्त्रिया मूढ़ेन बालेन लुब्धेन लघुनापि वा।
न मन्त्रयीत गुह्यानि येषु चोन्मादलक्षणम्।। वन० 150/44।।

स्त्री, मूर्ख, बालक, लोभी, नीच पुरुष तथा पागल के साथ मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये।

मन्त्रयेत् सह विद्वद्‌भिः शक्तैः कर्माणि कारयेत्।
स्निग्धैश्च नीतिविन्यासान् मूर्खान् सर्वत्र वर्जयेत्।। वन० 150/45।।

विद्वानों के साथ गुप्त विचार विमर्श करना चाहिये। समर्थ व्यक्तियों द्वारा कार्य कराने चाहियें। मित्रों द्वारा नीतियों पर अमल कराना चाहिये। मूर्खों को अलग रखना चाहिये।

सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः।। उद्योग० 33/45।।

गुप्त मन्त्रणा पता चल जाने से सारे राष्ट्र, प्रजा और राजा का नाश हो जाता है।

अल्पप्रज्ञैः सहमन्त्रं न कुर्यान्न दीर्घसूत्रैः रभसैश्चारणैश्च।।
उद्योग० 33/69।।

कम बुद्धिवालों, देर लगाकर काम करने वालों, जल्दबाजों और खुशामदियों के साथ सलाह नहीं करनी चाहिये।

नासुहृत् परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम्।
अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान्।। उद्योग० 38/19।।

भारत! जो मित्र न हो, मित्र होते हुए भी बुद्धिमान न हो, बुद्धिमान होने पर भी जो जितेन्द्रिय न हो उसे गुप्त मन्त्रणा नहीं बतानी चाहिये।

गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम्।। उद्योग० 38/21।।

अपनी मन्त्रणा गुप्त रखने वाले राजा को निस्संदेह सफलता मिलती है।

धर्मो धारयति प्रजा:।। उद्योग० 90/67।।

धर्म ही सारी प्रजा का पालन करता है।

पौरजानपदानां च शौचाशौचे युधिष्ठिर।। आश्रमवास० 5/26।।

यथा स्याद् विदितं राजंस्तथा कार्यं कुरुद्वह।

कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर! नगर और जनपद की जनता का हृदय तुम्हारे प्रति आदर वाला है या अनादर और असन्तोष से भरा है, यह जानने के लिये तुम्हें हर तरह से प्रयत्न करना चाहिये।

गुरुपूजा

समीक्षेथा धर्मवतीमवेक्षांगुरोः सकाशात् प्राप्य विद्यां सविद्यः।।

आदि० 76/67।।

गुरु से विद्या प्राप्त करके विद्वान हो जाने पर भी गुरु के प्रति धर्म और आदर पूर्ण दृष्टि ही रखनी चाहिये।

यः श्रोत्रयोरमृतं संनिषिञ्चेद् विद्यामविद्यस्य यथा ममायम्।
तं मन्येऽहं पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन्।।

आदि० 76/63।।

जिस गुरु ने मुझ जैसे मूर्ख के कानों में विद्यारूपी अमृत डाला है उसे मैं पिता और माता मानता हूँ। गुरु का उपकार जानकर गुरु से शिष्य को द्रोह नहीं करना चाहिये।

ऋतस्य दातारमनुत्तमस्य निधिं निधीनामपि लब्धविद्याः।
ये नाद्रियन्ते गुरुमर्चनीयं पापाँल्लोकांस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठाः।।

आदि० 76/64।।

जो व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को देने वाले और सभी प्रकार की विद्याओं की निधि अपने गुरु से ज्ञान प्राप्त करके पूजनीय गुरु का आदर नहीं करते हैं उनकी संसार में दुर्गति होती है।

शत्रोरपि गुणा ग्राह्या दोषा वाच्या गुरोरपि।
सर्वथा सर्वयत्नेन पुत्रे शिष्ये हितं वदेत्।। विराट० 51/15।।

शत्रु के भी गुण ग्रहण करने चाहियें और गुरु के दोष भी बताने चाहियें। गुरु को पूरी तरह प्रयत्न करके पुत्र और शिष्य के हित की बात कहनी चाहिये।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते।। उद्योग० 178/48।।

यदि गुरु अभिमान में भरकर कर्तव्य और अकर्तव्य को बिना समझे गलत रास्ते पर चले तो उसे छोड़ देना चाहिये।

उपाकृत्य तु वै विद्यामाचार्येभ्यो नरर्षभाः।
प्रयच्छन्तीह ये कामान् देवत्वमुपयान्ति ते।। द्रोण० 147/22।।

जो श्रेष्ठ मनुष्य गुरुओं से विद्या प्राप्त करके उन्हें उनकी मनचाही वस्तुएँ देते हैं वे लोग देवता की पदवी पाते हैं।

न कथंचन कौरव्य प्रहर्तव्यं गुराविति।। द्रोण 147/25।।

अर्जुन! तुम्हें गुरु पर कभी भी प्रहार नहीं करना चाहिये।

गुरुर्गरीयान् पितृतो मार्तृतश्चेति मे मतिः।। शान्ति० 108/18।।
उभौ हि मातपितरौ जन्मन्येवोपयुज्यतः।।

मेरा (भीष्म) विश्वास है कि गुरु का पद माता-पिता से भी बढ़कर है क्योंकि माता-पिता तो केवल इस शरीर को जन्म देने का काम करते हैं।

शरीरमेव सृजतः पिता माता च भारत।। शान्ति० 108/19।।
आचार्यशिष्टा या जातिः सा दिव्या सा जरामरा।।

भरतनन्दन! माता-पिता तो केवल शरीर को जन्म देते हैं किन्तु आचार्य के उपदेश और शिक्षा से जो दूसरा जन्म होता है वह दिव्य और अजर-अमर होता है।

यश्चावृणोत्यवितथेन कर्मणा ऋतं ब्रुवन्ननृतं सम्प्रयच्छन्।
तं वै मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न दुह्येत् कृतमस्य जानन्।।

शा० 108/22।।

जो सत्य कर्म के द्वारा शिष्य को ढक लेता है। शाश्वत सत्य का ज्ञान प्रदान करता है और असत्य से बचाता है। ऐसे गुरु को माता-पिता ही मानना चाहिये। गुरु के उपकार जानकर उससे कभी द्रोह नहीं करे।

विद्यां श्रुत्वा ये गुरुं नाद्रियन्ते प्रत्यासन्ना मनसा कर्मणा वा।
तेषां पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं नान्यस्तेभ्यः पापकृदस्ति लोके।
यथैव ते गुरुभिर्भावनीयास्तथा तेषां गुरवोऽभ्यर्चनीयाः।।
शान्ति० 108/23।।

जो शिष्य विद्या पढ़कर गुरु का आदर नहीं करते, पास रहकर मन और कर्म से गुरु की सेवा नहीं करते, उनका यह पाप भ्रूण हत्या से भी बढ़कर होता है। उनके जैसा पापी कोई नहीं होता। इसलिये जैसे गुरुओं को शिष्यों को उन्नति पथ पर ले जाना चाहिये वैसे ही शिष्यों को गुरु की सेवा करनी चाहिये।

मातृतः पितृश्चैव तस्मात् पूज्यतमो गुरुः ।। शा० 108/26।।

इसलिये गुरु, माता पिता से भी कहीं अधिक आदरणीय होता है।

केनचिन्न च वृत्तेन ह्यवज्ञेयो गुरुर्भवेत्।
न च माता न च पिता मन्यते यादृशो गुरुः।। शान्ति० 108/27।।

किसी भी व्यवहार के कारण गुरु का अपमान नहीं करना चाहिये। न ही माता पिता का अपमान करना चाहिये। जैसे गुरु आदरणीय होता है वैसे ही माता-पिता का भी आदर सम्मान करना चाहिये।

न तेऽवमानमर्हन्ति न तेषां दूषयेत् कृतम्।। शान्ति० 108/29।।

माता-पिता और गुरु का अपमान नहीं करना चाहिये। न ही उनके किसी काम की निन्दा करनी चाहिये।

मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य स्त्रीघ्नस्य गुरुघातिनः।
चतुर्णां वयमेतेषां निष्कृतिं नानुशुश्रुम।। शान्ति० 108/32।।

मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्री हत्यारे और गुरु हत्यारे इन चार लोगों के पाप का कोई प्रायश्चित्त हमने नहीं सुना है।

सर्वार्तियुक्ता गुरवो भवन्ति।। अनुशासन 1/24।।

गुरुजन और बड़े-बूढ़े लोग किसी भी प्राणी को कष्ट में देखकर दुखी होते हैं।

उपलभ्य तु विज्ञानं ज्ञानं वाप्यनुसूयकः।
तथैव वर्तेद् गुरुषु भूयांसं च समाहितः।। अनुशासन 96 दा० पा० अ०I।।

ज्ञान और विज्ञान को पा लेने पर भी शिष्य को दोषदृष्टि से रहित होकर

गुरुजनों के प्रति पहिले जैसा ही सद्भाव रखना चाहिये। शिष्य को चाहिये कि वह एकाग्रचित्त रहकर गुरुजनों के प्रति सद्भाव बनाये रखे।

यथावमन्येत गुरुं तथा तेषु प्रवर्तते।
व्यर्थमस्य श्रुतं भवति ज्ञानमज्ञानतां व्रजेत्।। अनु० 96 दा० पा० अ०I ।।

शिष्य जिस प्रकार गुरु का अपमान करता है गुरु भी शिष्य के साथ वैसा ही बर्ताव करता है। गुरु का अपमान करने वाले शिष्य का वेदशास्त्रों का अध्ययन व्यर्थ हो जाता है और उसका ज्ञान, अज्ञान बन जाता है।

शरीरमेतौ सृजतः पिता माता च भारत।। अनुशासन 105/18 ।।
आचार्यशास्ता या जातिः सा सत्या सा जरामरा।।

भरतनन्दन! माता पिता केवल शरीर उत्पन्न करते हैं। किन्तु आचार्य के उपदेश से ज्ञानरूपी जो नया शरीर मनुष्य को मिलता है वह ज्ञानरूपी शरीर सत्य, अजर और अमर होता है।

गुरूणां च गरीयांसस्त्रयो लोकेषु पूजिताः।
उपाध्यायः पिता माता सम्पूज्यन्ते विशेषतः।। अनु० 145 दा० पा० अ०XI ।।

अध्यापक, माता और पिता ये तीन गुरुजन अधिक पूजनीय हैं। इनकी तीनों लोकों में पूजा होती है। इन तीनों का सदा विशेष आदर-सत्कार करना चाहिये।

उपाध्यायस्य यः पुत्रो यश्च तस्य भवेद् गुरुः।
ऋत्विग् गुरुः पिता चेति गुरवः सम्प्रकीर्तिताः।।

अनु० 145 दा० पा० अ०XI ।।

अपने गुरु का पुत्र, उस पुत्र का गुरु, ऋत्विज्, गुरु और पिता इन सबका स्थान आदर की दृष्टि से गुरु के समान है।

ज्येष्ठो भ्राता नरेन्द्रश्च मातुलः श्वसुरस्तथा।
भयत्राता च भर्ता च गुरवस्ते प्रकीर्तिताः।।

अनु० 145 दा० पा० अ० XI ।।

बड़ा भाई, राजा, मामा, ससुर, भय से रक्षा करने वाला और पति इन सबका स्थान गुरु के समान माना जाता है।

यद् यदिच्छन्ति ते कर्तुमस्वतन्त्रस्तदाचरेत्।
वेदानुशासनसमं गुरुशासनमिष्यते।।

अनु० 145 दा० पा० अ०XI ।।

गुरुजन जो भी काम जिस समय भी कराना चाहें वह काम अवश्य करना चाहिये। गुरुओं की आज्ञा को वेद की आज्ञा के समान माना गया है।

कलहांश्च विवादांश्च गुरुभिः सह वर्जयेत्।
कैतवं परिहासांश्च मन्युकामाश्रयांस्तथा।। अनु० 145 दा० पा अ०XI ।।

गुरुजनों के साथ झगड़ा और वाद-विवाद कभी नहीं करना चाहिये। उनके साथ छल-कपट, हँसी मजाक तथा काम-क्रोध में भरकर कोई अनुचित व्यवहार भी नहीं करना चाहिये।

स्वमर्थं स्वशरीरं च गुर्वर्थे संत्यजेत् बुधः।
विवादं धनहेतोर्वा मोहाद् वा तैर्न रोचयेत्।। अनु० 145 दा० पा० अ०XI ।।

विद्वान् पुरुष को गुरुजनों के लिये अपना धन और अपना शरीर न्यौछावर कर देना चाहिये। धन पाने के लिये या मूर्खता के कारण गुरुजनों के साथ झगड़ा नहीं करना चाहिये।

गुरुभ्यस्त्वासनं देयमभिवाद्याभिपूज्य च।
गुरुमभ्यर्च्य वर्धन्ते आयुषा यशसा श्रिया।। अनु० 162/44 ।।

गुरुजन के आने पर उन्हें प्रणाम करना चाहिये। उनका सत्कार करके उन्हें बैठने के लिये आसन देना चाहिये। गुरुजनों का सम्मान करने से मनुष्य की आयु, यश और लक्ष्मी बढ़ती है।

वृद्धान् नाभिभवेज्जातु न चैतान् प्रेषयेदिति।
नासीनः स्यात् स्थितेष्वेवमायुरस्य न रिष्यते।। अनु० 162/45 ।।

बूढ़ों का कभी तिरस्कार नहीं करना चाहिये। उन्हें कभी किसी काम के लिये कहीं नहीं भेजना चाहिये। यदि वे खड़े हों तो उनके सामने बैठे नहीं रहना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्य की आयु नहीं घटती।

तीर्थानां गुरवस्तीर्थं चोक्षाणां हृदयं शुचि।
दर्शनानां परं ज्ञानं सन्तोषः परमं सुखम्।। अनु० 162/47 ।।

तीर्थों में सर्वोत्तम तीर्थ गुरुजन ही हैं। पवित्र वस्तुओं में हृदय ही अधिक पवित्र है। ज्ञानों (दर्शनों) में परमार्थ ज्ञान ही श्रेष्ठ है तथा सन्तोष ही सबसे अच्छा सुख है।

श्रुतं प्राप्नोति हि नरः सततं वृद्धसेवया।। अनु० 162/48 ।।

वृद्ध लोगों की सदा सेवा करने से ज्ञान प्राप्त होता है।

दक्षिणा परितोषो वै गुरूणां सद्भिरुच्यते।। आश्व० 56/21 ।।

सज्जनों का कहना है कि गुरुजनों को सन्तुष्ट करना ही उनके लिये उत्तम दक्षिणा है।

यतिर्गुरुर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वेषां पार्थिवो गुरुः।।

आश्व० 12 दा० पा० अ XIII।।

ब्राह्मणों का गुरु संन्यासी होता है। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन वर्णों के लोगों का गुरु ब्राह्मण होता है। पति, स्त्रियों के गुरु माने जाते हैं और राजा सारी प्रजा का गुरु अर्थात् पूजनीय होता है।

लौकिकं वैदिकं वापितथाऽऽध्यात्मिकमेव वा।
यस्माज्ज्ञानमिदं प्राप्तं तं पूर्वमभिवादयेत्।।

आश्व 12 दा० पा० अ XV।।

जिस व्यक्ति से लौकिक, वैदिक या आध्यात्मिक ज्ञान पाया हो उस गुरु को सबसे पहले नमस्ते करनी चाहिये।

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधिः।
अध्यापयति चैवैनं स विप्रो गुरुरुच्यते।। आश्व० 12 दा० पा० अ XV।।

जो ब्राह्मण गर्भाधान आदि सभी संस्कार विधिपूर्वक कराता है और शास्त्र आदि पढ़ाता है वह ब्राह्मण गुरु कहलाता है।

कृत्वोपनयनं वेदान् योऽध्यापयति नित्यशः।
सकल्पान् सरहस्यान् स चोपाध्याय उच्यते।। आश्व० दा० पा० अ XV।।

जो व्यक्ति बच्चे का उपनयन संस्कार करके उसे प्रति दिन वेद तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण आदि वेदांग पढ़ाता है और उनका गूढ़ अर्थ समझाता है वह उपाध्याय कहलाता है।

साङ्गाश्च वेदानध्याप्य शिक्षयित्वा व्रतानि च।
विवृणोति च मन्त्रार्थानाचार्यः सोऽभिधीयते।।

आश्व० 12 दा० पा० अ XV।।

जो व्यक्ति वेदांगों सहित वेद पढ़ाता है और वेदमन्त्रों के अर्थ समझाता है तथा वैदिक व्रतों को सिखाता है वह आचार्य कहलाता है।

उपाध्यायाद् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।

पितुः शतगुणं माता गौरवेणातिरिच्यते।।

आश्व० 12 दा० पा० अ XV।।

गौरव की दृष्टि से दस उपाध्यायों से बढ़कर एक आचार्य, सौ आचार्यों से बढ़कर पिता और पिता से सौ गुनी अधिक माता होती है।

एतेषमपि सर्वेषां गरीयान् ज्ञानदो गुरुः।

गुरोः परतरं किंचिन्न भूतं न भविष्यति।। आश्व० 12 दा० पा० अ XV।।

इन सबसे बढ़कर ज्ञान देने वाला गुरु होता है। गुरु से बढ़कर न कोई हुआ है और न होगा।

गृहस्थ आश्रम

धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात् सदैवातिथीन् भोजयेच्च।

अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत् पुराणी।।

आदि० 91/3।।

गृहस्थी को धर्मानुसार प्राप्त धन से यज्ञ करना चाहिये, दान देना चाहिये और अतिथियों को सदा भोजन कराना चाहिये। उसे पराई वस्तु दिये बिना नहीं लेनी चाहिये। गृहस्थ धर्म का यही प्राचीन रहस्य है।

देयमार्तस्य शयनं स्थितश्रान्तस्य चासनम्।

तृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम्।। वन० 2/55।।

कष्ट पीड़ित मनुष्य को सोने के लिये शय्या, थके हारे को आसन, प्यासे को पानी और भूखे को भोजन देना चाहिये।

चक्षुर्दद्यान्मनो दद्याद् मनो दद्यात् सुभाषितम्।

उत्थाय चासनं दद्यादेष धर्मः सनातनः।

प्रत्युत्थायाभिगमनं कुर्यान्मानेन चार्चनम्।। वन० 2/56।।

अतिथि को स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखे, मन में उसके प्रति सद्भाव रखे, उससे मधुर वाणी में बोले और उठकर उसे आसन दे। अतिथि को आता देख उठकर उसका स्वागत करे और उसका उचित सत्कार करे।

आत्मार्थं पाचयेन्नानं न वृथा घातयेत् पशून्।

न च तत् स्वयमश्नीयाद् विधिवद् यन्न निर्वपेत्।। वन० 2/58।।

केवल अपने लिये अन्न न पकाये। निकम्मे पशुओं को भी न मारे। देवता आदि को अर्पित किये बिना अन्न न खाये।

विघसाशी भवेत् तस्मान्नित्यं चामृतभोजनः।
विघसो भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथामृतम्।। वन० 2/60।।

गृहस्थ प्रतिदिन 'विघस' और 'अमृत' भोजन करे। परिवार के सभी सदस्यों के खा लेने पर बचा हुआ भोजन विघस कहलाता है और बलिवैश्वदेव यज्ञ से बचा अन्न अमृत होता है।

स्वदारनिरतो ह्याशु नरो भद्राणि पश्यति।। विराट ०14/34 दा० पा०।।

अपनी पत्नी में अनुराग करने वाला पुरुष जल्दी ही कल्याण को प्राप्त करता है।

परदाररतो मर्त्यो न च भद्राणि पश्यति।। विराट्० 14/34 दा० पा०।।

परस्त्री के जाल में फंसा मनुष्य अपना नाश कर बैठता है।

परदारे न ते बुद्धिर्जातु कार्या कथंचन।। विराट० 14/36।।

तुम्हें परायी स्त्री में मन कभी नहीं लगाना चाहिये।

आश्रमांस्तुलया सर्वान् धृतानाहुर्मनीषिणः।
एकतश्च त्रयो राजन् गृहस्थाश्रम एकतः।। शान्ति० 12/12।।

राजन्! मनीषी पुरुषों ने चारों आश्रमों को तराजू (विवेक की) पर रखकर तोला था। तराजू के एक पलड़े पर तीन आश्रम थे और दूसरी ओर अकेला गृहस्थ आश्रम था। अर्थात् चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) इनमें से सबसे प्रधान और श्रेष्ठ आश्रम गृहस्थ ही है।

समीक्ष्य तुलया पार्थ कामं स्वर्गं च भारत।
अयं पन्था महर्षीणामियं लोकविदां गतिः।। शान्ति० 12/13।।

भरतवंशी युधिष्ठिर! विवेक की तराजू पर रखने से पता चला कि गृहस्थ आश्रम में मनुष्य इच्छाएँ पूरी करता है और स्वर्ग का सुख भोगता है। यही गृहस्थ आश्रम महर्षियों का मार्ग है और संसार को समझने वालों की भी यही मान्यता है।

गृहस्थं हि सदा देवाः पितरोऽतिथयस्तथा।
भृत्याश्चैवोपजीवन्ति तान् भरस्व महीपते।। शान्ति० 23/4।।

राजन्! देवता, पितर, अतिथि और सेवक गृहस्थ आश्रम के सहारे ही अपना निर्वाह करते हैं। आपको इन सबका पालन-पोषण करना चाहिये।

वयांसि पशवश्चैव भूतानि च जनाधिप।
गृहस्थैरेव धार्यन्ते तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमः।। शान्ति० 23/5।।

राजन्! गृहस्थ लोग ही पक्षियों, पशुओं और अन्य सभी प्राणियों का पालन–पोषण करते हैं इसलिये गृहस्थ आश्रम बहुत श्रेष्ठ आश्रम है।

सोऽयं चतुर्णामेतेषामाश्रमाणां दुराचरः।
तं चराद्य विधिं पार्थ दुश्चरं दुर्बलेन्द्रियैः।। शान्ति० 23/6।।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों में से गृहस्थ आश्रम का पालन करना बहुत कठिन है। जिन मनुष्यों की इन्द्रियाँ कमजोर होती हैं वे गृहस्थ आश्रम का पालन नहीं कर पाते। पार्थ! तुम्हें गृहास्थश्रम का पालन करना चाहिये।

देवानृषीन् मनुष्यांश्च पितृन् गृह्याश्च देवताः।। शान्ति० 36/34।।

पूजयित्वा ततः पश्चाद् गृहस्थो भोक्तुमर्हति।

देवताओं, ऋषियों, अतिथियों, पितरों और घर के देवताओं की पूजा करके गृहस्थ को खाना चाहिये।

यथा प्रव्रजितो भिक्षुस्तथैव स्वे गृहे वसेत्।। शान्ति० 36/35।।

जैसे संन्यासी और भिक्षु अपने घर के प्रति लगाव नहीं रखता उसी तरह गृहस्थी को भी ममता और आसक्ति छोड़कर रहना चाहिये।

अधीत्य वेदान् कृतसर्वकृत्यः सन्तानमुत्पाद्य सुखानि भुक्त्वा।
समाहितः प्रचरेद् दुष्करं यो गार्हस्थ्यधर्मं मुनिधर्मजुष्टम्।।
शान्ति० 61/10।।

जो वेद पढ़कर, सारे कार्य करके, अपनी पत्नी से सन्तान उत्पन्न करता है और गृहस्थाश्रम के भोग भोगता है। एकाग्रचित्त हो मुनियों के योग्य धर्म से युक्त कठिन गृहस्थाश्रम का पालन करता है वह श्रेष्ठ व्यक्ति है।

स्वदारतुष्टस्त्वृतुकालगामी नियोगसेवी न शठो न जिह्मः।
मिताशनो देवरतः कृतज्ञः सत्यो मृदुश्चानृशंसः क्षमावान्।।
शान्ति० 61/11।।

गृहस्थी को अपनी पत्नी से सन्तुष्ट रहना चाहिये। उससे ऋतुकाल में समागम करना चाहिये। शास्त्रों की आज्ञा का पालन करना चाहिये। उसे दुष्टता और कुटिलता

से दूर रहना चाहिये। थोड़ा भोजन करना चाहिये। देवताओं की पूजा करनी चाहिये। कृतज्ञ, सत्यवादी, मृदुव्यवहार करने वाला, दयालु और क्षमाशील होना चाहिये।

दान्तो विधेयो हव्यकव्येऽप्रमत्तो ह्यन्नस्य दाता सततं द्विजेभ्यः।
अमत्सरी सर्वलिङ्गप्रदाता वैताननित्यश्च गृहाश्रमी स्यात्।।

शान्ति० 61/12।।

गृहस्थ को जितेन्द्रिय, गुरुजनों और शास्त्रों की आज्ञा मानने वाला, देवताओं और पितरों के लिये हव्य-कव्य समर्पित करने वाला तथा ब्राह्मणों को सदा अन्न देने वाला होना चाहिये। उसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं करना चाहिये। उसे सभी आश्रमों का पालन पोषण करना चाहिये और सदा यज्ञ करने चाहियें।

अपि चात्र यज्ञक्रियाभिर्देवताः प्रीयन्ते। निवापेन पितरो विद्याभ्यास श्रवण धारणेन ऋषयः। अपत्योत्पादनेन प्रजापतिरिति।।

शा० 191/13।।

गृहस्थाश्रम में यज्ञ करने से देवता, श्राद्ध-तर्पण करने से पितर, वेदों के पढ़ने, शास्त्र सुनने और उनके अनुसार आचरण करने से ऋषि, तथा सन्तान उत्पन्न करने से प्रजापति प्रसन्न होते हैं।

गृहस्थस्त्वेष धर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते।
यत्र पक्वकषायो हि दान्तः सर्वत्र सिद्ध्यति।। शान्ति० 234/6।।

गृहस्थ आश्रम सब धर्मों का आधार कहा जाता है। इसमें रहकर अन्तःकरण के राग आदि दोष पक जाने पर जितेन्द्रिय बनने पर पुरुष को सब जगह सफलता मिलती है।

प्रजावाञ्श्रोत्रियो यज्वा मुक्त एव ऋणैस्त्रिभिः।
अथान्यानाश्रमान् पश्चात् पूतो गच्छेत कर्मभिः।। शान्ति० 234/7।।

गृहस्थ पुरुष सन्तान उत्पन्न करके पितृ ऋण से, वेदों का स्वाध्याय करके ऋषि ऋण से और यज्ञ करके देव ऋण से छुटकारा पाता है। इस प्रकार इन तीनों ऋणों से मुक्त होकर गृहस्थ विहित कर्म करके पवित्र बने और इसके बाद दूसरे आश्रमों में जाये।

यत् पृथिव्यां पुण्यतमं विद्यात् स्थानं तदावसेत्।
यतेत तस्मिन् प्रामाण्यं गन्तुं यशसि चोत्तमे।। शान्ति० 234/8।।

इस पृथ्वी पर जो सबसे अधिक पवित्र और उत्तम स्थान लगे गृहस्थ वहीं रहे। वहाँ रहकर वह अपने को आदर्श पुरुष बनाने का प्रयत्न करे और यशस्वी बने।

तथैवापचमानेभ्य: प्रदेयं गृहमेधिना।। शान्ति० 243/11।।

गृहस्थ को भोजन न बनाने वालों (ब्रह्मचारियों और संन्यासियों) को भोजन देना चाहिये।

भ्राता ज्येष्ठ: सम:पित्रा भार्या पुत्र: स्वका तनु:।
छाया स्वा दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम्।। शान्ति० 243/20।।

बड़ा भाई पिता के समान होता है। धर्मपत्नी और पुत्र अपने ही शरीर हैं। सेवक अपनी छाया ही हैं। बेटी तो बहुत ही दया की पात्र है।

तस्मादेतैरधिक्षिप्त: सहेन्नित्यमसंज्वर:।
गृहधर्मपरो विद्वान् धर्मशीलो जितक्लम:।। शान्ति० 243/21।।

अत: यदि ये लोग कभी तिरस्कार भी कर दें तो उसे क्रोध किये बिना सह लेना चाहिये। गृहस्थी विद्वान को दुखों और थकान को सहन कर धर्म का निरन्तर पालन करना चाहिये।

गृहस्थानव्यपाश्रित्य नाश्रमोऽन्य: प्रवर्तते।। शान्ति० 269/5।।

गृहस्थियों का सहारा लिये बिना कोई भी आश्रम नहीं चल सकता है।

यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तव:।। अनु० 141 दा० पा०।।
एवं गार्हस्थ्यमाश्रित्य वर्तन्त इतराश्रमा:।। शान्ति० 269/6।।

जैसे सभी प्राणी अपनी माता का सहारा पाकर ही जीवित रहते हैं वैसे ही गृहस्थ आश्रम के सहारे पर ही ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम टिके हुए हैं।

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तप:।
गार्हस्थ्यमस्य धर्मस्य मूलं यत्किंचिदेजते।। शान्ति० 269/7।।

गृहस्थी मनुष्य ही यज्ञ करता है। गृहस्थी ही तपस्या करता है। मनुष्य जो कोई भी चेष्ट या काम करता है उस का मूल आधार गृहस्थाश्रम ही होता है।

अप्रयत्नागता: सेव्या गृहस्थैर्विषया: सदा।
प्रयत्नेनोपगम्यश्च स्वधर्म इति मे मति।। शान्ति० 295/35।।

गृहस्थी को बिना प्रयत्न किये स्वयं प्राप्त विषय भोगों का सेवन करना चाहिये। उसे अपना धर्म प्रयत्नपूर्वक निभाना चाहिये। यही मेरा मत है।

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।। शा० 295/39।।

जैसे सारी नदियाँ और नद समुद्र में मिल जाते हैं उसी प्रकार सारे आश्रम गृहस्थ आश्रम के सहारे ही चलते हैं।

ऋषयः पितरो देवा मनुष्याश्चैव माधव।
इज्याश्चार्चनीयाश्च यथा चैव निबोध मे।। अनु० 97/5।।

हे कृष्ण! गृहस्थी को ऋषियों, पितरों, देवों और मनुष्यों का सदा सत्कार करना चाहिये। सत्कार की विधि मैं बताती हूँ।

सदा यज्ञेन देवाश्च सदाऽऽतिथ्येन मानुषाः।
छन्दतश्च यथा नित्यमर्हान् भुञ्जीत नित्यशः।। अनु० 97/6।।

प्रतिदिन यज्ञ करके देवताओं का, अतिथि सत्कार करके मनुष्यों का और वेदों का नित्य स्वाध्याय करके ऋषियों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद ही भोजन करना चाहिये।

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद् भुवि।
वैश्वदेवं हि नामैतत् सायं प्रातर्विधीयते।।

अनुशासन 97/22।।

कुत्तों, चाण्डालों और पक्षियों के लिये अन्न भूमि पर रख देना चाहिये। यह बलिवैश्वदेव यज्ञ कहा जाता है। यह यज्ञ सवेरे-शाम किया जाता है।

पत्नी रजस्वला या च नाभिगच्छेन्न चाह्वयेत्।। अनु० 104/149।।

स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद् विचक्षणः।
पञ्चमे दिवसे नारी षष्ठेऽहनि पुमान् भवेत्।। अनु० 104/150।।

यदि पत्नी मासिक धर्म में हो तो उसके पास नहीं जाना चाहिये और न ही उसे अपने पास बुलाना चाहिये। मासिक धर्म के बाद चौथे दिन पत्नी के पास जाना चाहिये। मासिक धर्म के बाद पाँचवें दिन समागम करने से कन्या और छठे दिन समागम करने से पुत्र उत्पन्न होता है।

यो भर्ता वासिता तुष्टो भर्तुस्तुष्टा च वासिता।
यस्मिन्नेवं कुले सर्वं कल्याणं तत्र वर्तते।। अनु० 122/17।।

जिस कुल में पति अपनी पत्नी से और पत्नी अपने पति से सन्तुष्ट रहती है वहाँ सदा कल्याण होता है।

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम्।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः।। अनु० 141/25।।

किसी भी प्राणी की हत्या न करना, सच बोलना, सभी प्राणियों पर दया करना, अपने मन और इन्द्रियों को काबू में रखना और अपनी शक्ति के अनुसार दान देना गृहस्थ आश्रम का उत्तम धर्म है।

आहिताग्निरधीयानो जुह्वानः संयतेन्द्रियः।
विघसाशी यताहारो गृहस्थः सत्यवाक् शुचिः।। अनु० 141/39।।

गृहस्थी को यज्ञ करना चाहिये। स्वाध्याय करना चाहिये। त्यागपूर्वक रहना चाहिये। उसे कम खाना चाहिये। सबके खा लेने के बाद बचा हुआ भोजन करना चाहिये। उसे सच्चा और पवित्र आचरण रखना चाहिये। उसे संयमी होना चाहिये।

गृहस्थः प्रवरस्तेषां गार्हस्थ्यं धर्ममाश्रितः।
पञ्चयज्ञक्रिया शौचं दारतुष्टिरतन्द्रिता।
ऋतुकालाभिगमनं दानयज्ञतपांसि च।
अविप्रवासस्तस्येष्टः स्वाध्यायश्चाग्निपूर्वकम्।। अनु० 141 दा० पा०।।

चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि गृहस्थ परिवार का पालन-पोषण और समाज के सभी लोगों का पालन करता है। गृहस्थी को पाँचों यज्ञ, शरीर और मन की पवित्रता, आलस्य त्याग, दान, दैनिक यज्ञ, तपस्या, स्वाध्याय आदि में लगे रहना चाहिये। उसे अपनी पत्नी से सन्तुष्ट रहना चाहिये और ऋतुकाल में समागम करना चाहिये। गृहस्थी को परदेस में नहीं रहना चाहिये।

गार्हस्थ्यं तीर्थमुच्यते।। आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

गृहस्थ धर्म का पालन करना तीर्थ कहलाता है।

शरीरमेकं दम्पत्योर्विधात्रा पूर्वनिर्मितम्।
तस्मात् स्वादरनिरतो ब्रह्मचारी विधीयते।। अनु० 141 दा० पा०।।

विधाता ने पहले पति-पत्नी का एक ही शरीर बनाया था इसलिये अपनी ही पत्नी में अनुरक्त रहने वाला गृहस्थी ब्रह्मचारी ही माना जाता है।

पञ्चयज्ञविशुद्धात्मा सत्यवागनसूयकः।
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता सुसंसृष्टनिवेशनः।। अनु० 141/71।।

अमानी च सदाजिह्मः स्निग्धवाणीप्रदस्तथा।
अतिथ्यभ्यागतरतिः शेषान्नकृतभोजनः।। अनु० 141/72।।

पाद्यमर्घ्यं यथान्यायमासनं शयनं तथा।
दीपं प्रतिश्रयं चैव यो ददाति स धार्मिकः।। अनु० 141/73।।

गृहस्थी को पाँचों यज्ञ करके अपना मन शुद्ध बनाना चाहिये। जो गृहस्थ सदा सत्य बोलता है, किसी के दोष नहीं देखता है, दान करता है, ब्राह्मणें का आदर करता है, अपना घर साफ सुथरा रखता है, घमण्ड नहीं करता, सरल व्यवहार करता है, मीठे वचन बोलता है, अतिथियों और घर आने वालों का सत्कार करता है, यज्ञ से बचे अन्न का भोजन करता है, अतिथि को पैर धोने का जल, सत्कार, आसन, बिछौना, दीपक तथा ठहरने का स्थान उचित रीति से देता है वह गृहस्थ धार्मिक होता है।

आश्रमाणां च सर्वेषां गार्हस्थ्यं नात्र संशयः।
लोकानामादिरव्यक्तं सर्वस्यान्तस्तदेव च।। आश्व० 44/17।।

सभी आश्रमों का आदि निस्सन्देह गृहस्थ आश्रम है। सारे संसार का आदि और अन्त अव्यक्त प्रकृति ही है।

गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः सर्वे गार्हस्थ्यमूलकाः।। आश्व० 45/13।।

जीवन में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम होते हैं। गृहस्थ आश्रम ही इन सब आश्रमों का आधार है।

गौ

गावः प्रतिष्ठमानानाम्।। वन० 313/56।।

प्रतिष्ठ प्राप्त धनियों के लिये गौ पालन सर्वश्रेष्ठ काम है।

सोमो गवामृतम्।। वन० 313/66।।

गाय का दूध अमृत है।

गन्धेन गावः पश्यन्ति।। उद्योग० 34/34।।

गौएं गन्ध से अपने साथियों आदि को पहचानती है।

भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा।
अथ या सुदुहा राजन् नैव तां वितुदन्त्यपि।। उद्योग० 34/35।।

राजन्! जो गाय बड़ी मुश्किल से दूध दुहने देती है उसे बहुत दुःख उठाना पड़ता है। आसानी से दूध देने वाली गाय को लोग कष्ट नहीं देते।

प्रधानाः सर्वलोकस्य यास्वायत्तमिदं जगत्।। भीष्म० 3/20।।

संसार में जिन्हें महत्त्वपूर्ण माना जाता है उन गौओं पर यह जगत् निर्भर है।

प्रहरेन्न नरेन्द्रेषु न हन्याद् गां तथैव च।
भ्रूणहत्यासमं चैव उभयं यो निषेवते।। अनुशासन 22/30।।

राजाओं पर प्रहार नहीं करना चाहिये और गो हत्या नहीं करनी चाहिये। ये दोनों ही बातें भ्रूणहत्या जैसी हैं।

गौभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किंचिदिहाच्युत।। अनु० 51/26।।

अपनी मर्यादा से न गिरने वाले राजन्! मैं संसार में गौओं के समान कोई दूसरा धन नहीं देखता।

गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते।
अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हविः।। अनुशासन 51/28।।

गायें सदैव लक्ष्मी का आधार हैं। उनमें तनिक भी पाप नहीं होता। गौएँ मनुष्यों को सदा अन्न देती हैं और देवताओं को घी की आहुति आदि के द्वारा यज्ञ का हविष्य प्रदान करती है।

अमृतं ह्यव्ययं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च।
अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः।। अनुशासन 51/30।।

गौएं कभी न बिगड़ने वाला दिव्य अमृत धारण करती हैं और दुहने पर अमृत ही देती हैं। वे अमृत की आधार हैं। सारा संसार उन्हें प्रणाम करता है।

तेजसा वपुषा चैव गावो वह्निसमा भुवि।
गावो हि सुमहत् तेजः प्राणिनां च सुखप्रदाः।। अनु० 51/31।।

इस पृथ्वी पर गायें अपने शरीर और तेज से अग्नि के समान है। वे तेज की महान् राशि हैं। गौएं सारे प्राणियों को सुख देती हैं।

निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चति निर्भयम्।
विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति।। अनुशासन 51/32।।

गौओं का झुण्ड जिस स्थान पर बैठकर निर्भय होकर श्वास लेता है वह उस जगह की शोभा बढ़ा देता है और वहां के सारे पापों को खींच लेता है।

गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः।
गावः कामदुहो देव्यो नान्यत् किंचित् परं स्मृतम्।। अनु० 51/33।।

गायें स्वर्ग की सीढ़ी हैं। उनकी स्वर्ग में भी पूजा की जाती है। वे सभी कामनाएँ पूरी करने वाली देवियाँ हैं। उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है।

पयसा हविषा दध्ना शकृता चाथ चर्मणा।
अस्थिभिश्चोपकुर्वन्ति शृंगैर्बालैश्च भारत।। अनुशासन 66/39।।

भरतनन्दन! गायें अपने दूध, दही, घी, गोबर, चमड़े, हड्डी, सींग और बालों से भी जगत् का उपकार करती रहती हैं।

अमृतं वै गवां क्षीरमित्याह त्रिदशाधिपः।
तस्माद् ददाति यो धेनुममृतं स प्रयच्छति।। अनुशासन 66/46।।

स्वर्ग के राजा इन्द्र ने कहा है कि गाय का दूध अमृत है इसलिये जो व्यक्ति गौ का दान करता है वह अमृत का दान करता है।

न वधार्थं प्रदातव्या न कीनाशे न नास्तिके।
गौजीविने न दातव्या तथा गौर्भरतर्षभ।। अनुशासन 66/51।।

भरतश्रेष्ठ! गाय को मारने के लिये नहीं देना चाहिये। इसी प्रकार कसाई, नास्तिक और गाय से जीविका चलाने वाले को भी गाय नहीं देनी चाहिये।

पितृसद्मानि सततं देवतायतनानि च।
पूयन्ते शकृता यासां पूतं किमधिकं ततः।। अनुशासन 69/11।।

जिनके गोबर से लीपने पर देवताओं के मन्दिर और पितरों के श्राद्ध स्थान पवित्र होते हैं उन गायों से बढ़कर पवित्र और क्या वस्तु या प्राणी हो सकता है।

कल्मषं गुरुशुश्रूषा हन्ति मानो महद् यशः।
अपुत्रतां त्रयः पुत्रा अवृत्तिं दश धेनवः।। अनुशासन 69/19।।

गुरुजनों की सेवा सभी पाप नष्ट कर देती है। घमण्ड से महान् यश नष्ट हो जाता है। तीन पुत्र, पुत्रहीनता की कमी दूर कर देते हैं और दूध देने वाली दस गाएँ जीविका के अभाव को दूर कर देती हैं।

लोकान् सिसृक्षुणा पूर्वं गावः सृष्टाः स्वयम्भुवा।
वृत्त्यर्थं सर्वभूतानां तस्मात् ता मातरः स्मृताः।।
अनु० 145 दा० पा० अ०XI।।

संसार की रचना करने की इच्छा वाले स्वयम्भू ब्रह्मा ने सभी प्राणियों के जीवन के लिये सबसे पहिले गौओं की सृष्टि की इसीलिये गायों को माता कहा जाता है।

लोकज्येष्ठा लोकवृत्त्यां प्रवृत्ता मय्यायत्ताः सोमनिष्यन्दभूताः।
सौम्याः पुण्यदाः कामदाः प्राणदाश्च तस्मात् पूज्याः पुण्यकामैर्मनुष्यैः।।

अनु 145 दा० पा० XI।।

गौएँ सम्पूर्ण संसार में पूजनीय हैं। वे लोगों का जीवन निर्वाह करने में लगी रहती हैं। वे मेरे (ईश्वर) अधीन हैं। गौएँ, चन्द्रमा के अमृतमय रस से उत्पन्न हुई हैं। वे सौम्य, पुण्यशालिनी, कामनाएँ पूरी करने वाली, प्राण देने वाली हैं इसलिये वे पुण्य की इच्छा वाले मनुष्यों के लिये पूजनीय हैं।

नृशंसस्य कृतघ्नस्य लुब्धस्यानृतवादिनः।
हव्यकव्यव्यपेतस्य न दद्याद् गाः कथंचन।। अनु० 145 दा० पा० XI।।

क्रूर, कृतघ्न, लोभी, झूठे, यज्ञ न करने वाले और पितरों को अन्न की आहुति न देने वाले मनुष्य को कभी भी गाय नहीं देनी चाहिये।

गवां मूत्रपुरीषाणि नोद्विजेत कदाचन।
न चासां मांसमश्नीयाद् गोषु भक्तः सदा भवेत्।।

अनु० 145 दा० पा० XI।।

गायों के गोबर और मूत्र से कभी घृणा नहीं करनी चाहिये। गौओं का मांस नहीं खाना चाहिये। सदा गौओं का भक्त होना चाहिये।

गवामुभयतः काले नित्यं स्वस्त्ययनं वदेत्।
न चासां चिन्तयेत् पापमिति धर्मविदो विदुः।। अनु० 145 दा० पा०XI।।

सवेरे और शाम प्रतिदिन गौओं के कल्याण की बात कहनी चाहिये। कभी उनका अनिष्ट नहीं सोचना चाहिये। ऐसा धर्म जानने वाले विद्वानों का मत है।

गावः पवित्रं परमं गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः।
कथंचिन्नावमन्तव्या गावो लोकस्य मातरः।। अनु० 145 दा० पा०XI।।

गौएँ बहुत पवित्र होती हैं। सभी लोकों का जीवन गौओं पर निर्भर है। गौओं का अपमान कभी भी नहीं करना चाहिये। गौएँ सारे संसार की माता हैं।

गोषु पूजा च भक्तिश्च नरस्यायुष्यतां वहेत्।। अनु० 145 दा० पा०XI।।

गौओं की पूजा और भक्ति करने से मनुष्य दीर्घायु होता है।

न क्षुत्तृष्णाश्रमश्रान्तान् वाहयेद् विकलेन्द्रियान्।
अतृप्तेषु न भुञ्जीयात् पिबेत् पीतेषु चोदकम्।।

आश्व० 92 दा० पा० अ X।।

जब बैल भूख, प्यास और मेहनत से थके हुए हों और परेशान हों तब उन्हें गाड़ी में नहीं जोतना चाहिये। जब तक बैलों का पेट न भर जाये तबतक स्वयं भोजन नहीं करना चाहिये। बैलों को पानी पिलाये बिना स्वयं पानी नहीं पीना चाहिये।

पितरो वृषभा ज्ञेया गावो लोकस्य मातरः। आश्व०92 दा० पा०अ XIV।।

बैलों को जगत् का पिता और गायों को संसार की माता मानना चाहिये।

सभा प्रपा गृहाश्चापि देवतायतनानि च।
शुद्ध्यन्ति शकृता यासां किं भूतमधिकं ततः।।

आश्व० 92 दा० पा० अ XIV।।

गायों के गोबर से सभा-स्थल, घर, प्याऊ और मन्दिर भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिये गायों से बढ़कर और कौनसा प्राणी हो सकता है।

गावो यज्ञार्थमुत्पन्ना दक्षिणार्थं तथैव च।
सुवर्णं रजतं चैव पात्रकुम्भार्थमेव च।। आश्व० 92 दा० पा० अ XVI।।

गौएँ, यज्ञ करने और दक्षिणा देने के लिये उत्पन्न हुई हैं। क्योंकि गोघृत की आहुति और दक्षिणा में गाय का दान दिया जाता है। यज्ञ के पात्र और कलश आदि बनाने के लिये सोना चाँदी बनाये गये।

चंचलता

आत्मनश्चपलो नास्ति कुतोऽन्येषां भविष्यति।। शान्ति० 138/139।।
तस्मात् सर्वाणि कार्याणि चपलो हन्त्यसंशयम्।।

चंचल बुद्धि या अस्थिर बुद्धि वाला व्यक्ति अपना भला नहीं कर सकता तो फिर वह दूसरों का क्या भला करेगा? चंचल चित्त व्यक्ति सभी काम बिगाड़ देता है।

चरित्र

तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्वदर्शिनः।। वन० 180/33।।

तत्त्वदर्शी विद्वान् चरित्र को प्रधान मानते हैं और चरित्र को ही इष्ट समझते हैं।

वृत्तं यत्नेन सरंक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।। वन० 313/108।।

प्रयत्नपूर्वक सभी को चरित्र की रक्षा करनी चाहिये विशेषरूप से ब्राह्मण को। जिसका चरित्र नष्ट नहीं होता उसका ब्रह्मणत्व भी नष्ट नहीं होता। चरित्र भ्रष्ट होने से व्यक्ति नष्ट हो जाता है।

न कुलं कृतहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः।
अन्तेष्वपि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते।। उद्योग० 34/41।।

मेरे विचार से सदाचरण से हीन मनुष्य का ऊँचा कुल मान्य नहीं हो सकता। नीच कुल में उत्पन्न मनुष्य का सदाचार ही श्रेष्ठ माना जाता है।

कुलं वृत्तेन रक्ष्यते।। उद्योग० 34/39।।

सदाचार से कुल की रक्षा होती है।

सर्वं शीलवता जितम्।। उद्योग० 34/47।।

चरित्रवान् मनुष्य सब पर विजय पा लेता है।

शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः।। उद्योग० 34/48।।

पुरुष में चरित्र ही मुख्य गुण होता है। जिसका चरित्र नष्ट हो जाता है उसका इस संसार में जीवन, धन और बन्धु बान्धवों से कोई लाभ नहीं होता है।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणोवृत्तस्तु हतो हतः।। उद्योग० 36/30।।

अपने चरित्र की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। धन तो आता जाता रहता है। धन से रहित चरित्रवान व्यक्ति हीन नहीं माना जाता किन्तु सदाचार से रहित व्यक्ति नष्ट हो जाता है।

गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः।। उद्योग० 36/31।।

जो कुल सदाचार से रहित होते हैं वे गायों, पशुओं, घोड़ों और खेतीबारी से समृद्ध होने पर भी उन्नति नहीं कर पाते हैं।

वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया।। उद्योग० 90/53।।

कोई पुरुष अपने चरित्र से ही श्रेष्ठ होता है धन या विद्या से नहीं।

आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम्।
आचाराच्छ्रियमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम्।। उद्योग० 113/15।।

अच्छा चरित्र ही धर्म को सफल बनाता है। सच्चरित्र से ही धन मिलता है। सदाचार से ही कल्याण और प्रतिष्ठा होती है। अच्छा आचरण अशुभ को नष्ट कर देता है।

शीलेन हि त्रयो लोकाः शक्या जेतुं न संशयः।
न हि किंचिदसाध्यं वै लोके शीलवतां भवेत्।। शान्ति० 124/15।।

सच्चरित्र के द्वारा तीनों लोकों पर निश्चय ही विजय पाई जा सकती है। सच्चरित्र व्यक्तियों के लिये संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है।

धर्मः सत्यं तथा वृत्तं बलं चैव तथाप्यहम्।
शीलभूता महाप्राज्ञ सदा नास्त्यत्र संशयः।। शान्ति० 124/62।।

धर्म, सत्य, सदाचार, बल और मैं (लक्ष्मी) ये सब सदा सच्चरित्र के आधार पर ही रहते हैं। इन सबकी जड़ निस्सन्देह शील ही है।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते।। शान्ति० 124/66।।

मन, वचन और और कर्म से किसी भी प्राणी से द्रोह न करना, सब पर दया करना और दान देना यही शील कहलाता है। जिसकी प्रशंसा की जाती है।

यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम्।
अपत्रपेत वा येन न तत् कुर्यात् कथंचन।। शान्ति० 124/67।।

अपना जो भी काम या पुरुषार्थ दूसरों के लिये हितकारी न हो या जो काम करने में संकोच लगता हो वह काम कभी नहीं करना चाहिये।

तत्तु कर्म तथा कुर्याद् येन श्लाघ्येत संसदि।
शीलं समासेनैतत् ते कथितं कुरुसत्तम।। शान्ति० 124/68।।

जो काम करने से मनुष्य की भरी सभा में प्रशंसा हो वही काम करना चाहिये। कुरुश्रेष्ठ! संक्षेप में यही शील है।

आचारमेव मन्यन्ते गरीयो धर्मलक्षणम्।। शान्ति० 132/15।।

श्रेष्ठपुरुष सच्चरित्र को ही धर्म का मुख्य लक्षण मानते हैं।

न बान्धवा न च वित्तं न कौल्यं न च श्रुतं न च मन्त्रा न वीर्यम्।
दुःखात् त्रातुं सर्व एवोत्सहन्ते परत्र शीलेन तु यान्ति शान्तिम्।।
शान्ति० 286/15।।

बन्धु-बान्धव, धन, उत्तम कुल, विद्याध्ययन, मन्त्र तथा पराक्रम ये सब मिलकर भी किसी को दुःख से छुटकारा नहीं दिला सकते। परलोक में मनुष्य अपने चरित्र के कारण ही शान्ति प्राप्त करता है।

आचारल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम्।
आचारात् कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च।। अनुशासन 104/6।।

सदाचार से ही मनुष्य की आयु लम्बी होती है। सदाचार से ही मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करता है। इस जीवन में तथा परलोक में भी उसे सदाचार के कारण ही यश मिलता है।

दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत्।। अनुशासन 104/7।।

दुराचारी मनुष्य की आयु लम्बी नहीं होती।

आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणाः।
साधूनां च यथावृत्तमेतदाचारलक्षणम्।। अनुशासन 104/9।।

सदाचार ही धर्म का लक्षण है। श्रेष्ठ पुरुषों की पहिचान उनकी सच्चरित्रता से होती है। श्रेष्ठ पुरुष जैसा व्यवहार करते हैं वही सदाचार का लक्षण होता है।

अप्यदृष्टं श्रवादेव पुरुषं धर्मचारिणम्।
भूतिकर्माणि कुर्वाणं तं जनाः कुर्वते प्रियम्।। अनुशासन 104/10।।

जो मनुष्य धर्म का पालन करता है और परोपकार के कामों मे लगा रहता है उसे देखे बिना भी लोग उससे स्नेह करने लगते हैं।

सर्वलक्षणहीनोऽपि समुदाचारवान् नरः।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति।। अनुशासन 104/13।।

सभी तरह के शुभ लक्षणों से रहित होने पर भी जो मनुष्य सदाचारी, श्रद्धालु होता है और दोष देखने की आदत वाला नहीं होता वह सौ वर्ष तक जीता है।

अक्रोधनः सत्यवादी भूतानमविहिंसकः।
अनसूयुरजिह्मश्च शतं वर्षाणि जीवति।। अनुशासन 104/14।।

क्रोध न करने वाला, सत्य बोलने वाला, प्राणियों की हिंसा न करने वाला, ईर्ष्या न करने वाला और सरल व्यवहार करने वाला पुरुष सौ वर्ष तक जीता है।

आचारो भूतिजननः आचारः कीर्तिवर्धनः।
आचाराद् वर्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम्।। अनु० 104/154।।

सदाचार ही कल्याणकारी है और यश बढ़ाता है। सदाचार से आयु बढ़ती है और सच्चरित्र ही बुरे लक्षणों को नष्ट कर देता है।

आगमानां हि सर्वेषां आचारः श्रेष्ठ उच्यते।
आचार प्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते।। अनुशासन 104/155।।

सभी शास्त्रों में सदाचार को श्रेष्ठ बताया गया है। सदाचार से धर्म उत्पन्न होता है और धर्म से आयु बढ़ती है।

चार ऋण

पितृदेवर्षिमनुजैर्देयं तेभ्यश्च धर्मतः।। आदि० 119/18।।
यज्ञैस्तु देवान् प्रीणाति स्वाध्यायतपसा मुनीन्।। आदि० 119/19।।
पुत्रैः श्राद्धैः पितृंश्चापि आनृशंस्येन मानवान्।। आदि० 119/20।।

मनुष्य के ऊपर पितृ, देव, ऋषि और मनुष्य, ये चार ऋण होते हैं। यज्ञों द्वारा मनुष्य देवताओं को तृप्त कर देव ऋण चुकाता है और स्वाध्याय तथा तपस्या से ऋषि ऋण। पुत्र उत्पन्न करके और श्राद्ध करके वह पितृ ऋण से छूटता है तथा सरल व्यवहार द्वारा मनुष्य ऋण से मुक्ति पाता है।

जन्म

शुभैर्लभति देवत्वं व्यमिश्रैर्जन्म मानुषम्।
अशुभैश्चाप्यधो जन्म कर्मभिर्लभतेऽवशः।। शान्ति० 329/25।।

जीव सदा अपने कर्मों से बंधा रहता है। उसे अच्छे कर्म करने पर देवयोनि, अच्छे और बुरे कर्म करने पर मनुष्य जन्म और बुरे कर्प करने पर नीच योनि मिलती है।

तत्र मृत्युजरादुःखै सततं समभिद्रुतः।
संसारे पच्यते जन्तुस्तत्कथं नावबुद्ध्यसे।। शान्ति० 329/26।।

इन सभी योनियों में जीव को बुढ़ापा, मृत्यु और नानाविध दुखों से घिरा रहकर कष्ट उठाने पड़ते हैं। उसे दुःख और संताप की आग में पकाया जाता है। तुम यह बात क्यों नहीं समझ पा रहे हो?

वर्जयन्ति च पापानि जन्मप्रभृति ये नराः।
अरोगा रूपवन्तस्ते धनिनश्च भवन्त्युत।। अनु० 111/129।।

जो लोग अपने जीवन में कोई पाप नहीं करते वे नीरोग, सुन्दर और धनी होते हैं।

तिर्यग्योन्याः शूद्रतामभ्युपैति शूद्रो वैश्यं क्षत्रियत्वं च वैश्यः।
वृत्तश्लाघी क्षत्रियो ब्राह्मणत्वं स्वर्गं पुण्यं ब्राह्मणः साधुवृत्तः।।
अनु० 118/24।।

पशु-पक्षी की योनि में पड़ा हुआ जीव जब उन्नति करने लगता है तब वह अपनी योनि छोड़कर शूद्र के घर जन्म लेता है। शूद्र-व्यक्ति वैश्य बन जाता है और वैश्य योनि का मनुष्य क्षत्रिय बन जाता है। सदाचारी क्षत्रिय ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है और सदाचारी ब्राह्मण पुण्यशाली स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।

ये मृताः सहसा मर्त्या जायन्ते सहसा पुनः।
तेषां पौराणिकोऽभ्यासः कंचित् कालं हि तिष्ठति।
अनु० 145 दा० पा० अ० IX।।

जिन लोगों की मृत्यु किसी दुर्घटना आदि के कारण अचानक हो जाती है और ऐसे लोगों का अगला जन्म भी जल्दी ही हो जाता है उन्हें पहिले जन्म के संस्कार और स्मृतियाँ कुछ समय तक अगले जन्म में बनी रहती हैं।

तस्माज्जातिस्मरा लोके जायन्ते बोधसंयुताः।
तेषां विवर्धतां संज्ञा स्वप्नवत् सा प्रणश्यति।।
परलोकस्य चास्तित्वे मूढानां कारणं त्विदम्।।
अनु० 145 दा० पा० अ०IX।।

इसीलिये ऐसे लोगों को पहिले जन्म की बातें अगले जन्म में याद रहती हैं। ये जातिस्मर लोग जैसे जैसे बड़े होने लगते हैं वैसे वैसे ही उनकी पूर्वजन्म की बातें स्वप्न की तरह नष्ट होने लगती हैं। ऐसी घटनाएँ मूर्ख लोगों को परलोक की सत्ता पर विश्वास कराती हैं।

जय

जयो दैवे प्रतिष्ठितः।। द्रोण 145/30, 158/70।।

विजय भाग्य के अधीन होती है।

जयं जानीत धर्मस्य मूलं सर्वसुखस्य च।
या भीरूणां परा ग्लानिः शूरास्तामधिगच्छति।। शान्ति० 100/40।।

युद्ध में विजय को ही धर्म और सारे सुखों का आधार समझो। डरपोक मनुष्य जिससे बहुत घबराते हैं वीर पुरुष उसी मृत्यु को गले लगाते हैं।

उदीर्णमनसो योधा वाहनानि च भारत।
यस्यां भवन्ति सेनायां ध्रुवं तस्यां परो जयः।। शान्ति० 102/5।।

भरतनन्दन! जिस सेना के सैनिकों और हाथी घोड़ों आदि सवारियों के मन में प्रसन्नता और उत्साह भरा होता है उस सेना की उत्तम विजय अवश्य होती है।

जघन्य एव विजयो यद् युद्धं नाम भारत।
याद्दच्छिको युधि जयो दैवो वेति विचारणम्।। शा० 102/17।।

भरतनन्दन! युद्ध करके प्राप्त हुई विजय निकृष्ट होती है। युद्ध में विजय अचानक मिल जाती है या भाग्य से यह बात विचारणीय है।

जल

पानीयं परमं लोके जीवानां जीवनं स्मृतम्।
पानीयस्य प्रदानेन तृप्तिर्भवति पाण्डव।
पानीयस्य गुणा दिव्याः परलोके गुणावहाः।।

आश्व० 92 दा० पा० अ VI।।

हे पाण्डु पुत्र! संसार में पानी प्राणियों का परम जीवन है। जल का दान करने से प्राणियों की तृप्ति होती है। जल में अनेक दिव्य गुण हैं। ये गुण परलोक में भी लाभ प्रदान करते हैं।

अग्नेर्मूतिः क्षितेर्योनिरमृतस्य च सम्भवः।
अतोऽम्भः सर्वभूतानां मूलमित्युच्यते बुधैः।।

आश्व० 92 दा० पा० अ VI।।

जल, अग्नि की मूर्ति (स्वरूप) है। जल, पृथ्वी की योनि (कारण) है। जल, अमृत की उत्पत्ति का स्थान है। इसलिये बुद्धिमान पुरुषों का कहना है कि जल, सभी प्राणियों का आधार (मूल) है।

अद्भिः सर्वाणि भूतानि जीवन्ति प्रभवन्ति च।
तस्मात् सर्वेषु दानेषु तोयदानं विशिष्यते।।

आश्व० 92 दा० पा० अ VI।।

जल से संसार के सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं और जीवित रहते हैं अत: सभी दानों में जल का दान सबसे उत्तम माना जाता है।

ज्ञान

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।।

भीष्म० 28/33।। गीता 4/33।।

हे अर्जुन! सारे कर्म, ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।। भीष्म० 28/36।। गीता 4/36।।

ज्ञानरूपी नाव से सभी पापों से भली-भाँति तर जाओगे।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।।

भीष्म० 28/37।। गीता 4/37।।

हे अर्जुन! ज्ञान की अग्नि सभी कर्मों को भस्म कर डालती है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।। भीष्म० 28/38।। गीता 4/38।।

इस जगत् में ज्ञान से अधिक पवित्र और कोई वस्तु नहीं है।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।

भीष्म० 28/39।। गीता 4/39।।

मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर परमात्मा प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त करता है।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।।

भीष्म० 29/15।। गीता 5/15।।

तत्त्वज्ञान को अज्ञान ने छिपाया हुआ है इसीलिये प्राणी भ्रम में पड़े रहते हैं।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः।।

भीष्म 37/7; गीता 13/7।।

मान या अहंकार न होना, दम्भ या पाखण्ड न करना, अहिंसा, क्षमा, सरल व्यवहार, बड़ों के प्रति आदरभाव, शरीर और मन की पवित्रता, स्थिरता अर्थात् चंचलता रहित व्यवहार और आत्म संयम।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्म मृत्यु जरा व्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्।।

भीष्म० 37/8; गीता 13/8।।

इन्द्रियों को अच्छे लगने वाले भोग्य पदार्थें के प्रति वैराग्य, अनहंकार अर्थात् अपने बड़प्पन का मद न होना, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोग में जो दुःख और बुराइयाँ हैं उन्हें भली-भाँति समझना।

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु।। भीष्म० 37/9; गीता 13/9।।

किसी भी वस्तु से लगाव न रखना, पुत्र, पत्नी और घर आदि में भी बहुत ममता न होना, भला या बुरा, कुछ भी होने पर अपने मन को एक सा बनाये रखना।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।

विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।। भीष्म० 37/10; गीता 13/10।।

मुझ ईश्वर में अनन्य भक्ति, एकान्त स्थान में रहना और भीड़ से बचना।

अध्यात्मज्ञान नित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा।।

भीष्म० 37/11; गीता 3/11।।

आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान पाने के लिये सदा प्रयत्न करना, तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिये सदा रुचि बनाये रखना-इन बीस वृतियों या आचरणों को ज्ञान कहते हैं। इनके अतिरिक्त सब बातें अज्ञान की श्रेणी में हैं।

सात्त्विक ज्ञान

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।। भीष्म० 42/20।।

सात्त्विक ज्ञान वह होता है जिसके द्वारा सभी प्राणियों में एक ही अविनाशी

परमात्मा की सत्ता दिखाई देती है। ऐसे ज्ञान से उसे अलग अलग प्राणियों में एक ही ईश्वर दिखाई देता है।

राजसिक ज्ञान

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।। भीष्म० 42/21।।

जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य सभी प्राणियों में नाना प्रकार के भिन्न भिन्न स्वरूप देखता है ऐसा ज्ञान राजसिक कहलाता है।

तामसिक ज्ञान

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम्।।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत् तामसमुदाहृतम्।। भीष्म० 42/22।।

जो व्यक्ति पंचभूतों से बने या इनके कार्य अपने शरीर को ही सब कुछ समझता है और उसमें आसक्त रहता है, ऐसा ज्ञान तामसिक होता है।

ज्ञाननिष्ठेषु कार्याणि प्रतिष्ठाप्यानि पाण्डव।। शान्ति० 26/6।।

अर्जुन! ज्ञानवान महापुरुषों को ही सभी तरह के काम सौंपने चाहिये।

उन्मत्ताहमनुन्मत्तं कान्तमन्ववसं चिरम्।
अन्तिके रमणं सन्तं नैनमध्यगमं पुरा।। शान्ति० 174/58।।

मेरे प्रियतम बहुत समय से मेरे ही पास रह रहे हैं। मैं भी उनके साथ ही रहती रही हूँ। मेरे प्रिय कभी उन्मत्त नहीं होते किन्तु मैं पगली अबतक उन्हें पहिचान नहीं पाई।

एकस्थूणं नवद्वारमपिधास्याम्यगारकम्।
का हि कान्तमिहायान्तमयं कान्तेति मंस्यते।। शान्ति० 174/59।।

जिस शरीर रूप घर में एक खम्भा और नौ दरवाजे हैं उसे मैं आज से दूसरों के लिये बन्द कर दूँगी। यहाँ आने वाले सच्चे प्रियतम को जानकर भी कौन नारी हाड़ मांस के पुरुष को अपना प्रियतम मानेगी?

अकामां कामरूपेण धूर्ता नरकरूपिणः।
न पुनर्वञ्चयिष्यन्ति प्रतिबुद्धास्मि जागृमि।। शान्ति० 174/60।।

अब मैंने सभी कामनाओं-इच्छाओं को छोड़ दिया है। मैं मोह निद्रा से जाग उठी हूँ। इसलिये ये नरक के साक्षात् रूप धूर्त मनुष्य कामवासना का रूप धरकर मुझे फिर नहीं ठग सकेंगे। मैं सावधान हूँ।

अनर्थो हि भवेदर्थो दैवात् पूर्वकृतेन वा।
सम्बुद्धाहं निराकारा नाहमद्याजितेन्द्रिया।। शान्ति० 174/61।।

कभी कभी भाग्य से या पिछले जन्म के कर्मों से अनर्थ भी अर्थ बन जाता है। अपने प्रेमी से निराश होकर मैं जाग गई हूँ। मुझे तत्त्वज्ञान हो गया है। अब मेरे जीवन में संयम आ गया है।

सुखं निराशः स्वपिति नैराश्यं परमं सुखम्।
आशामनाशां कृत्वा हि सुखं स्वपिति पिङ्गला।। शान्ति० 174/62।।

निराश अर्थात् जिसके मन में कोई आशा नहीं होती वह मनुष्य सुखपूर्वक सोता है। मन में किसी तरह की आशा का न होना ही सबसे बड़ा सुख है। पिंगला वेश्या प्रेमी के आने की आशा से छूटकर सुख की नींद सोने लगी।

इष्टं त्वनिष्टं च न मां भजेतेत्येतत्कृते ज्ञानविधिः प्रवृत्तः।।

शान्ति० 201/11।।

मुझे इष्ट और अनिष्ट फल दोनों ही न मिलें इसके लिये ज्ञानयोग का उपदेश किया गया है।

नेत्रहीनो यथा ह्येकः कृच्छ्राणि लभतेऽध्वनि।
ज्ञानहीनस्तथा लोके तस्माज्ज्ञानविदोऽधिकाः।। शा० 214/4।।

जैसे अन्धा व्यक्ति अकेले रास्ता चलता हुआ अनेक दुःख उठाता है वैसे ही अज्ञानी पुरुष संसार में दुखी रहता है इसलिये ज्ञानी पुरुष ही सबसे श्रेष्ठ हैं।

तरुणाधिगतं ज्ञानं जरादुर्बलतां गतम्।
विपक्वबुद्धिः कालेन आदत्ते मानसं बलम्।। शान्ति० 214/28।।

युवावस्था में प्राप्त किया हुआ ज्ञान वृद्धावस्था में घट जाता है। परन्तु परिपक्व बुद्धि वाला मनुष्य समयानुसार ऐसा मानसिक बल प्राप्त कर लेता है कि उसका ज्ञान कभी नहीं घटता।

ज्ञानमेव महाराज सर्वदुखविनाशनम्।। शान्ति० 222/44।।

महाराज! ज्ञान ही सम्पूर्ण दुखों को नष्ट करने वाला है।

ज्ञानवानेव कर्माणि कुर्वन् सर्वत्र सिध्यति।। शा० 238/1।।

ज्ञानयुक्त पुरुष ही कर्म करता हुआ सब जगह सफलता पाता है।

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते।
तस्मात् कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः।। शान्ति० 241/7।।

सकाम कर्म करने से मनुष्य जीवन-मरण के बन्धन में पड़ता है और तत्वज्ञान होने पर मुक्त हो जाता है। इसलिये इस संसार से कहीं आगे देखने वाले ज्ञानी मुनि सकाम कर्म नहीं करते हैं।

कर्मणा जायते प्रेत्य मूर्तिमान् षोडशात्मकः।
विद्यया जायते नित्यमव्यक्तं ह्यव्ययात्मकम्।। शान्ति० 241/8।।

सकाम कर्म करने से मनुष्य मृत्यु के बाद सोलह तत्त्वों पाँच इन्द्रियाँ और उनके पाँच विषय चेतना, स्वभाव, (ठण्डा गर्म आदि धर्म) मन, प्राण, अपान और जीव ये 16 तत्त्व के बने हुए दिखाई देने वाले शरीर को धारण करके जन्म लेता है। किन्तु ज्ञान के प्रभाव से जीव नित्य, अव्यक्त और अविनाशी परमात्मा को प्राप्त करता है।

कर्मणा फलमाप्नोति सुखदुःखे भवाभवौ।
विद्यया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति।। शान्ति० 241/11।।

सकाम कर्मों से मनुष्य सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदि फल पाता है किन्तु ज्ञान से वह परम पद प्राप्त कर लेता है जहां पहुँच कर वह दुखों से छूट जाता है।

द्वन्द्वैर्न बाध्यन्ते मानसेन च कर्मणा।
समाः सर्वत्र मैत्राश्च सर्वभूत हिते रताः।। शान्ति० 241/14।।

तत्त्वज्ञानी मनुष्य को सुख-दुख आदि द्वन्द्व, मानसिक संकल्प और कर्मों के संस्कार परेशान नहीं करते। ऐसा मनुष्य सभी को समदृष्टि से देखता है। वह सबको मित्र मानता है और सभी प्राणियों का भला करता है।

तमो रजश्च सत्त्वं च विद्धि जीवगुणात्मकम्।
जीवमात्मगुणं विद्यादात्मानं परमात्मनः।। शान्ति० 241/19।।

सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों को बुद्धि का गुण समझना चाहिये। इनके सम्बन्ध से जीव, गुणस्वरूप और गुण, जीवस्वरूप लगते हैं। वास्तव में जीवात्मा, परमात्मा का ही अंश है, ऐसा समझना चाहिये।

ज्ञानं प्लावयते सर्वं यो ज्ञानं ह्यनुवर्तते।
ज्ञानादपेत्य या वृत्तिः सा विनाशयति प्रजाः।। शान्ति० 269/50।।

जो ज्ञान का अनुसरण करता है ज्ञान उसे सारे सांसारिक बन्धनों से छुड़ा देता है। ज्ञान के बिना किया गया कोई भी काम प्रजा को जन्म-मरण के चक्र में डालकर नष्ट कर डालता है।

शरीरपक्तिः कर्माणि ज्ञानं तु परमा गतिः।
कषाये कर्मभिः पक्वे रसज्ञाने च तिष्ठति।। शान्ति० 270/38।।

कर्म, स्थूल और सूक्ष्म शरीर की शुद्धि करते हैं किन्तु ज्ञान परमगति है। जब कर्मों द्वारा चित्त के राग आदि दोष जल जाते हैं तब मनुष्य रसस्वरूप ज्ञान में स्थित हो जाता है।

असङ्गः श्रेयसो मूलं ज्ञानं चैव परा गतिः।
चीर्णं तपो न प्रणश्येद् वापःक्षेत्रे न नश्यति।। शान्ति० 298/3।।

आसक्ति न होना श्रेय का मूल कारण है। ज्ञान ही सबसे उत्तम गति है। स्वयं किया हुआ तप तथा सुपात्र को दिया गया दान नष्ट नहीं होता।

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत्।
न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानास्याधिगमः स्मृतः।। शान्ति० 326/22।।

ज्ञान-विज्ञान के बिना मोक्ष नहीं मिलता। गुरु से पढ़े बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

गुरु प्लाविता तस्य ज्ञानं प्लव इहोच्यते।
विज्ञाय कृतकृत्यस्तु तीर्णस्तदुभयं त्यजेत्।। शान्ति० 326/23।।

गुरु इस संसार सागर से पार उतारने वाले हैं। उनका दिया हुआ ज्ञान नौका जैसा होता है। मनुष्य उस ज्ञान को पाकर भवसागर से पार और कृतकृत्य हो जाता है। संसार से मुक्त हुआ पुरुष ज्ञान और गुरु इन दोनों को ही छोड़ दे।

शक्यते ह्यागमादेव गतिं प्राप्तुमनामयम्।। अनुशासन 96 दा० पा०।।

मनुष्य को शास्त्र ज्ञान से ही उत्तम गति मिल सकती है।

न चाप्यक्षीणपापस्य ज्ञानं भवति देहिनः।
ज्ञानोपलब्धिर्भवति कृतकृत्यो यदा भवेत्।। अनु० 96 दा० पा०।।

जिस मनुष्य के पाप कम नहीं हुए हैं उसे ज्ञान नहीं होता। मनुष्य को जब ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब वह कृतार्थ अनुभव करने लगता है।

एवमेव हि नोत्सेको कर्तव्यो ज्ञानसम्भवः।
फलं ज्ञानस्य हि शमः प्रशमाय यतेत् सदा।। अनु० 96 दा० पा०।।

किसी भी मनुष्य को अपने ज्ञान का अभिमान नहीं करना चाहिये। ज्ञान का फल शान्ति होता है अतः मनुष्य को सदा शान्त रहने का प्रयत्न करना चाहिये।

प्रज्ञानं शौचमेवेह शरीरस्य विशेषतः।
तथा निष्किंचनत्वं च मनसश्च प्रसन्नता।। अनु० 108/11।।

इस संसार में उत्कृष्ट ब्रह्मज्ञान ही शरीर शुद्धि का विशेष उपाय है। इसी प्रकार कुछ न चाहने और मन को प्रसन्न रखने से भी शरीर शुद्ध और पवित्र रहता है।

वृत्तशौचं मनःशौचं तीर्थशौचमतः परम्।
ज्ञानोत्पन्नं च यच्छौचं तच्छौचं परमं स्मृतम्।। अनु० 108/12।।

आचार-व्यवहार की पवित्रता, मन की पवित्रता और तीर्थ की पवित्रता से भी अधिक ज्ञान से प्राप्त पवित्रता श्रेष्ठ होती है।

अध्यात्मतत्त्वविज्ञानं ज्ञानमित्यभिधीयते।। अनु० 145 दा० पा० अ०XIV।।

अध्यात्मतत्त्व को भली-भाँति समझ लेना ही ज्ञान कहलाता है।

न चैकसाध्यं पश्यामि विज्ञानं भुवि कस्यचित्।। अनु० 146/23।।

मैं पृथ्वी पर ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं देखती जिसे कोई अकेला ही जान सके।

हेतूनामन्तमासाद्य विपुलं ज्ञानमुत्तमम्।। अनु० 162/8।।

सारे तर्क समाप्त हो जाने के बाद जो ज्ञान प्राप्त होता है, वही उत्तम ज्ञान होता है।

सुखःदुखे यथा सम्यगनित्ये यः प्रपश्यति।
कायं चामेध्यसंघातं विनाशं कर्मसंहितम्।। आश्व० 18/31।।
यच्च किंचित्सुखं तच्च दुःखं सर्वमिति स्मरन्।
संसार सागरं घोरं तरिष्यति सुदुस्तरम्।। आश्व० 18/32।।

जो मनुष्य यह बात भली-भाँति जान लेता है कि सुख और दुःख सदा रहने वाले नहीं हैं। मेरा यह शरीर मल-मूत्र, मांस, मज्जा आदि अपवित्र वस्तुओं से भरा हुआ है। मेरी मृत्यु मेरे पूर्व जन्म और इस जन्म के कर्मों के फलस्वरूप होगी। इस संसार में जो कुछ सुख दिखाई दे रहा है वह सब वास्तव में दुःख ही है। ये सब बातें समझने वाला इस संसार-सागर को पार कर लेता है।

ज्ञानस्यान्तो न विद्यते।। आश्व० 44/21।।

ज्ञान का कोई अन्त नहीं है।

ज्ञानं ब्रह्म परं विदुः।। आश्व० 47/1।।

ज्ञान को ही परब्रह्म का स्वरूप मानते हैं।

ज्ञानेन तपसा चैव धीराः पश्यन्ति तत् परम्।। आश्व० 47/3।।

धीर पुरुष, ज्ञान और तपस्या से परब्रह्म को साक्षात् देखते हैं।

तपः प्रदीप इत्याहुराचारो धर्मसाधकः।
ज्ञानं वै परमं विद्यात् संन्यासं तप उत्तमम्।। आश्व० 47/5।।

तपस्या, परमात्मा को प्रकाशित करने वाला दीपक है। पवित्र आचरण धर्म का साधक है। ज्ञान, परब्रह्म स्वरूप है और संन्यास श्रेष्ठ तप है।

ज्ञानं निःश्रेय इत्याहुर्वृद्धा निश्चितदर्शिनः।। आश्व० 50/3।।
तस्माज्ज्ञानेन शुद्धेन मुच्यते सर्वकिल्विषैः।

निश्चित तत्त्व परमात्मा का साक्षात् करने वाले अनुभवी वृद्ध लोगों के अनुसार ज्ञान ही कल्याण का कारण है। इसलिये पवित्र ज्ञान से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है।

विद्यामयोऽयं पुरुषो न तु कर्ममयः स्मृतः।। आश्व० 51/32।।

पुरुष (आत्मा) ज्ञानमय है, कर्ममय (सकामकर्म वाला) नहीं है।

गतिरेषा तु मुक्तानां ये ज्ञानपरिनिष्ठिताः।
प्रवृत्तयश्च याः सर्वाः पश्यन्ति परिणामजाः।। आश्व० 51/37।।

ज्ञाननिष्ठ जीवनमुक्त पुरुषों की यही परमगति है क्योंकि वे संसार के सभी कामों को शुभ-अशुभ फल देने वाला समझते हैं।

जीवन

अहो ह्यनित्यं मनुष्यं जलबुद्बुदचञ्चलम्।। द्रोण० 78/17।।

अहो! यह मनुष्य जीवन पानी के बुलबुले की तरह चंचल और अनित्य है।

जीवन् भद्राणि पश्यति।। कर्ण० 88 दा० पा० 24-25।।

जीवित रहने वाला पुरुष ही सुख और कल्याण को भोगता है।

अदर्शनादापतिताः पुनश्चादर्शनं गताः।
नैते तव न तेषां त्वं तत्र का परिदेवना।। स्त्री० 2/13।।

ये सब पुत्र और सम्बन्धी अद्दश्य जगत् से आये थे और अब फिर उसी न दीखने वाले संसार में चले गये। वे आपके नहीं थे और न ही तुम उनके थे इसलिये शोक किसलिये और किसके लिये किया जाय?

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्।। स्त्री० 2/21।।

हम सबने इस संसार में बार-बार जन्म लेकर हज़ारों माता-पिता और सैकड़ों स्त्री-पुत्रों का सुख अनुभव किया है परन्तु आज वे किसके हैं और हम किसके हैं।

वृत्तिर्धर्माद् गरीयासी।। शान्ति० 130/14।।

जीवन निर्वाह का साधन पाना धर्म से भी बढ़कर है।

यथा यथैव जीवेद्धि तत् कर्तव्यमहेलया।
जीवितं मरणाच्छ्रेयो जीवन् धर्ममवाप्नुयात्।। शान्ति० 141/65।।

जिस किसी उपाय से भी जीवन बच सके वह उपाय बिना हिचक करना चाहिये। मरने से जीवित रहना कहीं अच्छा है। जीवित मनुष्य धर्म का पालन कर सकता है।

सर्वोपायैरुपायज्ञो दीनमात्मानमुद्धरेत्।। शान्ति० 141/100।।

संकट में पड़े बुद्धिमान पुरुष को अपना जीवन बचाने के लिये कुछ भी उपाय अपनाना चाहिये।

जीवन् पुण्यमवाप्नोति पुरुषो भद्रमश्नुते।। शान्ति० 141/101।।

जीवित रहकर ही मनुष्य पुण्य कर्म कर सकता है और कल्याण कर सकता है।

जुआ

द्यूते भेदो हि द्दश्यते।। सभा 50/11।।

जुआ खेलने से आपस में वैर और विरोध बढ़ता है।

अनर्थमर्थं मन्यसे राजपुत्र संग्रथनं कलहस्याति घोरम्।
तद् वै प्रवृत्तं तु यथा कथंचित् सृजेदसीन् निशितान् सायकांश्च।।
सभा० 56/12।।

राजकुमार! तुम अनर्थ की जड़ जुए को अच्छा मान रहे हो। जुआ, कलह बढ़ाने वाला भयंकर काल है। यदि यह शुरु हो गया तो इससे तलवार और तीखे बाण पैदा होने लगेंगे।

द्यूते क्षतः कलहो विद्यते नः को वै द्यूतं रोचयेद् बुध्यमानः।।

सभा० 58/10।।

हे विदुर! जुए में तो झगड़ा हो जाता है अतः कौन बुद्धिमान पुरुष जुआ खेलना पसन्द करेगा।

निकृतिर्देवनं पापं न क्षात्रोऽत्र पराक्रमः।
न च नीतिर्ध्रुवा राजन् किं त्वं द्यूतं प्रशंसति।। सभा० 59/5।।

राजन्! जुआ तो छल-कपट है तथा पाप कराता है। इसमें क्षत्रियोचित पराक्रम नहीं होता, इसकी निश्चित नीति भी नहीं होती, फिर तुम जुए की प्रशंसा क्यों करते हो?

इदं वै देवनं पापं निकृत्या कितवैः सह।
धर्मेण तु जयो युद्धे तत्परं न तु देवनम्।। सभा० 59/10।।

जुआरिओं के साथ छल से खेलना पाप है। धर्म से ही युद्ध में विजय मिलती है, जुए से नहीं।

कितवस्येह कृतिनो वृत्तमेतन्न पूज्यते।। सभा० 59/13।।

जुआरियों के काम को विद्वान् पुरुष अच्छा नहीं मानते।

एकाहाद् द्रव्यनाशोऽत्र ध्रुवं व्यसनमेव च।
अभुक्तनाशश्चार्थानां वाक्पारुष्यं च केवलम्।। वन० 123/9।।

जुए में एक ही दिन में सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। जुआ खेलने की लत पड़ जाती है। सुख भोगे बिना ही धन नष्ट हो जाता है और गाली-गलौज ही सुननी पड़ती है।

द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्।। उद्योग० 37/19।।

प्राचीन समय में देखा गया था कि जुआ खेलने से मनुष्यों में दुश्मनी हो जाती है इसलिये हँसी में भी जुआ नहीं खेलना चाहिये।

अक्षद्यूतं महाप्राज्ञ सतां मतिविनाशनम्।
असतां तत्र जायन्ते भेदाश्च व्यसनानि च।। उद्योग० 128/6।।

महमति! जुए से तो बुद्धिमानों की बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। यदि दुष्ट लोग जुआ खेलते हैं तो उनमें झगड़ा होता है और सब पर संकट छा जाता है।

तपोवन

ब्रह्मलोकप्रतीकाशमाश्रमं सोऽभिवीक्ष्य ह।

षट्पदोद्गीतसंघुष्टं नानाद्विजगणायुतम्।। आदि० 70/36।।

राजा ने ब्रह्मलोक के समान आश्रम को देखा। वहाँ भौंरे गुंजार कर रहे थे और तरह तरह के पक्षी कलरव कर रहे थे।

ऋचो बह्वृचमुख्यैश्च प्रेर्यमाणाः पदक्रमैः।
शुश्राव मनुजव्याघ्रो विततेष्विह कर्मसु।। आदि० 70/37।।

वहाँ ऋग्वेद का पाठ करने वाले ब्राह्मण पद और क्रमपूर्वक वेद की ऋचाओं का पाठ कर रहे थे। नरश्रेष्ठ दुष्यन्त ने अनेक प्रकार से कर्म काण्डों की ऋचाएँ सुनीं।

तत्र तत्र च विप्रेन्द्रान् नियतान् संशितव्रतान्।
जपहोमपरान् विप्रान् ददर्श परवीरहा।। आदि० 70/47।।

शत्रुवीरों का संहार करने वाले राजा ने कण्व ऋषि के आश्रम में नियमपूर्वक व्रतों का पालन करने वाले ब्राह्मणों को जप और यज्ञ करते हुए देखा।

वसिष्ठ भृग्वत्रिसमैस्तापसैरुपशोभितम्।
नियतैः संयाताहारैर्दमशौच समन्वितैः।। वन० 64/62।।

वह तपोवन, वसिष्ठ, भृगु और अत्रि जैसे तपस्वियों से शोभित था। उसमें नियम परायण, मिताहार करने वाले, जितेन्द्रिय और शुद्ध अन्तःकरण वाले मुनि थे।

अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च पत्राहारैस्तथैव च।
जितेन्द्रियैर्महाभागैः स्वर्गमार्गदिदृक्षुभिः।। वन० 64/63।।

तपोवन में पानी पीकर रहने वाले तपस्वी थे। कुछ तपस्वी केवल वायु पी कर रहते थे और कुछ पत्ते खाकर। ये सब जितेन्द्रिय महर्षि स्वर्ग के मार्ग को देखना चाहते थे।

वल्कलाजिनसंवीतैर्मुनिभिः संयतेन्द्रियैः।
तापसाध्युषितं रम्यं ददर्शाश्रममण्डलम्।। वन० 64/64।।

वल्कल और मृगचर्म धारण करने वाले, इन्द्रियों को वश में कर लेने वाले तपस्वियों से वह आश्रम सुन्दर था।

नानामृगगणैर्जुष्टं शाखामृगगणायुतम्।
तापसैः समुपेतं च सा दृष्ट्वैव समाश्वसत्।। वन० 64/65।।

उस आश्रम में अनेक मृग और बन्दर घूम फिर रहे थे। तपस्वियों का यह आश्रम देख दमयन्ती को सान्त्वना मिली।

तपस्या

तपसा हि परं नास्ति तपसा विन्दते फलम्।। वन० 91/19।।

तप से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। तपस्या से उत्तम फल मिलता है।

लोका हि सर्वे तपसा ध्रियन्ते।। वन० 101/21।।

सारे लोक तप से ही ठहरे हुए हैं।

अग्निहोत्रं वनेवासः शरीरपरिशोषणम्।
सर्वाण्येतानि मिथ्या स्युर्यदि भावो न निर्मलः। वन० 200/97।।

अग्निहोत्र करना, जंगल में रहना और शरीर को कष्ट देना आदि सारी बातें तब तक व्यर्थ होती हैं जब तक कि मन पवित्र नहीं होता।

ये पापानि न कुर्वन्ति मनोवाक्कर्मबुद्धिभिः।
ते तपन्ति महात्मनो न शरीरस्य शोषणम्।। वन० 200/99।।

जो मन, वाणी, शरीर और बुद्धि से किसी प्रकार का पाप नहीं करते वही महात्मा वास्तव में तपस्या करते हैं। शरीर को सुखाना तपस्या नहीं होती।

तिष्ठन् गृहे चैव मुनिर्नित्यं शुचिरलंकृतः।
यावज्जीवं दयावांश्च सर्वपापैः प्रमुच्यते।। वन० 200/101।।

जो घर में रहता हुआ सदा मन में पवित्र भाव रखना है और सद्गुणों से विभूषित रहता है तथा आजीवन प्राणियों पर दया करता है वही वास्तव में मुनि होता है। ऐसे आचरण वाला व्यक्ति सभी पापों से छूट जाता है।

तपो निःश्रेयसं जन्तोस्तस्य मूलं शमो दमः।। वन० 209/53।।

जीव के कल्याण का साधन तपस्या है और तपस्या का मूल है शम (मनो निग्रह) और दम (इन्द्रिय संयम)।

सर्वोपायैस्तु लोभस्य क्रोधस्य च विनिग्रहः।
एतत् पवित्रं लोकानां तपो वै संक्रमो मतः।। वन० 213/28।।

सभी उपाय अपना कर लोभ और क्रोध को वश में करना चाहिये। यही संसार में पवित्र तपस्या है और तपस्या से ही भवसागर पार किया जाता है।

नातप्ततपसो लोके प्राप्नुवन्ति महासुखम्।
सुख दुःखे हि पुरुषः पर्यायेण सेवते।। वन० 259/13।।

जिन्होंने तपस्या नहीं की है उन्हें संसार में अत्यधिक सुख नहीं मिलता। मनुष्य के जीवन में सुख के बाद दुःख और फिर सुख आता है।

नासाध्यं तपसः किंचिदिति बुद्ध्यस्व भारत।। वन० 259/17।।

भारत! तुम यह समझ लो कि तपस्या के द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है।

मनसश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्र्यं निश्चितं तपः।। वन० 260/25।।

मन और इन्द्रियों की एकाग्रता को ही निश्चित रूप से तप कहा जाता है।

तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमाप्नुयुः।। उद्योग० 43/13।।

वेदों के विद्वान् तपस्या से ही परम अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

एतत् पापहरं पुण्यं जन्ममृत्युजरापहम्।। उद्योग० 43/40।।

यह तप; पाप नष्ट करने वाला, परम पवित्र तथा जन्म, मरण और बुढ़ापे को दूर करने वाला है।

परोक्षं जायते तपः।। उद्योग० 43/48।।

तप का फल परलोक में मिलता है।

तपः पश्यति तं प्रभुम्।। उद्योग० 43/58।।

तपस्या के द्वारा उस प्रभु का साक्षात्कार होता है।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।। भीष्म० 41/14।। गीता 17/14।।

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी पुरुषों का सत्कार, शरीर और मन की शुद्धि, सरल व्यवहार, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन और अहिंसा का आचरण शारीरिक तपस्या होती है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

भीष्म० 41/15।। गीता 17/15।।

किसी का दिल न दुखाने वाली, सच्ची, अच्छी लगने वाली और हितकारी बात कहना, शास्त्रों को पढ़ना और जप आदि करना वाणी का तप होता है।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते।।

भीष्म० 41/16; गीता 17/16।।

मन को प्रसन्न रखना, सौम्य भाव से रहना, मौन पालन, आत्म संयम और अन्त:करण के विचारों की पवित्रता मानसिक तप होता है।

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत् त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते।।

भीष्म० 41/17; गीता 17/17।।

फल न चाहने वाले, एकाग्र मन वाले पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से जो शारीरिक, मानसिक, और वाचिक तप किया जाता है वह सात्त्विक तप होता है।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।।

भीष्म० 41/18।। गीता 17/18।।

जो तपस्या अपने सम्मान, आदर और पूजा के लिये तथा अहंकारपूर्वक की जाती है वह राजसिक होती है और इसका फल अनिश्चित तथा अस्थायी होता है।

मूढग्राहेणात्मनो यत् पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत् तामसमुदाहृतम्।।

भीष्म० 41/19।। गीता 17/19।।

जो तपस्या मूर्खतापूर्वक हठ से की जाती है और जिससे शरीर, वाणी तथा मन को कष्ट होता है अथवा दूसरों को नष्ट करने के लिए की जाती है ऐसी तपस्या तामसिक होती है।

अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो घृणा।
एतत् तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम्।। शान्ति० 79/18।।

अहिंसा, सत्य, क्रूर स्वभाव का न होना, मन और इन्द्रियों को वश में रखना और दया करना ये सब बातें तपस्या मानी जाती हैं। विद्वान् पुरुष शरीर को सुखाना तप नहीं मानते।

सर्वज्ञा हि तपोधनाः।। शान्ति० 126/14।।

तपस्वी सब बातें जानते हैं।

तपश्चर्यापरः सद्यः पापाद् विपरिमुच्यते।। शान्ति० 152/26।।

तपस्या करने वाला मनुष्य जल्दी ही पापों से छूट जाता है।

सर्वमेतत् तपो मूलं कवयः परिचक्षते।
न ह्यतप्ततपा मूढः क्रियाफलमवाप्नुते।। शान्ति० 161/1।।

इस सारे संसार का मूल कारण तप ही है। जिस मूर्ख व्यक्ति ने तपस्या नहीं की है उसे अपने शुभ कर्मों का फल नहीं मिलता है।

प्रजापतिरिदं सर्वं तपसैवासृजत् प्रभुः।
तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे।। शान्ति० 161/2।।

भगवान् प्रजापति ने तप से ही इस सारी सृष्टि को बनाया। ऋषियों ने तपस्या से ही वेदों का ज्ञान प्राप्त किया।

तपसैव ससर्जान्नं फलमूलानि यानि च।
त्रींल्लोकांस्तपसा सिद्धाः पश्यन्ति सुसमाहिताः।। शान्ति० 161/3।।

विधाता ने तप से ही अन्न, फल और मूल उत्पन्न किये। तपस्या से सिद्ध बने योगी एकाग्रचित्त होकर तीनों लोकों को देखते हैं।

तपसो बहुरूपस्य तैस्तैर्द्वारैः प्रवर्ततः।
निवृत्त्या वर्तमानस्य तपो नानशनात् परम्।। शान्ति० 161/7।।

तपस्या के अनेक रूप हैं। मनुष्य भिन्न-भिन्न उपायों से तपस्या करता है। किन्तु निवृत्ति मार्ग वाले के लिये उपवास से बढ़कर कोई तप नहीं है।

अहिंसा सत्यवचनं दानमिन्द्रियनिग्रहः।
एतेभ्यो हि महाराज तपो नानशनात् परम्।। शान्ति० 161/8।।

अहिंसा, सत्यभाषण, दान, इन्द्रिय संयम इन सबसे बढ़कर उपवास तप है।

न दुष्करतरं दानान्नातिमातरमाश्रयः।
त्रैविद्येभ्यः परं नास्ति संन्यासः परमं तपः।। शान्ति० 161/9।।

दान से बढ़कर कोई कठिन काम नहीं है। माता की सेवा से बढ़कर कोई दूसरा सहारा नहीं है। तीनों वेदों के विद्वानों से श्रेष्ठ कोई विद्वान नहीं है और संन्यास से बढ़कर कोई तप नहीं है।

इमानीष्टविभागानि फलानि तपसः सदा।
तपसा शक्यते प्राप्तुं देवत्वमपि निश्चयात्।। शान्ति० 161/13।।

जो विभिन्न इष्ट फल बताये गये हैं वे सब तपस्या से ही मिलते हैं। तपस्या से देवत्व भी निश्चित रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

त्रैलोक्यं तपसा व्याप्तमन्तर्भूतेन भास्वता।
सूर्यश्च चन्द्रमाश्चैव भासतस्तपसा दिवि।। शान्ति० 217/15।।

आन्तरिक तप चैतन्यमय प्रकाश से परिपूर्ण है। तप तीनों लोकों में व्याप्त है। आकाश में सूर्य और चन्द्र भी तप से प्रकाशित हो रहे हैं।

प्रकाशस्तपसो ज्ञानं लोके संशब्दितं तपः।
रजस्तमोघ्नं यत् कर्म तपसस्तत् स्वलक्षणम्।। शान्ति० 217/16।।

संसार में तप शब्द प्रसिद्ध है। तप का फल है ज्ञान स्वरूप प्रकाश। रजोगुण और तमोगुण को नष्ट करने वाला निष्काम कर्म ही तपस्या का लक्षण है।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।
वाङ्मनोनियमः सम्यङ् मानसं तप उच्यते।। शान्ति० 217/17।।

ब्रह्मचर्य पालन और अहिंसा को शारीरिक तप कहा जाता है। मन और वाणी का सदैव उचित संयम मानसिक तप कहलाता है।

मासपक्षोपवासेन मन्यन्ते यत् तपो जनाः।
आत्मतन्त्रोपघातस्तु न तपस्तत्सतां मतम्।। शान्ति० 221/4।।

सामान्य लोग महीने-पन्द्रह दिन उपवास करके जो तप मानते हैं वह श्रेष्ठ पुरुषों के लिये तप नहीं होता। ऐसे उपवास से शरीर को कष्ट और हानि ही होती है।

त्यागश्च संनतिश्चैव शिष्यते तप उत्तमम्।
सदोपवासी च भवेद् ब्रह्मचारी सदा भवेत्।। शान्ति० 221/5।।

त्याग और विनय ही श्रेष्ठ तप है। इनका पालन करने वाला मनुष्य सदा उपवास रखने वाला और ब्रह्मचारी माना जाता है।

तपो निःश्रेयसं जन्तोस्तस्य मूलं शमो दमः।
तेन सर्वानवाप्नोति यान् कामान् मनसेच्छति।। शान्ति० 232/22।।

जीव के कल्याण का मुख्य साधन तप ही है। तपस्या का मूल शम और दम है। मनुष्य अपनी सभी मनोकामनाएँ तप से पा लेता है।

तपसा तदवाप्नोति यद भूतं सृजते जगत्।
स तद भूतश्च सर्वेषां भूतानां भवति प्रभुः।। शान्ति 232/234।।

मनुष्य तपस्या से उस परमात्म सत्ता को भी प्राप्त कर लेता है जिससे इस जगत की सृष्टि होती है। मनुष्य तपस्या से परमात्मस्वरूप होकर समस्त प्राणियों पर प्रभुत्व स्थापित कर लेता है।

ऋषयस्तपसा वेदानध्यैषन्त दिवानिशम्।
अनादिनिधना विद्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।। शान्ति० 232/24।।

तप के ही प्रभाव से ऋषि दिन-रात वेदों का अध्ययन करते हैं। तपस्या के प्रभाव से ही ब्रह्मा ने आदि और अन्त रहित वेद वाणी की सबसे पहिले सृष्टि की थी।

तपो धर्मेण संयुक्तस्तपोनित्यः सुशंसितः।
तेन सर्वानवाप्नोति कामान् यान् मनसेच्छति।। शान्ति० 238/9।।

जो मनुष्य तपस्यारूपी धर्म से संयुक्त होकर पूरी तरह संयम का पालन करता है और तपस्या करता रहता है वह अपने मन की सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

तपसा तद्वाप्नोति यद् भूत्वा सृजते जगत्।

तद् भूतश्च ततः सर्वभूतानां भवति प्रभुः।। शान्ति० 238/10।।

मनुष्य तपस्या से उस ब्रह्मभाव को प्राप्त कर लेता है जिसमें रहकर वह सारे संसार की सृष्टि करता है। इसलिये ब्रह्मभाव को प्राप्त हुआ व्यक्ति सारे प्राणियों का प्रभु बन जाता है।

तपः सर्वगतं तात हीनस्यापि विधीयते।
जितेन्द्रियस्य दान्तस्य स्वर्गमार्गप्रवर्तकम्।। शान्ति० 295/14।।

तात! सभी को तपस्या करने का अधिकार है। हीनवर्ण का मनुष्य भी तपस्या कर सकता है। किन्तु वह जितेन्द्रिय और मन को नियन्त्रण में रखने वाला होना चाहिये। तपस्या पुरुष को स्वर्ग के मार्ग पर ले जाती है।

मर्त्यलोके च राजानो ये चान्ये गृहमेधिनः।
महाकुलेषु दृश्यन्ते तत् सर्वं तपसः फलम्।। शान्ति० 295/19।।

इस मनुष्य लोक में जो राजा-महाराजा और अन्य गृहस्थ बड़े कुलों में उत्पन्न देखे जाते हैं वह सब उनकी तपस्या का ही फल है।

पुरा शरीरमन्तको भिनत्ति रोगसारथिः।
प्रसह्य जीवितक्षये तपो महत् समाचर।। शान्ति० 321/42।।

यमराज का सारथि रोग है। कालरूपी यमराज तुम्हारा शरीर नष्ट कर डालेगा। इसलिये शरीर नष्ट होने से पहिले ही महान तपस्या कर लो।

मलिनं हि यथा वस्त्रं पश्चाच्छुद्ध्यति वारिणा।
उपवासैः प्रतप्तानां दीर्घं सुखमनन्तकम्।। शान्ति० 322/17।।

जैसे मैला कपड़ा पानी से धुलने पर साफ हो जाता है वैसे ही जो लोग उपवास के साथ तपस्या करते हैं उन्हें कभी समाप्त न होने वाला सुख मिलता है।

दीर्घकालेन तपसा सेवितेन महामते।
धर्मनिर्धूतपापानां संसिध्यन्ते मनोरथाः।। शान्ति० 322/18।।

महामते! लम्बी अवधि तक की गई तपस्या से तथा धर्माचरण से जिनके पाप धुल जाते हैं। उनके सभी मनोरथ पूरे हो जाते हैं।

तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः।
आयुः प्रकर्षो भोगाश्च लभ्यन्ते तपसा विभो।। अनुशासन 57/8।।

प्रभो! तपस्या से स्वर्ग मिलता है। तप से यश की प्राप्ति होती है। तपस्या से आयु, उच्च पद और उत्तम भोग्य पदार्थ मिलते हैं।

ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपं सम्पत् तथैव च।
सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते भरतर्षभ।। अनुशासन 57/9।।

भरत श्रेष्ठ! तपस्या से ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, सौन्दर्य, सम्पत्ति और सौभाग्य मिलते हैं।

धनं प्राप्नोति तपसा मौनेनाज्ञां प्रयच्छति।
उपभोगांस्तु दानेन ब्रह्मचर्येण जीवितम्।। अनुशासन 57/10।।

तपस्या से धन मिलता है। मौन व्रत के पालन से दूसरों को आज्ञा देता है। दान से भोग-ऐश्वर्य और ब्रह्मचर्य पालन से दीर्घायु मिलती है।

अहिंसायाः फलं रूपं दीक्षाया जन्म वै कुले।
फलमूलाशिनं राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत्।। अनु० 57/11।।

अहिंसा का फल है सुन्दरता, दीक्षा का फल है अच्छे कुल में जन्म। फल मूल खाकर रहने वालों को राज्य और पत्ते खाने वालों को स्वर्ग मिलता है।

पयोभक्षो दिवं याति दानेन द्रविणाधिकः।
गुरुशुश्रूषया विद्या नित्यश्राद्धेन संततिः।। अनुशासन 57/12।।

दूध पीकर रहने वाला स्वर्ग को जाता है। दान देने से अधिक धन मिलता है। गुरु की सेवा करने से विद्या और सदा श्राद्ध करने से सन्तान मिलती है।

गवाढ्यः शाकदीक्षाभिः स्वर्गमाहुस्तृणाशिनाम्।
स्त्रियस्त्रिषवणं स्नात्वा वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत्।। अनु० 57/13।।

केवल साग-सब्जी से गुजारा करने वाले को गोधन और तृण खाने वाले को स्वर्ग मिलता है। तीनों समय स्नान करने वाले को स्त्रियाँ और वायु पीकर रहने वाले को यज्ञ का लाभ प्राप्त होता है।

नित्यस्नायी भवेद् दक्षः संध्ये तु द्वे जपन् द्विजः।
मरुं साधयतो राजन् नाकपृष्ठमनाशके।।
अनुशासन 57/14।।

राजन्! जो ब्राह्मण प्रतिदिन स्नान करके सन्ध्या करता है वह चतुर बनता है। जल का त्याग कर निराहार रहने वाले को (मरु साधक) स्वर्ग मिलता है।

स्थण्डिले शयमानानां गृहाणि शयनानि च।
चीरवल्कल वासोभिर्वासांस्याभरणानि च।। अनुशासन 57/15।।

मिट्टी की वेदी या चबूतरे पर सोने वाले को घर और शय्याएं मिलती हैं। चीर और वल्कल वस्त्र पहनने वाले को उत्तम वस्त्र और गहने प्राप्त होते हैं।

शय्यासनानि यानानि योगयुक्ते तपोधने।
अग्नि प्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते।। अनुशासन 57/16।।

योगसाधना करने वाले तपस्वी को शय्या, आसन और सवारियाँ मिलती हैं। नियमपूर्वक अग्नि में प्रवेश कर जाने पर जीव को ब्रह्मलोक में सम्मान मिलता है।

रसानां प्रतिसंहारात् सौभाग्यमिह विन्दति।
आमिषप्रतिसंहारात् प्रजा ह्यायुष्मती भवेत्।। अनुशासन 57/17।।

रसों का त्याग करने से मनुष्य सौभाग्यशाली बनता है। मांस खाना छोड़ देने से उसकी सन्तान दीर्घायु होती है।

उदवासं वसेत् यस्तु स नराधिपतिर्भवेत्।
सत्यवादी नरश्रेष्ठ दैवतैः सह मोदते।। अनुशासन 57/18।।

जल में रहने वाला राजा बनता है। नरश्रेष्ठ! सत्यवादी व्यक्ति स्वर्ग में देवताओं के साथ आनन्द से रहता है।

धर्मार्थं संचयो यो वै द्रव्याणां पक्षसम्मतः।
तपः संचय एवेह विशिष्टो द्रव्यसंचयात्।। अनु० 93/45।।

कुछ लोगों का मानना है कि धर्म के लिये धन जुटाना चाहिये। किन्तु धन इकट्ठा करने की अपेक्षा तपस्या का संग्रह करना ही श्रेष्ठ है।

तपोबलाद्धि बलवद् बलमन्यन्न विद्यते।। अनु० 118/2।।

तपस्या के बल से बढ़कर कोई दूसरा श्रेष्ठ बल नहीं है।

तपसा महदाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम्।
तपसैव चापनुदेद् यश्चान्यापि दुष्कृतम्।। अनु० 122/6।।

मनुष्य तपस्या और शास्त्रज्ञान से महान् पद को प्राप्त करता है। तपस्या से मनुष्य अपने पाप नष्ट कर डालता है।

यद् यद्धि किंचित् संधाय पुरुषस्तप्यते तपः।
सर्वमेतदवाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम्।। अनु० 122/7।।

मनुष्य जिस उद्देश्य से तपस्या करता है वह सब उसे तप और शास्त्रज्ञान से मिल जाता है ऐसा हमने सुना है।

दुरन्वयं दुष्प्रधर्षं दुरापं दुरतिक्रमम्।
सर्वं वै तपसाभ्येति तपो हि बलवत्तरम्।। अनु० 122/8।।

जिसके साथ सम्बन्ध बनाना कठिन है, जिसे वश में नहीं किया जा सकता, जो दुर्लभ है और जिसका पार नहीं पाया जा सकता वह सब तपस्या से प्राप्त हो जाता है। क्योंकि तपस्या सबसे बड़ा बल है।

तपसा प्राप्यते सर्वं तपसा प्राप्यते फलम्।
दुष्प्रापमपि यल्लोके तपसा प्राप्यते हि तत्।। अनु० 142 दा० पा०।।

तपस्या से सब कुछ मिलता है। तपस्या से मन की कामनाएँ पूरी होती हैं। संसार में कठिनाई से मिलने वाली वस्तुएँ भी तप से मिल जाती हैं।

तपसश्चानुपूर्व्येण फलमूलाशिनस्तथा।
त्रैलोक्यं तपसा सिद्धाः पश्यन्तीह समाहिताः।। आश्व० 51/15।।

फल-मूल खाने वाले तपस्वी सिद्ध महात्मा तपस्या के प्रभाव से चित्त को एकाग्र करके तीनों लोकों को प्रत्यक्ष देखते हैं।

औषधान्यगदादीनि नानाविद्याश्च सर्वशः।। शान्ति० 161/4।।
तपसैव प्रसिद्धयन्ति तपोमूलं हि साधनम्।। आश्व० 51/16।।

आरोग्य देने वाली औषधियाँ और तरह तरह की विद्याएँ तपस्या से ही सिद्ध होती हैं। सभी साधनों का आधार तपस्या ही है।

यद् दुरापं दुराम्नायं दुराधर्षं दुरन्वयम्।
तत् सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।। आश्व० 51/17।।

जिसे पाना, जिसका अभ्यास करना, जिसे वश में करना और जिसे समझना बहुत कठिन है वह सब तपस्या से सिद्ध हो जाता है। क्योंकि तपस्या के प्रभाव से बड़ी शक्ति और कोई नहीं है।

जन्मान्तर सहस्त्रेषु तपसा भावितात्मनाम्।
भक्तिरुत्पद्यते तात मनुष्याणां न संशयः।। आश्व० 92 दा० पा० अ० I।।

प्रिय युधिष्ठिर! कई हज़ार जन्मों तक तपस्या करने से जब मनुष्यों का हृदय पवित्र हो जाता है तब उस हृदय में निस्सन्देह भक्ति का उदय होता है।

ये चैव मुक्तास्तपसि प्रयुक्ताः स्वाध्यायशीला जरयन्ति देहम्।
जितेन्द्रिया भूतहिते निविष्टास्तेषामसौ चापि परश्च लोकः।।

आश्व० 12 दा० पा० अ XV।।

जो व्यक्ति विषयों की आसक्ति से छूटकर तपस्या करते हैं। जो स्वाध्याय करते हैं, अपना शरीर दुर्बल बना लेते हैं। इन्द्रियों को वश में रखते हैं और प्राणियों की भलाई करते हैं उन्हें इस लोक में और परलोक में भी सुख मिलता है।

तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत्।। आश्रमवास 36/29।।

तपस्या से बढ़कर कुछ नहीं है। तपस्या से परब्रह्म परमात्मा प्राप्त होता है।

तीर्थयात्रा

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।। वन० 82/9।।

जिसके हाथ-पैर और मन अपने वश में हों और जो विद्या, तपस्या तथा यश से सम्पन्न हो उसे तीर्थयात्रा का सुफल मिलता है।

प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनाचित्।
अहंकार निवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते।। वन० 82/10।।

जो दान नहीं लेता, आत्म सन्तोषी और अहंकार से रहित है वह तीर्थ का फल पाता है।

अकल्कको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स तीर्थफलमश्नुते।। वन० 82/11।।

जो दम्भ आदि दोषों से दूर, कर्तृत्व के अहंकार से रहित, जितेन्द्रिय, स्वल्पाहारी और सब पापों से मुक्त होता है वह तीर्थ का फल पाता है।

अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते।। वन० 82/12।।

राजन्! क्रोधरहित, सत्य का आचरण करने वाला, व्रतों में दृढ़ और सब प्राणियों को अपने समान समझने वाला तीर्थ का फल पाता है

तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते।। वन० 82/17।।

तीर्थयात्रा बहुत पवित्र कार्य है। यह यज्ञों से भी बढ़कर है।

तीर्थयात्रा भयापहा।। वन० 92/10।।

तीर्थयात्रा भय को नष्ट कर देती है।

लघुर्भव महाराज लघुः स्वैरं गमिष्यसि।। वन० 92/18।।

तीर्थयात्रा पर बोझ के बिना हल्के होकर चलना चाहिये। जो हलका है वह अपनी इच्छानुसार यात्रा कर सकता है।

क्षुत्तृडध्वश्रमायासशीतार्तिमसहिष्णवः।। वन० 92/19।।

ते सर्वे विनिवर्तन्तां ये च मिष्टभुजो द्विजाः।
पक्वान्नलेह्यपानानां मांसानां च विकल्पकाः।। वन० 92/20।।

जो ब्राह्मण आदि भूख-प्यास, परिश्रम-थकान, सर्दी सहन न कर सकते हों और जो मिठाई, पकवान, चाट-चटनी, शरबत आदि पेय और मांस खाने वाले हों वे भी लौट जायें।

मनसा कृतशौचा वै शुद्धास्तीर्थानियास्यथ।। वन० 93/20।।

अपना मन शुद्ध करके शुद्धचित्त से तीर्थ यात्रा के लिये जाओ।

शाश्वतं परमं चैव धातारं परमं पदम्।
यं विदित्वा न शोचन्ति विद्वांसः शास्त्रदृष्टयः।। वन० 90/30।।

तत्र देवर्षयः सिद्धाः सर्वे चैव तपोधनाः।
आदि देवो महायोगी यत्रास्ते मधुसूदनः।। वन० 90/31।।

वही शाश्वत (सनातन) परम धाता और परमपद है जिसे जान लेने पर शास्त्रदर्शी विद्वान् कभी शोक नहीं करते। जहां महान् योगी आदिदेव मधुसूदन निवास करते हैं वहीं पर सभी देवर्षि, सिद्ध और तपस्वी निवास करते हैं। वही सच्चा तीर्थ है।

यास्तु लोके महानद्यस्ताः सर्वास्तीर्थसंज्ञिकाः।
तासां प्राक्स्त्रोतसः श्रेष्ठाः सङ्गमश्च परस्परम्।।अनु०145दा०पा० अ०XI।।

संसार की सभी बड़ी नदियां तीर्थ कहलाती हैं। इन नदियों में जिनका प्रवाह पूर्व दिशा की ओर है वे श्रेष्ठ हैं। नदियों के सभी संगम पवित्र हैं।

तासां सागरसंयोगो वरिष्ठश्चेति विद्यते।
तासामुभयतः कूलं तत्र तत्र मनीषिभिः।।
देवैर्वा सेवितं देवि तत् तीर्थं परमं स्मृतम्।। अनु० 145 दा० पा० अ०XI।।

देवि! ये नदियाँ जहाँ समुद्र में मिलती हैं वह संगम सबसे उत्तम तीर्थ माना गया है। इन नदियों के दोनों किनारों पर जिन-जिन स्थानों पर तत्व चिन्तन करने वाले विद्वानों ने और श्रेष्ठ पुरुषों ने निवास किया है वे भी अच्छे तीर्थ हैं।

समुद्रश्च महातीर्थं पावनं परमं शुभम्।। अनु० 145 दा० पा० अ० XI।।

समुद्र तट भी अत्यधिक पवित्र महातीर्थ है।

स्त्रोतसां पर्वतानां च जोषितानां महर्षिभिः।
अपि कूलं तटाकं वा सेवितं मुनिभिः प्रिये।।
तत् तु तीर्थमिति ज्ञेयं प्रभावात् तु तपस्विनाम्।। अनु०145दा०पा० अ०XI।।

प्रिये! जल के जिन स्त्रोतों पर और पर्वतों पर महर्षियों ने निवास किया है। जिन तटों पर और तालाबों के पास भी अनेक मुनियों ने निवास किया है ऐसे सभी स्थान तपस्या के प्रभाव से तीर्थ बन जाते हैं।

तपोऽर्थं पापनाशार्थं शौचार्थं तीर्थगाहनम्।। अनु० 145 दा० पा०अ०XI।।

तपस्या, पापों के नाश और पवित्र बनने के लिये तीर्थों में स्नान किया जाता है।

तीर्थ

व्रतस्य पारणं तीर्थमार्जवं तीर्थमुच्यते।
देवशुश्रूषणं तीर्थं गुरुशुश्रूषणं तथा।। आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

व्रत-उपवास पूरा करना, सरलता, देवपूजा और गुरुसेवा तीर्थ माने गये हैं।

पितृशुश्रूषणं तीर्थं मातृशुश्रूषणं तथा।
दाराणां तोषणं तीर्थं गार्हस्थ्यं तीर्थमुच्यते।। आश्व०92 दा०पा०अ० XIX।।

माता-पिता की सेवा, स्त्रियों को सन्तुष्ट रखना और गृहस्थ धर्म का पालन करना भी तीर्थ होता है।

आतिथेयः परं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सनातनम्।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं त्रेताग्निस्तीर्थमुच्यते।। आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

अतिथि सत्कार, वेद का स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य पालन और आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि में अग्निहोत्र तीर्थ माना जाता है।

द्विविधं तीर्थमित्याहुः स्थावरं जङ्गमं तथा।
स्थावराज्जङ्गमं तीर्थं ततो ज्ञानपरिग्रहः।। आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

तीर्थ, स्थावर और जंगम दो प्रकार के होते हैं। धार्मिक या प्राकृतिक स्थावर तीर्थ स्थानों की अपेक्षा चलते-फिरते माता-पिता, अतिथि, गुरु आदि तीर्थ श्रेष्ठ होते हैं क्योंकि इनके सम्पर्क से मनुष्य को ज्ञान मिलता है।

कर्मणापि विशुद्धस्य पुरुषस्येह भारत।
हृदये सर्वतीर्थानि तीर्थभूतः स उच्यते।। आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

हे भरतनन्दन! इस जगत् में पुण्य कर्मों से पवित्र बने पुरुष के हृदय में सारे तीर्थ निवास करते हैं। इसीलिये ऐसा पुरुष स्वयं तीर्थ स्वरूप बन जाता है।

गुरुतीर्थं परं ज्ञानमतस्तीर्थं न विद्यते।। आश्व० 92 दा०पा० अ० XIX ।।

गुरुतीर्थं से परमात्मा का ज्ञान मिलता है अतः इससे बढ़कर और कोई तीर्थ नहीं है।

क्षमा तु परमं तीर्थं सर्वतीर्थेषु पाण्डव।
क्षमावतामयं लोकः परश्चैव क्षमावताम्।। आश्व० 92 दा० पा०अ XIX।।

पाण्डव! सारे तीर्थों में क्षमा सबसे बड़ा तीर्थ है। क्षमाशील मनुष्यों को इस लोक में और परलोक में भी सुख मिलता है।

आचारनैर्मल्यमुपागतेन सत्यक्षमानिस्तुलशीतलेन।
ज्ञानाम्बुना स्नाति हि नित्यमेवं किं तस्य भूयः सलिलेन तीर्थम्।।

आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

जो व्यक्ति सदाचार के कारण निर्मल हो गया है तथा सत्य और क्षमा के द्वारा जिसके हृदय में अतुलनीय शीतलता आ गई है। ऐसा व्यक्ति सदैव ज्ञान जल में नहाता है। इसे पानी से भरे हुए तीर्थों में स्नान करने की क्या आवश्यकता है?

पावनं सर्वतीर्थानां सत्यं गायन्ति सामगाः।
सत्यस्य वचनं तीर्थमहिंसा तीर्थमुच्यते।। आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

सामवेद की ऋचाओं का गान करने वाले सत्य को सारे तीर्थों को पवित्र करने वाला कहते हैं। सत्य बोलना और अहिंसा का पालन करना तीर्थ कहलाता है।

तपस्तीर्थं दया तीर्थं शीलं तीर्थं युधिष्ठिर।
अल्पसंतोषकं तीर्थं नारी तीर्थं पतिव्रता।।

आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।

युधिष्ठिर! तपस्या, दया, सच्चरित्र और थोड़े में सन्तोष करना ये सारे गुण तीर्थ कहलाते हैं। पतिव्रता नारी भी तीर्थ ही होती है।

सन्तुष्टो ब्राह्मणस्तीर्थं ज्ञानं वा तीर्थमुच्यते।।

आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

सन्तोषी ब्राह्मण और ज्ञान को भी तीर्थ माना जाता है।

यतयस्तीर्थमित्येवं विद्वांसस्तीर्थमुच्यते।
शरण्यपुरुषस्तीर्थमभयं तीर्थमुच्यते।।

आश्व० 92 दा० पा० अ XIX।।

संन्यासी और विद्वान तीर्थ होते हैं। शरण देने वाले और अभय देने वाले पुरुष भी तीर्थ माने जाते हैं।

तेजस्वी पुरुष

यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं प्रज्ञया प्रतिबाधते।।
तेजस्विनं तं विद्वांसो मन्यन्ते तत्त्वदर्शिनः।। वन० 29/18।।

जो व्यक्ति उत्पन्न हुए क्रोध को अपनी बुद्धि से दबा देता है उसे ही तत्त्वदर्शी विद्वान पुरुष तेजस्वी मानते हैं।

दाक्ष्यं ह्यमर्षः शौर्यं च शीघ्रत्वमिति तेजसः।। वन० 29/20।।

तेजस्वी पुरुष में चतुराई, सहनशीलता, वीरता और शीघ्रता ये सभी गुण होते हैं।

क्रोधं त्यक्त्वा तु पुरुषः सम्यक् तेजोऽभिपद्यते।। वन० 29/21।।

मनुष्य क्रोध को त्याग कर तेजस्वी बन जाता है।

विषमावस्थिते दैवे पौरुषेऽफलतां गते।
विषादयन्ति नात्मानं सत्वोपाश्रयिणो नराः।। वन० 79/14।।

भाग्य के प्रतिकूल हो जाने पर और पुरुषार्थ के निष्फल हो जाने पर भी सत्त्वगुण से युक्त पुरुष दुःखी नहीं होते।

अपि चेह श्रिया हीनः कृतविद्यः प्रकाशते।। वन० 207/49।।

यदि विद्वान् पुरुष कान्ति हीन भी हो तो भी संसार में प्रतिष्ठा पाता है।

द्विजेषु वैद्याः श्रेयांसो वैद्येषु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः।। उद्योग० 6/2।।

ब्राह्मणों में विद्वान् पुरुष, विद्वानों में कर्मपरायण बुद्धिवाले, कर्म परायणों में भी काम करने वाले और काम करने वालों में ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ होते हैं।

कुले जातो बलवान् यो यशस्वी बहुश्रुतः सुखजीवी यतात्मा।
धर्माधर्मौ ग्रथितौ यो बिभर्ति स ह्यस्य दिष्टस्य वशादुपैति।।

उद्योग० 32/19।।

जो पुरुष कुलीन, बलवान, यशस्वी, विद्वान, सुख से रहने वाला और मन को वश में रखने वाला है। जो आपस में उलझे हुए धर्म और अधर्म को धारण करता है वही भाग्यवश अभीष्ट गुण आदि को प्राप्त करता है।

सुखं दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति तस्माद् धीरो न च हृष्येन्न शोचेत्।।

उद्योग० 36/47।।

सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ हानि, जीवन-मरण ये बारी बारी से आते जाते रहते हैं इसलिये धीर पुरुष को हर्ष या शोक नहीं करना चाहिये।

वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च।
व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्यावृत्तिभयं कुतः।। उद्योग० 37/41।।

जिसमें आगे बढ़ने की शक्ति, प्रभाव, तेज, पराक्रम, उद्योग और दृढ़ निश्चय है उसे अपनी जीविका के नाश का भय कैसे हो सकता है?

कान्तारेषु वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम्।। उद्योग० 39/67।।

घोर जंगलों में, बीहड़ रास्तों में, कठिन मुसीबतों में, घबराहट में और शस्त्र प्रहार के समय आत्मबल वाले विचलित नहीं होते।

तेजसाभिप्रवर्तन्ते बलवन्तो युधिष्ठिर।। शान्ति० 132/7।।

युधिष्ठिर! बलवान पुरुष अपने तेज से ही काम शुरु करते हैं।

मुहूर्तमपि राजेन्द्र तिन्दुकालातवज्ज्वलेत्।
न तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायेत चिरं नरः।। शान्ति० 140/19।।

राजन्! मनुष्य को तेन्दू की लकड़ी की मशाल की तरह क्षण भर के लिये भी प्रज्वलित रहना चाहिये। किन्तु भूसे की आग की तरह बहुत देर तक धुँआ देते हुए नहीं जलाना चाहिये।

न हि तेजस्विनां शापस्तेजःसु प्रभवन्ति वै।
बलान्यतिबलं प्राप्य दुर्बलानि भवन्ति वै।। अनुशासन 85/15।।

तेजस्वी पुरुषों के शाप तेजस्वियों पर अपना प्रभाव नहीं दिखाते। बलशाली पुरुष अपने से अधिक बलवान पुरुष के सामने निर्बल हो जाता है।

तृष्णा

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्।। आदि० 85/14।।
अनुशासन० 7/21। शान्ति० 276/12। शान्ति० 174/55। वन० 2/36।।

मूर्ख लोग जिसे नहीं छोड़ पाते और जो शरीर के कमजोर हो जाने पर भी कम नहीं होती। प्राणों का नाश करने वाले रोग की तरह प्राणों के साथ जाने वाली इस तृष्णा को छोड़ने पर ही सुख मिलता है।

पूर्णं वर्षसहस्त्रं मे विषयासक्तचेतसः।
तथेप्यनुदिनं तृष्णा ममैतेष्वाभिजायते।। आदि० 85/15।।

मुझे विषयभोग करते करते एक हजार वर्ष हो गये हैं फिर भी इन भोगों के प्रति मेरी तृष्णा प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है।

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी स्मृता।
अधर्मबहुला चैव घोरा पापानुबन्धिनी।। वन० 2/35।।

तृष्णा ही पाप में लगाती है। वह मन को सदा अशान्त बनाये रखती है। उसके प्रभाव से मनुष्य अधर्म और पाप के काम करता है।

अनाद्यन्ता तु सा तृष्णा अन्तर्देहगता नृणाम्।
विनाशयति भूतानि अयोनिज इवानलः।। वन० 2/37।।

तृष्णा का कोई आदि और अन्त नहीं होता। यह मनुष्यों के शरीर में रहती है और प्राणियों का वैसे ही नाश कर देती है जैसे लोहे से पैदा हुई आग लोहे को जला देती है।

निबन्धनी ह्यर्थतृष्णेह पार्थ तामिच्छतां बाध्यते धर्म एव।
धर्मं तु यः प्रवृणीते स बुद्धः कामे गृध्नो हीयते ऽर्थानुरोधात्।।
उद्योग० 27/5।।

हे कुन्ती पुत्र! धन की तृष्णा ही बन्धन में डालती है। धन चाहने वाले का धर्म नष्ट हो जाता है। जो धर्म का वरण करता है वही ज्ञानी है। भोगों की इच्छा करने वाला मनुष्य धन में आसक्त होकर धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

चक्षुः श्रोत्रे नासिका त्वक् च जिह्वा ज्ञानस्यैतान्यायतनानि जन्तोः।
तानि प्रीतान्येव तृष्णा क्षयान्ते तान्यव्यथो दुःखहीनः प्रणुद्यात्।।
उद्योग० 32/25।।

आँख, कान, नाक, त्वचा और जीभ ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ प्राणियों के रूप आदि ज्ञान के स्थान हैं। तृष्णा समाप्त होने पर ये ज्ञानेन्द्रियां सदा प्रसन्न रहती हैं इसलिये मनुष्य को व्यथा और दुःख से रहित हो तृष्णा की निवृत्ति के लिये इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों को अपने वश में रखना चाहिये।

मधु पश्यति सम्मोहनात् प्रपातं नानुपश्यति।। उद्योग० 64/22।।

तृष्णा के कारण मनुष्य शहद को देखता है लेकिन वह यह नहीं देखता कि पास में खड्डा भी है।

नान्तं सर्वविधित्सानां गतपूर्वोऽस्ति कश्चन।
शरीरे जीविते चैव तृष्णा मन्दस्य वर्धते।। शान्ति० 177/17।।

कोई भी व्यक्ति पहिले भी कभी सभी काम पूरे नहीं कर पाया है। किन्तु मूर्ख मनुष्य की शरीर और जीवन के प्रति तृष्णा बढ़ती ही जाती है।

मनुष्या ह्याढ्यतां प्राप्य राज्यमिच्छन्त्यनन्तरम्।
राज्याद् देवत्वमिच्छन्ति देवत्वादिन्द्रतामपि।। शान्ति० 180/24।।

मनुष्य धनवान हो जाने पर राज्य पाना चाहते हैं। राज्य पाकर वे देवता बनना चाहते हैं और देवता बनकर इन्द्र का पद चाहते हैं।

न तृप्तिः प्रियलाभेऽस्ति तृष्णा नाद्भिः प्रशाम्यति।
सम्प्रज्वलति सा भूयः समिद्भिरिव पावकः।। शान्ति० 180/26।।

प्रिय वस्तु मिल जाने पर भी तृप्ति नहीं होती। तृष्णा की आग पानी से भी नहीं बुझती। तृष्णा उसी तरह बढ़ती जाती है जैसे लड़कियां डालने से आग।

ज्ञानेन्द्रियाणीन्द्रियार्थान्नोपसर्पन्त्यतर्षुलम्।
हीनैश्च करणैर्देही न देहं पुनरर्हति।। शान्ति० 213/21।।

तृष्णारहित पुरुष की ज्ञानेन्द्रियाँ उसे विषयों की ओर नहीं ले जाती। इन्द्रियों के विषया सक्ति रहित हो जाने पर पुनर्जन्म नहीं होता।

तृष्णाबद्धं जगत् सर्वं चक्रवत् परिवर्तते।। शान्ति० 217/34।।

सारा संसार तृष्णा से बंधकर पहिये की तरह घूम रहा है।

बिसतन्तुर्यथैवायमन्तःस्थः सर्वतो बिसे।
तृष्णातन्तुरनाद्यन्तस्तथा देहगतः सदा।। शान्ति० 217/35।।

जैसे कमल की नाल (बिस) में रहने वाला तन्तु सारी कमल नाल में फैला रहता है उसी प्रकार अनादि और अनन्त तृष्णा का तन्तु (जाल) देह धारियों के चित्त में सदा रहता है।

सूच्या सूत्रं यथा वस्त्रे संसारयति वायकः।
तद्वत् संसारसूत्रं हि तृष्णासूच्या निबध्यते।। शान्ति० 217/36।।

जैसे जुलाहा सूई से वस्त्र में सूत को पिरो देता है वैसे ही तृष्णारूपी सूई से संसार रूपी सूत्र गुंथा हुआ है।

विकारं प्रकृतिं चैव पुरुषं च सनातनम्।
यो यथावद् विजानाति स वितृष्णो विमुच्यते।। शान्ति० 217/37।।

जो प्रकृति को, उसके कार्य को, पुरुष (जीवात्मा) को और सनातन परमात्मा को वास्तविक रूप से जान लेता है वह तृष्णा से छूट जाता है।

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।। शान्ति० 174/46।।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्।। शान्ति० 276/6।।

संसार में कामवासना का जो सुख है और स्वर्ग का जो दिव्य सुख है ये दोनों सुख भी तृष्णा के नष्ट हो जाने पर मिलने वाले सुख की कोई बराबरी नहीं कर सकते।

यथैव शृंगं गोः काले वर्धमानस्य वर्धते।
तथैव तृष्णा वित्तेन वर्धमानेन वर्धते।। शान्ति० 276/7।।

जैसे गाय और बछड़े के सींग आयु बढ़ने के साथ बढ़ते जाते हैं। वैसे ही धन बढ़ने पर तृष्णा भी बढ़ती जाती है।

किंचिदेव ममत्वेन यदा भवति कल्पितम्।
तदेव परितापाय नाशे सम्पद्यते पुनः।। शान्ति० 276/8।।

जब किसी वस्तु में यह मेरी है यह भावना कर ली जाती है तब उस वस्तु के नष्ट होने पर व्यक्ति को दुख होता है।

न कामाननुरुद्ध्येत दुःखं कामेषु वै रतिः।
प्राप्यार्थमुपयुञ्जीत धर्मं कामान् विसर्जयेत्।। शान्ति० 276/9।।

कामनाओं या भोगों को नहीं बढ़ाना चाहिये क्योंकि भोगों में आसक्ति होने से अन्त में दुःख ही मिलता है। धन पाकर उसे धर्म के कामों में लगा देना चाहिये। कामनाओं और भोगों को सदा के लिये छोड़ देना चाहिये।

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षुःश्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका न तु जीर्यते।। अनुशासन० 7/24।।

मनुष्य के बूढ़े हो जाने पर उसके सिर के बाल, दाँत, आँख और कान सभी अंग शिथिल हो जाते हैं किन्तु उसकी तृष्णा कम नहीं होती।

उत्पन्नस्य रुरोः शृङ्गं वर्धमानस्य वर्धतेः।
प्रार्थना पुरुषस्येव तस्य मात्रा न विद्यते।। अनुशासन० 93/41।।

जैसे पैदा हुए हिरन का सींग उसके बढ़ने के साथ ही बढ़ता जाता है वैसे ही मनुष्य की तृष्णा सदा बढ़ती रहती है। उसकी कोई सीमा नहीं रहती।

न तल्लोके द्रव्यमस्ति यल्लोकं प्रतिपूरयेत्।
समुद्रकल्पः पुरुषो न कदाचन पूर्यते।। अनुशासन० 93/42।।

संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो मनुष्य की तृष्णा और आशा को पूरा कर सकती है क्योंकि पुरुष की आशा और तृष्णा समुद्र जैसी होती है और वह कभी भी पूरी नहीं होती।

कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते।
अथैनमपूरः कामस्तृष्णा विध्यति बाणवत्।। अनुशासन० 93/43।।

कोई वस्तु चाहने वाले मनुष्य को जब वह वस्तु मिल जाती है तब उसके मन में कोई और इच्छा होने लगती है। इस प्रकार तृष्णा मनुष्य को तीर की तरह बींधती रहती है।

धनलोभेन तृष्णाया न तृप्तिरुपलभ्यते।
लब्धाश्रयो विवर्धेत समिद्ध इव पावकः।। अनु०145 दा० पा० XIV।।

धन का लोभ करने से तृष्णा कभी भी शान्त नहीं होती। तृष्णा या लोभ मन में आ जाने पर बढ़ती ही है जैसे आहुति डालने से आग।

जित्वापि पृथिवीं कृत्स्नां चतुः सागरमेखलाम्।
सागराणां पुनः पारं जेतुमिच्छत्यसंशयम्।। अनु० 145 दा० पा० XIV।।

मनुष्य चारों समुद्र जिसकी तगड़ी (कटिबन्ध) हैं ऐसी सारी पृथ्वी को जीत लेने पर भी समुद्र पार के देश जीतना ही चाहता है।

सर्वं ममेति सम्मूढो बलं पश्यति बालिशः।
एवं सर्वोपयोगेषु स्वल्पमस्य प्रयोजनम्।। अनु० 145 दा० पा० XIV।।

मूर्ख मनुष्य सारी पृथ्वी को अपनी ही समझता है और सब जगह अपनी ही सत्ता देखता है। किन्तु सभी पदार्थों में से मनुष्य बहुत थोड़ा ही उपयोग में ला पाता है।

तण्डुलप्रस्थमात्रेण यात्रा स्यात् सर्वदेहिनाम्।
ततो भूयस्तरो भोगो दुःखाय तपनाय च।। अनु० 145 दा० पा०XIV।।

दिन भर में सेर भर चावलों से ही सभी प्राणी अपना पेट भर सकते हैं। इससे अधिक भोग पदार्थ दुःख और संताप पैदा करते हैं।

नास्ति तृष्णासमं दुःखं नास्ति त्याग समं सुखम्।
सर्वान् कामान् परित्यज्य ब्रह्मभूयाय कल्पते।। अनु॰ 145 दा॰ XIV।।

तृष्णा के समान और कोई दुःख नहीं है। त्याग करने से बढ़कर कोई सुख नहीं है। मनुष्य सभी इच्छाओं को त्यागकर ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है।

यत् पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य पर्याप्तमिति पश्यन् न मुह्यति।। अनु॰ 145 दा॰ पा॰XIV।।

इस पृथ्वी पर जितना अन्न, सोना, चाँदी, पशु और स्त्रियाँ हैं वे सब भी एक मनुष्य के लिये काफी नहीं है यह बात समझ लेने वाला मनुष्य किसी वस्तु के मोह में नहीं पड़ता।

यत्प्रयुक्तो जन्तुरयं वैतृष्ण्यं नाधिगच्छति।
तृष्णार्त इह निम्नानि धावमानो न बुध्यते।। आश्व॰ 31/8।।

तृष्णा के वश में पड़ा प्राणी इस संसार से विरक्त नहीं होता। तृष्णा के वश में पड़ा व्यक्ति नीच कर्मों की ओर दौड़ता है और सावधान नहीं रहता।

त्यागी

वित्तानि धर्मलब्धानि क्रतुमुख्येष्ववासृजन्।
कृतात्मा स महाराज स वै त्यागी स्मृतो नरः।। शान्ति॰ 12/8।।

महाराज! जो धर्म से प्राप्त सम्पत्तियों को श्रेष्ठ यज्ञों में लगाता है और अपने मन को वश में रखता है ऐसा मनुष्य त्यागी कहा जाता है।

क्रोधहर्षावनादृत्य पैशुन्यं च विशेषतः।
विप्रो वेदानधीते यः स त्यागी पार्थ उच्यते।। शान्ति॰ 12/11।।

कुन्तीपुत्र! जो ब्राह्मण क्रोध और हर्ष को तथा विशेषरूप से चुगली को छोड़कर वेदों का स्वाध्याय करता है, वह त्यागी कहलाता है।

अभिमानकृतं कर्म नैतत् फलवदुच्यते।
त्यागयुक्तं महाराज सर्वमेव महाफलम्।। शान्ति॰ 12/16।।

महाराज! अभिमान में भरकर किया गया कोई काम सफल नहीं होता। फल-त्याग की भावना से किया गया काम बहुत सफल होता है।

अन्तर्बहिश्च यत् किंचिन्मनोव्यासङ्गकारकम्।
परित्यज्य भवेत् त्यागी न हित्वा प्रतितिष्ठति।। शान्ति॰ 12/35।।

अन्दर और बाहर मन को फंसाने वाली सभी वस्तुओं को छोड़ने से ही मनुष्य त्यागी बनता है। केवल घर छोड़ देने से त्याग नहीं होता।

आकिंचन्यं सुखं लोके पथ्यं शिवमनामयम्।
अनमित्रपथो ह्येष दुलर्भः सुलभो मतः।। शान्ति० 176/8।।

संसार में अकिंचनता अर्थात् पास में कुछ भी न होना सुख है। कोई वस्तु जमा करके न रखने की वृत्ति हितकारी, कल्याणकारी और निरापद है। इस मार्ग में किसी शत्रु का भी डर नहीं है। यह वृत्ति दुर्लभ होने पर भी सुलभ है।

आकिंचन्यं च राज्यं च तुलया समतोलयम्।
अत्यरिच्यत दारिद्र्यं राज्यादपि गुणाधिकम्।। शान्ति० 176/10।।

मैंने अकिंचनता और राज्य को बुद्धि की तराजू पर तोला तो गुणों में अधिक होने के कारण दरिद्रता का पलड़ा राज्य के पलड़े से भारी निकला।

नैवास्याग्निर्न चारिष्टो 'न मृत्युर्न दस्यवः।
प्रभवन्ति धनत्यागाद् विमुक्तस्य निराशिषः।। शान्ति० 176/12।।

जो मनुष्य धन त्याग कर उसकी आसक्ति (लगाव) से छूट जाता है और अपने मन में कोई इच्छा नहीं रखता है उस पर आग, अनिष्टकारी ग्रहों, मृत्यु और चोर लुटेरों का कोई जोर नहीं चलता।

तं वै सदा कामचरमनुपस्तीर्णशायिनम्।
बाहूपधानं शाम्यन्तं प्रशंसन्ति दिवौकसः।। शान्ति० 176/13।।

वह सदा दैव-इच्छा के अनुसार विचरता है। सदा शान्त रहता है। बिना बिछौने के अपनी बांह का तकिया लगाकर सोता है। ऐसे त्यागी पुरुष की देवता भी सराहना करते हैं।

नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विन्दते परम्।
नात्यक्त्वा चाभयःशेते त्यक्त्वा सर्वं सुखी भवेत्।। शान्ति० 176/22।।

मनुष्य त्याग किये बिना सुख नहीं पा सकता। वह त्याग किये बिना परमात्मा को नहीं पा सकता। त्याग किये बिना वह निडर होकर सो भी नहीं सकता। त्याग करके सुखी बन जाना चाहिये।

द्रव्यत्यागे तु कर्माणि भोगत्यागे व्रतान्यपि।
सुखत्यागे तपो योगं सर्वत्यागे समापना।। शान्ति० 219/18।।

पदार्थों का त्याग करने के लिये यज्ञ आदि कर्म, भोगों का त्याग करने के लिये

व्रत, शारीरिक सुख के त्याग के लिये तपस्या और सब कुछ त्याग देने के लिये आसक्ति, कामना, ममता छोड़ देने की आज्ञा शास्त्रों में दी गई है।

तस्य मार्गोऽयमद्वैधः सर्वत्यागस्य दर्शितः।
विप्रहाणाय दुःखस्य दुर्गतिस्त्वन्यथा भवेत्।। शा० 219/19।।

सर्वस्व त्याग का यह मार्ग ही दुखों से छुटकारा पाने के लिये उत्तम बताया गया है। इसके विपरीत आचरण करने से दुर्गति होती है।

नास्ति त्यागसमं सुखम्।। शान्ति० 277/36।।

त्याग के समान कोई सुख नहीं है।

विस्तराः क्लेशसंयुक्ताः संक्षेपास्तु सुखावहाः।
परार्थं विस्तराः सर्वे त्यागमात्महितं विदुः।। शान्ति० 298/20।।

तरह-तरह के कामों में फंसे रहना दुखदायी होता है किन्तु संसार की कम से कम बातों में उलझना सुखदायी। मनुष्य दूसरों के लाभ के लिये ही तरह-तरह के काम करता है किन्तु त्याग अपने लिये हितकर होता है।

यथा मृणालानुगतमाशु मुञ्चति कर्दमम्।
तथाऽऽत्मा पुरुषस्येह मनसा परिमुच्यते।। शान्ति० 298/21।।

जैसे कमल नाल में लगी हुई कीचड़ जल्दी ही धुल जाती है उसी प्रकार त्यागी पुरुष की आत्मा मन के द्वारा संसार बन्धन से जल्दी ही छूट जाती है।

त्रिगुण

सम्मोहकं तमो विद्यात् कृष्णमज्ञानसम्भवम्।
प्रीति दुःखनिबद्धांश्च समस्तांस्त्रीनथो गुणान्।। शान्ति० 212/21।।

तमोगुण मोह में डालने वाला है और अज्ञान से पैदा होता है। यह अज्ञान की तरह काला है। सत्त्वगुण से प्रीति और सुख मिलता है तथा रजो गुण से दुःख।

तस्मादात्मवता वर्ज्यं रजश्च तम एव च।
रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तं सत्त्वं निर्मलतामियात।। शान्ति० 212/29।।

इसलिये ज्ञानी और संयमी पुरुष को रजस् और तमस् का त्याग कर देना चाहिये। रजोगुण और तमोगुण से छूटे हुए मनुष्य की बुद्धि सत्त्वगुण से निर्मल हो जाती है।

रजसाधर्मयुक्तानि कार्याण्यपि समाप्नुते।
अर्थयुक्तानि चात्यर्थं कामान् सर्वांश्च सेवते।। 212/31।।

रजोगुण के प्रभाव से मनुष्य अधर्म युक्त काम करने लगता है। वह पैसा कमाने लगता है और भोग ऐश्वर्यों में फंस जाता है।

तमसा लोभयुक्तानि क्रोधजानि च सेवते।
हिंसा विहाराभिरतस्तन्द्री निद्रा समन्वितः।। शान्ति० 212/32।।

तमोगुण के कारण मनुष्य लोभ और क्रोध के काम करता है। उसे हिंसक काम अच्छे लगते हैं। उसे आलस्य और नींद आती रहती है।

सत्त्वस्थः सात्त्विकान्भावाञ्शुद्धान् पश्यति संश्रितः।
स देही विमलः श्रीमाञ्श्रद्धाविद्यासमन्वितः।। शान्ति० 212/33।।

सत्त्वगुण में स्थित हुआ मनुष्य शुद्ध सात्त्विक भावों को ही देखता है और उन्हीं को अपनाता है। सात्त्विक पुरुष अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल होता है। उसमें श्रद्धा और विद्या की अधिकता होती है।

रजसा साध्यते मोहस्तमसा भरतर्षभ।
क्रोध लोभौ भयं दर्पं एतेषां सादनाच्छुचिः।। शान्ति० 213/1।।

भरतश्रेष्ठ! रजस् और तमस् से मोह पैदा होता है। मोह से क्रोध, लोभ, भय और अभिमान उत्पन्न होते हैं। इनको नष्ट करके ही मनुष्य शुद्ध होता है।

त्रयो वै रिपवो लोके नवधा गुणतः स्मृताः।
प्रहर्षः प्रीतिरानन्दस्त्रयस्ते सात्त्विका गुणाः।। आश्व० 31/1।।
तृष्णा क्रोधोऽभिसंरम्भो राजसास्ते गुणाः स्मृताः।
श्रमस्तन्द्रा च मोहश्च त्रयस्ते तामसा गुणाः।। आश्व० 31/2।।

संसार में सत्त्व, रजस् और तमस् ये तीन गुण हमारे शत्रु हैं। ये मन की वृत्तियों के भेद से नौ तरह के होते हैं। हर्ष, प्रीति और आनन्द ये तीन सात्त्विक गुण हैं। तृष्णा, क्रोध, और द्वेष ये तीन राजसिक गुण हैं। थकान, नींद और मोह ये तीन तामसिक गुण हैं।

लोभाद्धि जायते तृष्णा ततश्चिन्ता प्रवर्तते।
स लिप्यमानो लभते भूयिष्ठं राजसान् गुणान्।।
तदवाप्तौ तु लभते भूयिष्ठं तामसान् गुणान्।। आश्व० 31/10।।

लोभ से तृष्णा पैदा होती है और तृष्णा से चिन्ता। लोभी मनुष्य पहले राजसिक गुणों को पाता है फिर उसमें तामसिक गुण भी बहुत आ जाते हैं।

स तैर्गुणैः संहतदेहबन्धनः पुनः पुनर्जायति कर्म चेहते।
जन्मक्षये भिन्नविकीर्णदेहो मृत्युं पुनर्गच्छति जन्मनैव।। आश्व० 31/11।।

आत्मा इन सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों के कारण देह के बन्धन में पड़कर बार-बार जन्म लेता है और तरह-तरह के काम करता है। जीवन का अन्त आने पर उसके शरीर के पाँचों तत्त्व (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश) बिखर जाते हैं और मृत्यु हो जाती है। इसके बाद वह फिर जन्म और मृत्यु के बन्धन में पड़ता है।

तस्मादेतं सम्यगवेक्ष्य लोभं निगृह्य धृत्याऽऽत्मनि राज्यमिच्छेत्।
एतद्राज्यं नान्यदस्तीह राज्यमात्मैव राजा विदितो यथावत्।।
आश्व० 31/12।।

इसलिये लोभ के स्वरूप को अच्छी तरह समझकर इसे धैर्य के साथ नियंत्रित करने की और अपने आत्मा के राज्य पर अधिकार पाने की इच्छा करनी चाहिये। यही वास्तविक स्वराज्य है। इसके सिवाय कोई दूसरा राज्य पृथ्वी पर नहीं है। आत्मा का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर हमारा आत्मा ही राजा है।

तमो रजस्तथा सत्त्वं गुणानेतान् प्रचक्षते।
अन्योन्यमिथुनाः सर्वे तथान्योन्यानुजीविनः।। आश्व० 36/4।।
अन्योन्यापाश्रयाश्चापि तथान्योन्यानुवर्तिनः।
अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च त्रिगुणाः पञ्चधातवः।। आश्व० 36/5।।

सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों को गुण कहते हैं! ये तीनों एक-दूसरे के विरोधी, एक-दूसरे के सहारे रहने वाले, एक-दूसरे पर निर्भर रहने वाले, एक दूसरे के पीछे चलने वाले और आपस में मिलकर रहने वाले हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पाँच महाभूतों में ये तीनों गुण होते हैं।

तमसो मिथुनं सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुनं रजः।
रजसश्चापि सत्त्वं स्यात् सत्त्वस्य मिथुनं तमः।। आश्व० 36/6।।

तमोगुण का प्रतिद्वन्द्वी सत्त्व गुण है। सत्त्वगुण का विरोधी रजोगुण है। रजोगुण का विरोधी सत्त्वगुण है और सत्त्वगुण का विरोधी तमो गुण है।

नियम्यते तमो यत्र रजस्तत्र प्रवर्तते।
नियम्यते रजो यत्र सत्त्वं तत्र प्रवर्तते।। आश्व० 36/7।।

जहाँ तमोगुण को रोका जाता है वहाँ रजोगुण बढ़ जाता है जहाँ रजोगुण को रोका जाता है वहाँ सत्त्वगुण बढ़ जाता है।

नैशात्मकं तमो विद्यात् त्रिगुणं मोहसंज्ञितम्।
अधर्मलक्षणं चैव नियतं पापकर्मसु।
तामसं रूपमेतत् तु दृश्यते चापि सङ्गतम्।। आश्व० 36/8।।

तम अन्धकारमय और त्रिगुणों वाला है। इसका नाम मोह भी है। तमोगुण, अधर्मवाला है और पापी लोगों में तमोगुण की प्रबलता होती है। तमोगुण, सत्त्व और रजो गुणों के साथ भी रहता है।

प्रकृत्यात्मकमेवाहु रजः पर्यायकारकम्।
प्रवृत्तं सर्वभूतेषु दृश्यमुत्पत्तिलक्षणम्।। आश्व० 36/9।।

रजोगुण, प्रकृतिरूप है। यह गुण सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है। सभी प्राणियों में रजोगुण रहता है। यह दृश्य जगत् उसी का स्वरूप है।

प्रकाशं सर्वभूतेषु लाघवं श्रद्दधानता।
सात्त्विकं रूपमेवं तुं लाघवं साधुसम्मितम्।। आश्व० 36/10।।

सब प्राणियों में प्रकाश (ज्ञान), लघुता (घमण्ड न होना) और श्रद्धा का भाव ये सत्त्व गुण के लक्षण हैं। श्रेष्ठपुरुषों ने गर्व हीनता की प्रशंसा की है।

तमोगुण

परिवादकथा नित्यं देव ब्राह्मणवैदिकी।

अत्यागश्चाभिमानश्च मोहोमन्युस्तथाक्षमा।
मत्सरश्चैव भूतेषु तामसं वृत्तमिष्यते।। आश्व० 36/18।।

देवता, ब्राह्मण और वेदशास्त्रों की सदा निन्दा करना, दान न देना, अभिमान, मोह, क्रोध, असहनशीलता और प्राणियों से ईर्ष्या से सब तामसिक गुण के आचरण हैं।

एवंविधाश्च ये केचिल्लोके ऽस्मिन् पापकर्मिणः।
मनुष्या भिन्नमर्यादास्ते सर्वे तामसाः स्मृताः।। आश्व० 36/21।।

संसार में इस तरह का आचरण करने वाले, धर्म की मर्यादा तोड़ने वाले और पाप के काम करने वाले मनुष्य तमोगुणी होते हैं।

तेषां योनीः प्रवक्ष्यामि नियताः पापकर्मिणाम्।
अवाङ्निरयभावा ते तिर्यङ्निरयगामिनः।। आश्व० 36/22।।

स्थावराणि च भूतानि पशवो वाहनानि च।
क्रव्यादा दन्दशूकाश्च कृमिकीटविहंगमाः।। आश्व० 36/23।।

ऐसे पापी लोगों के लिये अगले जन्मों में जो योनियाँ निश्चित हैं उन्हें बताता हूँ। इनमें से कुछ नीचे नरक में ढकेल दिये जाते हैं और कुछ तिर्यग्योनियों में जन्म लेते हैं। वृक्ष, पर्वत, पशु, कीट-पतंग, राक्षस, पागल, बहरे, चौपाये भार ढोने वाले पशु, कोढ़ी आदि पैदा होते हैं।

अभिष्वङ्गस्तु कामेषु महामोह इति स्मृतः।
ऋषयो मुनयो देवा मुह्यन्त्यत्र सुखेप्सवः।। आश्व० 36/32।।

भोग-विषयों में फंसना ही महामोह है। इस महामोह में पड़कर भोगों का सुख चाहने वाले ऋषि, मुनि और देवता भी भटक जाते हैं।

तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रः क्रोधसंज्ञितः।
मरणं त्वन्धतामिस्त्रस्तामिस्त्रः क्रोध उच्यते।। आश्व० 36/33।।

तम (अविद्या), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), तामिस्त्र (क्रोध) और मृत्युरूप अन्धतामिस्त्र यह पाँच प्रकार की तामसी प्रकृति है। क्रोध को ही तामिस्त्र कहते हैं।

रजोगुण

संस्कारा ये च लोकेषु प्रवर्तन्ते पृथक्पृथक्।
नृषु नारीषु भूतेषु द्रव्येषु शरणेषु च।। आश्व० 37/8।।

संसार में पुरुषों में, स्त्रियों में, प्राणियों में , वस्तुओं में और घरों में जो अलग-अलग कार्य कलाप होते हैं वे रजोगुण की प्रेरणा से होते हैं।

इदं मे स्यादिदं मे स्यात्स्नेहो गुणसमुद्भवः ।। आश्व० 37/11।।

'मुझे यह मिल जाय' वस्तुओं को पाने की यह आसक्ति रजोगुण के कारण होती है।

भूतभव्यभविष्याणां भावानां भुवि भावनाः।
त्रिवर्ग निरता नित्यं धर्मोऽर्थः काम इत्यपि।। आश्व० 37/15।।

कामवृत्ताः प्रमोदन्ते सर्वकामसमृद्धिभिः।
अर्वाक्स्त्रोतस इत्येते मनुष्या रजसा वृत्ताः।। आश्व० 37/16।।

जो लोग इस पृथ्वी पर भूत, भविष्य और वर्तमान कालों के पदाथों के बारे में सोचते हैं। धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग के सेवन में लगे रहते हैं। मनमाना बर्ताव करते हैं और सब तरह के भोगों की समृद्धि से प्रसन्न होते हैं वे मनुष्य रजोगुण में फंसे हुए हैं। ऐसे लोगों को 'अर्वाक्स्त्रोता' कहते हैं।

अस्मिँल्लोके प्रमोदन्ते जायमानाः पुनः पुनः।
प्रेत्य भाविकमीहन्ते ऐहलौकिकमेव च।।
ददाति प्रतिगृह्णन्ति तर्पयन्त्यथ जुह्वति।। आश्व० 37/17।।

रजोगुण में डूबे लोग इस संसार में बार-बार जन्म लेकर विषय भोगों के आनन्द में मग्न रहते हैं। वे इस संसार में और परलोक में सुख पाने का प्रयत्न करते हैं, वे किसी फल की इच्छा से दान देते हैं। बदले में कुछ लेते हैं। तर्पण और यज्ञ करते हैं।

सत्त्वगुण

आनन्दः प्रीतिरुद्रेकः प्राकाश्यं सुखमेव च।
अकार्पण्यमसंरम्भः सन्तोषः श्रद्दधानता।। आश्व० 38/2।।

क्षमाधृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम्।
अक्रोधश्चानसूया च शौचं दाक्ष्यं पराक्रमः।। आश्व० 38/3।।

आनन्द, प्रसन्नता, उन्नति, प्रकाश, सुख, उदारता, निर्भयता, सन्तोष, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, क्रोध न करना किसी के दोष न देखना, पवित्रता, चतुराई और पराक्रम ये सब सत्त्वगुण के कार्य होते हैं।

मुधा ज्ञानं मुधा वृत्तं मुधा सेवा मुधा श्रमः।
एवं यो युक्तधर्मः स्यात् सोऽमुत्रात्यन्तमश्नुते।। आश्व० 38/4।।

तरह तरह का सांसारिक ज्ञान, किसी इच्छा पूर्त्ति के लिये किया गया व्यवहार, सेवा और परिश्रम, ये सभी व्यर्थ हैं ऐसा समझकर जो अपने कल्याण मार्ग पर चलने लगता है वह अवश्य सुख पाता है।

निर्ममो निरहंकारो निराशीः सर्वतः समः।
अकामभूत इत्येव सतां धर्मः सनातनः।। आश्व० 38/5।।

ममत्व, अहंकार और आशा-कामना से रहित होकर सभी परिस्थितियों में समदृष्टि रखना और सर्वथा निष्काम हो जाना यही श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म है।

हित्वा सर्वाणि पापानि निःशोका ह्यथ मानवाः।
दिवं प्राप्य तु ते धीराः कुर्वते वै ततस्तनूः।। आश्व० 38/11।।

ये धीर मनुष्य सभी पापों का त्याग करके शोकरहित हो जाते हैं। वे स्वर्गलोक में जाकर भोग भोगने के लिये अनेक शरीर धारण कर लेते हैं।

ईशित्वं च वशित्वं च लघुत्वं मनसश्च ते।
विकुर्वते महात्मानो देवास्त्रिदिवगा इव।। आश्व० 38/12।।
ऊर्ध्वस्त्रोतस इत्येते देवा वैकारिकाः स्मृताः।

सत्वगुणयुक्त महापुरुष स्वर्ग में रहने वाले देवताओं की तरह ईशित्व, वशित्व और लघिमा आदि मानसिक सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। वे ऊर्ध्वस्त्रोता और वैकारिक देवता कहलाते हैं।

विकुर्वन्तः प्रकृत्या वै दिवं प्राप्तास्ततस्ततः।। आश्व० 38/13।।
यद् यदिच्छन्ति तत् सर्वं भजन्ते विभजन्ति च।

स्वर्ग लोक प्राप्त कर लेने पर इन सत्त्वगुणी महापुरुषों का चित्त भोगजनित संस्कारों से विकृत होता है। वे जिस किसी वस्तु की कामना करते हैं उसे पाते हैं और बांटते हैं।

नैव शक्या गुणा वक्तुं पृथक्त्वेनैव सर्वशः।
अविच्छिन्नानि दृश्यन्ते रजः सत्त्वं तमस्तथा।। आश्व० 39/1।।

सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों का अलग-अलग वर्णन करना सम्भव नहीं हैं क्योंकि ये तीनों गुण आपस में मिले हुए दीखते हैं।

यावत्सत्त्वं रजस्तावद् वर्तते नात्र संशयः।
यावत्तमश्च सत्त्वं च रजस्तावदिहोच्यते।। आश्व० 39/3।।

इस बात में सन्देह नहीं कि जब तक सत्त्व गुण रहता है तब तक रजोगुण भी रहता है। जब तक तमोगुण रहता है तबतक सत्त्व और रजोगुण भी रहते हैं।

सत्त्वं वैकारिकी योनिरिन्द्रियाणां प्रकाशिका।
न हि सत्त्वात् परो धर्मः कश्चिदन्यो विधीयते।। आश्व० 39/9।।

सत्त्वगुण इन्द्रियों की उत्पत्ति का कारण है। उसे वैकारिक हेतु माना जाता है। वह इन्द्रियों के विषयों को प्रकाशित करता है। इससे बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है।

त्रयोगुणाः प्रवर्तन्ते ह्यव्यक्ता नित्यमेव तु।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणसर्गः सनातनः।। आश्व 39/22।।

सर्वत्र इन तीनों गुणों की सत्ता है। ये गुण अव्यक्त हैं और प्रवाहरूप से नित्य हैं। सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों की सृष्टि सनातन है।

दम

मनसो दमनं दमः।। वन० 313/88।।

मन को वश में करना ही दम कहलाता है।

धर्मस्य विधयो नैके ये वै प्रोक्ता महर्षिभिः।
स्वं स्वं विज्ञानमाश्रित्य दमस्तेषां परायणम्।। शान्ति० 160/6।।

महर्षियों ने अपने अपने ज्ञान के अनुसार धर्म की अनेक विधियाँ (प्रकार-भेद) बतायी हैं। इन सब का आधार दम (मन और इन्द्रिय संयम) है।

दमस्तेजो वर्धयति पवित्रं च दमः परम्।
विपाप्मा तेजसा युक्तः पुरुषो विन्दते महत्।। शान्ति० 160/9।।

दम से तेज बढ़ता है। दम अत्यधिक पवित्र साधन है। पापरहित और तेज से युक्त मनुष्य परमपद को प्राप्त कर लेता है।

दमेन सदृशं धर्मं नान्यं लोकेषु शुश्रुम।
दमो हि परमो लोके प्रशस्तः सर्व धर्मिणाम्।। शान्ति० 160/10।।

हमने दम के बराबर कोई और धर्म इस संसार में नहीं सुना। इस संसार में सभी धर्म वालों ने दम बहुत प्रशंसा की है।

सुखं दान्तः प्रस्वपिति सुखं च प्रतिबुध्यते।
सुखं पर्येति लोकांश्च मनश्चास्य प्रसीदति।। शान्ति० 160/12।।

अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाला सुख से सोता है और सुखपूर्वक जागता है। वह सुखी रहकर लोकों में घूमता है। उसका मन प्रसन्न रहता है।

अदान्तः पुरुषः क्लेशमभीक्ष्णं प्रतिपद्यते।
अनर्थांश्चि बहूनन्यान् प्रसृजत्यात्मदोषजान्।। शान्ति० 160/13।।

असंयमी पुरुष प्रतिक्षण दुःख झेलता रहता है। वह अपने ही दोषों के कारण अनेक अनर्थ भी पैदा कर लेता है।

क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमार्जवम्।
इन्द्रियाभिजयो दाक्ष्यं मार्दवं ह्रीरचापलम्।। शान्ति० 160/15।।

अकार्पण्यमसंरम्भः संतोषः प्रियवादिता।
अविहिंसानसूया चाप्येषां समुदयो दमः।। शान्ति० 160/16।।

क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समानता, सत्य आचरण, सरल व्यवहार, इन्द्रियों पर वश, कुशलता, मृदुव्यवहार, लज्जा, चंचलता का त्याग, उदारता, क्रोध न करना, सन्तोष, मधुर वचन, किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना और दूसरों के दोष न देखना, जीवन में इन गुणों का आ जाना ही दम कहलाता है।

गुरुपूजा च कौरव्य दया भूतेष्वपैशुनम्।
जनवादं मृषावादं स्तुतिनिन्दाविसर्जनम्।। शान्ति० 160/17।।

कामं क्रोधं च लोभं च दर्पं स्तम्भं विकत्थनम्।
रोषमीर्ष्यावमानं च नैव दान्तो निषेवते।। शान्ति० 160/18।।

कुरुनन्दन! जिसने अपने मन और इन्द्रियों को वश में कर लिया है वह गुरुजनों का आदर करता है। प्राणियों पर दया करता है। किसी की चुगली नहीं करता। वह जनापवाद, असत्य भाषण, स्तुति और निन्दा, काम, क्रोध, लोभ, घमण्ड, मूर्खता, आत्मप्रशंसा, रोष, ईर्ष्या और किसी का अपमान नहीं करता है।

अनिन्दितो ह्यकामात्मा नाल्पेष्वर्थ्यनसूयकः।
समुद्रकल्पः स नरो न कथंचन पूर्यते।। शान्ति० 160/19।।

संयमी पुरुष (दान्त) की कोई निन्दा नहीं करता। उसके मन में कोई इच्छा नहीं होती। वह छोटी-छोटी वस्तुओं के लिये किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता। दूसरों के दोष नहीं देखता। वह समुद्र के समान गम्भीर होता है। वह समुद्र की तरह धर्म संचय से कभी तृप्त नहीं होता।

अहं त्वयि मयि त्वं च मयि ते तेषु चाप्यहम्।
पूर्वसम्बन्धिसंयोगं नैतद् दान्तो निषेवते।। शान्ति० 160/20।।

मैं तुम से स्नेह करता हूँ तुम मुझसे। वो मुझसे स्नेह करते हैं मैं भी उनसे प्रेम करता हूँ। ऐसे सम्बन्धों का और पहले के सम्बन्धियों और बन्धु-बान्धवों के सम्बन्धों के बारे में जितेन्द्रिय नहीं सोचता।

सर्वा ग्राम्यास्तथाऽऽरण्या याश्च लोके प्रवृत्तयः।
निन्दां चैव प्रशंसां च यो नाश्रयति मुच्यते।। शान्ति० 160/21।।

ग्रामवासियों और वनवासियों तथा सांसारिक जनों की जो चेष्यएँ और प्रवृत्तियाँ होती हैं उन से जो दूर रहता है और किसी की निन्दा और प्रशंसा नहीं करता वह संसार से मुक्त हो जाता है।

मैत्रोऽथ शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्माऽऽत्मविच्च यः।
मुक्तस्य विविधैः सङ्गैस्तस्य प्रेत्य फलं महत्।। शान्ति॰ 160/22।।

जो सबके प्रति मित्रता की भावना रखता है। सदाचारी है। जिसका मन प्रसन्न है। जो आत्मज्ञानी है। नाना प्रकार की आसक्तियों से दूर है। वह मृत्यु के बाद परम पद को प्राप्त कर लेता है।

सुवृत्तः शीलसम्पन्नः प्रसन्नात्माऽऽत्मविद् बुधः।
प्राप्येह लोके सत्कारं सुगतिं प्रतिपद्यते।। शान्ति॰ 160/23।।

जो सदाचारी, चरित्रवान, प्रसन्न मन वाला, आत्मज्ञानी विद्वान होता है। वह इस लोक में आदर पाकर परलोक में सद्गति पाता है।

अभयं यस्य भूतेभ्यो भूतानामभयं यतः।
तस्य देहाद् विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन।। शान्ति 160/26।।

जिसे दूसरे प्राणियों से कोई भय नहीं है और जिससे दूसरे प्राणी भी नहीं डरते। देहाभिमान से रहित ऐसे पुरुष को किसी से डर नहीं लगता।

अवाचिनोति कर्माणि न च सम्प्रचिनोति ह।
समः सर्वेषु भूतेषु मैत्रायणगतिश्चरेत्।। शान्ति॰ 160/27।।

जो प्रारब्ध के कर्मों को नष्ट कर देता है और कर्म फल भी इच्छा से रहित होने के कारण नये कर्मों का संग्रह नहीं करता। वह सभी प्राणियों के प्रति समान भाव रखकर मित्र की भांति विचरता है।

शकुनीनामिवाकाशे जले वारिचरस्य च।
यथा गतिर्न दृश्यते तथा तस्य न संशयः।। शान्ति 160/28।।

जैसे आकाश में पक्षियों के और पानी में मछली आदि जलचरों के चलने के निशान नहीं दिखाई देते वैसे ही ज्ञानी की गति समझ में नहीं आती।

संन्यस्य सर्वकर्माणि संन्यस्य विधिवत् तपः।
संन्यस्य विविधा विद्याः सर्वं संन्यस्य चैव ह।। शान्ति॰ 160/31।।

कामे शुचिरनावृत्तः प्रसन्नात्माऽऽत्मविच्छुचिः।
प्राप्येह लोके सत्कारं स्वर्गं समभिपद्यते।। शान्ति॰ 161/31।।

जिसका आचार-विचार शुद्ध है। जो भोगों से मुख मोड़ चुका है। ऐसा प्रसन्न मन वाला आत्मज्ञानी विशुद्ध पुरुष सभी कर्मों का, तपस्या का, विविध विद्याओं का और संसार की सभी वस्तुओं का विधिपूर्वक परित्याग करके इस संसार में आदर पाकर स्वर्ग लोक में जाता है।

ज्ञानारामस्य बुद्धस्य सर्वभूताविरोधिनः।
नावृत्तिभयमस्तीह परलोक भयं[1] कुतः।। शान्ति० 160/33।।

जिसका किसी भी प्राणी से वैर-विरोध नहीं है। जो ज्ञान स्वरूप आत्मा में रमता है। ऐसे ज्ञानी पुरुष को इस लोक में जन्म लेने का भय नहीं रहता फिर उसे परलोक का भय कैसे हो सकता है।

एक एव दमे दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तंमशक्तं मन्यते जनः।। शान्ति० 160/34।।

दम अर्थात् इन्द्रिय संयम में एक ही दोष है कि क्षमाशील होने के कारण संयमी को लोग कमजोर समझने लगते हैं।

एकोऽस्य सुमहाप्राज्ञ दोषः स्यात् सुमहान् गुणः।
क्षमया विपुला लोकाः सुलभा हि सहिष्णुता।। शान्ति० 160/35।।

महाप्राज्ञ युधिष्ठिर! संयमी पुरुष का एक दोष भी बड़ा गुण हो सकता है। क्षमा के गुण से उसे अनेक पुण्यलोक मिल सकते हैं। क्षमा से सहनशीलता भी आ जाती है।

दान्तस्य किमरण्येन तथादान्तस्य भारत।
यत्रैव निवसेद् दान्तस्तदरण्यं न चाश्रमः।। शान्ति० 160/36।।

भरत! संयमी (दान्त) पुरुष को वन में जाने की क्या आवश्यकता है? और जो असंयमी हैं उसके वन में रहने से क्या लाभ है? संयमी पुरुष जहाँ भी रहता है वही स्थान उसके लिये वन और आश्रम है।

दमो नान्यस्पृहा नित्यं गाम्भीर्यं धैर्यमेव च।
अभयं रोगशमनं ज्ञानेनैतदवाप्यते।। शान्ति० 162/12।।

किसी की वस्तु लेने की इच्छा न करना, सदा गम्भीरता और धैर्य बनाये रखना, भय को छोड़ देना, मानसिक रोगों को शान्त कर देना, यह दम कहलाता है। दम को ज्ञान से पाया जाता है।

नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यन्तर शुचिः।। अनु० 108/9।।

शरीर को पानी से गीला कर लेना ही स्नान नहीं होता अपितु जिसने मन और इन्द्रियों को वश में करके संयम के जल में गोता लगाया है वही सच्चा स्नान होता है। यह स्नान भीतर बाहर से पवित्र करता है।

दण्ड

नादण्डः क्षत्रियो भाति नादण्डो भूमिमश्नुते।
नादण्डस्य प्रजा राज्ञः सुखं विन्दति भारत।। शान्ति० 14/14।।

भारत! जिस राजा में दण्ड देने की क्षमता नहीं होती ऐसे क्षत्रिय राजा की शोभा नहीं होती न ही वह पृथ्वी का उपभोग कर सकता है। दण्ड न देने वाले राजा की प्रजा सुखी नहीं होती।

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।। शान्ति० 15/25।।

राजा के द्वारा सजा मिलने के डर से ही सारी प्रजा राजा की आज्ञा मानती है। राजदण्ड का भय ही प्रजा की रक्षा करता है। सोनेवालों को राजदण्ड का भय ही सावधान किये रहता है। इसलिये विद्वान दण्ड को ही धर्म कहते हैं।

दण्डः संरक्षते धर्मं तथैवार्थं जनाधिप।
कामं संरक्षते दण्डस्त्रिवर्गो दण्ड उच्यते।। शान्ति० 15/3।।

राजन्! दण्ड से ही धर्म, अर्थ और काम की रक्षा हो पाती है इसलिये दण्ड को त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामनाओं का पूरा करने वाला कहा जाता है।

दण्डेन रक्ष्यते धान्यं धनं दण्डेन रक्ष्यते।
एवं विद्वानुपाधत्स्व भावं पश्यस्व लौकिकम्।। शान्ति० 15/4।।

राजदण्ड के भय से ही धन-सम्पत्ति और अन्न की रक्षा होती है इसलिये आप बुद्धिमान भी राजदण्ड हाथ में लीजिये। संसार के मनुष्यों का यही स्वभाव है।

राजदण्ड भयादेके पापाः पापं न कुर्वते।
यमदण्डभयादेके परलोक भयादपि।। शान्ति० 15/5।।
परस्परभयादेके पापाः पापं न कुर्वते।
एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम्।। शान्ति० 15/6।।

राजदण्ड के भय से पापी लोग पाप नहीं करते। कुछ लोग यमराज के भय से, या परलोक के भय से अथवा एक-दूसरे के डर से पाप नहीं करते। संसार का स्वभाव ही ऐसा है इसीलिये संसार का सारा व्यवहार दण्ड के भय से ही चल रहा है।

दण्डस्यैव भयादेके न खादन्ति परस्परम्।
अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डो न पालयेत्।। शान्ति० 15/7।।

राजदण्ड के भय से ही मनुष्य एक-दूसरे को हड़प नहीं जाते। यदि राजदण्ड प्रजा का पालन न करे तो प्रजा हाहाकार करने लगेगी।

यस्माददान्तान् दमयत्यशिष्टान् दण्डयत्यपि।
दमनाद् दण्डनाच्चैव तस्माद् दण्डं विदुर्बुधाः।। शान्ति० 15/8।।

राजदण्ड; उद्दण्ड लोगों को वश में रखता है और दुष्टों को सजा भी देता है। इसीलिये वश में रखने और सजा देने के कारण विद्वान् राजा के भय को दण्ड कहते हैं।

वाचा दण्डो ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां भुजार्पणम्।
दानदण्डाः स्मृता वैश्या निर्दण्ड शूद्र उच्यते।। शान्ति० 15/9।।

अपराध करने पर ब्राह्मणों को फटकार लगाना ही उन्हें दण्ड देना है। अपराधी क्षत्रियों को शारीरिक दण्ड देना चाहिये। वैश्यों से जुर्माना वसूल करना चाहिये और शूद्रों को कोई दण्ड नहीं देना चाहिये। उनसे कोई काम कराना चाहिये।

असम्मोहाय मर्त्यानामर्थ सरंक्षणाय च।
मर्यादा स्थापिता लोके दण्डसंज्ञा विशाम्यते।। शान्ति० 15/10।।

राजन्! मनुष्यों को सावधान रखने के लिये और उनकी सम्पत्ति की रक्षा के लिये संसार में जो नियम-कानून बनाये गये हैं उन्हें ही राजदण्ड कहा जाता है।

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति सूद्यतः।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ते नेता चेत् साधु पश्यति।। शान्ति० 15/11।।

जिस देश में काले रंग का और लाल आँखों वाला राजदण्ड भली-भाँति काम करता है वहाँ के लोग अपने कर्तव्यों का पालन करने में ढील नहीं करते। साथ ही शासक की दृष्टि भी उचित और न्याययुक्त होनी चाहिये।

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः।
दण्डस्यैव भयादेते मनुष्या वर्त्मनि स्थिताः।। शान्ति० 15/12।।

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और भिखारी ये सभी लोग राजदण्ड के भय से ही अपनी अपनी मर्यादा का पालन करते हैं।

नाभीतो यजते राजन् नाभीतो दातुमिच्छति।
नाभीतः पुरुष कश्चित् समये स्थातुमिच्छति।। शान्ति० 15/13।।

राजन्! कोई भी मनुष्य डर के बिना यज्ञ (परोपकार के काम) नहीं करता और न ही दान (कर टैक्स आदि) देता है। राजदण्ड के भय के बिना कोई भी मनुष्य नियमों और कानूनों का पालन नहीं करना चाहता।

दण्डनीत्यां प्रणीतायां सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः।
कौन्तेय सर्वभूतानां तत्र मे नास्ति संशयः।। शान्ति० 15/29।।

कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! राजदण्ड की नीति का अर्थात् कायदे कानूनों का उचित ढंग से पालन कराने पर प्रजा के सभी वर्गों के काम ठीक ढंग से होते रहते हैं, मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं।

दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विनश्येयुरिमाः प्रजाः।
जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः।। शान्ति० 15/30।।

यदि संसार में राजदण्ड का भय न रहे तो सारी प्रजा उसी प्रकार नष्ट हो जायेगी जैसे पानी में बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है।

अन्धं तम इवेदं स्यान्न प्राज्ञायत किंचन्।
दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विभजन् साध्वसाधुनी।। शान्ति० 15/32।।

यदि किसी देश में कायदे कानूनों का डर कर पालन न किया जाय तो सब जगह अन्धेर मच जायेगा। इसीलिये भले और बुरे का विचार करके राजदण्ड का उपयोग करना चाहिये।

सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्जनः।। शान्ति० 15/34।।

संसार के सभी लोग राजदण्ड के भय से ही वश में रहते हैं। बिल्कुल ईमानदार मनुष्य का मिलना बहुत कठिन है।

न ब्रह्मचार्यधीयीत कल्याणी गौर्न दुह्यते।
न कन्योद्वहनं गच्छेद् यदि दण्डो न पालयेत्।। शान्ति० 15/37।।

यदि राजदण्ड का भय न हो तो ब्रह्मचारी पढ़ाई नहीं करेंगे। यदि डण्डे का भय न हो तो गाय दूध नहीं दुहने देगी और कन्या विवाह नहीं करायेगी।

न प्रेष्या वचनं कुर्युर्न बाला जातु कर्हिचित्।
न तिष्ठेत् युवती धर्मे यदि दण्डो न पालयेत्।। शान्ति० 15/42।।

यदि सजा मिलने का डर न हो तो नौकर चाकर और बच्चे कहना नहीं मानेंगे और युवती स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन नहीं करेंगी।

दण्डे स्थिता प्रजाः सर्वा भयं दण्डे विदुर्बुधाः।। शान्ति० 15/43।।

विद्वानों के मत से दण्ड मिलने के भय के कारण ही सब लोग अपना कर्तव्य पालन करते हैं।

न तत्र कूटं पापं वा वञ्चना वापि दृश्यते।
यत्र दण्डः सुविहितश्चरत्यरिविनाशनः।। शान्ति० 15/44।।

जिस देश में शत्रुओं का नाश करने वाले राजदण्ड का ठीक प्रकार प्रयोग किया जाता है वहां पर लोग छल-कपट और पापाचरण नहीं करते।

अर्थे सर्वे समारम्भाः समायत्ता न संशयः।
स च दण्डे समायत्तः पश्य दण्डस्य गौरवम्।। शान्ति० 15/48।।

निस्सन्देह सभी काम पैसे से होते हैं किन्तु पैसा राजदण्ड के भय से बच पाता है इसलिये राजदण्ड की गरिमा सबसे अधिक है।

बलं हि क्षत्रिये नित्यं बले दण्डः समाहितः।। शान्ति० 23/13।।

क्षत्रियों में सदा बल रहता है और बलवान ही दण्ड दे सकता है।

ईश्वरश्च महादण्डो दण्डे सर्वं प्रतिष्ठितम्।। शान्ति० 121/1।।

महान दण्ड ही ईश्वर है। दण्ड पर ही सब कुछ टिका हुआ है।

सुप्रणीतेन दण्डेन प्रियाप्रियसमात्मना।
प्रजा रक्षति यः सम्यग्धर्म एव स केवलः।। शान्ति० 121/11।।

जो राजा प्रिय और अप्रिय के प्रति एक जैसी भावना रखकर दण्ड का ठीक प्रयोग करके प्रजा की रक्षा करता है तो उसका यह काम धर्म ही है।

माता-पिता च भ्राता च भार्या चैव पुरोहितः।
नादण्ड्यो विद्यते राज्ञो यः स्वधर्मे न तिष्ठति।। शान्ति० 121/60।।

जो माता-पिता, भाई, पत्नी और पुरोहित अपने धर्म का पालन न करें उन्हें राजा दण्ड दे। राजा के लिये कोई भी ऐसा नहीं है जिसे वह दण्डित न कर सके।

विभज्य दण्डः कर्तव्यो धर्मेण न यदृच्छया।
दुष्टानां निग्रहो दण्डो हिरण्यं बाह्यतः क्रियाः।। शान्ति० 121/40।।

धर्म के अनुसार ही न्याय और अन्याय का विचार करके दण्ड देना चाहिये। दण्ड देने में मनमानी नहीं करनी चाहिये। दुष्टों को वश में रखने के लिये ही दण्ड दिया जाता है पैसा इकट्ठा करने के लिये नहीं।

व्यङ्गत्वं च शरीरस्य वधो नाल्पस्य कारणात्।
शरीरपीडास्तास्ताश्च देहत्यागो विवासनम्।। शान्ति० 122/41।।

किसी छोटे से अपराध के लिये अपराधी का अंग कटवाना, मृत्यु दण्ड देना, शारीरिक पीड़ा पहुँचाना या देश से निकालना उचित नहीं है।

शिष्ट्यर्थं विहितो दण्डो न वृद्ध्यर्थं विनिश्चयः।
ये च शिष्टान् प्रबाधन्ते दण्डस्तेषां वधः स्मृतः।। शान्ति० 135/20।।

दुष्टों को दबाने के लिये दण्ड देने की व्यवस्था की गई है न कि पैसा लूटने के लिये। जो लोग सज्जनों को सताते हैं उन्हें प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये।

नित्यमुद्यतदण्डस्य भृशमुद्विजते नरः।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत्।। शान्ति० 140/8।।

जो राजा सदा दण्ड देने के लिये तैयार रहता है उससे लोग बहुत डरते हैं। इसलिये राजा को सभी प्राणियों को डण्डे के जोर से ही काबू में करना चाहिये।

तत्त्वाभेदेन यच्छास्त्रं तत् कार्यं नान्यथाविधम्।
असमीक्ष्यैव कर्माणि नीतिशास्त्रं यथाविधि।। शान्ति० 267/9।।

जो दण्ड शरीर के पाँचों तत्त्वों अर्थात् पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश को अलग-अलग न करे अर्थात् किसी व्यक्ति के प्राण ने ले वैसा ही दण्ड देना चाहिये। नीतिशास्त्र पर और अपराधी के अपराध पर भलीभांति विचार किये बिना कोई दण्ड नहीं देना चाहिये।

न मूलघातः कर्तव्यो नैष धर्मः सनातनः।
अपि स्वल्पवधेनैव प्रायश्चित्तं विधीयते।। शान्ति० 267/12।।

अपराधी को प्राणदण्ड देकर उसको जड़ से नष्ट नहीं कर देना चाहिये। साधारण दण्ड देकर भी अपराध का प्रायश्चित्त हो जाता है। यही सनातन धर्म भी है।

उद्वेजनेन बन्धेन विरूपकरणेन च।
वधदण्डेन ते क्लिश्या न पुरोहित संसदि।। शान्ति० 267/13।।

अपराधी को डरा-धमकाकर, जुर्माना कर, कैद में डालकर या उसका अंग काट कर दण्ड दिया जाना चाहिये किन्तु उसे प्राणदण्ड नहीं देना चाहिये। यदि अपराधी ब्राह्मण संसद में आत्मसमर्पण कर दे तब भी उसे प्राणदण्ड नहीं देना चाहिये।

बिभ्रद् दण्डाजिनं मुण्डो ब्राह्मणोऽर्हति शासनम्।। शा० 267/15।।

सिर मुण्डा कर दण्ड और मृगचर्म धारण करने वाला ब्राह्मण यदि अपराध करे तो उसे भी दण्ड दिया जाना चाहिये।

मृदवः सत्यभूयिष्ठा अल्पद्रोहाल्पमन्यवः।

पुरा धिग्दण्ड एवासीद् वाग्दण्डस्तदनन्तरम्।। शान्ति० 267/19।।

पहले लोगों का स्वभाव कोमल होता था। वे सत्यवादी थे। वे बहुत कम झगड़ते और क्रोध करते थे। उन दिनों अपराधी को धिक्कारना ही पर्याप्त समझा जाता था फिर उसे कटुवचन कह कर दण्ड दिया जाना उचित माना जाने लगा।

दान

न दुष्करतरं दानात् तस्माद् दानं मतं मम।। वन० 259/31।।

दान से बढ़कर कोई कठिन काम नहीं है अतः दान ही सर्वश्रेष्ठ काम है।

विशेषतस्त्वत्र विज्ञेयो न्यायेनोपार्जितं धनम्।
पात्रे काले च देशे च साधुभ्यः प्रतिपादयेत्।। वन० 259/33।।

इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि उचित रीति से कमाया हुआ धन, उत्तम पात्र को ठीक समय पर और ठीक जगह पर दिया जाये।

पात्रे दानं स्वल्पमपि काले दत्तं युधिष्ठिर।
मनसा हि विशुद्धेन प्रेत्यानन्त फलं स्मृतम्।। वन० 259/34।।

युधिष्ठिर! यदि विशुद्ध मन से सत्पात्र को उचित अवसर पर थोड़ा सा धन भी दिया जाता है तो वह परलोक में अनन्त फल देता है।

श्रमेणोपार्जितं त्यक्तुं दुःखं शुद्धेन चेतसा।। वन० 260/26।।

मेहनत से कमाये हुए धन को पवित्र मन से दान करना बहुत कठिन होता है।

दानं वै भूतरक्षणम्।। वन० 313/96।।

प्राणियों की रक्षा करना ही दान है।

दैवं दानफलं प्रोक्तम्।। वन० 313/100।।

दान का फल, भाग्य (दैव) कहलाता है।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।।

भीष्म० 41/20।। गीता 17/20।।

दान देना ही चाहिये इस भावना से जो दान अपना उपकार न करने वाले योग्य व्यक्ति को उचित अवसर और उचित स्थान पर दिया जाता है, वह सात्त्विक दान होता है।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद् दानं राजसम् स्मृतम्।।

भीष्म० 41/21; गीता 17/21।।

जो दान अपनी इच्छा के बिना, भय आदि के कारण या किसी से अपना काम निकालने के उद्देश्य से या किसी फल की इच्छा से दिया जाता है वह राजसिक दान होता है।

अदेशकाले यद् दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत् तामसमुदाहृतम्।।

भीष्म० 41/22; गीता 17/22।।

जो दान आदर-सत्कार के बिना और तिरस्कार के साथ गलत स्थान पर, अनुचित अवसर पर और कुपात्र को दिया जाता है, वह तामसिक दान होता है।

पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत्।। कर्ण० 69/65।।

पापी लोगों को दिया हुआ धन दान करने वाले को भी दुःख देता है।

श्रद्दधानस्ततो लोको दद्याच्चैव यजेत च।। शान्ति० 26/ 27।।

श्रद्धावान मनुष्य को दान में और यज्ञ में धन लगाना चाहिये।

लब्धस्य त्यागमित्याहुर्न भोगं न च संचयम्।। शान्ति० 26/28।।

प्राप्त हुए धन का दान करना ही अच्छा है उसे भोग-ऐश्वर्यों में लगाना या इकट्ठा करके रखना ठीक नहीं है।

न दद्याद् यशसे दानं न भयान्नोपकारिणे।। शान्ति० 36/36।।

मनुष्य को यश के लिये, भय के कारण या अपना उपकार करने वाले को दान नहीं देना चाहिये।

निर्मन्त्रो निर्वृत्तो यः स्यादशास्त्रज्ञोऽनसूयकः।
अनुक्रोशात् प्रदातव्यं हीनेष्वव्रतिकेषु च।। शान्ति० 36/43।।

जो ब्राह्मण वेदशास्त्र न पढ़ा हो किन्तु दूसरों में दोष न देखता हो और सन्तुष्ट रहता हो उसे तथा व्रत आदि धर्म के काम न करने वाले गरीब व्यक्ति को भी दया करके दान देना चाहिये।

न हि प्राणसमं दानं त्रिषु लोकेषु विद्यते।। शान्ति० 72/24।।

तीनों लोकों में प्राणदान के बराबर और कोई दान नहीं है।

दानं तु द्विविधं प्राहुः परत्रार्थमिहैव च।
सद्भ्यो यद् दीयते किंचित् तत्परत्रोपतिष्ठते।। शान्ति० 191/3।।

दान दो तरह का होता है एक दान का फल परलोक में मिलता है और दूसरे दान का फल इसी लोक में मिलता है। जो दान अच्छे लोगों को दिया जाता है उसका फल परलोक में मिलता है।

असद्भ्यो दीयते यत्तु तद् दानमिह भुज्यते।
यादृशं दीयते दानं तादृशं फलमश्नुते।। शान्ति० 191/4।।

अनुचित या दान के अयोग्य पुरुषों को दिये गये दान का फल इसी लोक में मिल जाता है। जैसा दान दिया जाता है उसका वैसा ही फल मिलता है।

कीर्तिर्भवति दानेन तथाऽऽरोग्यमहिंसया।
द्विजशुश्रूषया राज्यं द्विजत्वं चापि पुष्कलम्।। अनु० 57/19।।

दान देने से यश बढ़ता है। अहिंसा से आरोग्य, ब्राह्मणों की सेवा करने से राज्य और अत्यधिक ब्राह्मण गुणों की प्राप्ति होती है।

शुभं सर्वपवित्रेभ्यो दानमेव परं द्विज।। अनु० 120/16।।

हे ब्राह्मण! जितने भी पवित्र कर्म हैं उन सब में दान ही सबसे अधिक पवित्र और कल्याणकारी है।

दानकृद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः।
ते हि प्राणस्य दातारस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः।। अनु० 120/18।।

दान देने वालों ने जो रास्ता बना दिया है उसी पर विद्वान् मनुष्य चलते हैं। दान करने वाले प्राणदाता माने जाते हैं। दानदाताओं के कारण ही समाज में धर्म की प्रतिष्ठा बनी रहती है।

यथा वेदाः स्वधीताश्च यथा चेन्द्रियसंयमः।
सर्वत्यागो यथा चेह तथा दानमनुत्तमम्।। अनु० 120/19।।

जैसे वेदों का स्वाध्याय, इन्द्रियों को वश में रखना और सब तरह की सम्पत्ति का त्याग अच्छा होता है वैसे ही दान भी बहुत अच्छा होता है।

सुखात् सुखतर प्राप्तिमाप्नुते मतिमान्नरः।। अनु० 120/20।।

बुद्धिमान मनुष्य दान देकर एक सुख से और अच्छा सुख पाता है।

श्रीमन्तः प्राप्नुवन्त्यर्थान् दानं यज्ञं तथा सुखम्।। अनु० 120/21।।

धनी पुरुष धन पाकर दान देते हैं, यज्ञ करते हैं और सुख भोगते हैं।

यदेव ददतः पुण्यं तदेव प्रतिगृह्णतः।
न ह्येकचक्रं वर्तेत इत्येवमृषयो विदुः।। अनु० 121/14।।

दान देने वाले को जो पुण्य मिलता है वैसा ही पुण्य दान लेने वाले को होता है। वे एक-दूसरे का उपकार करते हैं। एक पहिये से गाड़ी नहीं चलती। दान लेने वाले के बिना दानदाता का दान सफल नहीं होता। ऋषियों का ऐसा मानना है।

अद्भिर्गात्रान्मलमिव तमोऽग्निप्रभया यथा।
दानेन तपसा चैव सर्वपापमपोहति।। अनु० 122/18।।

जैसे पानी से शरीर की गन्दगी दूर हो जाती है और आग से अन्धेरा नष्ट हो जाता है वैसे ही दान और तप से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

सौम्यचित्तस्तु यो दद्यात् तद्धि दानमनुत्तमम्।। अनु०141/60-61दा०पा०।।

जो व्यक्ति पवित्र मन से दान देता है उसका दान सर्वश्रेष्ठ होता है।

अल्पमल्पमपि ह्येकं दीयमानं विवर्धते।। अनु० 141/60-61 दा० पा०।।

एक-एक करके थोड़ा-थोड़ा दिया हुआ दान भी बढ़ता जाता है।

नास्ति भूमौ दानसमं नास्ति दानसमं निधिः।।अनु०141/60-61दा० पा०।।

पृथ्वी पर दान से बढ़कर कोई अच्छी वस्तु नहीं है। दान के बराबर कोई खजाना नहीं है।

नानुप्तं रोहते सस्यं तद्वद् दानफलं विदुः।
यद् यद् ददाति पुरुषस्तत् तत् प्राप्नोति केवलम्।।
अनु० 145 दा० पा०।।

बीज बोये बिना जैसे अन्न पैदा नहीं होता उसी तरह दान का फल भी मिलता है। मनुष्य जो कुछ देता है उसे वही सब मिलता है।

पण्डितोऽपण्डितो वापि भुङ्क्ते दानफलं नरः।

बुद्धयाऽनपेक्षितं दानं सर्वथा तत् फलत्युत।। अनु० 145 दा० पा०।।

कोई मूर्ख हो या विद्वान् उसे दान का फल मिलता ही है। बिना सोचे-समझे दिये गये दान का भी फल मिलता ही है।

तपोदानमयं सर्वमिति विद्धि शुभानने।। अनु० 145 दा० पा०।।

सुमुखि पार्वती ! तुम यह बात समझ लो कि मनुष्य को तप और दान का फल अच्छा मिलता है।

दानेन भोगी भवति मेधावी वृद्धसेवया।

अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्मनीषिणः।। अनु० 163/12।।

मनीषी लोगों का कहना है कि मनुष्य दान देकर ऐश्वर्य भोग पाता है। गुरुजनों की सेवा करके बुद्धिमान बनता है और अहिंसा से दीघार्यु होता है।

यदा दानरुचिः स्याद् वै तदा धर्मो न सीदति।। आश्व० 90/92।।

जब मनुष्य में दान देने की इच्छा होने लगती है तब उसका धर्म नष्ट नहीं होता।

द्रव्यागमो नृणां सूक्ष्मः पात्रे दानं ततः परम्।। आश्व० 90/93।।

कालः परतरो दानाच्छ्रद्धा चैव ततः परा।

मनुष्यों के लिये न्यायपूर्वक धन कमाने का उपाय जानना कठिन है। उस धन को सत्पात्र में दान देना धन कमाने से भी श्रेष्ठ है। उचित समय पर दान देना और भी अच्छा है तथा श्रद्धा से दान देना सबसे अच्छा है।

सहस्रशक्तिश्च शतं शतशक्तिर्दशादपि च।। आश्व० 90/96।।

दद्यादपश्च यः शक्त्या सर्वे तुल्यफलाः स्मृताः।

श्रद्धा से दान देने वाले में यदि एक हजार का दान देने का सामर्थ्य हो तो उसे सौ का दान करना चाहिये। सौ का दान करने की शक्ति वाले को दस का दान देना उचित है। जिस मनुष्य के पास देने को कुछ भी न हो उसे अपनी शक्ति के अनुसार जल का ही दान करना चाहिये। ऐसे व्यक्ति का जल का दान भी अन्य सभी दानों के बराबर होता है।

न धर्म प्रीयते तात दानैर्दत्तैर्महाफलैः।। आश्व० 90/98।।

न्यायलब्धैर्यथा सूक्ष्मैः श्रद्धापूतैः स तुष्यति।

तात ! अन्याय से प्राप्त धन के द्वारा महान फल देने वाले बड़े-बड़े दान देने से धर्म प्रसन्न नहीं होता। न्यायपूर्वक कमाये हुए थोड़े से धन या वस्तु का श्रद्धापूर्वक दान करने से धर्म को प्रसन्नता होती है।

दुःख

न तु मन्ये विघाताय ज्ञानं दुःखस्य संजय।

भवत्यतिबलं ह्येतज्ज्ञानस्याप्युपघातकम्।। उद्योग 51/53

संजय! मैं यही मानता हूँ कि ज्ञान से दुःख दूर नहीं होता अपितु दुःख ही ज्ञान को नष्ट करने में अत्यन्त सशक्त है।

न नूनं परदुःखेन म्रियते कोऽपि संजय।

यत्र द्रोणमहं श्रुत्वा हतं जीवामि मन्दधीः।। द्रोण 9/9

संजय! कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के दुःख से नहीं मरता। जैसे मैं मूर्ख धृतराष्ट्र द्रोण का वध सुनकर भी जीवित हूँ।

शारीरं मानसं दुःखं योऽतीतमनुशोचति।

दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ च विन्दति।। शान्ति 16/10

जो मनुष्य बीते हुए शारीरिक या मानसिक दुःख को याद करके दुःखी होता है उसे पिछले दुःख से दुःख ही मिलता है और वह एक ही दुःख के कारण दो बार दुःखी होता है।

शोकस्थान सहस्राणि हर्षस्थानशतानि च।

दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्।। शान्ति 25/20

मूर्ख मनुष्य को प्रतिदिन तरह-तरह के सुख-दुःख होते रहते हैं किन्तु विद्वान् मनुष्य पर इनका प्रभाव नहीं पड़ता।

दुःखमेवास्ति न सुखं तस्मात् तदुपलभ्यते।

तृष्णार्तिप्रभवं दुःखं दुःखार्तिप्रभवं सुखम्।। शान्ति 25/22

संसार में दुःख ही है सुख नहीं इसलिये दुःख ही मिलता है। तृष्णा की पीड़ा से दुःख होता है और दुःख से पीड़ित मनुष्य को सुख।

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।

न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम्।। शान्ति 25/23

सुख के बाद दुःख आता है और दुःख के बाद सुख। किसी को सदा सुख या सदा दुःख नहीं मिलता रहता।

येन दुःखेन यो दुःखी न स जातु सुखी भवेत्।
दुःखानां हि क्षयो नास्ति जायते ह्यपरात् परम्।। शान्ति 25/30

जिस दुःख से कोई दुःखी है वह कभी सुखी नहीं हो सकता; क्योंकि दुःखों का अन्त नहीं है और एक दुःख से दूसरा दुःख ही होता है।

मानसानां पुनर्योनिर्दुःखानां चित्तविभ्रमः।
अनिष्टोपनिपातो वा तृतीयं नोपपद्यते।। शान्ति 28/12

बार-बार मानसिक दुःख होने के दो कारण हैं चित्त का भ्रम और अनिष्ट होना। इनके सिवाय मानसिक दुःख का और कोई कारण नहीं होता।

सुखं वा यदि वा दुःखं भूतानां पर्युपस्थितम्।
प्राप्तव्यमवशैः सर्वं परिहारो न विद्यते।। शान्ति 28/16

प्राणियों को जो सुख या दुःख मिलता है उसे सहना ही पड़ता है। विवश प्राणी इन्हें किसी भी तरह टल नहीं सकता।

मानसादपि दुःखाद्धि शारीरं बलवत्तरम्।। शान्ति 50/14

मानसिक दुःख की अपेक्षा शारीरिक दुःख अधिक प्रबल होता है।

ये दम्भान्नाचरन्ति स्म येषां वृत्तिश्च संयता।
विषयांश्च निगृह्णन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शा० 110/3

जो लोग दम्भ भरा आचरण नहीं करते। जिनकी जीविका नियमानुकूल होती है। जो विषय भोगों की इच्छा नहीं करते हैं, वे दुःखों को लांघ जाते हैं।

प्रत्याहुर्नोच्यमाना ये न हिंसन्ति च हिंसिताः।
प्रयच्छन्ति न याचन्ते दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/4

जो कड़वी बात या अपनी निन्दा सुनकर भी उत्तर नहीं देते, मार खाकर भी नहीं मारते। स्वयं देते हैं किन्तु किसी से कुछ नहीं मांगते वे दुखों को लांघ जाते हैं।

वासयन्त्यतिथीन् नित्यं नित्यं ये चानसूयकाः।
नित्यं स्वाध्यायशीलाश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/5

जो प्रतिदिन अतिथियों को अपने घर में ठहराते हैं। जो किसी में कभी दोष नहीं देखते और सदा पढ़ते रहते हैं वे दुःखों को लांघ जाते हैं।

मातापित्रोश्च ये वृत्तिं वर्तन्ते धर्मकोविदाः।
वर्जयन्ति दिवा स्वप्नं दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/6

जो धर्मज्ञ व्यक्ति माता-पिता की सेवा करते रहते हैं और दिन में कभी सोते नहीं हैं वे दुःखों से छूट जाते हैं।

ये वा पापं न कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा।
निक्षिप्तदण्डा भूतेषु दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/7

जो लोग मन, वचन और कर्म से कोई बुरा काम नहीं करते और किसी प्राणी को कष्ट नहीं देते वे दुःखों से छूट जाते हैं।

स्वेषु दारेषु वर्तन्ते न्यायवृत्तिमृतावृतौ।
अग्निहोत्रपराः सन्तो दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/9

जो गृहस्थ ऋतुकाल में अपनी पत्नी के साथ समागम करते हैं और प्रतिदिन यज्ञ करते हैं वे दुःखों के पार हो जाते हैं।

ये वदन्तीह सत्यानि प्राणत्यागेऽप्युपस्थिते।
प्रमाणभूता भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/11

जो लोग अपने प्राणों पर संकट आ जाने पर भी सच बोलते हैं। वे सभी प्राणियों के विश्वासपात्र बनकर दुःखों से छूट जाते हैं।

कर्माण्यकुहकार्यानि येषां वाचश्च सूनृताः।
येषामर्थाश्च सम्बद्धा दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/12

जिनके काम दिखावे के लिये नहीं होते। जो मीठी वाणी बोलते हैं और जिनका धन सत्कर्मों के लिये नियत रहता है वे दुःखों से छूट जाते हैं।

ये तपश्च तपस्यन्ति कौमारब्रह्मचारिणः।
विद्यावेदव्रतस्नाता दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/14

जो तपस्या करते हैं। कुमारावस्था से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं और विद्या तथा वेदों को पढ़ चुके हैं वे दुःखों से छूट जाते हैं।

ये च संशान्तरजसः संशान्त तमसश्च ये।
सत्त्वे स्थिता महात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/15

जिनके रजोगुण और तमोगुण शान्त हो गये हैं और जो महात्मा शुद्ध सत्त्वगुण में रहते हैं वे दुर्गम दुःखों को लांघ जाते हैं।

येषां न कश्चित् त्रसति न त्रसन्ति हि कस्यचित्।
येषामात्मसमो लोको दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/16

जिनसे कोई प्राणी नहीं डरता और जो किसी प्राणी से नहीं डरते। जो सभी के साथ अपने समान ही व्यवहार करते हैं वे दुःखों को लांघ जाते हैं।

परश्रिया न तप्यन्ति ये सन्तः पुरुषर्षभाः।
ग्राम्यादर्थान्निवृत्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/17

जो सज्जन महात्मा दूसरे की धन-समृद्धि से ईर्ष्या नहीं करते। जो विषय भोगों से मुँह मोड़ चुके हैं वे दुःखों से छूट जाते हैं।

सर्वान् देवान् नमस्यन्ति सर्वधर्माश्च शृण्वते।
ये श्रद्दधानाः शान्ताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/18

जो सभी देवताओं का आदर करते हैं, सभी धर्मों की बातें सुनते हैं और श्रद्धा करते हैं तथा शान्त रहते हैं वे दुःखों से छूट जाते हैं।

ये न मानित्वमिच्छन्ति मानयन्ति च ये परान्।
मान्यमानान् नमस्यन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/19

जो अपना सम्मान नहीं चाहते किन्तु दूसरों का सम्मान करते हैं और माननीय पुरुषों को प्रणाम करते हैं वे दुःखों से छूट जाते हैं।

ये क्रोधं संनियच्छन्ति क्रुद्धान् संशमयन्ति च।
न च कुप्यन्ति भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/21

जो अपने क्रोध को वश में रखते हैं और क्रोध में भरे लोगों को शान्त करते हैं तथा प्राणियों पर क्रोध नहीं करते वे दुःखों से छूट जाते हैं।

मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह मानवाः।
जन्मप्रभृति मद्यं च दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/22

जो लोग जन्म से मधु, मांस और शराब छोड़ देते हैं वे दुःखों से छूट जाते हैं।

यात्रार्थं भोजनं येषां सन्तानार्थं च मैथुनम्।
वाक् सत्यवचनार्थाय दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/23

जो जीवन यात्रा चलाने के लिये भोजन करते हैं, सन्तान उत्पन्न करने के लिये मैथुन करते हैं और सत्य बोलने के लिये जिह्वा का उपयोग करते हैं वे दुखों से छूट जाते हैं।

ईश्वरं सर्वभूतानां जगतः प्रभवाप्ययम्।
भक्ता नारायणं देवं दुर्गाण्यतितरन्ति ते।। शान्ति 110/24

जो सभी प्राणीयों के स्वामी और सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय करने वाले भगवान नारायण की भक्ति करते हैं वे दु:खों से छूट जाते हैं।

दुःखं जरा ब्रह्मदत्त दुःखमर्थविपर्ययः।
दुःखं चानिष्टसंवासो दुःखमिष्टवियोजनम्।। शान्ति 139/63

राजा ब्रह्मदत्त! बुढ़ापा दु:ख है। धन का नाश होने से दु:ख होता है। अप्रिय लोगों के साथ रहने से दु:ख होता है और प्रियजनों के बिछुड़ने से दु:ख होता है।

सुखाद् बहुतरं दुःखं जीविते नात्र संशयः। शान्ति 330/16

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जीवन में सुख ही अपेक्षा दु:ख ही अधिक होता है।

वधवन्धकृतं दुःखं स्त्रीकृतं सहजं तथा।
दुःखं सुतेन सततं जनान् विपरिवर्तते।। शान्ति 139/64

मरने और पकड़े जाने से सभी दु:खी होते हैं। स्त्री के कारण और स्वाभाविक रूप से भी दु:ख होता है। पुत्र के मरने या बिगड़ जाने से भी मन सदा दु:खी रहता है।

तृष्णार्तिप्रभवं दुःखं दुःखार्तिप्रभवं सुखम्।
सुखात् संजायते दुःखं दुःखमेव पुनः पुनः।। शान्ति 174/18

संसार के भोगों की इच्छा के कारण दु:ख पैदा होता है। दु:खों से घबराकर मनुष्य सुख चाहता है। फिर सुख के बाद दु:ख आता है। इसलिये मनुष्य बार बार दु:ख ही भोगता रहता है।

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
सुखदुःखे मनुष्याणां चक्रवत् परिवर्ततः।। शान्ति 174/19

मनुष्य को सुख के बाद दु:ख मिलता है और दु:ख के बाद सुख। इसलिये जीवन में सुख और दु:ख चक्र की भाँति घूमते रहते हैं।

शारीरै र्मानसैर्दुःखैः सुखैश्चाप्यसुखोदयैः।
लोकसृष्टिं प्रपश्यन्तो न मुह्यन्ति विचक्षणाः।। शान्ति 190/6

यह संसार शारीरिक और मानसिक दुखों से भरा हुआ है। हमें जो सुख मिलता

है उससे भी अन्त में दुःख ही मिलता है। यह बात समझने वाले बुद्धिमान पुरुष कभी भी मोह में नहीं पड़ते।

यद् यत्प्रियं यस्य सुखं तदाहुस्तदेव दुःखं प्रवदन्त्यनिष्टम्।। शान्ति 201/10

जिसे जो विषय भोग आदि अच्छा लगता है वही उसके लिये सुख होता है और जो वस्तु अच्छी नहीं लगती वह दुःख होती है।

दुःखोपघाते शारीरे मानसे चाप्युपस्थिते।
यस्मिन् न शक्यते कर्तुं यत्नस्तं नानुचिन्तयेत्।। शान्ति 205/1

कोई शारीरिक या मानसिक दुःख आने पर यदि उसे दूर करने का कोई उपाय न किया जा सके तो उस दुःख के बारे में सोचना ही नहीं चाहिये।

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्।
चिन्त्यमानं हि चाभ्येति भूयश्चापि प्रवर्तते।। शान्ति 205/2

दुःख दूर करने की यही दवा है कि उसके बारे में न सोचा जाय, क्योंकि दुःख याद करने से वह सामने आ जाता है और फिर बढ़ने लगता है।

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः।
एतद् विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात्।। शान्ति 205/3

मानसिक दुःख को बुद्धि से और शारीरिक दुःख को दवाओं से दूर करना चाहिये यही विज्ञान की शक्ति है। मनुष्य को दुःख आने पर बच्चों की तरह रोना नहीं चाहिये।

सुखाद् बहुतरं दुःखं जीविते नात्र संशयः।
स्निग्धत्वं चेन्द्रियार्थेषु मोहान्मरणमप्रियम्।। शान्ति 205/6

जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख निश्चय ही अधिक है। विषयों में फंसा मनुष्य मोह के कारण मरने जैसे कष्ट भोगता है।

परित्यजति यो दुःखं सुखं वाप्युभयं नरः।
अभ्येति ब्रह्म सोऽत्यन्तं न ते शोचन्ति पण्डिताः।। शा० 205/7

जो मनुष्य सुख और दुःख दोनों को ही छोड़ देता है वह अक्षय ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। ज्ञानी पुरुष इसीलिये शोक नहीं करते।

दुःखं विद्यादुपादानादभिमानाच्च वर्धते।

त्यागात् तेभ्यो निरोधः स्यान्निरोधज्ञो विमुच्यते।। शान्ति 213/19

शरीर के ग्रहण मात्र से ही दुःख की प्राप्ति अवश्य होती है। शरीर में अभिमान करने से दुःख बढ़ता है। अभिमान छोड़ने से दुःखों का अन्त हो जाता है। देहाभिमान छोड़ देने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है।

सुखदुःखे हि पुरुषः पर्यायेणाधिगच्छति।। शान्ति 227/28

मनुष्य को सुख-दुःख बारी-बारी से मिलते रहते हैं।

नास्ति रागसमं दुःखम्।। शान्ति 277/36

राग या आसक्ति के समान कोई दुःख नहीं है।

न ह्येव दुःखानि सदा भवन्ति सुखस्य वा नित्यशो लाभ एव।। शा० 286/12

जीवन में सदा दुःख और सुख नहीं रहते।

धृतिश्च दुःखत्यागश्चेत्युभयं तु सुखं नृप।। शान्ति 286/16

राजन्! दुखों के सम्बन्ध का त्याग और धैर्य ये दोनों ही सुख के कारण हैं।

प्राक्सम्प्रयोगाद् भूतानां नास्ति दुःखं परायणम्।

विप्रयोगात् तु सर्वस्य न शोचेत् प्रकृतिस्थितः।। शा० 330/27

प्राणियों को एक-दूसरे से मिलने से पहिले कोई दुःख नहीं होता। किन्तु जब मिलने के बाद बिछुड़ना पड़ता है तब सभी को दुःख होता है। अतः स्वरूप में स्थित विवेकशील पुरुष को किसी के बिछुड़ने पर दुःख नहीं करना चाहिये।

दुर्योधन

यद् वै पुरा जातमात्रो रुराव गोमायुवद् विस्वरं पापचेताः।

दुर्योधनो भरतानां कुलघ्नः सोऽयं युक्तो भवतां कालहेतुः।। सभा 62/3

यह दुर्योधन पैदा होते ही गीदड़ की तरह चिल्लाने लगा था। यह भरतवंश का नाश करने वाला है और आप सबके नाश का भी कारण है।

एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति शास्ता-

गर्भे शयानं पुरुषं शास्ति शास्ता।

तेनानुशिष्टः प्रवणादिवाम्भो-
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा भवामि।। सभा 64/8

इस संसार का शासन करने वाला एक ही है दूसरा कोई नहीं। वही गर्भ में सोये हुए पुरुष को भी सिखाता है। जैसे पानी नीचे की ओर बहता है उसी तरह मैं भी भगवान् द्वारा दिया हुआ काम करता हूँ।

मज्जन्त्यलाबूनि शिलाः प्लवन्ते मुह्यन्ति नावोऽम्भसि शश्वदेव।
मूढो राजा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो न मे वाचः पथ्यरूपाः शृणोति।।
सभा 66/11

चाहे तूम्बा जल में डूब जाय, पत्थर तैरने लगें और नावें सदा पानी में डूबी रहें किन्तु राजा धृतराष्ट्र का पुत्र यह मूर्ख दुर्योधन मेरी हितकर बातें नहीं सुन सकता।

अन्तः कामं कुलस्यास्तु न शक्नोमि निवारितुम्।। सभा 75/11

चाहे इस कुल का सर्वनाश क्यों न हो जाय पर मैं दुर्योधन को नहीं रोक सकता।

दुर्योधनो गुरुद्वेषी त्यक्ताचारसुहृज्जनः।
अर्थलुब्धोऽभिमानी च नीचः प्रकृतिनिर्घृणः।। वन 1/16

दुर्योधन गुरुजनों से द्वेष करता है। उसने सदाचार और पाण्डवों जैसे मित्रों को छोड़ दिया है। वह पैसे का लालची है, अभिमानी है, नीच है और क्रूर स्वभाव वाला है।

गर्दभे मार्दवं कुर्याद् गोषु तीक्ष्णं समाचरेत्।
मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात् पापचेतसि।। उद्योग 4/5

जो पापी दुर्योधन से मीठी बात करेगा वह तो गदहे के साथ कोमल व्यवहार करेगा और गायों के साथ कठोर व्यवहार करेगा।

मानघ्नस्यासौ मानकामस्य चेर्षोः संरम्भिणश्चार्थ धर्मातिगस्य।
दुर्भाषिणो मन्युवशानुगस्य कामात्मनो दौर्हृदैर्भावितस्य।।
उद्योग 26/14

अनेयस्याःश्रेयसो दीर्घमन्योर्मित्रद्रुहः संजय पापबुद्धेः।
सुतस्य राजा धृतराष्ट्रः प्रियैषी प्रपश्यमानः प्राजहाद् धर्मकामौ।।
उद्योग 26/15

संजय! दूसरों का अपमान कर अपना सम्मान चाहने वाले, ईर्ष्यालु, क्रोधी, धर्म और अर्थ का पालन न करने वाले, कड़वा बोलने वाले, क्रोध के वश में रहने वाले, कामवासना वाले, पापियों से प्रशंसित, नीति की बात न सुनने वाले, अत्यन्त क्रोधी, मित्रों से वैर करने वाले और पापबुद्धि अपने पुत्र दुर्योधन का प्रिय चाहने वाले उस राजा धृतराष्ट्र ने जान-बूझकर धर्म और काम का रास्ता छोड़ दिया है।

सुयोधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कन्धः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः।

दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी।।

उद्योग 29/52

साक्षात् क्रोधरूपी दुर्योधन बड़े पेड़ जैसा है। कर्ण इस वृक्ष का तना है और शकुनि शाखा है। इस पेड़ के फूल और फल दुःशासन है तथा मूर्ख राजा धृतराष्ट्र इस पेड़ की जड़ है।

ज्येष्ठः पुत्रो धृतराष्ट्रस्य मन्दो मूर्खः शठः संजय पापशीलः।

यस्यापवादः पृथिवीं याति सर्वां सुयोधनं कुशलं तात पृच्छैः।।

उद्योग 30/17

संजय! धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र दुर्योधन मन्दमति, मूर्ख, दुष्ट और पापी है। सारी दुनिया में उसकी बदनामी हो रही है। उसे भी मेरा प्रणाम कहना।

प्रकृत्या पापसत्त्वश्च तुल्यचेतास्तुः दस्युभिः।
ऐश्वर्यमदमत्तश्च कृतवैरश्च पाण्डवैः।। उद्योग 74/3

दुर्योधन स्वभाव से पापी है, वह डाकुओं की तरह क्रूर है। वह ऐश्वर्य के नशे में चूर है और उसने पाण्डवों के साथ वैर बांध लिया है।

अदीर्घदर्शी निष्ठूरी क्षेप्ता क्रूरपराक्रमः।
दीर्घमन्युरनेयश्च पापात्मा निकृतिप्रियः।। उद्योग 74/4

दुर्योधन अदूरदर्शी, निष्ठुर वात कहने वाला, निन्दा करने वाला, अत्याचार भरा पराक्रम करने वाला, बहुत देर तक गुस्सा करने वाला, सही बात न मानने वाला है। वह पापी और धूर्त लोगों के काम पसन्द करने वाला है।

म्रियेतापि न भज्येत नैव जह्यात् स्वकं मतम्।
तादृशेन शमः कृष्ण मन्ये परम दुष्करम्।। उद्योग 74/5

दुर्योधन मर जायेगा किन्तु झुकेगा नहीं। न ही वह अपना विचार बदलेगा इसलिये कृष्ण, ऐसे व्यक्ति के साथ सन्धि होनी बहुत कठिन है।

सुहृदामप्यवाचीनस्त्यक्तधर्मा प्रियानृतः।

प्रतिहन्त्येव सुहृदां वाचश्चैव मनांसि च।। उद्योग 74/6

दुर्योधन हितैषी मित्रों की बात भी नहीं मानता है। उसने धर्म छोड़कर झूठ को पकड़ लिया है। वह मित्रों की बात काटता है और उनके मन को दुखी करता है।

दुर्योधनो कुलाङ्गारो जघन्यः पापपूरुषः।। उद्योग 74/18

दुर्योधन; कुलकलंक, नीच और पापी है।

अर्थधर्मातिगो मन्दः संरम्भी च जनार्दन।

मानघ्नो मानकामश्च वृद्धानां शासनातिगः।। उद्योग 92/2

जनार्दन! दुर्योधन धर्म और अर्थ का पालन नहीं करता। वह मूर्ख, क्रोधी, दूसरों का अपमान करने वाला, अपना सम्मान चाहने वाला और बड़ों की आज्ञा न मानने वाला है।

धर्मशास्त्रातिगो मूढो दुरात्मा प्रग्रहं गतः।

अनेयः श्रेयसां मन्दो धार्तराष्ट्रो जनार्दन।। उद्योग 92/3

जनार्दन! दुर्योधन, धर्मशास्त्रों का आदेश नहीं मानता। वह मूर्ख, दुष्ट और हठी है। उसे सन्मार्ग पर नहीं लाया जा सकता।

कामात्मा प्राज्ञमानी च मित्रध्रुक् सर्वशङ्कितः।

अकर्ता चाकृतज्ञश्च त्यक्तधर्मा प्रियानृतः।। उद्योग 92/4

उसका मन भोगों में आसक्त है, वह अपने को बुद्धिमान समझता है, वह मित्रों से द्रोह करता है, उसे झूठ बोलना अच्छा लगता है, उसे सदा सन्देह बना रहता है वह किसी का उपकार नहीं करता और दूसरों का उपकार नहीं मानता। वह धर्म को छोड़ चुका है।

मूढश्चाकृतबुद्धिश्च इन्द्रियाणामनीश्वरः।

कामानुसारी कृत्येषु सर्वेष्वकृतनिश्चयः।। उद्योग 92/5

उस मूर्ख में तनिक भी विवेक नहीं है, वह किसी निश्चय पर स्थिर नहीं रहता। उसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं। वह मनमानी करता है और सभी कामों में अनिश्चित रवैय्या अपनाये रहता है।

यथैवेश्वरसृष्टोऽस्मि यद्भावि या च मे गतिः।

तथा महर्षे वर्तामि किं प्रलापः करिष्यति।। उद्योग 105/40

महर्षे! भगवान ने मुझे जैसा बनाया है, जो होनहार है और जो मेरी अवस्था है मैं उसी के अनुसार आचरण करता हूँ। आपके प्रलाप से क्या लाभ होगा।

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।

तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान् प्रति।। उद्योग 127/25

केशव! सूंई की पतली नोक से जितना छेद हो सकता है उतनी भूमि भी मैं अब पाण्डवों को नहीं दूँगा।

कालोऽयं पुत्ररूपेण तव जातो विशाम्पते।

न वधः पूज्यते वेदे हितं नैव कथंचन।। भीष्म 3/54

राजन्! तुम्हारे परिवार में पुत्र के रूप में यह दुर्योधन काल ही पैदा हुआ है। वेद हिंसा को बुरा कहते हैं। हिंसा से किसी का लाभ नहीं होता।

प्रक्षिप्तः सम्मतः क्षुद्रः पुत्रो मे पुरुषाधम।

न युद्धं रोचयेद् भीष्मो न चाचार्यः कथंचन।। भीष्म 49/8

न कृपो न च गान्धारी नाहं संजय रोचये। भीष्म 49/9

संजय! मेरा पुत्र दुर्योधन क्षुद्र स्वभाव का है। वह कर्ण आदि का प्रिय तथा चंचल बुद्धि वाला है। वह सभी पुरुषों में सबसे नीच है। मैं, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और गान्धारी कोई भी युद्ध नहीं चाहता था।

नूनं बुद्धिविहीनश्चाप्यसहायश्च मे सुतः।

शत्रुभिर्व्यंसितः पापः कथं नु स जयेदरीन्।। द्रोण 182/5

मेरा पुत्र निश्चय ही मूर्ख है। उसका कोई सहायक नहीं है। शत्रुओं ने उसे ठग लिया है। वह पापी अपने शत्रुओं पर कैसे विजयी हो सकता है।

विरोधी च कुमन्त्री च प्राज्ञमानी ममात्मजः।। द्रोण 182/17

मेरा बेट्य दुर्योधन सबका विरोध करता है। उसके मन्त्री भी अच्छे नहीं है और वह अपने को बहुत बुद्धिमान समझता है।

घातयित्वा वयस्यांश्च भ्रातृनथ पितामहान्।

जीवितं यदि रक्षेयं लोको मां गर्हयेद् ध्रुवम्।। शल्य 5/45

मित्रों, भाइयों और पितामहों को मरवा कर यदि मैं अपना जीवन बचाऊँगा तो रह संसार निश्चय ही मेरी निन्दा करेगा।

न धर्मः सत्कृतः कश्चिन्नित्यं युद्धमभीप्सता।

अल्पबुद्धिरहंकारी नित्यं युद्धमिति ब्रुवन्।
क्रूरो दुर्मर्षणो नित्यमसन्तुष्टश्च वीर्यवान्।। स्त्री 1/31

दुर्योधन सदा युद्ध करना चाहता था इसलिये उसने धर्म का पालन आदर से कभी नहीं किया। वह मूर्ख और घमण्डी था और सदा युद्ध की बात करता था। वह बलशाली था किन्तु क्रूर, गुस्से में भरा रहने वाला और सदा असन्तुष्ट रहने वाला था।

कलेरंशः समुत्पन्नो गान्धार्या जठरे नृप।
अमर्षी चपलश्चापि क्रोधनो दुष्प्रसाधनः।। स्त्री 8/30

राजन्! गान्धारी की कोख से कलि का अंश दुर्योधन पैदा हुआ जो ईर्ष्या करने वाला, चंचल स्वभाव वाला, क्रोधी और चालबाज था।

दुर्योधनस्यापराधेन कर्णस्य शकुनेस्तथा।
दुःशासनचतुर्थानां कुरवो निधनं गताः।। अनु 148/61

दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन इन चारों के अपराधों से सारे कौरव मारे गये।

देवता

ग्यारह रुद्र

अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः।
ऋतश्च पितृरूपश्च त्र्यम्बकश्च महेश्वरः।। अनु 150/12
वृषाकपिश्च शम्भुश्च हवनोऽथेश्वरस्तथा।
एकादशैते प्रथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः।। अनु 150/13

अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, ऋत, पितृरूप त्र्यम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हवन और ईश्वर ये ग्यारह रुद्र प्रसिद्ध हैं। ये रुद्र तीनों लोकों के स्वामी हैं।

बारह आदित्य- **अंशो भगश्च मित्रश्च वरुणश्च जलेश्वरः।।** अनु 150/14
तथा धातार्यमा चैव जयन्तो भास्करस्तथा।
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते।। अनु 150/15
इत्येते द्वादशादित्याः काश्यपेया इति श्रुतिः।

अंश, भग, मित्र, जलों का ईश्वर वरुण, धाता, अर्यमा, जयन्त, भास्कर, त्वष्य, पूषा, इन्द्र और विष्णु ये बारह आदित्य हैं। वेद-शास्त्रों के अनुसार ये सब कश्यप के पुत्र हैं।

आठ वसु- **धरोध्रुवश्च सोमश्च सावित्रोऽथानिलोऽनलः।।** अनु 150/16

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः।

धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु कहलाते हैं।

दो अश्विनी- **नासत्यश्चापि दस्त्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि।।** अनु 150/17

मार्तण्डस्यात्मजावेतौ संज्ञा नासा विनिर्गतौ।।

नासत्य और दस्त्र ये दो अश्विनीकुमार हैं। ये सूर्य के पुत्र कहलाते हैं और अश्वरूपधारिणी संज्ञा देवी की नाक से प्रकट हुए हैं। ये सब मिलाकर तैंतीस देवता हैं!

प्रकाशलक्षणा देवा मनुष्याः कर्मलक्षणाः।। आश्व 43/21

देवताओं का लक्षण प्रकाश है और मनुष्यों का लक्षण यज्ञ आदि कर्म हैं।

द्वेष

लुब्धानां शुचयो द्वेष्याः कातराणां तरस्विनः।

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या दरिद्राणां महाधनाः।

अधार्मिकाणां धर्मिष्ठा विरूपाणां सुरूपिणः।। शान्ति 111/62

लोभी व्यक्ति निर्लोभी से, कायर पुरुष बलवानों से, मूर्ख व्यक्ति विद्वानों से, दरिद्र लोग धनवानों से, अधार्मिक लोग धार्मिक पुरुषों से और बदसूरत लोग सुन्दर मनुष्यों से द्वेष करते हैं।

द्रौपदी

अभुक्तं भुक्तवद् वापि सर्वमाकुब्जवामनम्।

अभुञ्जाना याज्ञसेनी प्रत्यवैक्षद् विशाम्पते।। सभा 52/48

राजन्! उस राजसूय यज्ञ में द्रौपदी स्वयं भोजन किये बिना यह देखती थी कि कुबड़े और बौनों से लेकर किन लोगों ने अभी तक भोजन नहीं किया है।

नैव ह्रस्वा न महती न कृष्णा नातिरोहिणी।

नील कुञ्चितकेशी च तया दीव्याम्यहं त्वया।। सभा 65/33

द्रौपदी न तो ठिगनी है और न ही बहुत लम्बी। वह न तो काली है और न ही अत्यधिक लाल। उसके केश काले और घुंघराले हैं। मैं उसे दांव पर लगाता हूँ।

शारदोत्पलपत्राक्ष्या शारदोत्पलगन्धया।

शारदोत्पलसेविन्या रूपेण श्रीसमानया।। सभा 65/34

उसके नेत्र शरद ऋतु के खिले कमल जैसे हैं। उसके शरीर की सुगन्ध शरद ऋतु के कमल की सुवास जैसी है। वह शरद ऋतु के कमलों का सेवन करती है। उसका रूप साक्षात् लक्ष्मी जैसा है।

तथैव स्यादानृशंस्यात् तथा स्याद् रूपसम्पदा।

तथा स्याच्छीलसम्पत्त्या यामिच्छेत् पुरुषः स्त्रियम्।। सभा 65/35

पुरुष जैसी स्त्री प्राप्त करना चाहता है द्रौपदी में वैसी ही दया की भावना है, वैसी ही उसकी रूप-लावण्य सम्पत्ति है तथा उसका चरित्र और व्यवहार भी आदर्श है।

सर्वैं गुणैर्हि सम्पन्नामनुकूलां प्रियम्वदाम्।

यादृशीं धर्मकामार्थ सिद्धिमिच्छेन्नरः स्त्रियम्।। सभा 65/36

द्रौपदी सभी गुणों से युक्त, मन के अनुकूल और प्रिय वचन बोलने वाली है। धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि के लिये मनुष्य जैसी स्त्री चाहता है वह वैसी ही है।

आभाति पद्मवद् वक्त्रं सस्वेदं मल्लिकेव च।

वेदिमध्या दीर्घकेशी ताम्रास्या नातिलोमशा।। सभा 65/38

स्वेद के कणों के कारण उसका मुख कमल जैसा सुन्दर है, उसका मध्य भाग वेदी जैसा पतला है और उसके मुख से मल्लिका जैसी सुगन्ध आती है। द्रौपदी के केश बहुत लम्बे हैं। उसका मुख और ओष्ठ गुलाबी हैं और शरीर पर रोम नहीं हैं।

यथा च वेदान् सावित्री याज्ञसेनी तथा पतीन्।

न जहौ धर्मतः पार्थान् मेरुमर्कप्रभा यथा।। वन 81/5

जैसे गायत्री चारों वेदों का और सूर्य की चमक मेरु पर्वत का परित्याग नहीं करती वैसे ही द्रौपदी ने अपने पतियों को नहीं छोड़ा।

पुत्रलोकात् पतिलोकं वृण्वाना सत्यवादिनी।

प्रियान् पुत्रान् परित्यज्य पाण्डवाननुरुध्यते।। उद्योग 90/44

पुत्रलोक से पतिलोक को श्रेष्ठ मानकर सत्य बोलने वाली द्रौपदी अपने प्रिय पुत्रों को छोड़कर पाण्डवों का ही अनुसरण करती है।

स्त्रीधर्मिणी वरारोहा क्षत्रधर्मरता सदा।

नाभ्यगच्छत् तदा नाथं कृष्णा नाथवती सता। उद्योग 90/87

सदा क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाली मेरी सुन्दर द्रौपदी तब रजस्वला थी। वहाँ उसके पति भी थे। किन्तु वह किसी को भी अपना रक्षक नहीं पा सकी।

धन

अर्थ प्राप्तौ तु नरकः कृत्स्न एवोपपद्यते।। आदि 156/23

धन आ जाने पर तो नरक का सारा दुःख भोगना पड़ता है।

अर्थेप्सुता परं दुःखमर्थप्राप्तौ ततोऽधिकम्।

जातस्नेहस्य चार्थेषु विप्रयोगे महत्तरम्।। आदि 156/24

धन की इच्छा होना बहुत बड़ा दुःख है किन्तु धन कमाने में तो और भी अधिक कष्ट होता है। जिसे धन से मोह हो जाता है उसे धन नष्ट होने पर तो बहुत ही दुःख होता है।

ममत्वं हि न कर्त्तव्यमैश्वर्ये वा धनेऽपि वा।

पूर्वावाप्तं हरन्त्यन्ये राजधर्मं हि तं विदुः।। सभा 55/12

ऐश्वर्य या धन के प्रति हमें ममता नहीं करनी चाहिये क्योंकि पहले कमाया हुआ धन दूसरे लोग हड़प लेते हैं और यही राजधर्म भी है।

राजतः सलिलादग्नेश्चोरतः स्वजनादपि।

भयमर्थवतां नित्यं मृत्योः प्राणभृतामिव।। वन 2/39

धनी पुरुषों को राजा, जल, अग्नि, चोर और अपने सम्बन्धियों से वैसे ही सदा भय बना रहता है जैसे प्राणियों को मृत्यु से।

अर्थ एव हि केषांचिदनर्थं भजते नृणाम्।

अर्थश्रेयसि चासक्तो न श्रेयो विन्दते नरः।। वन 2/41

अनेक लोगों के लिये अर्थ ही अनर्थ का कारण बन जाता है। धन द्वारा मिलने वाले सांसारिक भोगों में लिप्त पुरुष का कल्याण नहीं होता।

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम्।। वन 2/49

जो मनुष्य धर्म के काम करने के लिये धन कमाना चाहता है उसका धन की इच्छा न करना ही कहीं अच्छा है। कपड़े आदि में कीचड़ लगाकर उसे धोने की अपेक्षा कीचड़ न लगाना ही अच्छा है।

यस्य चार्थार्थमेवार्थः स च नार्थस्य कोविदः।
रक्षेत भृतकोऽरण्ये यथा गावस्तादृगेव सः।। वन 33/24

जो केवल धन के लिये धन चाहता है वह दान आदि के लिये धन का मर्म नहीं समझता। जैसे ग्वाला वन में गौओं की रक्षा करता है वैसे ही वह भी दूसरों के लिये धन की रखवाली करता है।

अतिवेलं हि योऽर्थार्थी नेतरावनुतिष्ठति।
स वध्यः सर्वभूतानां ब्रह्महेव जुगुप्सितः।। वन 33/25

जो व्यक्ति पैसे के पीछे अन्धाधुंध पड़कर धर्म और काम को भूल जाता है उसे सब लोग निन्दनीय ब्रह्मघाती के सामने मारने योग्य समझते हैं।

एष नार्थविहीनेन शक्यो राजन् निषेवितुम्।
अखिलाः पुरुषव्याघ्र गुणाः स्युर्यद्यपीतरे।। वन 33/47

पुरुषसिंह राजन्! यदि मनुष्य में अन्य सभी गुण हों तो वह यज्ञ, दान आदि धार्मिक कार्य धन के बिना नहीं कर सकता।

अर्थेन तु समो नार्थो यत्र लभ्येत नोदयः।
न तत्र विपणः कार्यः खरकण्डूयनं हि तत्।। वन 33/66

जहाँ धन लगाने पर उससे अधिक या समान धन न मिले वहाँ धन नहीं लगाना चाहिये क्योंकि वह गधों के आपस में शरीर खुजलाने की तरह व्यर्थ ही होता है।

अर्थे च महती तृष्णा स च दुःखेन लभ्यते।। वन 259/28

लोगों को धन का बहुत लोभ होता है और धन बड़े कष्ट से मिलता है।

परित्यज्य प्रियान् प्राणान् धनार्थं हि महामते।
प्रविशन्ति नरा वीराः समुद्रमटवीं तथा।। वन 259/29

लोग धन कमाने के लिये अपने प्रिय प्राणों की परवाह न करके भी घने जंगलों में भटकते हैं और समुद्र यात्रा करते हैं।

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते।। उद्योग 35/70

अधर्म से कमाये हुए धन से जो दोष छिपाया जाता है वह तो छिपता नहीं परन्तु उससे नये नये दोष (दरार) प्रकट हो जाते हैं।

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः।
अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योन्यं न सिद्ध्यतः।। उद्योग 37/38

धन कमाने के लिये सहायक की जरूरत पड़ती है और सहायक को धन मिलने की आशा होती है इस तरह ये दोनों एक-दूसरे पर आश्रित रहते हैं इनके सहयोग के बिना सफलता नहीं मिलती।

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम्।। उद्योग 37/48

जो व्यक्ति खूब धन कमाना चाहे तो उसे शुरू से ही धर्म का आचरण करना चाहिये। क्योंकि धर्म से अर्थ उसी प्रकार अलग नहीं होता जैसे स्वर्ग से अमृत अलग नहीं होता।

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति।। उद्योग 39/63

अत्यन्त श्रेष्ठ, अत्यधिक दानी, अत्यन्त वीर, बहुत अधिक व्रत करने वाले और बुद्धि के घमण्ड में चूर व्यक्ति के पास डरी हुई लक्ष्मी नहीं जाती।

न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च।
नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते।
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते।। उद्योग 39/64

लक्ष्मी न तो बहुत गुणी लोगों के पास और न ही गुणहीनों के पास ठहरती है। इसे न तो बहुत गुण अच्छे लगते हैं और न ही गुणहीनता। पागल गाय की तरह अन्धी लक्ष्मी कहीं कहीं ही ठहरती है।

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः।। उद्योग 39/75

जिस धन को कमाने में बहुत कष्ट उठाना पड़े या धर्म को छोड़ना पड़े अथवा शत्रु के आगे सिर झुकाना पड़े तो उस धन की इच्छा नहीं करनी चाहिये।

अधनाद्धि निवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदो द्विजाः।
अपुष्पफलाद् वृक्षाद् यथा कृष्ण पतत्रिणः।। उद्योग 72/20

कृष्ण! जैसे फल-फूल रहित पेड़ से पक्षी चले जाते हैं वैसे ही निर्धन मनुष्य को उसके सम्बन्धी, मित्र और ब्राह्मण भी छोड़ देते हैं।

धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम्।
जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वधना नराः।। उद्योग 72/23

धन को ही उत्तम धर्म माना जाता है। धन से सब कुछ किया जा सकता है। धनी लोग ही संसार में जीते हैं, निर्धन तो मरे हुए पुरुष के समान होते हैं।

न तथा बाध्यते कृष्ण प्रकृत्या निर्धनो जनः।
यथा भद्रां श्रियं प्राप्य तया हीनः सुखैधितः।। उद्योग 72/29

हे कृष्ण! जो जन्म से ही निर्धन रहा हो उसे निर्धनता उतना दुःख नहीं देती जितना कि कल्याणमयी सम्पत्ति पाकर सुखों में पले पुरुष को निर्धन होने पर कष्ट होता है।

धनवन्तं हि मित्राणि भजन्ते चाश्रयन्ति च।। उद्योग 135/38

धनवान पुरुष की मित्र मण्डली होती है और लोग उसका सहारा लेते हैं।

धिगस्त्वर्थं यत्कृतेऽयं महान् ज्ञातिवधः कृतः।। उद्योग 144/11

धन को धिक्कार है जिसके लिये बन्धु-बान्धवों का संहार किया जाने वाला है।

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।। भीष्म 43/41

मनुष्य पैसे का गुलाम है किन्तु पैसा किसी का दास नहीं होता।

अर्थाद् धर्मश्च कामश्च स्वर्गश्चैव नराधिप।
प्राणयात्रापि लोकस्य विना ह्यर्थं न सिद्धयति।। शान्ति 8/17

राजन्! पैसे से ही धर्म पालन, और कामनाएँ पूरी होती हैं। पैसे से ही स्वर्ग मिलता है। पैसे के बिना इस संसार में जीवन निर्वाह भी नहीं हो सकता।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्थार्स्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्थार्थाः स च पण्डितः।। शान्ति 8/19

पैसे वाले धनी व्यक्ति के ही मित्र और भाई बन्धु तथा सम्बन्धी होते हैं। पैसे वाले व्यक्ति की ही संसार में प्रतिष्ठा होती है। पैसे वाला ही विद्वान् माना जाता है।

धनात् कुलं प्रभवति धनाद् धर्मः प्रवर्धते।
नाधनस्यास्त्ययं लोको न परः पुरुषोत्तम।। शान्ति 8/22

हे पुरुषोत्तम! धन से ही कुल की प्रतिष्ठा बढ़ती है। धन से ही धर्म की वृद्धि होती है। निर्धन मनुष्य के लिये न तो यह लोक सुखकर होता है और न ही परलोक।

ईहेत धनहेतोर्यस्तस्यानीहा गरीयसी।
भूयान् दोषो हि वर्धेत यस्तं धनमुपाश्रयेत्।। शान्ति 20/7

जो धन कमाना चाहता है उससे अच्छा यही है कि वह बहुत धन न कमाये क्योंकि जो पैसा कमाने के पीछे पड़ जाता है उसमें अनके बुराइयाँ आ जाती हैं।

यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा यज्ञोद्दिष्टः पुरुषो रक्षिता च। शान्ति 26/25
तस्मात् सर्वं यज्ञ एवोपयोज्यं धनं ततोऽनन्तर एव कामः।। शान्ति 20/10

ब्रह्मा ने यज्ञ के लिये धन सम्पत्तियाँ बनाई हैं। यज्ञ के उद्देश्य से ही पुरुष को धन की रक्षा करने का काम सौंपा गया है इसलिये सारा धन यज्ञ में ही लगाना चाहिये। फिर उस यज्ञ से ही यजमान की सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है।

ये वित्तमभिपद्यन्ते सम्यक्त्वं तेषु दुर्लभम्।
द्रुह्यतः प्रैति तत् प्राहुः प्रतिकूलं यथातथम्।। शान्ति 26/20

जो धन के पीछे पड़े रहते हैं उनमें अच्छा आचार-विचार बड़ी मुश्किल से मिलता है। जो लोग दूसरों को धोखा देते हैं उन्हीं को धन मिलता है किन्तु ऐसा धन नाश करने वाला होता है।

देवस्वमुपगृह्यैव धनेन न सुखी भवेत्।। शान्ति 26/23

देवताओं की सम्पत्ति लेकर भी कोई व्यक्ति धन से सुखी नहीं हो सकता।

लब्धानामपि वित्तानां बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम्।। शान्ति 26/31

प्राप्त हुए धन का उपयोग करने में भी दो भूलें हो जाती हैं कि हम गलत काम के लिये धन दे देते हैं और सत्पात्र को धन नहीं देते।

निर्मर्यादान् नित्यमर्थे निविष्टान्।
आहुस्तांस्तान् वै पशुभूतान् मनुष्यान्।। शान्ति 65/7

जो लोग पैसा कमाने में लगे रहते हैं वे मर्यादा छोड़ देते हैं। ऐसे मनुष्य पशु कहलाते हैं।

ककुदं सर्वभूतानां धनस्थो नात्र संशयः।। शान्ति 88/30

धनवान मनुष्य निस्सन्देह सभी प्राणियों में मुख्य होता है।

धृतिर्दाक्ष्यं संयमो बुद्धिरात्मा धैर्यं शौर्यं देशकालाप्रमादाः।।
अल्पस्य बा बहुर्नो वा विवृद्धौ धनस्यैतान्यष्ट समिन्धनानि।। शान्ति 120/37

धारणा शक्ति, चतुराई, संयम, बुद्धिमत्ता, अपना शरीर, धैर्य, वीरता, देश और काल की परिस्थिति की जानकारी ये थोड़े या बहुत आठ गुण धन को बढ़ाते हैं।

धनेन जयते लोकावुभौ परमिमं तथा।
सत्यं च धर्मवचनं यथा नास्त्यधनस्तथा।। शान्ति 130/43

मनुष्य धन से यह लोक और परलोक दोनों को जीत लेता है। वह सत्य और धर्म पर भी चल पाता है किन्तु निर्धन कुछ नहीं कर पाता।

अधनं दुर्बलं प्राहुर्धनेन बलवान् भवेत्।
सर्वं धनवतां प्राप्यं सर्वं तरति कोशवान्।। शान्ति 130/49

निर्धन व्यक्ति कमजोर होता है और धनी बलवान। धनी व्यक्ति सब कुछ पा सकता है। वह सारे संकटों को पार कर जाता है।

उच्चैर्वृत्तेः श्रियो हानिर्यथैव मरणं तथा।
तस्मात् कोशं बलं मित्रमथ राजा विवर्धयेत्।। शान्ति 133/5

उच्च पद पर बैठे मनुष्य का धन यदि नष्ट हो जाता है तो उसे मृत्यु जैसा दुःख होता है। इसलिये राजा को धन, सेना और मित्र बढ़ाने चाहियें।

नित्योद्विग्नो हि धनवान् मृत्योरास्यगतो यथा।। शान्ति 176/11

धनी पुरुष सदा परेशान रहता है मानो वह मौत के मुँह में पड़ा हो।

धनवान् क्रोध लोभाभ्यामाविष्टो नष्टचेतनः।
तिर्यगीक्षः शुष्कमुखः पापको भृकुटिमुखः।। शान्ति 176/14

धनी व्यक्ति क्रोध और लोभ के आवेश में आकर अपनी समझबूझ खो देता है। वह टेढ़ी आँख से देखता है। उसका मुँह सूखा रहता है। उसकी भौंहें टेढ़ी रहती हैं और वह पाप के काम करता रहता है।

अथैनं रूपमानश्च धनमानश्च विन्दति।
अभिजातोऽस्मि सिद्धोऽस्मि नास्मि केवल मानुषः।। शान्ति 176/17

फिर उस पर अपनी सुन्दरता का अहंकार और धन का अभिमान सवार हो

जाता है। वह अपने को कुलीन और सिद्ध पुरुष समझने लगता है। और वह कहने लगता है कि मैं कोई साधारण मनुष्य नहीं हूँ!

इत्येभिः कारणैस्तस्य त्रिभिश्चित्तं प्रमाद्यति।
सम्प्रसक्तमना भोगान् विसृज्य पितृसंचितान्।
परिक्षीणः परस्वानामादानं साधु मन्यते।। शान्ति 176/18

रूप, धन, और कुल इन तीनों के घमण्ड के कारण उसका मन प्रमाद से भर जाता है। वह भोगों में फंसकर बाप दादों का जोड़ा हुआ पैसा उड़ा देता है। फिर वह दूसरों का धन हड़पना अच्छा मानने लगता है।

संचितं संचितं द्रव्यं नष्टं तव पुनः पुनः।
कदाचिन्मोक्ष्यसे मूढ धनेहां धनकामुक।। शान्ति 177/20

तूने बार-बार धन इकट्ठा किया और वह धन बार-बार नष्ट हो गया। अरे धन के लोभी मूर्ख तू क्या कभी धन की इच्छा को छोड़ेगा?

ईहा धनस्य न सुखा लब्ध्वा चिन्ता च भूयसी।
लब्धनाशे यथा मृत्युर्लब्धं भवति वा न वा।। शान्ति 177/26

धन की इच्छा सुख नहीं देती। धन मिल जाने पर उसे सम्हाल कर रखने की चिन्ता बढ़ जाती है। प्राप्त हुए धन का नाश हो जाने पर मृत्यु जैसा दुःख होता है फिर प्रयत्न करने पर धन मिलेगा यह भी निश्चित रूप से पता नहीं होता।

धननाशेऽधिकं दुःखं मन्ये सर्वमहत्तरम्।
ज्ञातयो ह्यवमन्यन्ते मित्राणि च धनाच्च्युतम्।। शान्ति 177/34

मैं मानता हूँ कि धन नष्ट होने पर बुहत दुःख होता है। यह दुःख सबसे बड़ा दुःख है। धन नष्ट हो जाने पर मित्र और सम्बन्धी अपमान करते हैं।

दातव्यमित्ययं धर्म उक्तो भूतहिते रतैः।
तं मन्यन्ते धनयुक्ताः कृपणैः सम्प्रवर्तितम्।। शान्ति 259/18

सब प्राणियों की भलाई में लगे हुए लोग कहते हैं कि दान देना धर्म है। किन्तु धनी कहते हैं कि दान की बात दरिद्रों ने चलाई है।

यदा नियति कार्पण्यमथैषामेव रोचते।
न ह्यत्यन्तं धनवन्तो भवन्ति सुखिनोऽपि वा।। शान्ति 259/19

यदि भाग्यवश धनवान भी दरिद्र हो जाते हैं तब उन्हें दान अच्छा लगने लगता हैं। संसार में कोई भी बहुत धनी या बहुत सुखी नहीं होता।

न्यायागतं धनं चैव न्यायेनैव विवर्धितम्।
संरक्ष्यं यत्नमास्थाय धर्मार्थमिति निश्चयः।। शा० 292/4

न्यायपूर्वक प्राप्त धन को न्याय के उपायों से ही बढ़ाना चाहिये ऐसे धन की रक्षा करनी चाहिये और उसे धर्म के कामों में लगाना चाहिये। यही धर्मशास्त्रों का निश्चित मत है।

न तु वृद्धिमिहान्विच्छेत् कर्म कृत्वा जुगुप्सितम्।। शा० 292/18

कोई भी निन्दनीय काम करके मनुष्य को अपने धन आदि को नहीं बढ़ाना चाहिये।

येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण धिगस्तु तान्।
धर्मं वै शाश्वतं लोके न जह्याद् धनकाङ्क्षया।। शा० 292/19

धर्म का आचरण करते हुए जो धन मिलता है वही सच्चा धन है। जो पैसा अधर्म से प्राप्त होता है वह धन धिक्कार के योग्य है। धन की इच्छा से शाश्वत धर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिये।

धनस्य यस्य राजतो भयं न चास्ति चोरतः।
मृतं च यन्न मुञ्चति समर्जयस्व तद् धनम्।। शान्ति 321/46

जिस धन को राजा से या चोर से कोई भय नहीं है। जो धन मरने पर भी जीवन का साथ नहीं छोड़ता है उस धर्मरूपी धन को खूब कमा लो।

इहलोके हि धनिनां स्वजनः स्वजनायते।
स्वजनस्तु दरिद्राणां जीवितामपि नश्यति।। शान्ति 321/88

इस संसार में धनी लोगों के साथ ही उनके सगे-सम्बन्धी अपनेपन का व्यवहार करते हैं। गरीबों को तो उनके सम्बन्धी जीते जी ही छोड़ देते हैं।

धनेन किं यन्न ददाति नाश्नुते बलेन किं येन रिपुं न बाधते।
श्रुतेन किं येन न धर्ममाचरेत् किमात्मना यो न जितेन्द्रियो वशी।।

शा० 321/93

उस धन से क्या लाभ जिसे मनुष्य किसी न दे और न स्वयं उपभोग करे। ऐसे बल से क्या लाभ जिससे शत्रु को वश में न किया जा सके। ऐसे ज्ञान से क्या लाभ जिससे धर्माचरण न किया जा सके और उस जीवात्मा से क्या लाभ जो न तो जितेन्द्रिय है और जिसका मन वश में नहीं है।

त्यज्यन्ते दुःखमर्था हि पालने न च ते सुखाः।
दुःखेन चाधिगम्यन्ते नाशमेषां न चिन्तयेत्।। शा० 330/18

धन खर्च करते हुए दुःख होता है। धन की रक्षा करने से भी दुःख उठाना पड़ता है और कष्ट भोग कर धन मिलता है अतः इसके नष्ट होने पर चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

न्याय्यस्यार्थस्य सम्प्राप्तिं कृत्वा फलमुपाश्नुते।। शान्ति 360/11

मनुष्य न्यायपूर्वक उचित ढंग से धन कमाकर श्रेष्ठफल पाता है।

अर्थाश्च नार्यश्च समानमेतच्छ्रेयांसि पुंसामिह मोहयन्ति।
रतिप्रमोदात् प्रमदा हरन्ति भोगैर्धनं चाप्युपहन्ति धर्मान्।।

अनुशासन 22 दा० पा०

धन और स्त्री दोनों ही एक जैसे हैं। दोनों ही मनुष्य के कल्याण में बाधा डालकर उसे मोहित कर लेते हैं। रति के आमोद-प्रमोद से स्त्रियाँ मन हर लेती हैं और धन भोगों के द्वारा धर्म को नष्ट कर देता है।

धर्मेणार्थः समाहार्यो धर्मलब्धं त्रिधा धनम्।
कर्तव्यं धर्मपरमं मानवेन प्रयत्नतः।। अनु 141/78

मनुष्य को धर्मानुसार पैसा कमाना चाहिये। धर्म से मिले धन के तीन भाग करने चाहियें और धर्मप्रधान काम प्रयत्नपूर्वक करने चाहिये।

एकेनांशेन धर्मार्थौ कर्तव्यौ भूतिमिच्छता।
एकेनांशेन कामार्थ एकमंशं विवर्धयेत्।। अनु 141/79

अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य को धन के तीन भागों में से एक भाग से धर्म और अर्थ के काम करने चाहिये, दूसरे भाग को अपनी जरूरतें पूरी करने में लगाना चाहिये और तीसरा भाग बढ़ाना चाहिये।

धर्म

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना नैवाप्तभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्।।

आदि 2/391

सदा उन्नति चाहने वाले आप सबकी बुद्धि धर्म से युक्त हो। आप सांसारिक आसक्तियों से सदा दूर रहें। परलोक गये हुए जीव का सहायक धर्म ही होता है। यद्यपि बुद्धिमान पुरुष धन और स्त्रियों का उपभोग करते हैं किन्तु वे इन्हें श्रेष्ठ नहीं मानते और न इन्हें स्थिर ही मानते हैं।

धर्म एव हि साधूनां सर्वेषां हितकारणम्।
नित्यं मिथ्याविहीनानां न च दुःखावहो भवेत्।। आदि 74 दा०पा०28-29

जो साधु पुरुष सदा सत्य का आचरण करते हैं उनकी दृष्टि में धर्माचरण सदा हितकारी है। वे धर्माचरण को कभी भी दुःखदायी नहीं मानते।

मन्यते पापकं कृत्वा न कश्चिद् वेत्ति मामिति।
विदन्ति चैनं देवाश्च यश्चैवान्तरपूरुषः।। आदि 74/29

पाप करके यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि मेरे पाप कर्म को कोई नहीं जानता तो यह उसकी भूल है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के पापकर्म को देवता और अन्तर्यामी परमात्मा देखते और जानते हैं।

यदा न कुरुते पापं सर्वभूतेषु कर्हिचित्।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा।। आदि 75/52

जब मनुष्य अपने मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी के प्रति बुरा विचार नहीं करता तब वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

धर्म एव परः कामादर्थाच्चेति व्यवस्थिताः।। आदि 100/5

अर्थ और काम से बढ़कर धर्म ही श्रेष्ठ है।

धर्मो हि हतो हन्ति।। आदि 41/22

यदि धर्म को नष्ट किया जाता है तो वह मनुष्य का नाश कर देता है।

शरीरगुप्त्यभ्यधिकं धर्मं गोपाय पाण्डव।। आदि 154/2

भीम! शरीर की रक्षा करने से भी बढ़कर धर्म की रक्षा करो।

आपत्सु यो धारयति धर्मं धर्मविदुत्तमः।
व्यसनं ह्येव धर्मस्य धर्मिणामापदुच्यते।। आदि 154/14

जो आपत्ति पड़ने पर धर्म की रक्षा करता है वही श्रेष्ठ धर्मात्मा है। धर्मपालन में संकट आना ही धर्मात्मा पुरुष की आपत्ति होती है।

शरीरस्य विनाशेन धर्म एव विशिष्यते।। आदि 212/20

शरीर को नष्ट करके भी धर्म का पालन करना ही श्रेष्ठ है।

पुण्यं प्राणान् धारयति पुण्यं प्राणदमुच्यते।
येन येनाचरेद् धर्मं तस्मिन् गर्हा न विद्यते।। आदि 154/15

पुण्य ही प्राण रक्षा करता है इसलिए पुण्य को प्राणदाता कहा जाता है। जिस-जिस उपाय से धर्म का आचरण हो सके उसके करने में कोई निन्दा की बात नहीं है।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा दमः।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधःस्मृतः।। वन 2/75

यज्ञ, स्वाध्याय, दान, तप, सत्याचरण, क्षमा, मन और इन्द्रियों का संयम तथा लोभ का त्याग ये धर्म के आठ मार्ग हैं।

त्रिवर्गोऽयं धर्ममूलो नरेन्द्र राज्यं चेदं धर्ममूलं वदन्ति।। वन 4/4

राजन्! धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति का मूल कारण धर्म ही है। राज्य का आधार भी धर्म है।

एष धर्मः परमो यत् स्वकेन राजा तुष्येन्न परस्वेषु गृध्येत्।। वन 4/7

यही श्रेष्ठ धर्म है कि राजा अपने धन से सन्तुष्ट रहे और दूसरों के धन का लोभ न करे।

सर्वथा धर्ममूलोऽर्थो धर्मश्चार्थपरिग्रहः।
इतरेतरयोर्नीतौ विद्धि मेघोदधी यथा।। वन 33/29

जैसे बादल और समुद्र एक-दूसरे को उत्पन्न करते हैं वैसे ही धर्म से अर्थ और अर्थ से धर्म होता है।

दानं यज्ञाः सतां पूजा वेदधारणमार्जवम्।
एष धर्मः परो राजन् बलवान् प्रेत्य चेह च।। वन 33/46

महाराज! इहलोक और परलोक में भी दान, यज्ञ, सज्जनों का आदर, वेदों का स्वाध्याय और सरलता उत्तम और प्रबल धर्म माने गये हैं।

धर्ममूलं जगद् राजन् नान्यद् धर्माद् विशिष्यते।। वन 33/48

राजन्! धर्म ही इस संसार का आधार है। जगत् में धर्म से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है।

धर्मेऽप्रमादं कुरुताप्रमेया।। वन 120/29

अनुपम वीरों! सदा सावधान रहकर धर्मपालन करते रहो।

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधात् तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम।। वन 131/11

सत्यपराक्रमी! जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा पहुँचाये वह धर्म न होकर कुधर्म होता है। जो दूसरे धर्म का विरोध किये बिना प्रतिष्ठित होता है वही वास्तविक धर्म होता है।

धर्मात्मा हि सुखं राजन् प्रेत्य चेह च नन्दति।। वन 191/19

राजन्! धर्मात्मा पुरुष इस लोक में और परलोक में सुख पाता है।

आचारसम्भवो धर्मो धर्मे वेदाः प्रतिष्ठिताः।
वेदैर्यज्ञाः समुत्पन्ना यज्ञैर्देवाः प्रतिष्ठिताः।। वन 150/28

धर्म, सदाचार से उत्पन्न होता है। धर्म में वेद प्रतिष्ठित रहते हैं। वेदों से यज्ञ प्रकट हुए हैं और यज्ञों से देवताओं की स्थिति रहती है।

धर्मः परः पाण्डव राज्यलाभात् तस्यार्थमाहुस्तप एव राजन्।। वन 183/16

राजन्! राज्य मिलने की अपेक्षा धर्म का पालन करना ही श्रेष्ठ होता है।

धर्म का पालन करने के लिये तपस्या करनी होती है।

तस्मात् कल्याणवृत्तः स्यादनन्ताय नरः सदा।
विहाय चित्तं पापिष्ठं धर्ममेव समाश्रयेत्।। वन 199/15

मनुष्य को सदा कल्याणकारी कामों में लगे रहना चाहिये। पापपूर्ण विचार त्याग कर सदा धर्म का आश्रय लेना चाहिये।

धर्मः सुदुर्लभो विप्र नृशंसेन महात्मनाम्।। वन 205/14

क्रूर मनुष्य, महात्माओं द्वारा पालन किये गये धर्म को नहीं अपना सकता।

सत्यार्जवे धर्ममाहुः परं धर्मविदो जनाः।। वन 206/40

धर्मवेत्ता लोग सत्य और सरल व्यवहार को सर्वोत्तम धर्म बतलाते हैं।

श्रुतिप्रमाणो धर्मः स्यादिति वृद्धानुशासनम्।। वन 206/41

जो बात वेदों द्वारा प्रमाणित हो वही धर्म है ऐसा ज्ञानवृद्ध पुरुषों का उपदेश है।

वेदोक्तः परमो धर्मः धर्मशास्त्रेषु चापरः।
शिष्टाचारश्च शिष्टानां त्रिविधं धर्मलक्षणम्।। वन 207/83

वेदों में कही गयी बात धर्म का पहला लक्षण है। धर्मशास्त्रों द्वारा प्रतिपादित विचार धर्म का दूसरा लक्षण है तथा सज्जनों का आचार-व्यवहार और विचार धर्म का तीसरा लक्षण है।

धर्मनित्यास्तु ये केचिन्न ते सीदन्ति कर्हिचित्।। वन 263/44

जो लोग सदा धर्म पालन करते हैं उन्हें कभी कोई कष्ट नहीं होता।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।। वन 313/128

यदि धर्म का नाश किया जाता है तो नष्ट हुआ धर्म हमारा भी नाश कर देता है। यदि धर्म की रक्षा की जाती है तो धर्म हमारी भी रक्षा करता है।

यशः सत्यं दमः शौचमार्जवं ह्रीरचापलम्।
दानं तपो ब्रह्मचर्यमित्येतास्तनवो मम।। वन 314/7

यश, सत्य, इन्द्रियनिग्रह, शौच, सरल व्यवहार, लज्जा, अचंचलता, दान, तप और ब्रह्मचर्य ये दस गुण धर्म के शरीर हैं।

अहिंसा समता शान्तिरानृशंस्यममत्सरः।
द्वाराण्येतानि मे विद्धि प्रियो ह्यसि सदा मम।। वन 314/8

अहिंसा, समता, शान्ति, दया, ईर्ष्या का न होना ये मेरे पास (धर्म) पहुँचने के द्वार हैं। युधिष्ठिर तुम मुझे सदा प्रिय हो।

यतो धर्मस्ततो जयः।। उद्योग 39/9; भीष्म 2/14 द्रोण 183/66

जिस ओर धर्म होता है उस पक्ष की विजय होती है।

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते।। उद्योग 39/71

जो काम या आचरण अपने को बुरा लगे वैसा काम दूसरों के प्रति नहीं करना चाहिये। संक्षेप में यही धर्म है। कामना से जो कुछ किया जाता है वह अधर्म होता है।

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः।।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये संतुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः।।

उद्योग 40/12, उद्योग 40/13, स्वर्ग 5/63।

किसी कामना से, भय से, लोभ से तथा जीवन के लिये भी धर्म नहीं छोड़ना चाहिये। धर्म नित्य है किन्तु सुख-दुःख अनित्य हैं, आत्मा नित्य है किन्तु इसका शरीर अनित्य है। आप अनित्य वस्तुओं को छोड़कर नित्य तत्त्व को पकड़िये और सन्तुष्ट रहिये। सन्तोष सबसे बड़ा लाभ है।

उभयमेव तत्रोपयुज्यते फलं धर्मस्यैवेतरस्य च।। उद्योग 42/23

धर्म और अधर्म दोनों का ही फल भोगना पड़ता है।

त्यक्त्वाधर्मं च लोभं च मोहं चोद्यमास्थिताः।
युद्ध्यध्वमनहंकारा यतो धर्मस्ततो जयः।। भीष्म 21/11

अधर्म, लोभ और मोह को त्याग कर तथा पराक्रम करके और अहंकार रहित होकर युद्ध करो। जहाँ धर्म होता है उसी पक्ष की जीत होती है।

यत्र धर्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।। भीष्म 23/28

जहाँ पर न्यायोचित व्यवहार, तेज, कान्ति, लज्जा, श्री तथा बुद्धि और धर्म हैं वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ पर विजय है।

धर्मे स्थितस्य हि यथा न कश्चिद् वृजिनं क्वचित्।। भीष्म 52/62

धर्मनिष्ठ पुरुष में कोई व्यक्ति कभी भी कोई पाप या बुराई नहीं देख पाता।

नूनं धर्मस्ततोऽधिकः। स्त्री 14/11

निश्चय ही धर्म का बल सबसे अधिक होता है।

यो हि धर्मं परित्यज्य भवत्यर्थपरो नरः।
सोऽस्माच्च हीयते लोकात् क्षुद्रभावं च गच्छति।। द्रोण 24/14

जो व्यक्ति धर्म का आचरण छोड़कर पैसा कमाने लगता है, वह इस लोक में भ्रष्ट हो जाता है और उसे नीच गति मिलती है।

धर्मापेक्षी नरो नित्यं सर्वत्र लभते सुखम्।
प्रेत्यभावे च कल्याणं प्रसादं प्रतिपद्यते।। द्रोण 85/31

धर्म का पालन करने वाला पुरुष सदा सुखी रहता है। मरने के बाद भी उसका कल्याण होता है और वह प्रसन्न रहता है।

न हि धर्ममविज्ञाय युक्तं गर्हयितुं परम्।। द्रोण 143/41

धर्म का स्वरूप जाने बिना किसी की निन्दा करना उचित नहीं होता।

सम्यग्धर्मानुरक्तस्य सिद्धिरात्मवतो यथा।। 31/50

श्रेष्ठ धर्म का पालन करने वाले के लिये सिद्धि प्राप्त करना सरल होता है।

दुष्करं परमं ज्ञानं तर्केणानुव्यवस्यति।
श्रुतेर्धर्म इति ह्येके वदन्ति बहवो जनाः।। कर्ण 69/55

कुछ लोग कठिनाई से समझ आने वाले परम ज्ञानरूपी धर्म को तर्कवितर्क से समझना चाहते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि वेदों से धर्म का ज्ञान हो जाता है।

यत् स्यादहिंसा संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।। कर्ण 69/57

जिस काम में हिंसा न हो, वही धर्म है। महर्षियों ने प्राणियों की हिंसा न होने देने के लिये ही अच्छे धर्म का प्रवचन किया है।

धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।। कर्ण 69/58

धर्म ही प्रजा का धारण (पालन-पोषण, रक्षा आदि) करता है। धारण करने के कारण ही उसे धर्म कहा जाता है। जिस काम से धारण अर्थात् रक्षा या प्राणियों की भलाई आदि होती हो वही काम धर्मयुक्त होता है।

कथं तेषां जयो न स्याद् येषां धर्मो व्यपाश्रयः।। शल्य 19/27

जिन्हें धर्म का सहारा मिला हुआ होता है उनकी विजय क्यों नहीं होगी?

धर्मः सुचरितः सद्भिः स च द्वाभ्यां नियच्छति।। शल्य 60/21

सज्जन धर्म का अच्छी तरह पालन करते हैं किन्तु अर्थ और काम से वह धर्माचरण संकुचित हो जाता है।

अद्रोहेणैव भूतानां यो धर्मः स सतां मतः।। शान्ति 21/11

सज्जनों के विचार से किसी भी प्राणी से झगड़ा न करके जिस धर्म का पालन किया जाता है वही धर्म है।

अद्रोहः सत्यवचनं संविभागो दया दमः।
प्रजनं स्वेषु दारेषु मार्दवं ह्रीरचापलम्।
एवं धर्मं प्रधानेष्टं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।। शान्ति 21/12

किसी से झगड़ा न करना, सत्य बोलना, सत्पात्र को दान देना, दया करना, इन्द्रियों को वश में रखना, अपनी स्त्री से सन्तान उत्पन्न करना, मधुर व्यवहार, संकोच और लज्जा का स्वभाव तथा चंचलता न होना यही मनु के अनुसार श्रेष्ठ धर्म के लक्षण हैं।

अदत्तस्यानुपादानं दानमध्ययनं तपः।
अहिंसा सत्यमक्रोध इज्या धर्मस्य लक्षणम्।। शान्ति 36/10

बिना दी हुई वस्तु को न लेना, दान देना, स्वाध्याय, तप, अहिंसा, सत्य बोलना, क्रोध न करना और यज्ञ करना ये सब धर्म के काम हैं।

स एव धर्मः सोऽधर्मः देशकाले प्रतिष्ठितः।
आदानमनृतं हिंसा धर्मो ह्यावस्थिकः स्मृतः।। शान्ति 36/11

देश और काल के अनुसार कभी-कभी धर्म का काम भी अधर्म का काम हो जाता है। इसीलिये विशेष परिस्थिति में चोरी करना, झूठ बोलना या हिंसा करना धर्म का काम माना जाता है।

धर्मे वर्धति वर्धन्ति सर्वभूतानि सर्वदा।
तस्मिन् ह्रसति हीयन्ते तस्माद् धर्मं न लोपयेत्।। शान्ति 90/17

धर्म के बढ़ने पर सभी प्राणियों का भला होता है। धर्म के घटने पर प्राणियों का कल्याण कम हो जाता है अतः धर्म को नष्ट नहीं करना चाहिये।

प्रभवार्थं हि भूतानां धर्मः सृष्टः स्वयम्भुवा।। शान्ति 90/19

ब्रह्मा ने प्राणियों के कल्याण के लिये ही धर्म की सृष्टि की है।

अस्मिंल्लोके परे चैव धर्मात्मा सुखमेधते।। शान्ति 91/52

धर्मात्मा पुरुष इस लोक में और परलोक में भी सुख भोगता है।

न कामान्न च संरम्भान्न द्वेषाद् धर्ममुत्सृजेत्।। शान्ति 93/9

किसी इच्छा, क्रोध या द्वेष के कारण धर्म को नहीं छोड़ना चाहिये।

धर्मेण निधनं श्रेयो न जयः पापकर्मणा।। शान्ति 95/17

धर्मपूर्वक युद्ध करते हुए मर जाना अच्छा है किन्तु छल कपट से जीतना अच्छा नहीं।

तस्माद् धर्मेण विजयं कोशं लिप्सेत भूमिपः।। शान्ति 95/22

राजा को धर्मानुसार ही विजय और धन पाने की इच्छा करनी चाहिये।

सत्येन हि स्थितो धर्म उपपत्या तथा परे।
साध्वाचारतया केचित् तथैवौपयिकादपि।। शान्ति 100/2

कुछ लोगों के अनुसार धर्म; सत्य पर टिका हुआ है। कुछ लोग युक्तियों से धर्म की प्रतिष्ठा मानते हैं। कुछ के मत में श्रेष्ठ आचरण से ही धर्म स्थिर रहता है और कुछ लोगों का मानना है कि उपायों को अपनाकर धर्म प्रतिष्ठित है।

सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित्।। शान्ति 109/6

सत्य और असत्य का निश्चय करके सत्य का पालन करने वाला धार्मिक माना जाता है।

प्रभवार्थाय भूतानां धर्म प्रवचनं कृतम्।
यः स्यात् प्रभव संयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।। शान्ति 108/10

प्राणियों की उन्नति और कल्याण के लिये ही धर्म का उपदेश दिया जाता है। जिससे उन्नति और कल्याण हो वही निश्चित रूप से धर्म है।

धारणाद् धर्ममित्याहु धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।। शान्ति 109/11

धर्म सभी प्राणियों को धारण करता है इसीलिए उसे 'धर्म' कहा जाता है। अतः जिससे धारण और पोषण होता है वही धर्म है।

अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यादहिंसासंपृक्तः स धर्म इति निश्चयः।। शान्ति 108/12

प्राणियों की हिंसा रोकने के लिये ही धर्म का उपदेश दिया जाता है। जिस काम से हिंसा न होती हो वही धर्म है।

सर्वो हि लोको नृप धर्ममूलः।। शान्ति 120/56

राजन्! सारे संसार का आधार धर्म ही है।

धर्ममूलः सदैवार्थः कामोऽर्थफलमुच्यते।
संकल्पमूलास्ते सर्वे संकल्पो विषयात्मकः।। शान्ति 123/4

धर्म सदा ही अर्थ मिलने का प्रधान कारण है। काम को अर्थ का फल कहा जाता है। धर्म, अर्थ और काम ये तीनों संकल्प से पैदा होते हैं और संकल्प पैदा होने का कारण विषय अर्थात् जगत के अनेकविध पदार्थ हैं।

विषयाश्चैव कार्त्स्न्येन सर्व आहारसिद्धये।
मूलमेतत् त्रिवर्गस्य निवृत्तिर्मोक्ष उच्यते।। शान्ति 123/5

सारे विषय इन्द्रियों के उपयोग के लिये हैं। यही धर्म, अर्थ और काम का मूल है। इनसे निवृत्त होना ही मोक्ष है।

धर्माच्छरीरसंगुप्तिर्धर्मार्थं चार्थ उच्यते।
कामो रतिफलश्चात्र सर्वे ते च रजस्वलाः।। शान्ति 123/6

धर्म से शरीर की रक्षा होती है। धर्म के लिये अर्थ की आवश्यकता होती है। काम का फल रति है। ये सभी रजोगुण वाले हैं।

अपध्यानमलो धर्मो मलोऽर्थस्य निगूहनम्।
सम्प्रमोदमलः कामो भूयः स्वगुणवर्जितः।। शान्ति 123/10

फल की इच्छा धर्म का मल है। पैसा इकट्ठा करके रखना अर्थ का मल है। आमोद-प्रमोद, काम का मल है। दोषरहित धर्म, अर्थ और काम कल्याणकारी होता है।

यो धर्मार्थौ परित्यज्य काममेवानुवर्तते।
स धर्मार्थ परित्यागात् प्रज्ञानाशमिहार्च्छति।। शान्ति 123/15

जो व्यक्ति धर्म और अर्थ को छोड़कर केवल काम के ही पीछे भागता है। उस व्यक्ति की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

प्रज्ञानाशात्मको मोहस्तथा धर्मार्थनाशकः।
तस्मान्नास्तिकता चैव दुराचारश्च जायते।। शान्ति 123/16

बुद्धि का नष्ट होना ही मोह है। मोह; धर्म और अर्थ को नष्ट कर देता है। इससे मनुष्य नास्तिक हो जाता है और वह दुराचारी बन जाता है।

धर्मो ह्यणीयान् वचनाद् बुद्धिश्च भरतर्षभ।
श्रुत्वोपास्य सदाचारैः साधुर्भवति स क्वचित्।। शान्ति 130/6

भरतनन्दन! धर्म को समझना बड़ा कठिन है। शास्त्रों के वचनों से धर्म के बारे में पता चलता है। किन्तु शास्त्रों की बातें सुनकर साधु जीवन बिताने वाला पुरुष विरला ही होता है।

यथा यथा हि पुरुषो नित्यं शास्त्रमवेक्षते।
तथा तथा विजानाति विज्ञानमथ रोचते।। शान्ति 130/10

पुरुष जैसे-जैसे प्रतिदिन शास्त्रों का अध्ययन करता है वैसे-वैसे ही उसका ज्ञान बढ़ता जाता है और उसे विशेष ज्ञान अच्छा लगने लगता है।

यश्चतुर्गुणसम्पन्नं धर्मं ब्रूयात् स धर्मवित्।
अहेरिव धर्मस्य पदं दुःखं गवेषितुम्।। शान्ति 132/20

जो वेदविहित, स्मृतियों द्वारा अनुमोदित, सज्जनों द्वारा अपनाया गया और अपने को अच्छा लगने वाला है; ऐसे चार गुणों से युक्त धर्म का उपदेश करने वाला धर्मज्ञ कहलाता है। साँप के पैरों की तरह धर्म के यथार्थ स्वरूप को ढूंढ पाना बहुत कठिन है।

अतिधर्माद् बलं मन्ये बलाद् धर्मः प्रवर्तते।
बले प्रतिष्ठितो धर्मो धरण्यामिव जङ्गमम्।। शान्ति 134/6

मैं बहुत धर्म करने की अपेक्षा बल को अच्छा मानता हूँ क्योंकि बल से ही धर्म का प्रचार होता है। जैसे चलने-फिरने वाले सभी प्राणी पृथ्वी पर ही आश्रित रहते हैं वैसे ही धर्म भी बल के आधार पर रहता है।

धूमो वायोरिव वशे बलं धर्मोऽनुवर्तते।
अनीश्वरो बले धर्मो द्रुमे वल्लीव संश्रिता।। शान्ति 134/7

जैसे धुआँ वायु के वश में रहकर चलता है वैसे ही धर्म भी बल के पीछे चलता है। जैसे बेल किसी पेड़ के सहारे बढ़ती है वैसे ही निर्बल व्यक्ति धर्म के बल के आधार पर ही टिक पाता है।

वशे बलवतां धर्मः सुखं भोगवतामिव।
नास्त्यसाध्यं बलवतां सर्वं बलवतां शुचि।। शान्ति 134/8

जैसे ऐश्वर्य सामग्री वाले पुरुषों को सुख मिलता है वैसे ही बलवान पुरुषों के वश में धर्म रहता है। बलवान पुरुष के लिये कोई भी काम करना कठिन नहीं होता। बलवानों का सब कुछ निर्दोष होता है।

स वै धर्मो यत्र न पापमस्ति।। शान्ति 141/76

धर्म वही है जिसमें तनिक भी पाप न हो।

धर्मेणैवर्षयस्तीर्णा धर्मे लोकाः प्रतिष्ठिताः।
धर्मेण देवा ववृधुर्धर्मे चार्थः समाहितः।। शान्ति 167/7

ऋषियों ने धर्म से ही संसार-सागर को पार किया है। सारे लोक धर्म पर ही टिके हुए हैं। देवता धर्म से उन्नति करते हैं। धर्म में ही अर्थ रहता है।

धर्मो राजन् गुणः श्रेष्ठो मध्यमो ह्यर्थ उच्यते।
कामो यवीयानिति च प्रवदन्ति मनीषिणः।। शान्ति 167/8

राजन्! धर्म ही श्रेष्ठ है। अर्थ मध्यम है। काम सबसे नीचे है ऐसा विद्वानों का विचार है।

युवैव धर्मशीलः स्यादनित्यं खलु जीवितम्।
कृते धर्मे भवेत् कीर्तिरिह प्रेत्य च वै सुखम्।। शान्ति 175/16

युवावस्था में ही धर्म का पालन करना चाहिये क्योंकि जीवन सदा नहीं रहता। धर्माचरण करने से इस संसार में यश मिलता है और परलोक में सुख।

सदाचारः स्मृतिर्वेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम्।
चतुर्थमर्थमित्याहुः कवयो धर्मलक्षणम्।। शान्ति 259/3

वेद, स्मृति और सदाचार ये तीन धर्म का स्वरूप बताते हैं। कुछ विद्वान अर्थ को भी धर्म का चौथा लक्षण बताते हैं।

लोकयात्रार्थमेवेह धर्मस्य नियमः कृतः।। शान्ति 259/4

संसार और समाज में रहने के लिये धर्म की मर्यादा स्थापित की गई है।

धर्मस्य निष्ठा त्वाचारस्तमेवाश्रित्य भोत्स्यसे।। शान्ति 259/6

सदाचार ही धर्म का आधार है। सदाचार के सहारे ही तुम धर्म का स्वरूप जानोगे।

न हर्तव्यं परधनमिति धर्मः सनातनः।। शान्ति 259/12

दूसरों का धन नहीं छीनना चाहिये यही सनातन धर्म है।

मन्यन्ते बलवन्तस्तं दुर्बलैः सम्प्रवर्तितम्।
यदा नियतिदौर्बल्यमथैषामेव रोचते।। शान्ति 259/13

शक्तिशाली पुरुष मानते हैं कि धर्म को कमजोर लोगों ने चलाया है किन्तु भाग्यवश जब शक्तिशाली व्यक्ति कमजोर हो जाता है तब उसे धर्म अच्छा लगने लगता है।

सर्वं प्रियाभ्युपगतं धर्ममाहुर्मनीषिणः।। शान्ति 259/25

सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करने से जो कुछ मिलता है उसे ही मनीषी पुरुष धर्म मानते हैं।

न धर्मः परिपाठेन शक्यो भारत वेदितुम्।। शान्ति 260/3

भरत! धर्म को केवल वेदपाठ करने से नहीं जाना जा सकता।

अन्यो धर्मः समस्थस्य विषमस्थस्य चापरः।
आपदस्तु कथं शक्याः परिपाठेन वेदितुम्।। शान्ति 260/4

अच्छी हालत वाले मनुष्य का धर्म कुछ और होता है और संकट में पड़े मनुष्य का धर्म दूसरा ही होता है। वेदपाठ करने से आपद्धर्म का ज्ञान कैसे हो सकता है।

अद्रोहेण भूतानामल्प द्रोहेण वा पुनः।
या वृत्तिः स परो धर्मस्तेन जीवामि जाजले।। शान्ति 262/6

मुनिवर जाजलि! जिस बात में किसी भी प्राणी से झगड़ा न करना पड़े या कम से कम झगड़ा करने से काम चल जाय ऐसी जीविका ही उत्तम धर्म है। मैं इसी वृत्ति से जीवन निर्वाह करता हूँ।

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले।। शान्ति 262/9

मुनि जाजलि! जो सब प्राणियों का मित्र होता है और मन, वचन, कर्म से सबका हित करता है वही व्यक्ति धर्म को जानता है।

नाहं परेषां कृत्यानि प्रशंसामि न गर्हये।
आकाशस्येव विप्रेन्द्र पश्यंल्लोकस्य चित्रताम्।। शान्ति 262/11

विप्रवर! मैं आकाश की तरह निस्संग रहकर जगत के कार्यों की विचित्रता को देखता हूँ और दूसरों के कामों की निन्दा या प्रशंसा नहीं करता।

यथान्धबधिरोन्मत्ता उच्छ्वासपरमाः सदा।
देवैरपिहितद्वाराः सोपमा पश्यतो मम।। शान्ति 262/13

देवताओं ने जिनकी इन्द्रियों के दरवाजे बन्द कर दिये हैं वे अन्धे, बहरे और पागल लोग केवल सांस लेते रहते हैं उन्हें दुनिया के कामों से कोई सरोकार नहीं होता। वैसे ही मैं भी यहां रहता हूँ।

यथा वृद्धातुरकृशा निःस्पृहा विषयान् प्रति।
तथार्थकामभोगेषु ममापि विगता स्पृहा।। शान्ति 262/14

जैसे बूढ़े, बीमार और कमजोर लोगों के मन में विषय भोगों की इच्छा नहीं रह जाती है वैसे ही मेरे मन से भी धन और भोगों की इच्छा नहीं है।

न भूतो न भविष्योऽस्ति न च धर्मोऽस्ति कश्चन।
योऽभयः सर्वभूतानां स प्राप्नोत्यभयं पदम्।। शान्ति 262/17

जिस मनुष्य का भूतकाल में या भविष्य में कोई काम नहीं बचा है और जिसे धर्म का कोई काम नहीं करना है तथा जो सभी प्राणियों को अभय देता है वही निर्भय पद को प्राप्त करता है।

यस्माद् उद्विजते लोकः सर्वो मृत्युमुखादिव।
वाक्क्रूरात् दण्डपरुषात् स प्राप्नोति महद् भयम्।। शान्ति 262/18

जैसे लोग मृत्यु के मुख में जाने से डरते हैं उसी प्रकार लोग जिससे डरते हों, ऐसे कड़वा बोलने वाले और कठोर दण्ड देने वाले को महान् भय का सामना करना पड़ता है।

यथावद् वर्तमानानां वृद्धानां पुत्रपौत्रिणाम्।
अनुवर्तामहे वृत्तमंहिस्त्राणां महात्मनाम्।। शान्ति 262/19

जो वृद्ध हैं, जिनके बेटे पोते हैं, जो शास्त्रों के अनुसार आचरण करते हैं और किसी जीव की हत्या नहीं करते मैं उन महात्माओं का अनुसरण करता हूँ।

आचाराज्जाजले प्राज्ञः क्षिप्रं धर्ममवाप्नुयात्।
एवं यः साधुभिर्दान्तश्चरेददद्रोहचेतसा।। शान्ति 262/21

जाजलि! जो जितेन्द्रिय पुरुष अपने मन में दूसरों के प्रति बुरा भाव न रखकर श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा अपनाये गये आचार-व्यवहार का पालन करता है वह जल्दी ही धर्म का रहस्य जान लेता है।

वरं धर्मेण जीवितुम्।। शान्ति 271/32

धर्ममय जीवन बिताना ही अच्छा है।

देवता ब्राह्मणाः सन्तो यक्षा मानुष चारणाः।
धार्मिकान् पूजयन्तीह न धनाढ्यान् न कामिनः।। शान्ति 271/55

देवता, ब्राह्मण, सन्त, यक्ष, मनुष्य और चारण ये सब धर्मात्माओं का आदर करते हैं धनवानों और भोगों में फंसे लोगों का नहीं।

धने सुखकला काचिद् धर्मे तु परमं सुखम्।। शा० 271/56

धन से तो थोड़ा ही सुख मिलता है किन्तु धर्म से परमसुख प्राप्त होता है।

लोभमोहाभिभूतस्य रागद्वेषान्वितस्य च।
न धर्मे जायते बुद्धिर्व्याजाद् धर्मं करोति च।। शान्ति 273/6

लोभ और मोह से घिरे हुए तथा राग और द्वेष के वश में पड़े हुए मनुष्य की बुद्धि धर्म में नहीं लगती। वह दिखावे के लिये किसी बहाने धर्म का आचरण करता है।

धर्मे स्थितानां कौन्तेय सिद्धिर्भवति शाश्वती।। शान्ति 273/24

युधिष्ठिर! धर्म का पालन करने वालों को सदा रहने वाली मोक्ष रूपी सिद्धि मिलती है।

धर्म एव कृतः श्रेयानिह लोके परत्र च।। शान्ति 290/6

धर्म का पालन करने से इस संसार में और परलोक में कल्याण होता है।

धर्मवृत्त्या च सततं कामार्थाभ्यां न हीयते।। शान्ति 290/ 64

धर्मपूर्वक रहने वाला मनुष्य धन और भोगों से कभी रहित नहीं होता।

धर्मः सतां हितः पुंसां धर्मश्चैवाश्रयः सताम्।
धर्माल्लोकास्त्रयस्तात प्रवृत्ताः सचराचराः।। शान्ति 309/6

धर्म ही सज्जनों का कल्याण करने वाला और उनका आश्रय है। धर्म से ही चल और अचल प्राणियों सहित तीनों लोक उत्पन्न हुए हैं।

अहिंसा सत्यमक्रोध आनृशंस्यं दमस्तथा।
आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणम्।। अनुशासन 22/19

राजेन्द्र! अहिंसा, सत्याचरण, क्रोध न करना, दया, इन्द्रिय संयम और सरल व्यवहार ये गुण धर्म की निश्चित पहचान हैं।

साधूनां पुनराचारो गरीयान् धर्मलक्षणः।। अनुशासन 45/5

श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण ही धर्म का सर्वश्रेष्ठ लक्षण है।

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
एष संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते।। अनु 113/8

जो काम या बात अपने आप को अच्छी न लगती हो वह काम या बात दूसरे के लिये नहीं करनी चाहिये। संक्षेप में यही धर्म है। मनुष्य इस तरह के आचरण से अलग व्यवहार कामनाओं के कारण करता है।

परदारेष्वसंसर्गो न्यासस्त्रीपरिरक्षणम्।
अदत्तादानविरमो मधुमांसस्य वर्जनम्।। अनु 141/26

परायी स्त्री के साथ न रहना, किसी की धरोहर और स्त्री की रक्षा करना, बिना दी हुई किसी की चीज़ न लेना तथा शराब और मांस का सेवन न करना उत्तम धर्म है।

चित्तमूलो भवेद् धर्मो धर्ममूलं भवेद् यशः।। अनु 141 दा० पा०

धर्म का आधार या मूल चित्त की पवित्रता है और यश का आधार धर्मपालन है।

वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः।
शिष्टाचीर्णोऽपरः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः।। अनु 141/65

वेदों में बताया गया धर्म सबसे उत्कृष्ट है। दूसरा है वेदों के अनुकूल स्मृतियों और शास्त्रों में बतलाया गया स्मार्त धर्म। तीसरा है शिष्ट पुरुषों द्वारा आचरण में लाया गया धर्म शिष्यचार। ये तीनों धर्म सनातन हैं।

सर्वभूतेषु यः सम्यग् ददात्यभयदक्षिणाम्।
हिंसादोषविमुक्तात्मा स वै धर्मेण युज्यते।। अनु 142/27

जो पुरुष हिंसा की बुराई छोड़कर सभी प्रणियों को अभय दान देता है उसे धर्म का फल मिलता है।

सर्वभूतानुकम्पी यः सर्वभूतार्जवव्रतः।
सर्वभूतात्मभूतश्च स वै धर्मेण युज्यते।। अनु 142/28

जो सभी प्राणियों पर दया करता है, सबके साथ सरल व्यवहार करता है और सभी प्राणियों में अपने आप को ही अनुभव करता है उसे धर्म का फल मिलता है।

आर्जवं धर्ममित्याहुरधर्मो जिह्म उच्यते।
आर्जवेनेह संयुक्तो नरो धर्मेण युज्यते।। अनु 142/30

सरल व्यवहार को धर्म कहते हैं और कुटिल व्यवहार अधर्म होता है। सरल स्वभाव और व्यवहार वाले मनुष्य को धर्म का फल मिलता है।

क्षान्तो दान्तो जितक्रोधो धर्मभूतो विहिंसकः।
धर्मे रतमना नित्यं नरो धर्मेण युज्यते।। अनु 142/32

क्षमाशील, जितेन्द्रिय, क्रोध को वश में रखने वाले, धार्मिक, हिंसा न करने वाले और धर्म परायण व्यक्ति को धर्म का फल मिलता है।,

व्यपेततन्द्रिर्धर्मात्मा शक्त्या सत्पथमाश्रितः।
चारित्रपरमो बुद्धो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। अनु 142/33

आलस्य न करने वाले, धर्मात्मा, यथाशक्ति अच्छे रास्ते पर चलने वाले, सच्चरित्र और ज्ञानी मनुष्य को ब्रह्म की अनुभूति होती है।

तदेव धर्ममित्याहुर्दोषसंयमनं प्रिये।
यमधर्मेण धर्मोऽस्ति नान्यः शुभतरः प्रिये।। अनु 145 दा० पा०

प्रिये! बुरे काम न करना ही धर्म कहलाता है। संयम रूप धर्म का पालन करने से बढ़कर और कोई कल्याणकारी धर्म नहीं है।

यस्तस्य विपुलो दण्डः सम्यग्धर्मः स कीर्त्यते।। अनु 148/50

प्रजापालन के लिये राजा द्वारा दण्ड का उचित उपयोग धर्म ही कहलाता है।

अहिंसा सत्यमक्रोधो दानमेतच्चतुष्टयम्।
अजातशत्रो सेवस्व धर्म एष सनातनः।। अनु 162/23

हे अजातशत्रु युधिष्ठिर! अहिंसा, सत्य, अक्रोध और दान इन चारों को सदा अपनाओ। यही सनातन धर्म है।

ये तु धर्मं महाराज सततं पर्युपासते।
सत्यार्जवपराः सन्तस्ते वै स्वर्गभुजो नराः।। अनु 162/29

महाराज! जो लोग सदा धर्म का पालन करते हैं और जीवन में सत्य तथा सरलता को अपनाते हैं वे स्वर्ग में जाते हैं।

मनुष्या यदि वा देवाः शरीरमुपताप्य वै।
धर्मिणः सुखमेधन्ते लोभद्वेषविवर्जिताः।। अनु 162/31

जो मनुष्य या देवता शरीर को कष्ट देकर भी धर्म का पालन करते हैं और लोभ तथा द्वेष छोड़ देते हैं वे जीवन में सुखी रहते हैं।

मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि धर्ममेव समासते।। अनु 162/60

मनीषी लोग धर्म को सब प्राणियों का हृदय मानते हैं अतः सभी प्राणियों को धर्म का पालन करना चाहिये।

एक एव चरेद् धर्मं न धर्मध्वजिको भवेत्।
धर्मवाणिजका ह्येते ये धर्ममुपभुञ्जते।। अनु 162/61

मनुष्य को अकेले ही धर्माचरण करना चाहिये। उसे धर्म का दिखावा नहीं करना चाहिये। जो लोग धर्म को जीविका का साधन बनाते हैं वे धर्म के व्यापारी हैं।

अर्चेद् देवानदम्भेन सेवेतामायया गुरून्।
निधिं निदध्यात् पारत्र्यं यात्रार्थं दानशब्दितम्।। अनु 162/62

अभिमान छोड़कर देवतओं की पूजा करनी चाहिये। छल-कपट छोड़ कर गुरुजनों की सेवा करनी चाहिये और परलोक की यात्रा के लिये दान की निधि इकट्ठी करनी चाहिये अर्थात् दान देना चाहिये।

यदा च क्षीयते पापं कालेन पुरुषस्य तु।
तदा संजायते बुद्धिर्धर्मं कर्तुं युधिष्ठिर।। आश्व 92 दा० पा० अ० I

युधिष्ठिर! समय बीतने पर जब किसी मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं तब उसकी बुद्धि धर्म के मार्ग पर चलने लगती है।

एवं धर्मात् परं नास्ति महत्संसारमोक्षणम्।
न च धर्मात् परं किंचित् पापकर्मव्यपोहनम्।। आश्व 92 दा० पा० अ० II

संसार के बन्धनों से छुटकारा पाने के लिये धर्म से बढ़कर कोई उपाय नहीं है। पाप नष्ट करने के लिये भी धर्माचरण के सिवाय कोई उपाय नहीं है।

तस्माद् धर्मः सदा कार्यो मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
न हि धर्मानुरक्तानां लोके किंचन दुर्लभम्।। आश्व 92 दा० पा० अ० II

इसलिये दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर सदा धर्म का पालन करना चाहिये क्योंकि धर्म से प्रेम करने वालों के लिये संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती।

एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रमीयते।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेकश्चाप्नोति दुष्कृतम्।। आश्व 92दा०पा०अ०X।।

मनुष्य अकेले ही पैदा होता है। वह अकेला ही मरता है। मनुष्य अपने अच्छे कर्मों का अकेले ही फल भोगता है और पापों का फल भी अकेले भोगता है।

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुवर्तते।। आश्व 92 दा० पा० अ० X।।

रिश्तेदार मृत शरीर को लकड़ी और मिट्टी के ढेले की तरह छोड़कर और मुँह मोड़कर चलते बनते हैं। तब धर्म ही मृत मनुष्य का साथ देता है।

अनागतानि कार्याणि कर्तुं गणयते मनः।
शारीरकं समुद्दिश्य स्मयते नूनमन्तकः।।
तस्माद् धर्मसहायस्तु धर्मं संचिनुयात् सदा।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्।। आश्व० दा० पा० अ० X।।

मनुष्य का मन भविष्य के काम करने की सोचता रहता है किन्तु काल मनुष्य के शरीर पर नजर रखकर मुस्कुराता रहता है। इसलिये धर्म को सहायक मानकर धर्म-पालन करते रहना चाहिये। क्योंकि धर्म की सहायता से मनुष्य आपत्तियों को पार कर लेता है।

अहिंसा शौचमक्रोधमानृशंस्यं दमः शमः।
आर्जवं चैव राजेन्द्र निश्चितं धर्मलक्षणम्।। आश्व 92 दा० पा० अ० XIII

राजेन्द्र! अहिंसा, पवित्रता, क्रोध न करना, दया, मन और इन्द्रियों को वश में रखना और सरल व्यवहार ये निश्चित रूप से धर्म के लक्षण हैं।

बाल्ये विद्यां निषेवेत यौवने दारसंग्रहम्।
वार्धके मौनमातिष्ठेत् सर्वदा धर्ममाचरेत्।। आश्व 92 दा० पा० अ० XIII

बचपन में पढ़ना चाहिये। युवावस्था में विवाह करना चाहिये। बुढ़ापे में मुनि का जीवन बिताना चाहिये और सदा धर्म पालन करना चाहिये।

ब्राह्मणान् नावमन्येत गुरून् परिवदेन्न च।
यतीनामनुकूलः स्यादेष धर्मः सनातनः।। आश्व 92 दा० पा० अ० XIII

ब्राह्मणों का अपमान नहीं करना चाहिये। गुरुजनों की निन्दा नहीं करनी चाहिये और संन्यासियों के प्रति अच्छा व्यवहार करना चाहिये। यही सनातन धर्म है।

धर्मो धर्मेण वर्धते।। आश्व 92 दा० पा० अ० XIX

धर्माचरण से धर्म की वृद्धि होती है।

सत्येन संवर्धयति यो दमेन शमेन च।
अहिंसया च दानेन तप्यमानः सनातनः।। आश्रमवास 28/17

सनातन धर्म; सत्य, इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह, अहिंसा और दान से बढ़ता है और मनुष्य का अभ्युदय करता है।

सर्वगश्चैव राजेन्द्र सर्वं व्याप्य चराचरम्।
दृश्यते देवदेवैः स सिद्धैर्निर्मुक्त कल्मषैः।। आश्रमवास 28/20

राजेन्द्र! धर्म की गति सभी जगह है। वह सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है। जिनके सारे पाप धुल गये हैं वे सिद्ध पुरुष और देवताओं के भी देवता ही धर्म का साक्षात् करते हैं।

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।। स्वर्ग 5/62

मैं भुजा उठाकर चिल्ला रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता। धर्म से ही धन मिलता है और कामनाएँ पूरी होती हैं। फिर भी तुम उस धर्म का पालन क्यों नहीं करते?

धृतराष्ट्र

दुर्योधन ममाप्येतद् हृदि सम्परिवर्तते।
अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम्।। आदि 141/16

दुर्योधन! मेरे मन में कुछ ऐसा ही विचार उठ रहा है कि पाण्डवों को हस्तिनापुर से बाहर कर दें किन्तु यह बात अन्यायपूर्ण है अतः मैं इसे साफ-साफ नहीं कह पाता।

धृतराष्ट्रस्तु तं हृष्टः पर्यपृच्छत् पुनः पुनः।
किं जितं किं जितमिति ह्याकारं नाभ्यरक्षत।। सभा 65/43

धृतराष्ट्र प्रसन्न होकर बार-बार पूछने लगा क्या जीत लिया? क्या जीत लिया? वह अपने मुख के मनोभाव छिपा न सका।

एतद्वाक्यं विदुर यत् ते सभायामिह प्रोक्तं पाण्डवान् प्राप्य मां च।
हितं तेषामहितं मामकानामेतत् सर्वं मम नावैति चेतः।।

वन 4/18

विदुर! तुमने सभामें और यहाँ जो बात मेरे और पाण्डवों के बारे में कही है वह पाण्डवों के लिये तो हितकर है पर मेरे पुत्रों के हित में नहीं है अतः तुम्हारी बात मेरे मन में नहीं बैठती।

कथं हि पुत्रं पाण्डवार्थे त्यजेयम्।। वन 4/18

पाण्डवों के लिये अपने पुत्र को कैसे छोड़ दूँ?

विदुरेणानुनीतोऽपि पुत्रमेवानुवर्तते।। उद्योग 6/6

विदुर के समझाने पर भी धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन की ही बात मानता है।

वनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो व्याघ्रास्ते वै संजय पाण्डुपुत्राः।
सिंहाभिगुप्तं न वनं विनश्येत् सिंहो न नश्येत् वनाभिगुप्तः।।

उद्योग 29/54

संजय! राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों सहित वन जैसा है और पाण्डव इस वन में रहने वाले शेर। शेर के रहते वन नष्ट नहीं होता और वन में रहते हुए शेर नहीं मारा जाता।

लताधर्माः धार्तराष्ट्राः शालाः संजय पाण्डवाः।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता।। उद्योग 29/56

संजय! धृतराष्ट्र के पुत्र बेल जैसे हैं और पाण्डव साल के पेड़। बेल, किसी बड़े पेड़ के सहारे बिना फल फूल नहीं सकती।

हन्तात्मनः कर्म निबोध राजन् धर्मार्थयुक्तादार्यवृत्तादपेतम्।
उपक्रोशं चेह गतोऽसि राजन् भूयश्च पापं प्रसजेदमुत्र।। उद्योग 32/16

राजन्! आप अपने कर्मों पर तो ध्यान दीजिये जो धर्म और अर्थ से युक्त श्रेष्ठ पुरुषों के व्यवहार से बिल्कुल उल्य है। इसके कारण संसार में आपकी निन्दा हो रही है और परलोक में भी इस पाप का फल आप को भोगना पड़ेगा।

त्वमेवैको जातु पुत्रस्य राजन् वशं गत्वा सर्वलोके नरेन्द्र।
कामात्मनः श्लाघनो द्यूतकाले नागाः शमं पश्य विपाकमस्य।।
उद्योग 32/29

राजन्! सारे संसार में आप ही ऐसे हैं जो अपने पुत्र के अधीन होकर जुए के खेल में उसकी प्रशंसा कर रहे थे और राज्य के लोभ में पड़कर शान्त नहीं हो सके थे। अब अपने आचरण का भयंकर परिणाम स्वयं देखियेगा।

अनाप्तानां संग्रहात् त्वं नरेन्द्र तथाऽऽप्तानां निग्रहाच्चैव राजन्।
भूमिं स्फीतां दुर्बलत्वादनन्तामशक्तस्त्वं रक्षितुं कौरवेय।।
उद्योग 32/30

कौरव नरेश! आपने विश्वास न करने लायक (शकुनि, कर्ण आदि) लोगों को इकट्ठा का लिया है और विश्वस्त पुरुषों को (पाण्डवों) दण्ड दिया है। आप अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण इस अनन्त समृद्ध पृथ्वी की रक्षा कभी नहीं कर सकते।

विपरीततरश्च त्वं भागधेये न सम्मतः।
अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः।। उद्योग 33/15 दा० पा०

आप धर्मात्मा और धर्म के जानकार हैं किन्तु आँखों की ज्योति न होने के कारण आप युधिष्ठिर को समझ नहीं सके और उनके अत्यधिक विरोधी बन गये। आप युधिष्ठिर को राज्य का हिस्सा देने के लिये भी तैयार नहीं हुए।

दुर्योधने सौबले च कर्णे च दुःशासने तथा।
एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि।। उद्योग 33/15 दा० पा०

आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुशासन जैसे लोगों के हाथों में राज्य श्री सौंप कर अपना कल्यााण कैसे चाहते हैं?

पापाशङ्की पापमेवानुपश्यन् पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाहम्।।

उद्योग 34/3

मेरे मन में अनिष्ट का डर बना रहता है अतः मुझे अनिष्ट ही दिखाई देता है। मेरा मन घबराया हुआ है इसीलिये मैं आप से सलाह कर रहा हूँ।

सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम्।
न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्तो जयः।। उद्योग 39/9

विदुर, तुम जो कुछ कह रहे हो उसका परिणाम सुखद है, तुम बुद्धिसंगत बात कह रहे हो किन्तु मैं अपने पुत्र को नहीं छोड़ सकता। धर्म की ही जीत होती है।

बलीयः सर्वतो दिष्टं पुरुषस्य विशेषतः।
पश्यन्नपि जयं तेषां न नियच्छामि यत् सुतान्।। उद्योग 51/47

पुरुष का भाग्य ही सबसे अधिक बलवान होता है क्योंकि मैं पाण्डवों की जीत देखते हुए भी अपने पुत्रों को नहीं रोक पा रहा हूँ।

कुमारवच्च स्मयसे द्यूते विनिकृतेषु यत्।
पाण्डवेषु वने राजन् प्रव्रजत्सु पुनः पुनः।। उद्योग 54/10

राजन्! जब पाण्डवों को जुए में छल कपट से हराया जा रहा था और उन्हें वनवास के लिये भेजा जा रहा था तब आप बच्चों की तरह बार-बार मुस्कुरा रहे थे।

अवाग् गान्धारि पुत्रस्ते गच्छत्येष सुदुर्मतिः।
ईर्षु दुरात्मा मानी च श्रेयसां वचनातिगः।। उद्योग 69/8

गान्धारि! तुम्हारा यह दुर्बुद्धि, ईर्ष्यालु, दुष्यत्मा और अभिमानी पुत्र श्रेष्ठ पुरुषों की बात न मानकर नरक की ओर जा रहा है।

त्वं ह्येवात्र भृशं गर्ह्यो धृतराष्ट्र सुतप्रियः।
यो जानन् पापतामस्य तत्प्रज्ञाममनुवर्तसे।। उद्योग 129/12

धृतराष्ट्र! सारा दोष तुम्हारा ही है। तुम पुत्र के स्नेह में पड़कर उसके पापों को जानते हुए भी उसी के पीछे चलते हो।

राजा तु धृतराष्ट्रोऽयं वयोवृद्धो न शाम्यति।
मत्तः पुत्रमदेनैव विधर्मे पथि वर्तते।। उद्योग 144/5

राजा धृतराष्ट्र, बूढ़े हो जाने पर भी शान्त रहकर नहीं बैठते। वे अपने पुत्र के मद से बेहोश होकर गलत रास्ते पर ही चलते हैं।

भवत्येव हि मे सूत बुद्धिर्दोषानुदर्शिनी।
दुर्योधनं समासाद्य पुनः सा परिवर्तते।। उद्योग 159/6

संजय! मेरी बुद्धि युद्ध की बुराइयाँ समझती है किन्तु दुर्योधन को देखकर बदल जाती है।

दिष्टमेतत् पुरा मन्ये भविष्यति नरक्षयः।। भीष्म 3/47

मैं इस महायुद्ध को पूर्व निश्चित दैव का विधान मानता हूँ। इसमें नरसंहार होगा।

स्वार्थे हि सम्मुह्यति तात लोको मां चापि लोकात्मकमेव विद्धि।।
भीष्म 3/60

तात! यह संसार स्वार्थ के कारण मोह में पड़ा हुआ है और मैं भी इस संसार से अलग नहीं हूँ।

न चापि ते मद्वशगा महर्षे न चाधर्मं कर्तुमर्हा हि ये मतिः।।
भीष्म 3/61

महर्षि व्यासजी! मेरी बुद्धि अधर्म नहीं करना चाहती किन्तु मेरे पुत्र मेरे वश में नहीं हैं।

मनः प्रीणाति मे वाक्यं जयं संजय शृण्वतः।
प्रत्युपायं चिन्तयतो लज्जां प्राप्नोति मे न हि।। भीष्म 49/3

संजय! अपने पक्ष की विजय की बात सुनकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हो रहा है। शत्रुओं से बदला लेने का उपाय सोचते हुए मुझे कौरवों द्वारा की गई अनीति याद करके भी शर्म नहीं आती है।

शृणु राजन् स्थिरो भूत्वा तवापनयनो महान्।
न च दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि।। भीष्म 49/22
गतोदके सेतुबन्धो यादृक् तादृङ् मतिस्तव।
संदीप्ते भवने यद्वत् कूपस्य खननं तथा।। भीष्म 49/23

संजय- महाराज! आप शान्त होकर सुनिये। इस युद्ध के होने में सबसे अधिक दोष आपका ही है। इसलिये आपको दुर्योधन के सिर पर सारा दोष नहीं मढ़ना चाहिये।

आपकी बुद्धि उसी तरह की है जैसी कि पानी बह जाने पर बांध बांधना या घर जल जाने पर कुआँ खोदना।

तव निर्गुणतां ज्ञात्वा पक्षपातं सुतेषु च।
द्वैधीभावं तथा धर्मे पाण्डवेषु मत्सरम्।। द्रोण 114/51
तव जिह्माभिप्रायं विदित्वा पाण्डवान् प्रति।
आर्त्त प्रलापांश्च बहून् मनुजाधिपसत्तम।। द्रोण 114/52
वासुदेवस्ततो युद्धं कुरूणामकरोन्महत्।। द्रोण 114/53

महाराज! जब श्रीकृष्ण ने जान लिया कि आप में कोई अच्छा गुण नहीं है, आप अपने पुत्रों का पक्ष लेते हैं। धर्म के बारे में आपके मन में दुविधा रहती है। पाण्डवों के प्रति आपके हृदय में ईर्ष्या है तथा आप उनके साथ कुटिल चाल चलते रहते हैं और दुःखी मनुष्यों की तरह व्यर्थ ही बातें बनाते रहते हैं तभी श्रीकृष्ण ने कौरवों के साथ महायुद्ध करने की तैयारी की।

आत्मापराधात् सुमहान् प्राप्तस्ते विपुलः क्षयः।
नैनं दुर्योधने दोषं कर्तुमर्हसि मानद।। द्रोण 114/54

माननीय महाराज! आपके अपने ही अपराध के कारण आपकी सेना का संहार हो रहा है। इस विनाश के लिये आपको दुर्योधन पर दोष नहीं मढ़ना चाहिये।

न हि ते सुकृतं किंचिदादौ मध्ये च भारत।
दृश्यते पृष्ठतश्चैव त्वन्मूलो हि पराजयः।। द्रोण 114/55

भारत! मुझे तो आगे, पीछे या बीच में आपका कोई अच्छा काम दिखाई नहीं देता। इस हार की जड़ आप ही हैं।

सदैव निकृतिप्रज्ञो द्वेष्टा मायोपजीवनः।
मिथ्याविनीतः सततमस्मास्वनपकारिषु।। शान्ति 7/23

यद्यपि हमने धृतराष्ट्र और कौरवों का कभी बुरा नहीं किया था फिर भी धृतराष्ट्र हमें सदा धोखा देने की सोचते थे, हमसे द्वेष करते थे, छल-कपट का सहारा लेते थे और हमारे प्रति झूठमूठ की नम्रता दिखाते थे।

ध्यान

तूष्णीम्भूत उपासीत न चेष्टेन्मनसापि च।। उद्योग 43/59

मौन रहकर और मन से भी कोई चेष्टा न कर परमात्मा की उपासना करे।

ब्रह्मयोग युक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।। भीष्म 29/21; गीता 5/21

ध्यान में ब्रह्म का साक्षात् करता हुआ योगी कभी भी नष्ट न होने वाला आनन्द पाता है।

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः।। भीष्म 30/10; गीता 6/10

योगी को एकान्त स्थान में अकेले निरन्तर योगाभ्यास करना चाहिये। उसे अपने मन और आत्मा में परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। उसे किसी प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिये और किसी वस्तु का संग्रह भी नहीं करना चाहिये।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्।। भीष्म 30/11; गीता 6/11

उसे अपना आसन पवित्र स्थान पर बिछाना चाहिये। आसन बहुत ऊँचा या बहुत नीचा नहीं होना चाहिये। कुशा के आसन के ऊपर मृगचर्म और इसके ऊपर वस्त्र बिछा होना चाहिये। यह आसन प्रतिदिन एक ही स्थान पर बिछाना चाहिये।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यत चित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद् योगमात्मविशुद्धये।। भीष्म 30/12; गीता 6/12

इस आसन पर बैठकर मन एकाग्र करना चाहिये, मन और इन्द्रियों की क्रियाएँ रोकनी चाहियें और अन्तःकरण की शुद्धि के लिये योगाभ्यास करना चाहिये।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।। भीष्म 30/13; गीता 6/13

आसन पर बैठे हुए सिर, गर्दन और धड़ सीधा रहना चाहिये और शरीर हिलना नहीं चाहिये। दृष्टि नाक के अगले भाग पर लगी रहनी चाहिये और इधर-उधर चारों ओर नहीं देखना चाहिये।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारीव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत तत्परः।। भीष्म 30/14; गीता 6/14

योगाभ्यासी का अन्तःकरण शान्त रहना चाहिये, उसे डरना नहीं चाहिये, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये और मन को वश में करके मेरा ध्यान करते हुए बैठे रहना चाहिये।

युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति।। भीष्म 30/15; गीता 6/15

इस विधि से जो सदा ध्यान करता है उस एकाग्र मन वाले योगी को मुझ परमेश्वर में रहने वाली परमानन्द की पराकाष्ठा रूप शान्ति प्राप्त होती है।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।। भीष्म 30/16; गीता 6/16

हे अर्जुन! बहुत अधिक भोजन करने वाला या बिल्कुल भी भोजन न करने वाला और बहुत सोने वाला या सदा जागते रहने वाला योगाभ्यास नहीं कर सकता।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः।। भीष्म 30/19; गीता 6/19

जैसे वायु के झोंके से रहित स्थान पर रखे हुए दीपक की लौ नहीं हिलती वैसे ही योगाभ्यास के द्वारा मन एकाग्र करने वाले योगी का चित्त भी चंचल नहीं बना रहना चाहिये।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैव इन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः।। भीष्म 30/24; गीता 6/24

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।

भीष्म 30/25; गीता 6/25

मन के संकल्पों विकल्पों से पैदा होने वाली इच्छाओं को पूरी तरह मन से निकाल कर और मन से ही सारी इन्द्रियों को चारों ओर से वश में करके, बुद्धि में धैर्य धारण करके धीरे-धीरे मन को एकाग्र करे। तब मन को परमात्मा में लगाये रखे और किसी बात के बारे में न सोचे।

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।। भीष्म 30/26; गीता 6/26

चंचल और अस्थिर मन जहां कहीं भी भागे उसे वहाँ से पकड़कर अर्थात् उस विषय या वस्तु से हटाकर वश में रखे और मन को परमात्मा में लगाये।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।। भीष्म 30/28; गीता 6/28

पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर अपने मन को परमात्मा में लगाने का अभ्यास करता हुआ सरलता से ब्रह्म की अनुभूति कर लेता है और परम आनन्द का अनुभव करता है।

अर्जुन- योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात् स्थितिं स्थिराम्।।

भीष्म 30/33; गीता 6/33

हे कृष्ण! आपने जो यह योग समभाव से करने को कहा है उसका अभ्यास नहीं किया जा सकता क्योंकि मन बड़ा चंचल है उसे एकाग्र नहीं किया जा सकता।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। भीष्म 30/34; गीता 6/34

हे कृष्ण! मन बड़ा चंचल है। वह बहुत बलवान, हठी और तंग करने वाला है। उसे वश में करना उतना ही कठिन है जितना वायु को पकड़ना।

श्रीकृष्ण- असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।

भीष्म 30/35; गीता 6/35

हे अर्जुन! इसमें कोई सन्देह नहीं कि मन, चंचल है और इसे वश में रखना कठिन है। किन्तु अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है।

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।

भीष्म 30/36; गीता 6/36

असंयमी व्यक्ति के लिये योगाभ्यास के द्वारा मन को वश में करना बहुत कठिन है। किन्तु संयमी व्यक्ति प्रयत्न करके मन को वश में कर सकता है।

इन्द्रियाणि मनश्चैव यदा पिण्डीकरोत्ययम्।
एष ध्यानपथः पूर्वो मया समनुवर्णितः।। शान्ति 195/10

जब योगी इन्द्रियों सहित मन को एकाग्र कर लेता है तब उसका प्रारम्भिक ध्यान मार्ग शुरू होता है। यह मैंने तुम्हें प्रथम ध्यान मार्ग बताया।

तस्य तत् पूर्वसंरुद्धमात्मनः षष्ठमान्तरम्।
स्फुरिष्यति समुद्भ्रान्ता विद्युदम्बरे यथा।। शान्ति 195/11

इस प्रकार प्रयत्न करने से मन इन्द्रियों सहित कुछ देर के लिये स्थिर हो जाता है। किन्तु अवसर पाते ही मन विषयों की ओर जाने के लिये वैसे ही चंचल हो उठता है जैसे बादलों में अचानक बिजली चमक उठती है।

जलबिन्दुर्यथा लोलः पर्णस्थः सर्वतश्चलः।
एवमेवास्य चित्तं च भवति ध्यानवर्त्मनि।। शान्ति 195/12

जैसे कमल के पत्ते पर पानी की बूँद चारों ओर हिलती रहती है वैसे ही ध्यान मार्ग पर चलने वाले साधक का चित्त शुरू में चंचल रहता है।

समाहितं क्षणं किञ्चिद् ध्यानवर्त्मनि तिष्ठति।
पुनर्वायुपथं भ्रान्तं मनो भवति वायुवत्।। शान्ति 195/13

एकाग्र करने पर मन थोड़ी देर तो ध्यान में स्थिर रहता है किन्तु फिर वायु मार्ग में पहुंचकर भ्रान्त मन वायु के समान चंचल हो उठता है।

अनिर्वेदो गतक्लेशो गततन्द्रीरमत्सरी।
समादध्यात् पुनश्चेतो ध्यानेन ध्यानयोगवित्।। शा० 195/14

ध्यानयोग जानने वाला साधक ऐसे विक्षेप के समय खेद या क्लेश अनुभव न करे। उसे आलस्य और ईर्ष्या त्याग कर मन पुनः एकाग्र करने का प्रयत्न करना चाहिये।

विचारश्च विवेकश्च वितर्कश्चोपजायते।
मुनेः समादधानस्य प्रथमं ध्यानमादितः।। शान्ति 195/15

योगी जब ध्यान लगाने का अभ्यास शुरू करता है तब उसके मन में तरह-तरह के विचार, विवेक और तर्क-वितर्क उठने लगते हैं।

मनसा क्लिश्यमानस्तु समाधानं च कारयेत्।
न निर्वेदं मुनिर्गच्छेत् कुर्यादेवात्मनो हितम्।। शान्ति 195/16

ध्यान लगाते समय मन को कितना की परिश्रम क्यों न करना पड़े साधक को ऊबना नहीं चाहिये और मन एकाग्र करने का प्रयत्न करना चाहिये। ध्यानमार्ग में प्रवृत्त मुनि को अपना कल्याण करना चाहिये।

एवमेवेन्द्रियग्रामं शनैः सम्परिभावयेत्।
संहरेत् क्रमशश्चैव स सम्यक् प्रशमिष्यति।। शा० 195/19

योगी को अपनी ज्ञानेन्द्रियों को धीरे-धीरे बाह्य विषयों की ओर से समेटना चाहिये, और मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा अभ्यास करने पर मन भली-भाँति शान्त हो जायेगा।

न तत्पुरुषकारेण न च दैवेन केनचित्।
सुखमेष्यति तत् तस्य यदेवं संयतात्मनः।। शान्ति 195/21

इस प्रकार मन को वश में करने वाले को जो सुख प्राप्त होता है वैसा सुख किसी तरह के पुरुषार्थ से या दैवयोग से भी नहीं मिल सकता।

दुष्कृते सुकृते चापि न जन्तुर्नियतो भवेत्।
नित्यं मनः समाधाने प्रयतेत विचक्षणः।। शान्ति 290/21।

बुद्धिमान पुरुष को अपने जीवन में पाप और पुण्य के कर्मों में न फंसकर अपना मन परमात्मा के चिन्तन में लगाना चाहिये।

धैर्य

दुःखैर्न तप्येन्न सुखैः प्रहृष्येत् समेन वर्तेत सदैव धीरः।। आदि 89/9

धैर्य वाला पुरुष दुःख आने पर परेशान नहीं होता और सुख मिलने पर बहुत प्रसन्न नहीं होता। उसका मन सुख-दुःख में एक जैसा रहता है।

भये न मुह्याम्यष्टकाहं कदाचित् संतापो मे मानसो नास्ति कश्चित्।
धाता यथा मां विदधीत लोके ध्रुवं तथाहं भवितेति मत्वा।।

आदि 89/10

राजा अष्टक! मैं भय आने पर अपनी सुधबुध नहीं खोता। मेरे मन में कोई दुःख भी नहीं है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि इस संसार को बनाने वाला मुझे जिस तरह रखेगा उसी तरह से मुझे यहाँ रहना होगा।

धृत्या द्वितीयवान् भवति।। वन 313/48

मनुष्य धैर्य से दूसरे साथी वाला होता है। संकट में धीरज ही सहारा होता है।

सात्त्विक धृति- **धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः।**
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।।

भीष्म 42/33

जिस धैर्य या धृति के कारण मनुष्य हाथ में लिये हुए काम को दृढ़चित्त रह कर पूरा करता है। मन, प्राण और इन्द्रियों को एकाग्रता से साध कर जो डांवाडोल नहीं होने देती वह सात्त्विक धृति होती है।

राजसिक धृति- **यया तु धर्मकामार्थान् धृत्या धारयतेऽर्जुन।**
प्रसङ्गेन फलाकाङ्क्षी धृति सा पार्थ राजसी।।

भीष्म 42/34

जो धर्म, अर्थ और काम की बातें अपनाकर फल की आसक्ति से प्रवृत्त होती है वह राजसिक धृति है।

तामसिक धृति- **यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।**
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।।

भीष्म 42/35

जिसमें नींद, भय, शोक, दुःख और अहंकार न छूट पाते हों, दुष्ट बुद्धि वाले पुरुष की ऐसी धृति तामसिक होती है।

धृतिर्नाम सुखे दुःखे यथा नाप्नोति विक्रियाम्।। शान्ति 162/19

सुख या दुःख आने पर मन में विकार पैदा न होना धैर्य कहलाता है।

सर्वथा क्षमिणा भाव्यं तथा सत्यपरेण च।
वीतहर्षभयक्रोधो धृतिमाप्नोति पण्डितः।। शान्ति 162/20

मनुष्य को सदा क्षमाशील होना चाहिये। उसे सत्य व्यवहार भी सदा करना चाहिये। जिसने हर्ष, भय और क्रोध को त्याग दिया है उस समझदार व्यक्ति को धैर्य की प्राप्ति हो जाती है।

पुत्रदारैः सुखैश्चैव वियुक्तस्य धनेन वा।
मग्नस्य व्यसने कृच्छ्रे धृतिः श्रेयस्करी नृप।। शान्ति 227/3
धैर्येण युक्तस्य सतः शरीरं न विशीर्यते ।।

राजन्! जिसके स्त्री और पुत्र मर गये हों, जिसकी सुख-सम्पत्ति नष्ट हो गई हो और जो कठिन विपत्ति में फंस गया हो ऐसे पुरुष की भलाई धैर्य अपनाने में ही है। धैर्यशाली सज्जन का शरीर चिन्ता से नष्ट नहीं होता।

विशोकता सुखं धत्ते चारोग्यमुत्तमम्।। शान्ति 227/4
आरोग्याच्च शरीरस्य स पुनर्विन्दते श्रियम्।

शोक न करने से सुख और अच्छा स्वास्थ्य मिलता है। नीरोग शरीर होने पर मनुष्य फिर धन सम्पत्ति कमा लेता है।

यच्च प्राज्ञो नरस्तात सात्त्विकीं वृत्तिमास्थितः।। शान्ति 227/5
तस्यैश्वर्यं च धैर्यं च व्यवसायश्च कर्मसु।

तात! जो बुद्धिमान् पुरुष सदा सात्त्विक वृत्ति के सहारे रहता है उसे ऐश्वर्य, धैर्य और सभी कार्यों में उद्योग शीलता प्राप्त होती है।

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च विद्यया।। शान्ति 330/28

मनुष्य को धैर्य से अपनी भूख और कामवासना पर नियन्त्रण रखना चाहिये। आँखों से हाथ-पैर की, मन से आँख-कान की तथा विद्या के द्वारा मन और वाणी की रक्षा करनी चाहिये।

नपुंसक

न क्लीबो वसुधां भुङ्क्ते न क्लीबो धनमश्नुते।
न क्लीबस्य गृहे पुत्रा मत्स्याः पङ्क इवासते।। शान्ति 14/13

नपुंसक पुरुष पृथ्वी का उपभोग नहीं कर सकता। नपुंसक धन का उपभोग भी नहीं कर सकता। नपुंसक के घर में पुत्र भी नहीं होते जैसे कीचड़ में मछलियाँ नहीं होतीं।

नर-नारायण

यः परः प्रकृते प्रोक्तः पुरुषः पञ्चविंशकः।
स एव सर्वभूतात्मा नर इत्यभिधीयते।। अनु 124 दा० पा०

चौबीस तत्त्वों वाली प्रकृति से परे जो पच्चीसवाँ तत्त्व पुरुष है तथा जो सभी प्राणियों का आत्मा है उसी को नर कहा जाता है।

नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति ततो विदुः।
तान्येव चायनं तस्य तेन नारायणः स्मृतः।। अनु 124 दा० पा०

नर से ही प्रकृति के सभी तत्त्व प्रकट हुए हैं इसलिये इन तत्वों को नार कहते हैं और नार ही भगवान् का अयन अर्थात् निवास स्थान है, इसलिये वे नारायण कहलाते हैं।

नारायणाज्जगत् सर्वं सर्गकाले प्रजायते।
तस्मिन्नेव पुनस्तच्च प्रलये सम्प्रलीयते।। अनु 124 दा० पा०

सृष्टि उत्पत्ति के समय यह सारा जगत् नारायण से ही प्रकट होता है। प्रलयकाल में यह सम्पूर्ण संसार फिर नारायण में ही लीन हो जाता है।

नमो नारायणायेति यो वेद ब्रह्म शाश्वतम्।
अन्तकाले जपन्नेति तद्विष्णोः परमं पदम्।। अनु 124 दा० पा०

जो व्यक्ति "ओ३म् नमो नारायणाय" आठ अक्षर वाले इस मन्त्र को सनातन ब्रह्मरूप जानता है और अन्तकाल में इस मन्त्र का जाप करता है वह विष्णु के परम पद को प्राप्त कर लेता है।

अजरममरमेकं ध्येयमाद्यन्तशून्यं सगुणमगुणमाद्यं स्थूलमत्यन्तसूक्ष्मम्।
निरुपममुपमेयं योगिविज्ञानगम्यं त्रिभुवनगुरुमीशं सम्प्रपद्यस्व विष्णुम्।।
अनु 124 दा० पा०

जो अजर, अमर, अद्वितीय (एकमात्र) ध्यान करने योग्य, अनादि, अनन्त, सगुण, निर्गुण, सबका आदि कारण, स्थूल, अत्यन्त सूक्ष्म, उपमारहित, उपमा के योग्य है। जिसे योगी ही जान पाते हैं। उन तीनों लोकों के स्वामी भगवान् विष्णु की शरण में जाओ।

नारद

न चारित्रनिमित्तोऽस्याहंकारो देहतापनः।
अभिन्न श्रुतचारित्रस्तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/5

नारद जी में शास्त्रों का ज्ञान और चरित्र का बल ये दोनों गुण एक साथ ही हैं। फिर भी उनके मन में अपने चरित्र के कारण तनिक भी अभिमान नहीं है। अभिमान शरीर को दुःख देता है। इन्हीं गुणों के कारण उनका सब जगह आदर किया जाता है।

अरतिः क्रोधचापल्ये भयं नैतानि नारदे।
अदीर्घसूत्रः शूरश्च तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/6

नारद जी में अप्रीति, क्रोध, चंचलता और भय ये बुराइयाँ नहीं हैं। वे कोई काम देर लगाकर नहीं करते, न ही वे आलसी है। वे शूरवीर भी हैं इसीलिये उनका सभी जगह आदर होता है।

उपास्यो नारदो बाढं वाचि नास्य व्यतिक्रमः।
कामतो यदि वा लोभात् तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/7

नारद जी निश्चय ही उपासना करने योग्य हैं। किसी इच्छा या लोभ के कारण वे अपनी बात नहीं पलटते। इसीलिये वे पूज्य हैं।

अध्यात्मविधितत्त्वज्ञः क्षान्तः शक्तो जितेन्द्रियः।
ऋजुश्च सत्यवादी च तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/8

वे अध्यात्मशास्त्र के विद्वान, क्षमाशील, शक्तिमान, जितेन्द्रिय, सरल और सत्य बोलने वाले हैं। इसलिये सभी जगह उनका आदर किया जाता है।

तेजसा यशसा बुद्ध्या ज्ञानेन विनयेन च।
जन्मना तपसा वृद्धस्तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/9

वे तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, विनयशीलता, जन्म और तपस्या द्वारा भी सबसे बढ़े चढ़े हैं इसलिये उनका सभी जगह आदर होता है।

सुशीलः सुखसंवेशः सुभोजः स्वादरः शुचिः।
सुवाक्यश्चाप्यनीर्ष्यश्च तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शा० 230/10

वे सुशील, सुख से सोने वाले, पवित्र भोजन करने वाले, उत्तम आदर के पात्र, पवित्र, अच्छी बात कहने वाले और ईर्ष्या से रहित हैं अतः उनका आदर किया जाता है।

कल्याणं कुरुते बाढं पापमस्मिन्न विद्यते।
न प्रीयते परानर्थैस्तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/11

वे सबका कल्याण करते हैं। उनमें पाप की भावना नहीं है। वे दूसरों की आपत्ति से प्रसन्न नहीं होते अतः उनका आदर किया जाता है।

समत्वाच्च प्रियो नास्ति नाप्रियश्च कथंचन।
मनोऽनुकूलवादी च तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/13

वे सभी के प्रति समान भाव रखते हैं। उन्हें न कोई प्रिय है और न अप्रिय। वे मन के अनुकूल बोलते हैं अतः उनका सभी जगह आदर होता है।

बहुश्रुतश्चित्रकथः पण्डितोऽलालसोऽशठः।
अदीनोऽक्रोधनोऽलुब्धस्तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शा० 230/14

वे अनेक शास्त्रों के विद्वान् हैं। उनका बातें सुनाने का ढंग बहुत अच्छा है। वे पण्डित हैं। उनमें किसी वस्तु की लालसा नहीं है। वे सज्जन हैं। उनमें दीनता, क्रोध और लोभ नहीं है अतः उनका आदर होता है।

नार्थे धने कामे वा भूतपूर्वोऽस्य विग्रहः।
दोषाश्चास्य समुच्छिन्नास्तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/15

धन, कामना या और किसी बात अथवा स्वार्थ के कारण उनका पहिले किसी से कभी झगड़ा नहीं हुआ। उनमें कोई भी बुराई नहीं है इसीलिये उनका सब जगह सम्मान किया जाता है।

समाधिर्नास्य कामार्थे नात्मानं स्तौति कर्हिचित्।
अनीर्षुर्मृदुसंवादस्तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शन्ति 230/18

उनका मन विषय भोगों में कभी नहीं फंसता। वे अपनी प्रशंसा नहीं करते। वे ईर्ष्या नहीं करते और मीठा बोलते हैं अतः उनका आदर किया जाता है।

नासूयत्यागमं कंचित् स्वनयेनोपजीवति।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/20

वे किसी शास्त्र में दोष नहीं निकालते। वे अपनी नीति के अनुसार रहते हैं। वे समय नष्ट नहीं करते और मन को वश में रखते हैं अतः उनका आदर होता है।

कृतश्रमः कृतप्रज्ञो न च तृप्तः समाधिना।
नित्ययुक्तोऽप्रमत्तश्च तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/21

उन्हें समाधि से कभी तृप्ति नहीं होती। वे सदा उद्यमशील और सावधान रहते हैं। वे कर्तव्य पालन के लिये सदा तत्पर रहते हैं और कभी प्रमाद नहीं करते अतः सभी जगह उनका आदर होता है।

नापत्रपश्च युक्तश्च नियुक्तः श्रेयसे परे।
अभेत्ता परगुह्यानां तस्मात् सर्वत्र पूजितः।। शान्ति 230/22

वे निर्लज्ज नहीं हैं। दूसरों की भलाई में लगे रहते हैं अतः लोग उनसे काम लेते हैं। वे दूसरों की गुप्त बातें नहीं बताते अतः उनका आदर होता है।

नास्तिक

वेदवादापविद्धांस्तु तान् विद्धि भृशनास्तिकान्।। शान्ति 12/5

वेदों की आज्ञा का पालन न करने वाले नास्तिक होते हैं।

नायं लोकोऽस्ति न पर इति व्यवसितो जनः।
नालं गन्तुं हि विश्वासं नास्तिके भयशङ्किते।। शान्ति 133/14

संसार में कुछ लोग ऐसे हैं जो इस संसार को और परलोक को नहीं मानते। ऐसे नास्तिक लोगों से डरना चाहिये और उनका विश्वास नहीं करना चाहिये।

निन्दा

परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि च मुह्यति।। कर्ण 45/44

सभी लोग दूसरों के दोष बताने में चतुर होते हैं परन्तु अपने दोषों को नहीं जानते। यदि जानते भी हैं तब भी अपने दोषों से अनजान बने रहते हैं।

न वाच्यः परिवादोऽयं न श्रोतव्यः कथंचन।
कर्णावथ पिधातव्यौ प्रस्थेयं चान्यतो भवेत्।। शान्ति 132/12

किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये और न ही निन्दा सुननी चाहिये। यदि कोई किसी की निन्दा करे तो अपने कान बन्द कर लेने चाहियें या वहाँ से कहीं और चले जाना चाहिये।

असतां शीलमेतद् वै परिवादोऽथ पैशुनम्।। शान्ति 132/13

दूसरों की निन्दा या चुगली करना दुष्टों का स्वभाव होता है।

विभ्रमाल्लोकबाह्यानां द्वेष्यैर्वाक्यैरसम्मतैः।
कुत्सा संजायते राजंल्लोकान् प्रेक्ष्याभिशाम्यति।। शान्ति 163/18

राजन्! समाज से बहिष्कृत नीच लोगों की द्वेष पूर्ण तथा अप्रामाणिक बातें सुनकर निन्दा उत्पन्न होती हैं। श्रेष्ठ पुरुषों को देखकर निन्दा करने की आदत छूट जाती है।

न चक्षुषा न मनसा न वाचा दूषयेदपि।
न प्रत्यक्षं परोक्षं वा दूषणं व्याहरेत् क्वचित्।। शान्ति 278/4

आँख से, मन से और वाणी से किसी के दोष देखने और सोचने नहीं चाहियें। किसी के सामने या पीठ पीछे किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

सतां गुरूणां वृद्धानां कुलस्त्रीणां विशेषतः।
परिवादं न च ब्रूयात् परेषामात्मनस्तथा।। अनु 104/129

सज्जनों, गुरुजनों, बड़े-बूढों, कुल की स्त्रियों, दूसरे लोगों तथा अपनी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये।

निर्धन

अर्थैर्विहीनः पुरुषः परैः सम्परिभूयते।। वन 193/20

निर्धन व्यक्ति को दूसरे लोगों से अपमानित होना पड़ता है।

मृतो दरिद्रः पुरुषो।। वन 313/84

दरिद्र पुरुष मरे हुए के समान है।

पतिपुत्रवधादेतत् परमं दुःखमब्रवीत्।
दारिद्र्यमिति यत् प्रोक्तं पर्यायमरणं हि तत्।। उद्योग 134/13

गरीबी को पति और पुत्र की मृत्यु से भी अधिक दुःखदायी कहा जाता है। दरिद्रता मृत्यु का ही दूसरा नाम है।

स्खलितार्थं पुनस्तात संत्यजन्ति च बान्धवाः।
अप्यस्मिन् नाश्वसन्ते च जुगुप्सन्ते च तादृशम्।। उद्योग 135/39

निर्धन पुरुष को उसके बन्धु बान्धव छोड़ देते हैं। वे उसका विश्वास नहीं करते और उसकी निन्दा करते हैं।

अधनस्य मृतं श्रेयो।। उद्योग 144/13

निर्धन मनुष्य का मरना ही अच्छा है।

अभिशस्तं प्रपश्यन्ति दरिद्रं पार्श्वतः स्थितम्।
दरिद्रं पातकं लोके न तच्छंसितुमर्हति।। शान्ति 8/14

यदि गरीब मनुष्य पास में खड़ा हो तो लोग उसे पापी या कलंकित की तरह देखते हैं। इस संसार में गरीबी पाप है अतः इसकी बड़ाई मत कीजिये।

अवज्ञानसहस्रैस्तु दोषाः कष्टतराऽधने।
धने सुखकला या तु सापि दुःखैर्विधीयते।। शान्ति 177/35

निर्धन मनुष्य को हजारों बार अपमान सहने पड़ते हैं। जीवन की यह हालत बड़ी दुखदायिनी होती है। धन में जो थोड़ा बहुत सुख दिखाई देता है वह भी दुःख झेलकर ही मिलता है।

अधनस्येह जीवितार्थो न विद्यते।। शान्ति 180/6

इस संसार में गरीब मनुष्य का जीवन व्यर्थ है।

ऋद्धिर्वाप्यथवा नर्द्धिः पर्यायकृतमेव तत्।। शान्ति 224/36

समृद्धि और निर्धनता; प्रारब्ध के अनुसार आती जाती रहती है।

निर्बल

सर्वथा त्वेतदुचितं दुर्बलेषु बलीयसाम्।
अनादरोऽविरोधश्च प्रणिपाती हि दुर्बलः।। उद्योग 72/73

यह ठीक ही है कि बलवान कमजोरों का आदर नहीं करते और निर्बल पुरुष इस बात का विरोध भी नहीं करते। दुर्बल वही है जो झुकने के लिये तैयार है।

दुर्बलार्थं बलं सृष्टं धात्रा मान्धातरुच्यते।
अबलं तु महद्भूतं यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।। शान्ति 91/12

मान्धाता! कहते हैं कि विधाता ने दुर्बलों की रक्षा के लिये बलशाली राजा को बनाया है। निर्बल प्राणियों का महान समुदाय राजा के बल के सहारे ही जीवित रहता है।

दुर्बलस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य च।
अविषह्यतमं मन्ये मा स्म दुर्बलमासदः।। शान्ति 91/14

निर्बल मनुष्य, मुनि और विषैले साँप की दृष्टि को मैं बहुत भंयकर मानता हूँ इसलिये दुर्बल प्राणी को सताना नहीं चाहिये।

दुर्बलांस्तात बुध्येथा नित्यमेवाविमानितान्।
मा त्वां दुर्बलचक्षूंषि प्रदहेयुः सबान्धवम्।। शान्ति 91/15

तात! तुम दुर्बल प्राणियों का सदैव अपमान मत करना। निर्बल-मनुष्य की आंखें तुम्हें बन्धु-बान्धवों सहित कहीं जला न डालें।

अबलस्य कुतः कोशो ह्यकोशस्य कुतो बलम्।
अबलस्य कुतः राज्यमराज्ञः श्रीर्भवेत् कुतः।। शान्ति 133/4

निर्बल राजा के पास पैसा नहीं होता और बिना पैसे के सेना नहीं रखी जा सकती। निर्बल राजा के पास राज्य नहीं रहता और राज्य हीन राजा के पास लक्ष्मी कैसे रह सकती है।

बलवत्संनिकर्षो हि न कदाचित् प्रशस्यते।। शान्ति 138/175

दुर्बल प्राणी के लिये बलवान के पास रहना कभी अच्छा नहीं माना जाता।

प्रशान्तादपि मे पापाद् भेतव्यं बलिनः सदा।। शान्ति 138/177

जो बलवान् प्राणी पापी हो और शान्त हो कर भी रहता हो उससे मुझे डरना चाहिये।

तस्माद् वैरं न कुर्वीत दुर्बलो बलवत्तरैः।
शोचेद्धि वैरं कुर्वाणो यथा वै शाल्मलिस्तथा।। शान्ति 157/9

दुर्बल मनुष्य को बलवानों के साथ वैर नहीं करना चाहिये। यदि दुर्बल मनुष्य बलवान के साथ वैर करता है तो उसे सेमल के पेड़ की तरह पछताना पड़ता है।

कृपणस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य च।
नरं समूलं दहति कक्षमग्निरिव ज्वलन्।। अनुशासन 51/38

किसी दीन-दुःखी की, ऋषि की और जहरीले साँप की क्रोधपूर्ण दृष्टि मनुष्य को वैसे ही जड़ सहित जला देती है जैसे आग, घास के ढेर को।

निवास योग्य देश

शिष्योपाध्यायिकावृत्तिर्यत्र स्यात् सुसमाहिता।
यथावच्छास्त्रसम्पन्ना कस्तं देशं परित्यजेत्।। शान्ति 287/42

जहाँ गुरु और शिष्य का व्यवहार सुव्यवस्थित, शास्त्रसम्मत और उचित ढंग से चलता है ऐसे देश को कौन छोड़कर जायेगा?

आकाशस्था ध्रुवं यत्र दोषं ब्रूयुर्विपश्चिताम्।
आत्मपूजाभिकामो वै को वसेत् तत्र पण्डितः।। शान्ति 287/43

जिस देश के लोग बिना बात ही विद्वानों पर दोष लगाते हों ऐसे देश में आत्मसम्मान चाहने वाला कौन बुद्धिमान पुरुष रहना चाहेगा?

यत्र संलोडिता लुब्धैः प्रायशो धर्मसेतवः।
प्रदीप्तमिव चैलान्तं कस्तं देशं न संत्यजेत्।। शान्ति 287/44

जहाँ लालची मनुष्यों ने धर्म की सारी मर्यादाएँ ही तोड़ डली हों ऐसे देश को कौन व्यक्ति जलते हुए कपड़े की तरह नहीं त्याग देगा?

यत्र धर्ममनाशङ्काश्चरेयुर्वीतमत्सराः।
भवेत् तत्र वसेच्चैव पुण्यशीलेषु साधुषु।। शान्ति 287/45

जिस देश के लोग ईर्ष्या और सन्देह त्यागकर धर्माचरण करते हों, वहां पुण्यचरित्र वाले सज्जनों के पास अवश्य रहना चाहिये।

धर्ममर्थनिमित्तं च चरेयुर्यत्र मानवाः।
न ताननुसेवेज्जातु ते हि पापकृतो जनाः।। शान्ति 287/46

जिस देश के लोग पैसा कमाने के लिये धर्मानुष्ठान करते हों वहाँ उन लोगों के पास कभी नहीं रहना चाहिये क्योंकि वे लोग पापाचारी होते हैं।

यत्र राजा च राज्ञश्च पुरुषाः प्रत्यनन्तराः।
कुटुम्बिनामग्रभुजस्त्यजेत् तद् राष्ट्रमात्मवान्।। शान्ति 287/49

जहाँ राजा और राजा के निकटवर्ती अन्य लोग परिवार के लोगों से पहले ही भोजन कर लेते हों ऐसे देश को बुद्धिमान् पुरुष छोड़ दें।

श्रोत्रियास्त्वग्रभोक्तारो धर्मनित्याः सनातनाः।
याजनाध्यापने युक्ता यत्र तद् राष्ट्रमावसेत्।। शान्ति 287/50

जिस देश में सदा धर्म का पालन करने वाले, यज्ञ और पढ़ाने का काम करने वाले विद्वान ब्राह्मण सबसे पहले भोजन करते हों उस देश में अवश्य रहना चाहिये।

अशुचीन् यत्र पश्येत ब्राह्मणान् वृत्तिकर्शितान्।
त्यजेत् तद् राष्ट्रमासन्नमुपसृष्टमिवामिषम्।। शान्ति 287/52

जिस देश में ब्राह्मण अपनी जीविका के लिये कष्ट पाते हों और अपवित्र अवस्था में रहते हों उस राष्ट्र को पास होने पर भी विष मिले भोजन की तरह छोड़ देना चाहिये।

प्रीयमाणा नरा यत्र प्रयच्छेयुरयाचिताः।
स्वस्थचित्तो वसेत् तत्र कृतकृत्य इवात्मवान्।। शान्ति 287/53

जिस देश के लोग बिना मांगे ही प्रसन्न होकर भिक्षा देते हों। वहाँ मन को वश में रखने वाला पुरुष कृतकृत्य की भाँति स्वस्थ मन से रहे।

दण्डो यत्राविनीतेषु सत्कारश्च कृतात्मसु।
चरेत् तत्र वसेच्चैव पुण्यशीलेषु साधुषु।। शान्ति 287/54

जिस देश में उद्दण्ड पुरुषों को दण्ड दिया जाता हो और जितात्मा पुरुषों का आदर किया जाता हो वहाँ पुण्यशील सज्जनों के साथ रहना चाहिये।

यत्र राजाधर्मनित्यो राज्यं धर्मेण पालयेत्।
अपास्य कामान् कामेशो वसेत् तत्राविचारयन्।। शान्ति 287/56

जिस देश का राजा धर्मपरायण हो और धर्मपूर्वक राज्य करता हो और सम्पूर्ण भोग्य पदार्थों का स्वामी होकर भी विषयभोगों से दूर रहता हो ऐसे देश में बिना सोचे-विचारे रहना चाहिये।

यथाशीला हि राजानः सर्वान् विषयवासिनः।
श्रेयसा योजयत्याशु श्रेयसि प्रत्युपस्थिते।। शान्ति 287/57

राजा का जैसा स्वभाव और आचरण होता है वैसा ही प्रजा का भी हो जाता है। ऐसा राजा अपने कल्याण का अवसर आने पर सारी प्रजा को भी जल्दी ही कल्याण का भागी बना देता है।

नीच पुरुष

पुमांसो ये हि निन्दन्ति वृत्तेनाभिजनेन च।
न तेषु निवसेत् प्राज्ञः श्रेयोऽर्थी पापबुद्धिषु।। आदि 79/10

जो लोग दूसरों के सदाचार और कुल की निन्दा करते रहते हैं उन दूषित विचारों वाले पुरुषों के साथ भला चाहने वाले को नहीं रहना चाहिये।

अकारणाद् ये द्विषन्ति परिवादं वदन्ति च।
न तत्रास्य निवासोऽस्ति पाप्मभिः पापतां व्रजेत्।।

आदि 79/11-12 दा० पा०

जो लोग बिना किसी कारण किसी से द्वेष करते हैं और दूसरों की निन्दा करते रहते हैं उनके साथ रहने से मनुष्य में बुरी आदतें आ जाती हैं।

सुकृते दुष्कृते वापि यत्र सज्जति यो नरः।
ध्रुवं रतिर्भवेत् तत्र तस्माद् दोषं न रोचयेत्।। आदि 79/11-12 दा० पा०

मनुष्य अच्छे या बुरे जिस काम में भी लगा रहता है उसी में उसका मन लगने लगता है अतः बुरे कामों के बारे में सोचना भी नहीं चाहिये।

नाकृतात्मा वेदयति धर्माधर्मं विनिश्चयम्।। वन 215/18

दूषित अन्तःकरण वाला पुरुष धर्म और अधर्म का निर्णय नहीं कर सकता।

दुर्विनीताः श्रियं प्राप्य विद्यामैश्वर्यमेव च।
तिष्ठन्ति न चिरं भद्रे यथाहं मदगर्वितः।। वन 249/18

उद्दण्ड मनुष्य धन सम्पत्ति, विद्या और ऐश्वर्य को पाकर भी बहुत समय तक प्रतिष्ठित नहीं रहते। जैसे मैं मद से चूर होकर अपना सम्मान खो बैठा हूँ।

मिथ्याभिगृध्नो हि नरः पापात्मा मोहमास्थितः।
अयशः प्राप्नुयाद् घोरं महद् वा प्राप्नुयाद् भयम्।। विराट 14/37

झूठे विषयों में फंसा पापी पुरुष मोह में पड़कर भयंकर बदनामी पाता है या उसे मृत्यु (महान भय) का सामना करना पड़ता है।

हीनप्रज्ञो दौष्कुलेयो नृशंसो दीर्घं वैरी क्षत्रविद्यास्वधीरः।
एवं धर्मानापदः संश्रयेयुर्हीनवीर्यो यश्च भवेदशिष्टः।।
उद्योग 32/18

जो मनुष्य मन्दबुद्धि, नीचकुल में उत्पन्न, क्रूर, दीर्घकाल तक वैर भाव रखने वाले, क्षत्रियों की युद्ध विद्या न जानने वाले, पराक्रम हीन और अशिष्ट होते हैं ऐसे ही लोगों पर मुसीबतें आती हैं।

पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम्।। उद्योग 35/60
पाप करने वाला पापकीर्ति पुरुष पाप का फल ही पाता है।

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी।
पर्वकारश्च सूची च मित्रधुक् पारदारिकः।। उद्योग 35/46
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात् पानपो द्विजः।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः।। उद्योग 35/47
स्त्रुवप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वे ब्रह्महभिः समाः।। उद्योग 35/48

घर में आग लगाने वाला, विष देने वाला, जारज सन्तान की कमाई खाने वाला, शराब बेचने वाला, हथियार बनाने वाला, चुगली करने वाला, मित्रद्रोही, परस्त्रीगमन करने वाला, भ्रूणहत्या करने वाला, गुरुपत्नी से सम्भोग करने वाला, ब्राह्मण होकर शराब पीने वाला, क्रूर स्वभाव वाला, कौए की तरह कड़वा बोलने वाला, नास्तिक, वेदों की निन्दा करने वाला, ग्रामपुरोहित, यज्ञोपवीत धारण न करने वाला, क्रूर तथा शक्तिशाली होने पर भी मुझे बचाओ कहकर शरण लेने वाले को मारने वाला, ये सब नीच पुरुष ब्रह्म हत्यारों जैसे हैं।

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः।। उद्योग 36/18

कठोर शासन वाला, अनेक बुराइयों वाला, कलंकित, गुस्से के कारण किसी

की बुराई करने से न हटने वाला, उपकार न मानने वाला, किसी से मैत्री न करने वाला, और दुष्ट ऐसे व्यक्ति नीच होते हैं।

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्यो ऽप्यात्मशङ्कितः।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः।। उद्योग 36/19

जो अपने ही ऊपर सन्देह होने के कारण दूसरों से भी कल्याण होने में विश्वास नहीं करता और मित्रों को दूर रखता है वह नीच पुरुष होता है।

अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद् भूतिमात्मनः।। उद्योग 36/20

अपना भला चाहने वाले को नीच पुरुषों की संगति कभी नहीं करनी चाहिये।

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा।। उद्योग 36/41

नीच पुरुषों का स्वभाव बादल की तरह चंचल होता है। वे सहसा गुस्सा हो जाते हैं और बिना कारण प्रसन्न हो जाते हैं।

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान्।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः।। उद्योग 37/47

पापी लोग दूसरों के कल्याणकारी गुण जानना नहीं चाहते वे लोगों के दोष ही देखते हैं।

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः।। उद्योग 39/11
सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद् भयम्।
अर्थादाने महान् दोषः प्रदाने च महद् भयम्।। उद्योग 39/12

जो दूसरों की निन्दा में लगे रहते हैं, दूसरों को दुःख देने और आपस में लड़ाने के लिये निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं, जिनका देखना भी अशुभ होता है, जिनके साथ रहने में बहुत खतरा है ऐसे लोगों से पैसा लेना या इन्हें पैसा देना दोनों ही काम बहुत डरावने हैं।

ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः।। उद्योग 39/13

फूट डालना जिनका स्वभाव है। जो कामी, निर्लज्ज, नीच और पापी के रूप में प्रसिद्ध हैं उनके साथ नहीं रहना चाहिये।

युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत्।
निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति।। उद्योग 39/14

जो दूसरे दोषों वाले लोग हों उनका भी साथ छोड़ देना चाहिये। मित्रता समाप्त हो जाने पर नीच पुरुषों की प्रीति भी नष्ट हो जाती है।

काम क्रोधानुवर्ती हि यो मोहाद् विरुरुत्सति।
गुणवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुः पुरुषाधमम्।। उद्योग 91/29

जो काम और क्रोध के वश में होकर अज्ञान के कारण किसी गुणी पुरुष का विरोध करता है ऐसा पुरुष अत्यन्त नीच होता है।

वार्यमाणोऽपि पापेभ्यः पापात्मा पापमिच्छति।
चोद्यमानोऽपि पापेन शुभात्मा शुभमिच्छति।। उद्योग 149/8

पापी पुरुष को बुरा काम करने से रोकने पर भी वह बुरा काम ही करता है किन्तु सज्जन को पाप कर्म करने की प्रेरणा देने पर भी वह भला काम ही करता है।

मित्रध्रुग् दुष्टभावश्च नास्तिकोऽथानृजुः शठः।
न सत्सु लभते पूजां यज्ञे मूर्ख इवागतः।। उद्योग 149/7

जैसे यज्ञ में आये मूर्ख ब्राह्मण का सम्मान नहीं किया जाता वैसे ही मित्रद्रोही, दुष्ट स्वभाव, नास्तिक, कुटिल और धूर्त पुरुष का सज्जन आदर नहीं करते हैं।

अकार्याणां क्रियाणां च संयोगं यः करोति वै।
कार्याणमक्रियाणां च स पार्थ पुरुषाधमः।। कर्ण 69/18

अर्जुन! जो काम करने योग्य हों किन्तु पूरे न किये जा सकते हों और जो काम नहीं करने चाहिये किन्तु वे पूरे भी किये जा सकते हों उन दोनों को ही जो करता है, वह नीच पुरुष होता है।

प्रायेण नीचा व्यसनेषु मग्ना निन्दति दैवं कुकृतं न तु स्वम्।।
कर्ण 91/1

प्रायः यही देखा जाता है कि आफत में फंसे हुए नीच लोग भाग्य को कोसते हैं अपने किये हुए कुकर्मों को नहीं।

रागात् क्रोधाद् भयाल्लोभाद् योऽर्थानीहति मानवः।। सौप्तिक 2/24
अनीशश्चावमानी च स शीघ्रं भ्रश्यते श्रियः।। सौप्तिक 2/25

अपने मन को वश में न रखने वाला और दूसरों की उपेक्षा व तिरस्कार करने वाला व्यक्ति यदि राग, क्रोध, डर और लोभ से कोई काम पूरा करना चाहता है तो उस की सम्पत्ति जल्दी ही नष्ट हो जाती है।

परोक्षमगुणानाह सद्गुणानभ्यसूयते।
परैर्वा कीर्त्यमानेषु तूष्णीमास्ते पराङ्मुखः।। शान्ति 103/46

नीच पुरुष पीठ पीछे निन्दा करता है और किसी के गुणों में भी दोष निकालता है। यदि और लोग प्रशंसा करते हैं तो वह मुंह लटकाकर चुपचाप बैठा रहता है।

तूष्णीम्भावेऽपि विज्ञेयं न चेद् भवति कारणम्।
निःश्वासं चोष्ठसंदंशं शिरसश्च प्रकम्पनम्।। शान्ति 103/47

नीच व्यक्ति के चुप बैठे रहने पर भी उसकी दुष्टता को जाना जा सकता है। नीच व्यक्ति किसी के गुण सुनकर बिना बात ही लम्बी लम्बी सांस भरने लगता है, अपने ओठ काटने लगता है और सिर हिलाने लगता है।

करोत्यभीक्ष्णं संसृष्टमसंसृष्टश्च भाषते।
अदृष्टितो न कुरुते दृष्टो नैवाभिभाषते।। शान्ति 103/48

नीच व्यक्ति बार-बार मिलता है और बातें करता है। आंखों से ओझल हो जाने पर बुराई करता है। काम करने को कहकर भी आंख के सामने से हट जाने पर काम नहीं करता और सामने आ पड़ने पर नहीं बोलता।

आसने शयने याने भावा लक्ष्या विशेषतः।। शान्ति 103/49

बैठने, सोने और आने-जाने के समय नीच व्यक्ति के मन के भाव प्रकट होते हैं।

पुरुषाणां प्रदुष्टानां स्वभावो बलवत्तरः।। शान्ति 103/51

दुष्ट पुरुषों का स्वभाव बहुत उग्र होता है।

नरः पापसमाचारस्त्यक्तव्यो दूरतो बुधैः।। शान्ति 143/113

बुद्धिमानों को पापी मनुष्य को दूर से त्याग देना चाहिये।

कण्टकान् कूपमग्निं च वर्जयन्ति यथा नराः।
तथा नृशंसकर्माणं वर्जयन्ति नरा नरम्।। शान्ति 164/2

मनुष्य जैसे कांटें, कुएं और आग से बचकर निकलते हैं वैसे ही वे नीच पुरुष से भी बचकर चलते हैं।

धर्मशीलं गुणोपेतं पापमित्यवगच्छति।
आत्मशीलप्रमाणेन न विश्वसिति कस्यचित्।। शान्ति 164/8

नीच पुरुष; धर्मात्मा और गुणी पुरुष को पापी कहता है। वह अपने स्वभाव को आदर्श मानकर किसी पर विश्वास नहीं करता।

परेषां यत्र दोषः स्यात् तद् गुह्यं सम्प्रकाशयेत्।
समानेष्वेव दोषेषु वृत्त्यर्थमुपघातयेत्।। शान्ति 164/9

जहाँ दूसरों की बदनामी होती है वहाँ नीच पुरुष उनके दूसरे दोषों को भी बता देता है। अपना तथा दूसरे का अपराध बराबर होने पर भी वह अपनी जीविका के लिये दूसरे का सर्वनाश करता है।

तथोपकारिणं चैव मन्यते वञ्चितं परम्।
दत्त्वापि च धनं काले संतपत्युपकारिणे।। शान्ति 164/10

उपकार करने वाले को वह अपने चंगुल में फंसा हुआ समझता है। अपना उपकार करने वाले को जरूरत पड़ने पर धन देकर भी वह पछताता रहता है।

भक्ष्यं पेयमथालेह्यं यच्चान्यत् साधु भोजनम्।
प्रेक्षमाणेषु योऽश्नीयान्नृशंसमिति तं वदेत्।। शान्ति 164/11

जो मनुष्य दूसरों के देखते रहने पर भी अच्छा भोजन, पान और चटनी आदि खाता रहता है वह नीच कहलाता है।

दुराचारा दुर्विचेष्टा दुष्प्रज्ञाः प्रियसाहसाः।
असन्तस्त्विति विख्याताः सन्तश्चाचारलक्षणाः।। शा० 193/2

दुराचारी, बुरे काम करने वाले, बुरे कामों में बुद्धि लगाने वाले और चोरी डाके आदि साहसिक कामों को अच्छा समझने वाले लोग दुष्ट होते हैं। सदाचारी लोग सज्जन या सन्त कहलाते हैं।

निकृती हि नरो लोकान् पापान् गच्छत्यसंशयम्।
विदुलस्येव तत् पुष्पं मोघं जनयितुः स्मृतः।। अनु 105/8

कपटी पुरुष निश्चय ही पाप के लोकों में (नरक) जाता है। उसका जन्म पिता के लिये बेंत के फूल की तरह व्यर्थ ही होता है।

सर्वानर्थः कुले यत्र जायते पापपुरुषः।
अकीर्तिं जनयत्येव कीर्तिमन्तर्दधति च।। अनु 105/9

जिस कुल में पापी मनुष्य पैदा होता है उस कुल के लिये वह सारे अनर्थों का कारण बन जाता है। पापी मनुष्य कुल में कलंक लगाता है और कुल के यश को नष्ट कर देता है।

नीति

मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः।। उद्योग 37/7

छल-कपट का व्यवहार करते वाले के साथ कपटपूर्ण बर्त्ताव करना चाहिये और भला बर्ताव करने वाले के साथ भलाई से व्यवहार करना चाहिये।

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत।। उद्योग 37/28

सावधान मनुष्य किसी का विश्वास करके असमय में दूसरे के घर न जाये, न ही उसे रात में चौराहे पर छिपकर खड़ा होना चाहिये और राजा जिस स्त्री को चाहता हो उस स्त्री की इच्छा भी नहीं करनी चाहिये।

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा।
सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते।।
उद्योग 37/30

अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजकर्मचारी, पुत्र, भाई, छोटे बच्चे वाली विधवा, सैनिक और अधिकार छिने व्यक्ति के साथ लेन देन नहीं करना चाहिये।

अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम्।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान् गृहे न प्रतिवासयेत्।। उद्योग 37/35

काम न करने वाले, बहुत खाने वाले, सब लोगों से वैर बांधने वाले, छल कपट करने वाले, क्रूर, देश और काल को न जानने वाले और खराब कपड़े पहनने वाले लोगों को अपने घर में नहीं ठहराना चाहिये।

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम्।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्नमेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत्।। उद्योग 37/36

कंजूस, गाली देने वाले, मूर्ख, जंगल में रहने वाले, धूर्त, नीच लोगों के साथी,

क्रूर, वैर बांधने वाले और कृतघ्न व्यक्ति से बहुत मुसीबत में होने पर भी मांगना नहीं चाहिये।

संक्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च।

विसृष्टरागं पटुमानिनं चाप्येतान् न सेवेत् नराधमान् षट्।। उद्योग 37/37

दुःख देने वाले काम करने वाले, अत्यन्त प्रमादी, सदा झूठ बोलने वाले, अस्थिर वफादारी वाले, स्नेह न करने वाले और अपने को होशियार समझने वाले इन छह प्रकार के नीच पुरुषों की सेवा नहीं करनी चाहिये।

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति।

स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रंश्यते जीवितादपि।। उद्योग 38/22

जो व्यक्ति मोहवश बुरे काम करता है। उन कामों का परिणाम अच्छा न होने के कारण वह व्यक्ति अपने जीवन से हाथ धो बैठता है।

कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम्।

तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम्।। उद्योग 38/23

अच्छे काम करने से सुख मिलता है। यदि अच्छे काम न किये जायें तो पीछे पछताना पड़ता है।

ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा।

अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च।। उद्योग 38/28

ब्राह्मण को ब्राह्मण ही जानता है और पत्नी को उसका पति। मन्त्री को राजा जानता है और राजा ही दूसरे राजा को जानता है।

दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च।

नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च।। उद्योग 38/30

देवता, ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, बालक और रोगी पर क्रोध को प्रयत्न पूर्वक रोकना चाहिये।

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम्।

कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते।। उद्योग 38/31

मूर्खों द्वारा अपनायी गई व्यर्थ की कलह से बुद्धिमान को दूर रहना चाहिये। ऐसा करने से संसार में उसका यश बढ़ता है और वह झण्झटों से दूर रहता है।

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः।। उद्योग 38/33

बुद्धि से धन मिलता है या मूर्खता से दरिद्रता आती है ऐसी बात नहीं है। संसार चक्र की गति बुद्धिमान ही जान पाता है दूसरे लोग नहीं।

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक् प्रणिहिता च वाक्।। उद्योग 38/36

छल-कपट न करना, दान देना, वचन निभाना और अच्छा बोलना इन गुणों से मनुष्य सभी को अपना बना लेता है।

येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः।। उद्योग 38/42

धन आदि जो वस्तुएँ स्त्रियों, असावधान लोगों, पतितों और नीच पुरुषों के हाथों में पड़ जाती हैं। उनका फिर मिलना मुश्किल हो जाता है।

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः।। उद्योग 38/45

जिसकी प्रशंसा जुआरी, भाट और वेश्याएं करती हैं वह मनुष्य मुर्दे जैसा होता है।

नींद

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम्।
हृतस्वनं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः।। उद्योग 33/13

जिसका बलवान के साथ विरोध हो गया हो, ऐसे साधन हीन कमजोर मनुष्य को, जिसका सब कुछ छीन लिया गया हो ऐसे मनुष्य को तथा कामवासना से अशान्त व्यक्ति को और चोर को नींद नहीं आती है।

आतुरस्य कुतो निद्रा नरस्यामर्षितस्य च।
अर्थांश्चिन्तयतश्चापि कामयानस्य वा पुनः।। सौप्तिक 4/22

शोक से विह्वल मनुष्य के नींद नहीं आती। क्रोध में भरे हुए, तरह तरह के कामों के बारे में सोचते हुए और किसी कामना में आसक्त व्यक्ति को भी नींद नहीं आती।

निष्कल्मषं ब्रह्मचर्यमिच्छता चरितुं सदा।
निद्रा सर्वात्मना त्याज्या स्वप्नदोषानवेक्षता।। शान्ति 216/1

सदा निष्कलंक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहने वाले को स्वप्न के दोषों को देखते हुए नींद का परित्याग करना चाहिये।

ज्ञानाभ्यासाज्जागरणं जिज्ञासार्थमनन्तरम्।
विज्ञानाभिनिवेशात्तु स जागर्त्यनिशं सदा।। शान्ति 216/3

मनुष्य को शुरू में ज्ञान का अभ्यास करने से जागते रहने की आदत पड़ जाती है। फिर विचार करने के लिये जागना होता है। जब मनुष्य को तत्त्वज्ञान हो जाता है तब वह ब्रह्म में सदा जागता रहता है।

न्यायाधीश

व्यवहारश्च ते राजन् नित्यामाप्तैरधिष्ठितः।। आश्रमवास 5/27
योज्यस्तुष्टैर्हितै राजन् नित्यं चारैरनुष्ठितः।

राजन्! तुम्हें न्याय करने के लिये ऐसे व्यक्ति नियुक्त करने चाहियें जो विश्वासपात्र, सन्तोषी स्वभाव के और हितैषी हों। इन न्यायाधीशों के काम पर तुम्हें गुप्तचारों से जानकारी मिलती रहनी चाहिये।

आदानरुचयश्चैव परदाराभिमर्शिनः।। आश्रमवास 5/29
उग्रदण्डप्रधानाश्च मिथ्या व्यवहारिणस्तथा।
आक्रोष्टारश्च लुब्धाश्च हर्तारः साहसप्रियाः।। आश्रमवास 5/30
सभाविहारभेत्तारो वर्णानां च प्रदूषकाः।
हिरण्यदण्ड्या वध्याश्च कर्त्तव्या देशकालतः।। आश्रमवास 5/31

जो न्यायाधीश घूस लेते हों, परायी स्त्रियों के साथ सम्पर्क रखते हों, कठोर दण्ड देते हों, झूठे फैसले सुनाते हों, कड़वा बोलते हों, लालची हों, दूसरों का धन हड़प लेते हों, दुस्साहसी हों, बाग-बगीचों और सभा-भवनों को नष्ट करते हों, सभी वर्णों के लोगों को खराब करते हों, ऐसे न्यायाधीशों पर देश और काल अर्थात् परिस्थितियों के अनुसार सोना देने का जुर्माना करना चाहिये या उन्हें प्राणदण्ड दे देना चाहिये।

पति

मितं ददाति हि पिता मितं माता मितं सुतः।
अमितस्य हि दातारं का पतिं नाभिनन्दति।। आदि 157/22-23 दा० पा०

माता, पिता और पुत्र परिमित सुख ही देते हैं किन्तु पति अपरिमित सुख देता है अत: पत्नी ऐसे पति का आदर क्यों नहीं करेगी?

शाश्वतोऽयं धर्मपथः सद्भिराचरितः सदा।
यद् भार्यां परिरक्षन्ति भर्तारोऽल्पबला अपि।। वन 12/68

सज्जनों द्वारा अपनाया गया यही शाश्वत धर्म मार्ग है कि दुर्बल पति भी अपनी पत्नी की रक्षा करते हैं।

भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता।
प्रजयां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः।। वन 12/69

पत्नी की रक्षा करने से अपनी सन्तान की रक्षा होती है। और सन्तान की रक्षा होने से स्वयं अपनी ही आत्मा की रक्षा होती है।

आत्मा हि जायते तस्यां तस्माज्जाया भवत्युत।
भर्ता च भार्यया रक्ष्यः कथं जायान्ममोदरे।। वन 12/70

पति का अपना आत्मा ही पत्नी के गर्भ से जन्म लेता है इसीलिये पत्नी को जाया कहते हैं। पत्नी को भी अपने पति की रक्षा करनी चाहिये जिससे कि पति उसके पेट से जन्म ले।

भर्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणैर्विना।। वन 68/19

पति ही नारी का आभूषण है। उसके कारण वह आभूषणों के बिना भी सुशोभित रहती है।

भर्तव्या रक्षणीया च पत्नी पत्या हि सर्वदा।। वन 69/41

पति को अपनी पत्नी का पालन-पोषण और उसकी रक्षा सदा करनी चाहिये।

नैतादृशं दैवतमस्ति सत्ये सर्वेषु लोकेषु सदेवकेषु।
यथा पतिस्तस्य तु सर्वकामा लभ्याः प्रसादात् कुपितश्च हन्यात्।।
वन 234/2

सत्यभामे ! स्त्रियों के लिये देवताओं सहित सभी लोकों में पति के समान कोई

देवता नहीं है। पति के प्रसन्न रहने से पत्नी की सभी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं। किन्तु पति के रुष्ट हो जाने पर पत्नी की सारी आशाएँ नष्ट हो जाती हैं।

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजायेत्।। शान्ति 148/6

पिता, भाई, और पुत्र ये सब स्त्री को थोड़ा सुख और धन आदि देते हैं इसीलिये असीम सुख और सम्पत्ति देने वाले पति का कौन पत्नी सम्मान नहीं करेगी?

नास्ति भर्तृसमो नाथो नास्ति भर्तृसमं सुखम्।
विसृज्य धनसर्वस्वं भर्ता वै शरणं स्त्रियः।। शान्ति 148/7

पति के समान रक्षा करने वाला और सुख देने वाला कोई नहीं है। पत्नी के लिये धन और सब कुछ त्याग करके पति ही एकमात्र शरण होती है।

पतिहीना तु का नारी सती जीवितुमुत्सहेत्।। शान्ति 148/9

ऐसी कौन पतिव्रता नारी है जो पति के बिना जीना चाहती है।

भरणाद्धि स्त्रियो भर्ता पालनाद्धि पतिस्तथा।। शान्ति 266/37

पुरुष अपनी स्त्री का भरण-पोषण करने के कारण भर्ता और पालन करने के कारण पति कहलाता है।

स्त्रिया हि परमो भर्ता दैवतं परमं स्मृतम्।। शान्ति 266/39

स्त्री के लिये पति ही परम आदरणीय है। पति ही उसका सबसे बड़ा देवता है।

पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः।
पत्या समा गतिर्नास्ति दैवतं वा यथा पतिः।। अनु 146/55

पति ही नारियों के लिये देवता, बन्धु और अन्तिम सहारा होता है। पत्नी के लिये पति के समान न कोई सहारा है और न कोई देवता।

नापराधोऽस्ति सुभगे नराणां बहुभार्यता।
प्रमदानां भवत्येष मा तेऽभूद् बुद्धिरीदृशी।। आश्व 80/14

सुभगे! यदि किसी पुरुष की अनेक पत्नियाँ हों तो कोई बुराई नहीं है किन्तु स्त्रियों के अनेक पति होना अच्छा नहीं है अतः तुम्हारी बुद्धि ऐसी उल्टी नहीं होनी चाहिये।

सख्यं चैतत् कृतं धात्रा शश्वदव्ययमेव तु।। आश्व 80/15

विधाता ने पति और पत्नी की मित्रता सदा रहने वाली और अटूट बनाई है।

भर्तुः प्रसादान्नारीणां रतिपुत्रफलं तथा।। आश्व 90/52

पति की कृपा से ही पत्नी को पुत्र और रतिसुख मिलता है।

पतिव्रता स्त्री

पतिव्रतानां शुश्रूषा दुष्करा प्रतिभाति मे।। वन 205/5

पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति की जैसी सेवा करती हैं वैसी सेवा और किसी के लिये मुझे अत्यन्त कठिन लगती है।

निरुद्धय चेन्द्रियग्रामं मनःसंरुध्य चानघ।। वन 205/6
पतिं दैवतवच्चापि चिन्तयन्त्यः स्थिता हि याः।
भगवन् दुष्करं त्वेतत् प्रतिभाति मम प्रभो।। वन 205/7

प्रभु मुझे यह काम बहुत कठिन लगता है कि पतिव्रता स्त्रियाँ अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखकर पति की देवता के समान चिन्ता करती हुईं पति सेवा करती हैं।

मातापित्रोश्च शुश्रूषा स्त्रीणां भर्तरि च द्विज।
स्त्रीणां धर्मात् सुघोराद्धि नान्यं पश्यामि दुष्करम्।। वन 205/8

पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति की और उसके माता-पिता की जो सेवा करती हैं वैसा कठिन काम मुझे नहीं दिखाई देता।

एकपत्न्यश्च या नार्यो याश्च सत्यं वदन्त्युत।
कुक्षिणा दश मासांश्च गर्भं संधारयन्ति याः।। वन 205/10

पतिव्रता नारियाँ सदा सत्य बोलती हैं। वे अपने पेट में दस महीने तक गर्भ धारण करने का कठिन काम करती हैं।

पत्याश्रयो हि मे धर्मो मतः स्त्रीणां सनातनः।। वन 233/37

मैं यही मानती हूँ कि पति के आश्रय में रहना स्त्रियों का सनातन धर्म है।

न कामये भर्तृविनाकृता सुखं न कामये भर्तृविनाकृता दिवम्।
न कामये भर्तृविनाकृता श्रियं न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम्।।
वन 297/53

पति के बिना मैं कोई सुख नहीं चाहती, पति के बिना मुझे स्वर्ग भी नहीं चाहिये। पति के बिना मुझे राज्यलक्ष्मी और जीवन भी नहीं चाहिये।

भर्तारमनुरुन्धन्त्यः क्लिश्यन्ते वीर पत्नयः।। विराट 16/41

पति का अनुसरण करने वाली वीरों की पत्नियाँ सभी दुःख सहन कर लेती हैं।

साध्वी कुलं वर्धयति साध्वी पुष्टिर्गृहे परा।
साध्वी लक्ष्मी रतिः साक्षात् प्रतिष्ठा संततिस्तथा।। अनु 22 दा० पा०

पतिव्रता नारी कुल की वृद्धि करती है। वह घर में अत्यन्त समृद्धि का रूप है। पतिव्रता स्त्री घर की लक्ष्मी है, सुख की खान है। मूर्तिमती प्रतिष्ठा है और सन्तान-परम्परा की आधार है।

पतिव्रतानां नारीणां प्रणामं प्रकरोम्यहम्।। अनु० 96 दा० पा०

मैं (इन्द्र) पतिव्रता नारियों को सदा प्रणाम करता हूँ।

अहितानि च वाक्यानि सर्वाणि परुषाणि च।
अप्रमत्ता च भर्तारं कदाचिन्नाहमब्रुवन्।। अनु 123/9

मैं सदा सावधानी से रही और मैंने अपने पति के लिये कभी भी अहित करने वाले और कठोर वचन नहीं कहे।

देवतानां पितृणां च ब्राह्मणानां च पूजने।
अप्रमत्ता सदा युक्ता श्वश्रूश्वसुरवर्तिनी।। अनु 123/10

मैं सदा देवताओं, पितरों और ब्राह्मणों का सम्मान करती और सदा सावधानी के साथ सास-ससुर की सेवा करती।

पैशुन्ये न प्रवर्तामि न ममैतन्मनोगतम्।
अद्वारि न च तिष्ठासि चिरं न कथयामि च।। अनु 123/11

मैं किसी की चुगली नहीं करती। न ही मैंने अपने मन में कभी किसी की बुरी बात याद रखी। मैं अपने घर के सिवाय किसी और घर में बहुत देर तक नहीं रहती और न ही किसी से देर तक बातें करती।

असद् वा हसितं किंचिदहितं वापि कर्मणा।
रहस्यमरहस्यं वा न प्रवर्तामि सर्वथा।। अनु 123/12

मैंने कभी एकान्त में या सबके सामने किसी के साथ अश्लील हँसी मजाक नहीं किया। मैंने किसी का बुरा कभी नहीं किया।

अञ्जनं रोचनां चैव स्नानं माल्यानुलेपनम्।
प्रसाधनं च निष्क्रान्ते नाभिनन्दामि भर्तरि।। अनु 123/17

पति के बाहर चले जाने पर मैं आँखों में काजल नहीं लगाती। माथे पर टीका नहीं लगाती। तेल लगाकर स्नान नहीं करती। माला नहीं पहनती। शरीर में अंगराग नहीं लगाती और शृंगार नहीं करती।

नायासयामि भर्तारं कुटुम्बार्थेऽपि सर्वदा।
गुप्तगुह्या सदा चास्मि सुसम्मृष्टनिवेशना।। अनु 123/19

मैं परिवार के पालन-पोषण के लिये भी पति को कभी तंग नहीं करती। परिवार की गोपनीय बातें गुप्त रखती और घर साफ-सुथरा रखती।

सुस्वभावा सुवचना सुवृत्ता सुखदर्शना।
अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी।। अनु 146/35

सा भवेद् धर्मपरमा सा भवेद् धर्मभागिनी।
देववत् सततं साध्वी या भर्तारं प्रपश्यति।। अनु 146/36

जिस पत्नी का स्वभाव, बोलचाल और आचरण अच्छा हो, जिसे देखकर सुख मिलता हो, जो अपने पति के सिवाय किसी दूसरे पुरुष को मन में न लाती हो, जो पति के सामने सदा प्रसन्न रहती हो, ऐसी स्त्री धर्म का आचरण करती है। जो साध्वी पत्नी धर्म का पालन करती है, अपने पति को देवता के समान मानती है वही पतिव्रत धर्म के फल को प्राप्त करती है।

परुषाण्यपि चोक्ता या दृष्टा दुष्टेन चक्षुषा।
सुप्रसन्नमुखी भर्तुर्या नारी सा पतिव्रता।। अनु 146/42

जो पति के कठोर वचन कहने पर और क्रोध भरी दृष्टि से देखने पर भी प्रसन्न रहती है वह पत्नी पतिव्रता होती है।

दरिद्रं व्याधितं दीनमध्वना परिकर्शितम्।
पतिं पुत्रमिवोपास्ते सा नारी धर्मभागिनी।। अनु 146/44

जो पत्नी गरीब, बीमार और रास्ते की थकान से परेशान पति की अपने पुत्र की तरह सेवा करती है उसे पतिव्रत धर्म का फल मिलता है।

या नारी प्रयता दक्षा या नारी पुत्रिणी भवेत्।
पतिप्रिया पतिप्राणा सा नारी धर्मभागिनी।। अनु 146/45

जो पत्नी अपना मन शुद्ध रखती है, घर का काम काज कुशलता से करती है, पुत्र उत्पन्न करती है, पति की प्रिया होती है और पति को ही अपना प्राण मानती है वह पतिव्रत धर्म का फल पाती है।

शुश्रूषां परिचर्यां च करोत्यविमनाः सदा।
सुप्रतीता विनीता च सा नारी धर्मभागिनी।। अनु 146/46

जो पत्नी प्रसन्न मन से सदा पति की सेवा करती है। पति का विश्वास करती है और विनयपूर्ण व्यवहार करती है उसे पतिव्रत धर्म का फल प्राप्त होता है।

न कामेषु न भोगेषु नैश्वर्ये न सुखे तथा।
स्पृहा यस्या यथा पत्यौ सा नारी धर्मभागिनी।। अनु 146/47

जिस पत्नी के हृदय में पति के लिये जैसी चाह रहती है वैसी.किसी कामना, भोग या सुख-सुविधा के लिय नहीं होती। ऐसी स्त्री को पतिव्रत धर्म का फल मिलता है।

कल्योत्थानरतिर्नित्यं गृहशुश्रूषणे रता।
सुसम्मृष्टक्षया चैव गोशकृत्कृतलेपना।। अनु 146/48

अग्निकार्यपरानित्यं सदा पुष्पबलिप्रदा।
देवतातिथिभृत्यानां निर्वाप्य पतिना सह।। अनु 146/49

शेषान्नमुपभुञ्जाना यथान्यायं यथाविधि।
तुष्टपुष्टजना नित्यं नारी धर्मेण युज्यते।। अनु 146/50

जो स्त्री प्रतिदिन सवेरे उठती है, घर के कामों में हाथ बंटाती है, घर को साफ रखती है, घर को गोबर से लीपती है, पति के साथ प्रतिदिन यज्ञ करती है, देवताओं को पुष्प और बलि अर्पित करती है। देवता, अतिथि और सेवकों को यथोचित्त रीति से भोजन करा कर बचे हुए अन्न से भोजन करती है और परिवार के सभी सदस्यों को सन्तुष्ट तथा नीरोग रखती है ऐसी स्त्री को पतिव्रत धर्म का लाभ मिलता है।

श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ जोषयन्ती गुणान्विता।
मातापितृपरा नित्यं या नागी सा तपोधना।। अनु 146/51

जो स्त्री सास-ससुर के चरण स्पर्श करती है, गुणवती होती है और अपने माता-पिता की भी सदा सेवा करती है ऐसी स्त्री वास्तव में तपस्विनी होती है।

ब्राह्मणान् दुर्बलानाथान् दीनान्धकृपणांस्तथा।
बिभर्त्यन्नेन या नारी सा पतिव्रत भागिनी।। अनु 146/52

जो स्त्री, ब्राह्मणों, कमजोरों, अनाथों, दीन-दुखियों, अन्धों और गरीबों को अन्न देती है उसे पतिव्रत धर्म का फल मिलता है।

पत्नी

भार्यां पतिः सम्प्रविश्य स यस्माज्जायते पुनः।
जायायास्तद्धि जायात्वं पौराणाः कवयो विदुः।। आदि 74/37

पति ही पत्नी के अन्दर गर्भ रूप से प्रवेश करके पुत्र के रूप में जन्म लेता है। जन्म देने वाली स्त्री अर्थात् जाया (धर्मपत्नी) का यही जायात्व है। प्राचीन विद्वान् यह बात जानते हैं।

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता।। आदि 74/40

वही अच्छी पत्नी है जो घर के काम काज में कुशल हो, सन्तान उत्पन्न करती हो, पति को प्राणों की भाँति मानती हो और पतिव्रता हो।

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः।। आदि 74/41

पत्नी, पुरुष का आधा भाग होती है। वह पति की सर्वश्रेष्ठ मित्र होती है। पत्नी ही धर्म, अर्थ और काम को प्राप्त कराती है और पत्नी ही संसार सागर से पार लगाती है।

भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः।
भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः।। आदि 74/42

जिनके पत्नी है वही यज्ञ आदि अनुष्ठान कर सकते हैं। सपत्नीक पुरुष ही सच्चे गृहस्थ होते हैं। पत्नी वाले पुरुष जीवन में सुखी रहते हैं और लक्ष्मी से सम्पन्न रहते हैं।

सखायः प्रविविक्तेषु भवन्त्येताः प्रियंवदाः।
पितरो धर्म कार्येषु भवन्त्यार्तस्य मातरः।। आदि 74/43

एकान्त में पत्नी प्रिय बात कहने वाली मित्र होती है। वह धार्मिक कामों में पिता की तरह हित चाहती है और आपत्ति में माता की भाँति कष्ट मिटाने का प्रयत्न करती है तथा साथ देती है।

सुसंरब्धोऽपि रामाणां न कुर्यादप्रियं नरः।
रतिं प्रीतिं च धर्मं च तास्वायत्तमवेक्ष्य हि।। आदि 74/51

पति को बहुत क्रोध आने पर भी पत्नी के साथ अप्रिय व्यवहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि पत्नी से ही सुख, प्रेम और धर्म लाभ होता है।

नारीणां चिरवासो हि बान्धवेषु न रोचते।। आदि 74/12

विवाहिता स्त्रियों का अपने भाइयों के घर बहुत दिन तक रहना अच्छा नहीं माना जाता।

पतिस्नेहोऽतिबलवान् न तथा भ्रातृसौहृदम्।। आदि 151/19

नारी के हृदय में पति के प्रति अधिक प्रेम होता है। अपने भाई के प्रति स्नेह पति प्रेम जैसा नहीं होता।

सहधर्मचारीं दान्तां नित्यं मातृसमां मम।
सखायं विहितां देवैर्नित्यं परमिकां गतिम्।। आदि 156/31

पत्नी, पति की सहधर्मिणी होती है, वह इन्द्रियों पर संयम रखती है, माता की तरह पति की देखभाल करती है। पति की सहायता करती है और पति का सबसे बड़ा सहारा होती है।

एतद्धि परमं नार्याः कार्यं लोके सनातनम्।
प्राणानपि परित्यज्य यद् भर्तृहितमाचरेत्।। आदि 157/4

पत्नी का सबसे बड़ा कर्तव्य यही है कि वह अपने प्राण देकर भी पति का भला करे।

न च भार्यासमं किंचिद् विद्यते भिषजां मतम्।
औषधं सर्वदुःखेषु सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।। वन 61/29

वैद्यों का कहना है कि सभी दुःख दूर करने के लिये पत्नी के समान और कोई औषधि नहीं है। मैं यह बात आपसे सत्य कहती हूँ।

नास्ति भार्यासमं मित्रं नरस्यार्तस्य भेषजम्।। वन 61/30

दुखी मनुष्य के लिये पत्नी के समान कोई दूसरा मित्र या दवा नहीं है।

न जातु वशगो भर्ता स्त्रियाः स्यान्मन्त्रकर्मणा।। वन 233/13

मन्त्र-तन्त्र करने से पति अपनी पत्नी के वश में नहीं हो सकता।

न जातु विप्रियं भर्तुः स्त्रिया कार्यं कथंचन।। वन 233/17

पत्नी को कभी भी पति के लिये कोई अप्रिय कार्य नहीं करना चाहिये।

दुर्व्याहिताच्छङ्कमाना दुःस्थिताद् दुखेक्षितात्।
दुरासिताद् दुर्व्रजितादिङ्गिताध्यासितादपि।। वन 233/21

मैं इस आशंका के कारण सदा सावधान रहती हूँ कि मेरे मुँह से कोई बुरी बात न निकल जाये। मैं असभ्य स्त्री की तरह उठती बैठती नहीं। निर्लज्ज की तरह इधर-उधर नहीं देखती। खराब जगह नहीं बैठती, दुराचार से दूर रहती हूँ तथा चलने-फिरने में असावधान नहीं रहती। अपने पति के अभिप्रायपूर्ण संकेतों का सदा पालन करती हूँ।

द्रव्यवानभिरूपो वा न मेऽन्यः पुरुषो मतः।। वन 233/23

धनवान या अत्यन्त सुन्दर किसी भी दूसरे पुरुष के लिये मेरा मन नहीं करता।

नाभुक्तवति नास्नाते नासंविष्टे च भर्तरि।
न संविशामि नाश्नामि सदा कर्मकरेष्वपि।। वन 233/24

पति और सेवकों को भोजन कराये बिना मैं पहले ही कभी भोजन नहीं करती। पति को नहलाये बिना नहीं नहाती और पति के सोने से पहले नहीं सोती।

प्रमृष्टभाण्डा मृष्टान्ना काले भोजनदायिनी।
संयता गुप्तधान्या च सुसम्मृष्टनिवेशना।। वन 233/26

मैं रसोई के बर्त्तन मांज कर साफ रखती हूँ। शुद्ध और स्वादिष्ट भोजन तैयार करके समय पर खिलाती हूँ। अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखती हूँ। घर में अनाज का भण्डार रखती हूँ और घर को साफ सुथरा रखती हूँ।

अतिहासातिरोषौ च क्रोधस्थानं च वर्जये।
निरताहं सदा सत्ये भर्तृणामुपसेवने।। वन 233/29

मैं न अधिक हँसती हूँ और न ही अधिक क्रोध करती हूँ। क्रोध का अवसर नहीं आने देती। सदा सत्य बोलती हूँ और पति सेवा में लगी रहती हूँ।

सर्वथा भर्तृरहितं न ममेष्टं कथंचन।
यदा प्रवसते भर्ता कुटुम्बार्थेन केनचित्।। वन 233/30
सुमनोवर्णकापेता भवामि व्रतचारिणी।। वन 233/31

पति के बिना मैं कहीं भी अकेली नहीं रहना चाहती। यदि पति परिवार के कार्य से बाहर गये हों तो मैं उन दिनों अपना शृंगार नहीं करती और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती हूँ।

प्रथमं प्रतिबुध्यामि चरमं संविशामि च।
नित्यकालमहं सत्ये एतत् संवननं मम।। वन 233/58

सत्यभामे! मैं प्रतिदिन सबसे पहले उठती हूँ और सबसे बाद में सोती हूँ। यह पति सेवा और पति भक्ति ही मेरा वशीकरण मन्त्र है।

सुखं सुखेनेह न जातु लभ्यं दुःखेन साध्वी लभते सुखानि।। वन 234/4।

इस संसार में सुख के द्वारा कभी सुख नहीं मिलता। पतिव्रता नारी दुःख उठाकर ही सुख पाती है।

भार्या च सुहृदां वरा।। विराट 2/17

पत्नी सर्वश्रेष्ठ मित्र होती है।

भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता।। विराट 21/40

पत्नी की रक्षा करने से सन्तान की रक्षा होती है।

प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः।
आत्मा हि जायते तस्यां तेन जायां विदुर्बुधाः।। विराट 21/41

सन्तान की रक्षा होने पर मनुष्य की अपनी आत्मा सुरक्षित हो जाती है। पत्नी के गर्भ से आत्मा ही पुत्र के रूप में जन्म लेती है इसीलिये विद्वान् पुरुष पत्नी को 'जाया' (उत्पन्न करने वाली) कहते हैं।

भर्ता तु भार्यया रक्ष्यः कथं जायान्ममोदरे।। विराट 21/42

पत्नी को पति की रक्षा इसीलिये करनी चाहिये कि मेरा पति मेरे पेट से पुत्र के रूप में जन्म लेगा।

पुत्र पौत्रवधूभृत्यैराकीर्णमपि सर्वतः।
भार्याहीनं गृहस्थस्य शून्यमेव गृहं भवेत्।। शान्ति 144/5

पुत्र, पौत्र, पुत्रवधू और नौकर-चाकरों से भरा पूरा गृहस्थी का घर पत्नी के बिना सूना ही रहता है।

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहिणीहीनमरण्यसदृशं मतम्।। शान्ति 144/6

घर को घर नहीं कहा जाता अपितु पत्नी ही घर होती है। पत्नी से रहित घर तो जंगल ही होता है।

पतिव्रता पतिगतिः पतिप्रियहिते रता।
यस्य स्यात् तादृशी भार्या धन्यः स पुरुषो भुवि।। शान्ति 144/10

जिस पुरुष की पत्नी पतिव्रता, पति का कहना मानने वाली और पति की मनचाही और हितकारी बात करने वाली होती है ऐसा पुरुष धन्य भाग्य होता है।

धर्मार्थकामकालेषु भार्या पुंसः सहायिनी।
विदेशगमने चास्य सैव विश्वासकारिका।। शान्ति 144/13

धर्म, अर्थ और काम के अवसरों पर मनुष्य की सहायता पत्नी ही करती है। विदेश जाने पर पत्नी ही उसकी विश्वसनीय मित्र होती है।

भार्या हि परमो ह्यर्थः पुरुषस्येह पठ्यते।
असहायस्य लोकेऽस्मिंल्लोकयात्रासहायिनी।। शान्ति 144/14

पुरुष की मुख्य सम्पत्ति धर्मपत्नी ही होती है। इस संसार में जो असहाय व्यक्ति है उसकी लोकयात्रा में सहायता पत्नी ही करती है।

तथा रोगाभिभूतस्य नित्यं कृच्छ्रगतस्य च।
नास्ति भार्या समं किंचिन्नरस्यार्तस्य भेषजम्।। शान्ति 144/15

रोगी मनुष्य की और मुसीबत में फंसे हुए मनुष्य की पत्नी के समान और कोई दवा नहीं है।

नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमा गतिः।
नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसंग्रहे।। शान्ति 144/16

इस संसार में पत्नी जैसा कोई बन्धु नहीं है। पत्नी के समान मनुष्य का कोई सहारा नहीं है। धर्म के कार्य करने में पत्नी के समान सहायता करने वाला और कोई नहीं होता।

यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वी च प्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्।। शान्ति 144/17

जिस गृहस्थ के घर में सदाचारिणी और मधुर-भाषिणी पत्नी न हो उसे घर छोड़कर जंगल में चले जाना चाहिये। क्योंकि उसके लिये घर और जंगल दोनों ही एक जैसे होते हैं।

न सा स्त्री ह्यभिमन्तव्या यस्यां भर्ता न तुष्यति।
तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्वदेवता।। शान्ति 145/3

उस पत्नी को पत्नी नहीं मानना चाहिये जिसका पति उससे सन्तुष्ट न हो। पति के सन्तुष्ट रहने पर स्त्रियों के सभी देवता प्रसन्न रहते हैं।

सहधर्मचारी भर्तुर्भवत्यग्निसमीपतः।। अनु 146/34

स्त्री यज्ञाग्नि के पास बैठकर अपने पति की सहधर्मिणी बनती है।

पण्डित

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।। भीष्म 26/11; गीता 2/11

विद्वान और समझदार व्यक्ति मृतकों और जीवित पुरुषों के लिये शोक नहीं करते।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। भीष्म 29/18; गीता 5/18

ज्ञानी पुरुष, विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण को, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को समान रूप से देखते हैं।

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः।। भीष्म 28/19; गीता 4/19

जो व्यक्ति सभी काम किसी भी तरह की इच्छा और संकल्प के बिना करता है तथा जिसके सभी कर्म ज्ञान की अग्नि से भस्म हो जाते हैं। उसे बुद्धिमान् लोग पण्डित या ज्ञानी कहते हैं।

यस्मादभावी भावी वा भवेदर्थो नरं प्रति।
अप्राप्तौ तस्य वा प्राप्तौ न कश्चिद् व्यथते बुधः।। कर्ण 2/25

भाग्यवश मनुष्य को वांछित वस्तु मिल जाती है और कभी नहीं भी मिलती इसलिये कोई वस्तु मिलने या न मिलने पर ज्ञानी पुरुष परेशान नहीं होता है।

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च।
पर्यायतः सर्वमवाप्नुवन्ति तस्माद् धीरो नैव हृष्येन्न शोचेत्।। शा० 25/31

सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि, जन्म-मरण ये सबको बारी-बारी से मिलते रहते हैं अतः बुद्धिमान, इनके कारण दुःखी या सुखी अनुभव न करे।

शकुनीनामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके।

पदं यथा न दृश्यन्ते तथा ज्ञानविदां गतिः।। शान्ति 181/19

जैसे आकाश में पक्षियों के और पानी में मछलियों के पैरों के निशान नहीं दीखते हैं वैसे ही ज्ञानियों की गति का पता नहीं चलता।

ऋषींश्च देवांश्च महासुरांश्च त्रैविद्यवृद्धांश्च वने मुनींश्च।

कानापदो नोपनमन्ति लोके परावरज्ञास्तु न सम्भ्रमन्ति।। शान्ति 226/14

ऋषियों, देवताओं, असुरों, तीनों वेदों के ज्ञान में पारंगत विद्वानों और वनवासी मुनियों इनमें से किनके ऊपर संकट नहीं आते? किन्तु जिन्हें सत् और असत् का विवेक है वे संकट आने पर मोह में नहीं पड़ते।

न पण्डितः क्रुध्यति नाभिपद्यते न चापि संसीदति न प्रहृष्यति।

न चार्थकृच्छ्रव्यसनेषु शोचते स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः।।

शा० 226/15

विद्वान् पुरुष कभी क्रोध नहीं करता, वह किसी वस्तु में आसक्त नहीं होता, न ही वह दुःखी होता है या सुखी। वह आर्थिक कठिनाइयों में और संकटों में भी दुःखी नहीं होता अपितु हिमालय की तरह अविचल रहता है।

यमर्थसिद्धिः परमा न मोहयेत् तथैव काले व्यसनं न मोहयेत्।

सुखं च दुःखं च तथैव मध्यमं निषेवते यः स धुरंधरो नरः।।

शा० 226/16

जिसे बहुत बड़ा आर्थिक लाभ मोहित नहीं करता तथा जो संकट में भी होश-हवास नहीं खोता। जो सुख और दुःख को समान भाव से देखता है वही पुरुष महान कार्य भार को सम्हालने में समर्थ होता है।

प्रभवन् पृच्छते यो हि सम्मानयति वा पुनः।

नूनं जनमदुष्टात्मा पण्डिताख्यां स गच्छति।। अनु 146/28

जो मनुष्य सब प्रकार से योग्य होने पर भी दूसरों से पूछता है और दूसरों का सम्मान करता है। जिसके मन में कोई बुराई नहीं होती वही पण्डित कहलाता है।

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नानूहापोह विशारदान्।

प्रवक्तृन् पृच्छते योऽन्यान् स वै नापदमृच्छति।। अनु 146/29

जो मनुष्य ज्ञान-विज्ञान से युक्त और अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को

भली-भाँति जानने वाले दूसरे लोगों से सलाह लेता है वह संकट में नहीं पड़ता।

पञ्च महाभूत

पञ्चेमानि महाराज महाभूतानि संग्रहात्।
जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः।। भीष्म 5/3

महाराज! इस संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सब संक्षेप में पाँच महाभूतों से बनी हैं। मनीषी लोग इन सबको समान कहते हैं।

भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः।। भीष्म 5/4

आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि ये पाँच महाभूत हैं। आकाश से लेकर भूमि तक महाभूतों का जो क्रम है उसमें पहिले की अपेक्षा पिछले भूतों में एक-एक गुण अधिक होता है। इन सब महाभूतों में पृथ्वी प्रधान है।

शब्द स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्ववेदिभिः।। भीष्म 5/5

तत्त्वज्ञानी ऋषियों ने भूमि को पाँच गुणों वाली बताया है। ये गुण हैं- शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध।

चत्वारोऽप्सु गुणा राजन् गन्धस्तत्र न विद्यते।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः।
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव तु।। भीष्म 5/6

राजन्! जल में चार ही गुण हैं। उसमें गन्ध गुण नहीं होता। तेज (अग्नि) के शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन गुण हैं। वायु के शब्द और स्पर्श दो गुण हैं तथा आकाश का एक ही गुण शब्द है।

एते पञ्च गुणा राजन् महाभूतेषु पञ्चसु।
वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः।। भीष्म 5/7

राजन्! ये पाँच गुण पाँच महाभूतों में रहते हैं। पाँच महाभूतों से सारे प्राणी और पदार्थ बनते हैं। इन महाभूतों में सारे प्राणी प्रतिष्ठित हैं।

अन्योन्यं नाभिवर्तन्ते साम्यं भवति वै यदा।। भीष्म 5/8

ये पाँच गुण जब साम्यावस्था में रहते हैं तब एक-दूसरे से नहीं मिलते।

यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम्।
तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्यथा।। भीष्म 5/9

जब ये पाँचों गुण विषम अवस्था में आते हैं तब एक-दूसरे के साथ मिलते हैं। इन गुणों में विषमावस्था उत्पन्न होने पर देहधारी प्राणियों के शरीर बनते हैं, गुणों की साम्यावस्था में नहीं।

आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वशः।
सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम्।। भीष्म 5/10

ये सब भूत क्रम से अर्थात् एक के बाद एक उत्पन्न होते हैं और इसी प्रकार क्रम से ही नष्ट होते हैं। सबसे पहिले आकाश उत्पन्न होता है फिर वायु आदि। इसी प्रकार सबसे पहले भूमि का लय होता है फिर जल आदि का। ये सब पंच महाभूत अपरिमित हैं और इन्हें ईश्वर ने बनाया है।

तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते।। भीष्म 5/11

भिन्न-भिन्न लोकों में पाँच महाभूतों से बने पदार्थ दिखाई देते हैं। मनुष्य अपनी तर्क बुद्धि से इन पदार्थों के प्रमाण बतलाते हैं।

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यत् तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्।। भीष्म 5/12

जो पदार्थ अचिन्त्य अर्थात् सोचने योग्य नहीं हैं उनके बारे में तर्क से कुछ नहीं कहा जा सकता। जो पदार्थ प्रकृति से परे हैं वही अचिन्त्य हैं।

न युष्मास्विह मे प्रीति कामलोभानुसारिषु।
तस्मादुत्सृज्य कामान् वै सत्त्वमेवाश्रयाम्यहम्।। शान्ति 177/30

पंचमहाभूतो! तुम काम और लोभ के पीछे लगे रहते हो इसलिये मुझे तुमसे स्नेह नहीं है। मैं कामनाओं को छोड़कर सत्त्वगुण का सहारा ले रहा हूँ।

अमितानां महाशब्दो यान्ति भूतानि सम्भवम्।
ततस्तेषां महाभूतशब्दोऽयमुपपद्यते।। शान्ति 184/3

ये पाँच भूत (पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, और अग्नि) असीम हैं। इसलिये इनके साथ महा शब्द लगाया जाता है। इन्हीं से भूतों (प्राणियों) की उत्पत्ति होती है अतः इन्हें महाभूत कहना ठीक है।

चेष्टा वायुः खमाकाशमूष्माग्निः सलिलं द्रवः।
पृथिवी चात्र संघातः शरीरं पाञ्चभौतिकम्।। शान्ति 184/4

प्राणियों के शरीर इन पाँच महाभूतों के मिलने से बनते हैं। शरीर में चेष्ट्य या गति वायु के कारण है। खोखलापन आकाश का अंश, शरीर की गर्मी अग्नि का भाग और रक्त आदि तरल पदार्थ जल के अंश हैं। हड्डी, मांस आदि कड़े पदार्थ पृथिवी के अंश हैं।

इत्येतैः पञ्चभिर्भूतैर्युक्तं स्थावरजंगमम्।
श्रोत्रं घ्राणं रसः स्पर्शो दृष्टिश्चेन्द्रियसंज्ञिताः।। शान्ति 184/5

इस तरह सारा चल और अचल जगत् इन पाँच महाभूतों से बना हुआ है। कान, नाक, जिह्वा, त्वचा और आँख ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ इन्हीं पाँच महाभूतों की सूक्ष्म अंश हैं।

त्वक् च मांसं तथास्थीनि मज्जा स्नायुश्च पञ्चमम्।
इत्येतदिति संघातं शरीरे पृथिवीमयम्।। शान्ति 184/20

शरीर में त्वचा, माँस, हड्डियाँ, मज्जा और नस-नाड़ियाँ ये पाँच वस्तुएँ पृथिवी के अंश से बनी हैं।

तेजो ह्यग्निस्तथा क्रोधश्चक्षुरूष्मा तथैव च।
अग्निर्जरयते यश्च पञ्चाग्नेयाः शरीरिणः।। शान्ति 184/21

तेज, क्रोध, आँख, गर्मी तथा जठराग्नि, ये पाँच अग्नि के अंश हैं।

श्रोत्रं घ्राणं तथाऽऽस्यं च हृदयं कोष्ठमेव च।
आकाशात् प्राणिनामेते शरीरे पञ्चधातवः।। शान्ति 184/22

कान, नाक, मुख, हृदय और पेट ये आकाश के तत्त्व हैं।

श्लेष्मा पित्तमथ स्वेदो वसा शोणितमेव च।
इत्यापः पञ्चधा देहे भवन्ति प्राणिनां सदा।। शा० 184/23

कफ, पित्त, पसीना, चर्बी और खून ये जल के अंश हैं।

प्राणात् प्रणीयते प्राणी व्यानाद् व्यायच्छते तथा।
गच्छत्यपानोऽधश्चैव समानो हृद्यवस्थितः।। शा०184/24

उदानादुच्छ्वसिति च प्रतिभेदाच्च भाषते।
इत्येते वायवः पञ्च चेष्टयन्तीह देहिनम्।। शान्ति 184/25

प्राण वायु से प्राणी चलता है। व्यान वायु से परिश्रम करता है। अपान वायु शरीर में ऊपर से नीचे की ओर जाती है। समान वायु हृदय में होती है। उदान वायु से प्राणी श्वास लेता और बोलता है। इस प्रकार ये पाँच वायु शरीर को चलाती हैं।

भूमेर्गन्धगुणान् वेत्ति रसं चाद्भ्यः शरीरवान्।
ज्योतिषा चक्षुषा रूपं स्पर्शं वेत्ति च वाहिना।। शा० 184/26

प्राणी भूमि से अर्थात् नाक से गन्ध सूंघता है। जल की इन्द्रिय जिह्वा से रसों का स्वाद लेता है। तेज (अग्नि) से बने नेत्रों से रूप का तथा वायु से बनी त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है।

आपोऽग्निर्मारुतश्चैव नित्यं जाग्रति देहिषु।
मूलमेते शरीरस्य व्याप्य प्राणानिह स्थिताः।। शान्ति 184/44

जल, अग्नि और वायु ये तीन तत्त्व प्राणियों के शरीरों में अपना काम सदा करते रहते हैं। ये तत्त्व ही शरीर के आधार हैं और ये प्राणों से ओत-प्रोत हुए शरीर में रहते हैं।

पश्चात्ताप

अतिक्रान्तं हि यत् कार्यं पश्चाच्चिन्तयते नरः।
तच्चास्य न भवेत् कार्यं चिन्तया च विनश्यति।। कर्ण 31/29

जो व्यक्ति पहले किये हुए किसी काम के बारे में पीछे सोचता है तो ऐसा करने से उसका पहला काम तो बनता नहीं अपितु चिन्ता करने से वह मनुष्य अपने आप भी नष्ट हो जाता है।

आदावेव मनुष्येण वर्तितव्यं यथाक्षमम्।
यथा नातीतमर्थं वै पश्चात्तापेन युज्यते।। स्त्री 1/35

मनुष्य को शुरू में ही अपनी सामर्थ्य के अनुसार उचित बर्त्ताव करना चाहिये ताकि आगे चलकर उसे बीती हुई बात के लिये पछताना न पड़े।

मृतं वा यदि वा नष्टं योऽतीतमनुशोचति।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ प्रपद्यते।। स्त्री 26/4

यदि कोई मनुष्य मरे हुए सम्बन्धी, नष्ट हुई वस्तु और बीती हुई किसी बात के लिये शोक करता है तो उसे एक दुःख के बाद दूसरा दुःख अर्थात् दुहरा दुःख मिलता है।

तस्मात् प्रत्यक्षदृष्टोऽपि युक्तो ह्यर्थः परीक्षितुम्।
परीक्ष्य ज्ञापयन्नर्थान्न पश्चात् परितप्यते।। शान्ति 111/67

इसलिये प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वस्तु की भी परीक्षा कर लेनी चाहिये। जो भले-बुरे की जाँच कर आज्ञा देता है वह बाद में पछताता नहीं।

दुर्बलात्मन उत्पन्नं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः।। शान्ति 270/14

जिनका हृदय दुर्बल है उन्हीं से पाप होता है। ऐसे ही मनुष्यों के लिये प्रायश्चित्त का विधान किया गया है ऐसा सुनने में आता है।

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते।
तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते।। अनु 112/5

मनुष्य मन से जिस पाप कर्म की निन्दा या पश्चात्ताप करने लगता है धीरे-धीरे उसका शरीर पाप के उस काम से मुक्त होने लगता है।

यथा लवणमम्भोभिराप्लुतं प्रविलीयते।
प्रायश्चित्तहतं पापं तथा सद्यः प्रणश्यति।। अनु 162/57

जैसे पानी में नमक घुल जाता है वैसे ही प्रायश्चित्त करने से पाप जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं।

पापकर्म

यो हि कश्चिद् द्विजान् हन्याद् गां वा लोकस्य मातरम्।
शरणागतं च त्यजते तुल्यं हि तेषां पातकम्।। वन 131/6

जो ब्राह्मण की हत्या करता है, या संसार को माता की भाँति पालने वाली गाय की हत्या करता है या शरणागत की रक्षा नहीं करता उसको एक जैसा ही पाप लगता है।

पापं कृत्वा हि मन्येत नाहमस्मीति पूरुषः।
तं तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः।। वन 207/54

जो व्यक्ति पाप करके भी यह मानता है कि मैं पापी नहीं हूँ। वह भूल करता है क्योंकि उसके पाप को देवता और हृदय में बैठा परमात्मा देखता है।

पापानां विद्ध्यधिष्ठानं लोभमेव द्विजोत्तम।
लुब्धाः पापं व्यवस्यन्ति नरा नातिबहुश्रुताः।। वन 207/58

विप्रश्रेष्ठ! लोभ को ही पापों की जड़ समझो। जिन लोगों ने शास्त्रों को बहुत बार नहीं सुना है वही लोग लोभ में पड़कर पापकर्म करते हैं।

पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः।। उद्योग 35/61

बार-बार पापपूर्ण काम करने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।। उद्योग 35/62

नष्ट हुई बुद्धि वाला पुरुष सदा पाप के कार्य ही करता है।

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात् पापमाचरन्।। उद्योग 35/64

गुणों में दोष निकालने वाला, मर्मस्थल पर चोट करने वाला, क्रूर, वैर बांधने वाला और दुष्ट मनुष्य पाप करता हुआ जल्दी ही आफत में पड़ जाता है।

पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्धते।
यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते।
अगाध पङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते।। उद्योग 39/35

जो विद्वान् पापयुक्त फल देने वाला काम नहीं करता वह उन्नति करता है। जो पहले किये हुए पापकर्म पर विचार न करके फिर पापकर्म करता है वह गहरी कीचड़ में डूब जाता है। ऐसा मूर्ख नरक में जाता है।

धनंजय कृतं पापं कल्याणेनोपहन्यते।। शान्ति 7/36
ख्यापनेनानुतापेन दानेन तपसापि वा।। शान्ति 7/37

अर्जुन! किया हुआ कोई पाप का काम अच्छे काम करने से, पाप कर्म स्वीकार कर लेने से, उसके लिये पश्चात्ताप करने से, दान देने से और तपस्या करने से नष्ट हो जाता है।

यो हि पापसमारम्भे कार्ये तद्भावभावितः।
कुर्वन्नपि तथैव स्यात् कृत्वा च निरपत्रपः।। शान्ति 33/35

तस्मिंस्तत् कलुषं सर्वं समाप्तमिति शब्दितम्।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति ह्रासो वा पापकर्मणः।। शान्ति 33/36

जो पुरुष मन में पाप की भावना रखकर कोई पाप करता है और पापकर्म करते हुए भी पाप की भावना उसके मन में बनी रहती है और पाप करके भी वह लज्जित नहीं होता तो ऐसे व्यक्ति को वह पाप सदा लग जाता है। ऐसे पाप का कोई प्रायश्चित्त नहीं है और प्रायश्चित्त से भी वह पाप कम या नष्ट नहीं होता।

तपसा कर्मणा चैव प्रदानेन च भारत।
पुनाति पापं पुरुषः पुनश्चेन्न प्रवर्तते।। शान्ति 35/1

भरतनन्दन! मनुष्य तपस्या से, यज्ञ आदि अच्छे कामों से और दान से अपने पापों को नष्ट कर देता है यदि वह दुबारा पाप न करे।

सावित्रीमप्यधीयीत शुचौ देशे मिताशनः।
अहिंसो मन्दकोऽजल्पो मुच्यते सर्वकिल्विषैः।। शान्ति 35/37

जो व्यक्ति साफ-सुथरी जगह में बैठकर और कम भोजन करके, हिंसा का त्याग करके, राग-द्वेष, मान-अपमान की परवाह न करके और मौन रहकर गायत्री मन्त्र का जाप करता है वह पापों से छूट जाता है।

तस्माद् दानेन तपसा कर्मणा च फलं शुभम्।
वर्धयेदशुभं कृत्वा यथा स्यादतिरेकवान्।। शान्ति 35/41

यदि मनुष्य से कोई बुरा काम हो जाय तो वह दान, तपस्या और यज्ञ जैसे अच्छे काम करके शुभ फल को बढ़ाये जिससे उसके पास अशुभ कर्मों की तुलना में शुभ कर्मों का संग्रह अधिक हो जाय।

जानता तु कृतं पापं गुरु सर्वं भवत्युत।
अज्ञानात् स्वल्पको दोषः प्रायश्चित्तं विधीयते।। शान्ति 35/45

जान-बूझकर किया गया पाप बहुत बड़ा होता है। अनजाने में किये गये पाप कर्म का दोष कम होता है। कम या अधिक पाप कर्म के अनुसार ही इनका प्रायश्चित्त होता है।

न मिश्रः स्यात् पापकृद्भिः कथंचित्।। शान्ति 73/23

मनुष्य को पापी लोगों के साथ कभी भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

पापस्य लोको निरयोऽप्रकाशो नित्यं दुःखं शोकभूयिष्ठमेव।
तत्रात्मानं शोचति पापकर्मा बन्हीः समाः प्रतपन्नप्रतिष्ठः।।

शान्ति 73/27

पापी का लोक नरक है। वहाँ अंधेरा छाया रहता है। वहाँ सदा दुःख और शोक ही रहता है। नरक में पापी अनेक वर्षों तक दुःख भोगता रहता है। वह एक जगह नहीं रहने पाता और सदा शोक सन्तप्त रहता है।

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पौत्रेषु नप्तृषु।
न हि पापं कृतं कर्म सद्यः फलति गौरिव।। शान्ति 91/21

यदि पाप का फल अपने को नहीं मिला तो वह पुत्रों, नाती-पातों को अवश्य मिलता है। जैसे जमीन में बोया हुआ बीज एकदम फल नहीं देता वैसे ही पाप का फल भी एकदम नहीं मिलता।

अपविध्यन्ति पापनि दान यज्ञ तपोबलः।। शान्ति 97/5

पापकर्म; दान, यज्ञ और तपस्या के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं।

सह संजात वृद्धस्य तथैव सहभोजिनः।
शरणागतस्य च वधस्त्रिविधं ह्येव पातकम्।। शान्ति 139/19

साथ-साथ पैदा हुए और पाले गये, साथ ही भोजन करने वाले और शरण में आये हुए व्यक्ति की हत्या करने से तीन तरह का पाप लगता है।

इच्छ्येह कृतं पापं सद्यस्तं चोपसर्पति।
कृतं प्रतिकृतं येषां न नश्यति शुभाशुभ।। शान्ति 139/21

इस संसार में जानबूझकर जो पाप किया जाता है उसका फल जल्दी ही मिल जाता है। जिनको पाप का बदला मिल जाता है उनके शुभ और अशुभ कर्म नष्ट नहीं होते।

पापं कर्म कृतं किंचिद् यदि तस्मिन् न दृश्यते।
नृपते तस्य पुत्रेषु पौत्रेष्वपि नप्तृषु।। शान्ति 139/22

राजन्! यदि किये हुए पाप का फल पाप करने वाले को नहीं मिलता दिखाई दे तो समझना चाहिये कि उसके पुत्रों, पोतों और नातियों को उसके पापकर्म का फल मिलेगा।

आत्मनानर्थयुक्तेन पापे निविशते मनः।
स्वकर्मकलुषं कृत्वा कृच्छ्रे लोके विधीयते।। शान्ति 181/2

काम, क्रोध आदि दोषों से युक्त बुद्धि के कारण मन पाप कर्म कराता है मनुष्य अपने आप पाप के काम करके नरक में जाता है।

अज्ञानाद्धि कृतं पापं तपसैवाभिनिर्णुदेत्।। शान्ति 291/6

अनजाने में किये गये पापकर्म को तपस्या से नष्ट कर देना चाहिये।

आत्मनानर्थयुक्तेन पापे निविशते मनः।
स कर्म कलुषं कृत्वा क्लेशे महति धीयते।। शान्ति 322/2

जब बुद्धि में काम, क्रोध आदि बुराइयाँ आ जाती हैं तब मनुष्य का मन पाप करने की सोचने लगता है। वह बुरे काम करके बड़ी विपत्ति मे फंस जाता है।

प्राणातिपातः स्तैन्यं च परदारानथापि च।
त्रीणि पापानि कायेन सर्वतः परिवर्जयेत्।। अनुशासन 13/3

किसी को जान से मारना, चोरी करना और परस्त्रीगमन ये तीन पाप कर्म शरीर से किये जाते हैं। इन्हें कभी भी नहीं करना चाहिये।

असत्प्रलापं पारुष्यं पैशुन्यमनृतं तथा।
चत्वारि वाचा राजेन्द्र न जल्पेन्नानुचिन्तयेत्।। अनुशासन 13/4

राजन्! मुँह से बुरी बात कहना, कड़वा बोलना, चुगली करना और झूठ बोलना ये चार वाणी के पापकर्म हैं। इन्हें नहीं करना चाहिये और न ही इनके बारे में सोचना चाहिये।

अनभिध्या परस्वेषु सर्वसत्त्वेषु सौहृदम्।
कर्मणां फलमस्तीति त्रिविधं मनसा चरेत्।। अनुशासन 13/5

दूसरों का धन हड़पने के उपाय न सोचना, सभी प्राणियों के साथ मैत्री भाव रखना और किये गये कर्मों का फल मिलता है यह विश्वास रखना-ये तीन काम मन लगाकर सदा करने चाहियें।

अधिकारे यदनृतं यच्च राजसु पैशुनम्।
गुरोश्चालीककरणं तुल्यं तद् ब्रह्महत्यया।। अनुशासन 22/29

न्याय करने का अधिकार पाकर झूठा फैसला करना, या न्यायालय में झूठ बोलना, राजा और अधिकारी से किसी की चुगली करना तथा गुरु के साथ छल-कपट करना ये तीनों काम ब्रह्महत्या के समान ही हैं।

कुर्वाणं हि नरं कर्म पापं रहसि सर्वदा।
पश्यन्ति ऋतवश्चापि तथा दिननिशेऽप्युत।। अनु 43/7

एकान्त में पाप का काम करते हुए मनुष्य को दिन-रात और ऋतुएँ देखती रहती हैं।

परोपतापजननमत्यन्तं पातकं स्मृतम्।। अनु 145 दा० पा०

दूसरों को सताना बहुत बड़ा पाप होता है।

तपोभिः क्रतुभिश्चैव दानेन च युधिष्ठिर।
तरन्ति नित्यं पुरुषा ये स्म पापानि कुर्वते।। आश्व 3/4

युधिष्ठिर! जो लोग पाप करते हैं वे लोग तपस्या करके, यज्ञ करके और दान देकर अपना उद्धार करते हैं।

यज्ञेन तपसा चैव दानेन च नराधिप।
पूयन्ते नरशार्दूल नरा दुष्कृतकारिणः।। आश्व 3/5

नरेश्वर! पुरुषसिंह! पाप करने वाले मनुष्य यज्ञ, दान और तप से पवित्र होते हैं।

पाण्डव और उनकी पत्नियाँ

य एष जाम्बूनदशुद्धगौरस्तनुर्महासिंह इव प्रवृद्धः।
प्रचण्डघोणः पृथुदीर्घनेत्रस्ताम्रायताक्षः कुरुराज एषः।। आश्रमवास 25/5

ये जो खरे सोने के रंग जैसे गोरे, शेर जैसे शरीर वाले और आयु में सबसे बड़े हैं। जिनकी नाक नुकीली तथा आँखें बहुत बड़ी और थोड़ी-सी लाल हैं वे कुरुराज युधिष्ठिर हैं।

अयं पुनर्मत्तगजेन्द्रगामी प्रतप्तचामीकर शुद्धगौरः।
पृथ्वायतांसः पृथुदीर्घबाहुर्वृकोदरः पश्यत पश्यतेमम्।। आश्रमवास 25/6

मतवाले हाथी की चाल वाले, तपाये हुए सोने के समान विशुद्ध गोरे रंग के, मोटे और चौड़े कन्धों वाले तथा मोटी और लम्बी बाहु वाले ये भीमसेन हैं। इन्हें आप अच्छी तरह देख लें।

यस्त्वेष पार्श्वेऽस्य महाधनुष्मान् श्यामो युवावारणयूथपाभः।
सिंहोन्नतांसो गजखेलगामी पद्मायताक्षोऽर्जुन एष वीरः।।
आश्रमवास 25/7

भीमसेन की बगल में हाथ में बड़ा धनुष थामे हुए सांवले रंग के जो युवक खड़े हैं। जो हाथियों के झुण्ड के राजा जैसे दिखते हैं। जिनके कंधे शेर जैसे ऊँचे हैं और जो हाथी जैसी मस्तानी चाल से चलते हैं। इनकी आँखें कमल जैसी बड़ी हैं। यही वीर अर्जुन हैं।

कुन्तीसमीपे पुरुषोत्तमौ तु यमाविमौ विष्णुमहेन्द्रकल्पौ।
मनुष्यलोके सकले समोऽस्ति ययोर्न रूपे न बले न शीले।।
आश्रमवास 25/8

कुन्ती के पास जो दो श्रेष्ठ पुरुष बैठे हुए हैं वे जुड़वां भाई नकुल और सहदेव

हैं। ये दोनों भाई भगवान विष्णु और इन्द्र के समान दिखते हैं। इनके रूप, बल और चरित्र के समान कोई और मनुष्य सारी पृथ्वी पर नहीं है।

इयं पुनः पद्मदलायताक्षी मध्यं वयः किंचिदिव स्पृशन्ती।
नीलोत्पलाभा सुरदेवतेव कृष्णा स्थिता मूर्तिमतीव लक्ष्मीः।।

आश्रमवास 25/9

ये जो लगभग अधेड़ आयुवाली, कमलपत्र के समान बड़ी-बड़ी आँखों वाली और नीलकमल जैसी श्यामल कान्ति से सुशोभित लक्ष्मी जैसी सुन्दरी तथा देवताओं की देवी जैसी दिख रही हैं वे द्रुपदकन्या महारानी द्रौपदी हैं।

अस्यास्तु पार्श्वे कनकोत्तमाभा यैषा प्रभा मूर्तिमतीव सौमी।
मध्ये स्थिता सा भगिनी द्विजाग्र्याश्चक्रायुधस्याप्रतिमस्य तस्य।।

आश्रमवास 25/10

श्रेष्ठ ब्राह्मणो! द्रौपदी के पास जो विशुद्ध सुर्वण से भी उत्तम कान्तिवाली, चन्द्रमा की मूर्तिमती प्रभा जैसी देवी स्त्रियों के बीच बैठी हैं वे अनुपम प्रभावशाली चक्रधारी श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा हैं।

इयं च जाम्बूनदशुद्धगौरी पार्थस्य भार्या भुजगेन्द्रकन्या।
चित्राङ्गदा चैव नरेन्द्रकन्या यैषा सवर्णार्द्रमधूक पुष्पैः।।

आश्रमवास 25/11

ये खरे सोने के रंग जैसी गोरी सुन्दरी बैठी हैं वे नागराज की कन्या उलूपी हैं। जिनके अंगों की कान्ति महुए के स्निग्ध फूलों जैसी है ये राजकुमारी चित्राङ्गदा हैं। उलूपी और चित्राङ्गदा दोनों ही अर्जुन की पत्नियाँ हैं।

इयं स्वसा राजचमूपतेश्च प्रवृद्धनीलोत्पलदामवर्णा।
पस्पर्ध कृष्णेन सदा नृपो यो वृकोदरस्यैष परिग्रहोऽग्र्यः।।

आश्रमवास 25/12

ये नीलकमल के फूलों की माला जैसी सांवले रंग की रानी हैं वे भीम की श्रेष्ठ पत्नी हैं। ये उस राज सेनापति की बहन हैं जो श्रीकृष्ण से टक्कर लेने का हौंसला रखता था।

इयं च राज्ञो मगधाधिपस्य सुता जरासन्ध इति श्रुतस्य।
यवीयसो माद्रवतीसुतस्य भार्या मता चम्पकदाम गौरी।।

आश्रमवास 25/13

ये जो चम्पा के फूलों की माला के समान गोरी रानी हैं वे मगध नरेश जरासन्ध की बहिन हैं और माद्री के छोटे पुत्र सहदेव की पत्नी हैं।

इन्दीवरश्यामतनुः स्थिता तु यैषा परासन्नमहीतले च।

भार्या मता माद्रवतीसुतस्य ज्येष्ठस्य सेयं कमलायताक्षी।।

आश्रमवास 25/14

इनके पास ही नीलकमल जैसी जो सांवली सुन्दरी बैठी हैं। ये माद्री के बड़े पुत्र नकुल की पत्नी हैं। इनकी आँखें कमल के फूल जैसी सुन्दर और बड़ी हैं।

इयं तु निष्टप्तसुवर्ण गौरी राज्ञो विराटस्य सुता सपुत्रा।

भार्याभिमन्योर्हतो रणे यो द्रोणादिभिस्तैर्विरथो रथस्थैः।।

आश्रमवास 25/15

यह जो तपाये हुए सोने के रंग जैसी गोरी कान्ति वाली युवती अपने बेटे को गोद में लेकर बैठी हुई है वह राजा विराट की कन्या और अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा है। युद्ध में रथों पर सवार द्रोणाचार्य आदि ने अभिमन्यु को रथ से गिराकर मार डाला था।

एतास्तु सीमन्तशिरोरुहा याः शुक्लोत्तरीया नरराजपत्न्यः।

राज्ञोऽस्य वृद्धस्य परं शताख्याः स्नुषा नृवीराहतपुत्रनाथाः।।

आश्रमवास 25/16

ये जो सफेद चादर ओढ़े बैठी हैं और जिनकी मांगों में सिन्दूर नहीं है वे सब दुर्योधन आदि सौ भाइयों की पत्नियाँ और इन बूढ़े महाराज की पुत्रवधुएँ हैं। इनके पति और बेटे युद्ध में मारे गये हैं।

पाण्डव

सानुक्रोशा महात्मानो विजितेन्द्रियशत्रवः।

ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च धर्माचार परायणाः।। वन 1/18

पाण्डव, दयालु, उदारमन, जितेन्द्रिय, शत्रुविजयी, लज्जा और संकोच शील, यशस्वी, धर्मात्मा और सदाचारपरायण हैं।

धर्मे स्थिताः पाण्डवेयाः कस्तान् किं वक्तुमर्हति।। उद्योग 91/27

पाण्डव सदा अपने धर्म का पालन करते हैं उनके विरुद्ध कोई कुछ नहीं कह सकता।

यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः।। उद्योग 91/28

जो पाण्डवों से द्वेष करता है वह मुझसे द्वेष करता है। जो उनके अनुकूल है वह वह मेरे भी अनुकूल है। धर्म पर चलने वाले पाण्डवों के साथ तुम मुझे एकरूप हुआ ही समझो।

दृष्टि प्रदानमपि ते पाण्डवान् प्रति नो वृथा।। आश्रमवास 10/39
समर्थास्त्रिदिवस्यापि पालने किं पुनः क्षितेः।

महाराज धृतराष्ट्र! आप हम प्रजा की देखरेख का काम पाण्डवों को सौंप रहे हैं, किन्तु यह सब व्यर्थ ही है, क्योंकि पाण्डव तो स्वर्ग का पालन भी कर सकते हैं फिर इस पृथ्वी की बात क्या है?

मन्दा मृदुषु कौरव्य तीक्ष्णेष्वाशीविषोपमाः।। आश्रमवास 10/45
वीर्यवन्तो महात्मानः पौराणां च हिते रताः।

कुरुनन्दन! ये पाँचों पाण्डव बहुत पराक्रमी, उदारमन वाले हैं और नगरवासियों के हित में लगे रहते हैं। ये पाण्डव कोमल स्वभाव वालों के प्रति आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करते हैं किन्तु उग्र स्वभाव वाले दुष्टों के लिये विषधर सर्पों के समान हैं।

पिता

पित्रा पुत्रो वयस्थोऽपि सततं वाच्य एव तु।
यथा स्याद् गुणसंयुक्तः प्राप्नुयाच्च महद् यशः।। आदि 42/4

पुत्र के बड़े हो जाने पर भी पिता को अच्छी बातों का उपदेश करते रहना चाहिये जिससे पुत्र गुणों से युक्त हो जाये और महान् यश प्राप्त करे।

शरीरकृत् प्राणदाता यस्य चान्नानि भुञ्जते।
क्रमेणैते त्रयोऽप्युक्ताः पितरो धर्मशासने।। आदि 72/15

गर्भाधान के द्वारा शरीर बनाने वाला, प्राणों की रक्षा करने वाला और अन्न देने वाला ये तीन धर्मशास्त्र में पिता कहे गये हैं।

पित्रा मात्रा च पुत्रस्य यद् वै कार्यं परं स्मृतम्।। सभा 50/12

माता-पिता को चाहिये कि वे पुत्र को अच्छे काम करने की सलाह दें।

खात् पितोच्चतरस्तथा।। वन 313/60

पिता आकाश से भी अधिक ऊँचा होता है।

एतच्छ्रेयो हि मन्यन्ते पिता यच्छास्ति भारत।
उत्तमापद्गतः सर्वः पितुः स्मरति शासनम्।। उद्योग 124/20

भारत! पिता जो शिक्षा देते हैं उसी को श्रेष्ठ पुरुष कल्याणकारी मानते हैं। बड़ी विपत्ति में पड़ने पर सब लोग अपने पिता का उपदेश ही याद करते हैं।

बहुकल्याण संयुक्तानीच्छन्ति पितरः सुतान्।
तपसा ब्रह्मचर्येण सत्येन च तितिक्षया।। शान्ति 7/13

सभी पिता तपस्या, ब्रह्मचर्य व्रत के पालन, सत्य भाषण और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करके अनेक कल्याणकारी गुणों से युक्त पुत्रों को चाहते हैं।

भृतो वृद्धो यो न बिभर्ति पुत्रःस्वयोनिजः पितरं मातरं च।
तद्वै पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं तस्मान्नान्यः पापकृदस्ति लोके।।

शा० 108/31

जो माता-पिता का सगा पुत्र है। जिसे माता-पिता ने पाल पोसकर बड़ा किया है। यदि वह बूढ़े माता-पिता की सेवा नहीं करता तो उसे भ्रूणहत्या का पाप लगता है। उससे बढ़कर और कोई पापी नहीं होता।

तपः शौचवता नित्यं सत्यधर्मरतेन च।
मातापित्रोरहरहः पूजनं कार्यमञ्जसा।। शान्ति 129/10

तपस्या करने वाले, शरीर और मन को पवित्र रखने वाले और सदा सत्य पर चलने वाले मनुष्य को प्रतिदिन अपने माता-पिता की सेवा करनी चाहिये।

पितुराज्ञा परो धर्मः स्वधर्मो मातृरक्षणम्।। शान्ति 266/11

पुत्र का मुख्य धर्म यही है कि वह पिता की आज्ञा का पालन करे और अपनी माता के जीवन की रक्षा करे।

पितरं चाप्यवज्ञाय कः प्रतिष्ठामवाप्नुयात्।। शान्ति 266/12

पिता की आज्ञा न मानकर कौन व्यक्ति प्रतिष्ठा पा सकता है।

गुरुरग्र्यः परो धर्मः पोषणाध्यापनान्वितः।। शान्ति 266/18।

पिता पालन-पोषण करने और शिक्षा देने के कारण पुत्र का प्रधान गुरु है।

प्रीतिमात्रं पितुः पुत्रः सर्वं पुत्रस्य वै पिता।

शरीरादीनि देयानि पिता त्वेकः प्रयच्छति।। शान्ति 266/19

पिता की सारी प्रीति का रूप पुत्र होता है और पिता ही पुत्र का सब कुछ होता है। केवल पिता ही पुत्र को शरीर आदि सभी वस्तुएँ देता है।

पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।

पितरि प्रीतिमापन्ने सर्वाः प्रीयन्ति देवताः।। शान्ति 266/21

पिता ही धर्म है, पिता ही स्वर्ग है और पिता ही सबसे बड़ी तपस्या है। पिता के प्रसन्न होने पर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं।

आशिषस्ता भजन्त्येनं परुषं प्राह यत् पिता।

निष्कृतिः सर्वपापानां पिता यच्चाभिनन्दति।। शान्ति 266/22

पिता यदि पुत्र से कुछ कठोर बात कह देता है तो कठोर बात पुत्र के लिये आशीर्वाद बन जाती है। यदि पिता मीठी वाणी से पुत्र का अभिनन्दन करता है तो इससे पुत्र के सभी पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है।

मुच्यते बन्धनात् पुष्पं फलं वृक्षात् प्रमुच्यते।

क्लिश्यन्नपि सुतं स्नेहैः पिता पुत्रं न मुञ्चति।। शान्ति 266/23

फूल डण्ठल से अलग हो जाता है और फल वृक्ष से अलग हो जाता है। किन्तु पिता कितने भी कष्ट में होने पर भी पुत्र को कभी नहीं छोड़ता है।

ये पितुर्भ्रातरो ज्येष्ठा ये च तस्यानुजास्तथा।

पितुः पिता च सर्वे ते पूजनीयाः पिता तथा।। अनु 145 दा० पा०

पिता के बड़े और छोटे भाई अर्थात् ताऊ-चाचा और पिता के पिता अर्थात् बाबा-दादा इन सबका पिता की ही तरह आदर-सम्मान करना चाहिये।

साधूनां काङ्क्षितं यस्मात् पितुर्वृद्धस्य पालनम्। आश्व 90/57

सज्जनों की यही इच्छा रहती है कि पुत्र, बूढ़े पिता की देखभाल करे।

उत्पाद्य पुत्रं हि पिता कृतकृत्यो भवेत् सुतात्।। आश्व 90/60

पुत्र को जन्म देकर ही पिता अपने को कृतार्थ मानता है।

पुस्तकालय
147089
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

ास्ततः ।
यथा ।।

34/33

ौर ग्रन्थों
ा जीवन
्रा अन्न
निर्वाह

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access on		10/3/10
Class on		24/4/10
Cat on		3
Tag etc.		
Filing		
E.A.R.		3
Any others		
Checked		

Recommended By डा० सत्यदेव विद्यालंकार

Entered in Database

Signature with Date 11/8/11

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा।।

उद्योग पर्व 34/33

धैर्यशाली व्यक्ति को अनेक शास्त्रों और ग्रन्थों से उसी प्रकार सुभाषित इकट्ठे करके अपना जीवन संवारना चाहिये जैसे कटे हुए खेतों में बिखरा अन्न एकत्र करके कोई तपस्वी अपना जीवन निर्वाह करता है।

ISBN : 978-81-7702-193-1(सेट)

ISBN 817702193-1
9 788177 021936

PRATIBHA
प्रतिभा प्रकाशन
(प्राच्यविद्या प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता)
7259/20 अजेन्द्र मार्केट,
प्रेमनगर, शक्तिनगर, दिल्ली-110007